इकाई–1 वित्तीय बाजारः प्रस्तावना व सिंहावलोकन (FINANCIAL MARKET: INTRODUCTION AND OVERVIEW)

इकाई की रुपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 वित्तीय प्रणालीः अर्थ
1.3 वित्तीय प्रणाली के कार्य
1.4 वित्तीय अवधारणा
1.4.1 वित्तीय सम्पत्ति
1.4.2 वित्तीय मध्यस्थ
1.4.3 वित्तीय बाजार
1.5 मुद्रा बाजार
1.6 मुद्रा बाजार की विशेषतायें
1.7 मुद्रा बाजार के उद्देश्य
1.8 विकसित मुद्रा बाजार की विशेषतायें
1.9 मुद्रा बाजार का महत्व
1.10 मुद्रा बाजार एवं पूँजी बाजार में अन्तर
1.11 मुद्रा बाजार के संघटक
1.12 सारांश
1.13 शब्दावली
1.14 बोध प्रश्न
1.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.16 स्वपरख प्रश्न
1.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- वित्तीय प्रणाली के कार्य तथा महत्व को समझ सकें।
- मुद्रा बाजार के संघटकों को समझ सकें।
- मुद्रा बाजार के साधनों का वर्णन कर सकें ।
- मुद्रा बाजार एवं पूँजी बाजार में अन्तर कर सकें ।

1.1 प्रस्तावना

एक विकसित वित्तीय प्रणाली में सुरक्षित तथा उन्नत भुगतान प्रक्रिया, प्रतिभूति बाजार, बाजारों के लिए वित्त व्यवस्था हेतु मध्यस्थों की उपस्थिति के साथ–साथ जोखिम प्रबन्धन हेतु वित्तीय संस्थानों की उपस्थिति अनिवार्य है। इस इकाई में आप वित्तीय प्रणाली का अर्थ, वित्तीय प्रणाली के कार्य, वित्तीय अवधारणा, मुद्रा बाजार की विशेषतायें, मुद्रा बाजार का महत्व, मुद्रा बाजार एवं पूँजी बाजार में अन्तर व मुद्रा बाजार के संघटक का अध्ययन करेंगे।

1.2 वित्तीय प्रणालीः अर्थ

वित्तीय प्रणाली मुख्य रूप से दो शब्दों वित्त तथा प्रणाली से मिलकर बना है। वित्त का सामान्य अर्थ है मौद्रिक श्रोत जिसमें स्वामित्व तथा उधार दोनों सम्मिलित किया जाता है तथा प्रणाली का अर्थ किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक से अधिक सम्बन्धित कार्यों को करने से है। किसी भी अर्थव्यवस्था के वित्तीय प्रणाली (Financial System) के दो महत्वपूर्ण कार्य हैं व्यक्तियों तथा संस्थाओं/संगठनों के आधिक्य वित्त (Surplus Fund) को चलन में लाना व आधिक्य कोषों (Surplus Funds) को उन व्यक्तियों तथा संगठनों को मुहय्या कराना जिन्हें इसकी कमी/जरूरत है।एक विनियोक्ता (investor) आधिक्य कोष तथा उधार लेने वाला (Borrower) कोष की कमी (Deficit) का सामान्य उदाहरण हो सकता है।

1.3 वित्तीय प्रणाली के कार्य

किसी भी अर्थव्यवस्था के विकसित या विकासशील होने में उस देश में उपस्थित वित्तीय प्रणाली का महत्वपूर्ण योगदान होता है। हमें यह समझना होगा कि वित्त का बेहतर प्रयोग/निवेश किसी अर्थव्यवस्था की प्रगति में अहम भूमिका निभाता है तथा वित्त के बेहतर प्रयोग, वित्त की उपलब्धता तथा वित्त से सम्बन्धित जोखिम प्रबन्धन का प्रमुख कार्य वित्तीय प्रणाली के माध्यम से किया जाता है। इस सब का ध्यान रखते हुए वित्तीय प्रणाली की मुख्य भूमिका निम्नवत हो सकती है;

- **उधार की उत्पत्ति तथा आवंटन की व्यवस्था करा (To facilitate creation and Allocation of Credit)**– किसी अर्थव्यवस्था में व्याप्त वित्तीय प्रणाली का यह मुख्य कार्य है कि इसके द्वारा आधिक्य कोषों की उत्पत्ति कर इनके आवंटन (उधार के रूप में) की व्यवस्था करना।
- **बचत को चलन में लाने हेतु मध्यस्थता करना (To serve as intermediary for Mobilization of saving)**– अर्थव्यवस्था की निरन्तर बेहतरी के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तियों, भारतीय मुद्रा बाजार तथा संगठनों की बचतों का उचित तथा बेहतर तरीके से निवेश किया जाय। अतः किसी देश की वित्तीय प्रणाली बचतों के निवेश के लिए एक मध्यस्थ की भूमिका निभाता है।
- **सन्तुलित आर्थिक विकास में सहायक (To Assist in Balanced Economic Growth)**– वित्त की उपलब्धता के साथ ही इसका बेहतर प्रक्रियाओं में निवेश भी किसी देश की सन्तुलित आर्थिक विकास का सार है तथा यह महत्वपूर्ण कार्य वित्तीय प्रणाली द्वारा पूर्ण किया जाता है।
- **व्यावसायिक घरानों की विभिन्न उधार आवश्यकताओं में सहायक (To cater Various Credit needs of the Business Houses)**– देश के विकास में सहयोगी विभिन्न व्यवसायिक घरानों की विभिन्न उद्देश्यों हेतु उधार वित्त आवश्यकताओं समय समय पर उत्पन्न होती हैं जिनका समाधान देश में व्याप्त वित्तीय प्रणाली के माध्यम से निकाला जाता है।
- **वित्त सुविधा प्रदान करना (To Provide Financial Convenience)**– उक्त वर्णित कार्यों का सार के रूप में किसी वित्तीय प्रणाली के कार्यों की

चर्चा की जाय तो वित्तीय सुविधा प्रदान करना ही एक मात्र कार्य इस प्रणाली का है। इसमें बचतों की उत्पत्ति, इनका संज्ञान, बचतों को चलन में लाना, वित्त की आवश्यकता/उधार क्षेत्रों का ज्ञान तथा दोनों (वित्त आधिक्य एवं वित्त की आवश्यकता) क्षेत्रों के बीच मध्यस्थता कर वित्तीय सुविधा प्रदान करना ही वित्तीय प्रणाली की भूमिका है।

1.4 वित्तीय अवधारणा (Financial Concept)

वित्तीय प्रणाली को बेहतर रूप से समझने के लिए निम्नलिखित अवधारणाओं को समझना आवश्यक है;

1.4.1 वित्तीय सम्पत्ति (Financial Assets)
1.4.2 वित्तीय मध्यस्थ (Financial Intermediaries)
1.4.3 वित्तीय बाजार (Financial Markets)
1.4.4 वित्तीय रिटर्न की दर (Financial Rate of Return)
1.4.5 वित्तीय उपकरण (Financial Instruments)
1.4.6 वित्तीय बाजार और वित्तीय संस्थान

1.4.1 वित्तीय सम्पत्ति (Financial Asset)–

किसी भी वित्तीय क्रियाकलाप में वित्तीय सम्पत्ति की उत्पत्ति या हस्तान्तरण आवश्यक है। वित्तीय सम्पत्ति कोषों को ऋणदाता से ऋण मांगने वाले के पास हस्तान्तरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसलिए किसी भी वित्तीय बाजार का मूल उत्पाद वित्तीय सम्पत्ति होता है। प्रत्येक सम्पत्ति एक दूसरे से भिन्न होती है। इस संदर्भ में हमें वित्तीय सम्पत्ति और वास्तविक सम्पत्ति के भेद का ज्ञान होना भी आवश्यक है। वित्तीय सम्पत्ति से भिन्न वास्तविक सम्पत्ति का प्रयोग अन्य उत्पादों के उत्पादन का आय कमाने के उद्देश्य से नहीं किया जाता है। यह वास्तविक सम्पत्तियाँ अन्तिम उपभोग के लिए कमायी जाती हैं। उदाहरण के रूप में यदि किसी मकान में निवेश निवेशकर्त्ता द्वारा स्वयं के रहने के लिए किया जाता है तो वह वास्तविक सम्पत्ति होगी परन्तु यदि इस मकान का उपयोग किराये से आय कमाना होता तो यह सम्पत्ति वित्तीय सम्पत्ति मानी जायेगी।

वित्तीय सम्पत्ति के प्रकार (Types of Financial Assets)–

वित्तीय सम्पत्तियों के प्रकार इनके संदर्भ में निर्गत प्रतिभूतियों के आधार पर किया जा सकता है। कुछ प्रतिभूतियाँ अन्तिम ऋणगृहीता द्वारा अन्तिम ऋणदाता को निर्गत की जाती है तथा कुछ प्रतिभूतियां अन्तिम ऋणगृहीता के अतिरिक्त वित्तीय मध्यस्थों द्वारा निर्गत की जाती है। प्रतिभूतियों के निर्गमन के आधार पर वित्तीय सम्पत्तियां निम्न प्रकार की होती हैं;

(i) विक्रयशील वित्तीय सम्पत्ति (Marketable Financial Assets) ;
ii) अविक्रयशील वित्तीय सम्पत्ति (Non-Marketable of Financial Asset)

(i) विक्रयशील वित्तीय सम्पत्ति– विक्रयशील वित्तीय सम्पत्तियों से तात्पर्य उन सम्पत्तियों से है जिन्हें एक व्यक्ति से दूसरे को हस्तान्तरित करने में आसानी होती है या ज्यादा मुश्किलों का सामना नहीं करना पड़ता है। लिमिटेड कम्पनी के अंश, सरकारी प्रतिभूतियाँ, सार्वजनिक कम्पनियों की प्रतिभूति तथा बॉन्ड इस प्रकार की सम्पत्ति के प्रमुख उदाहरण हैं।

(ii) अविक्रयशील वित्तीय सम्पत्ति– विक्रयशील सम्पत्ति से भिन्न अविक्रयशील वित्तीय सम्पत्तियों को आसानी से एक से दूसरे को हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता है। जीवन बीमा पालिसी बैंक जमा, पेंशन फण्ड, प्रोविडेन्ट फण्ड, राष्ट्रीय बचत पत्र आदि वित्तीय सम्पत्तियाँ इस श्रेणी में आती हैं।

1.4.2 वित्तीय मध्यस्थ (Financial Intermediaries)–

वित्तीय मध्यस्थ से तात्पर्य उन सभी संगठनों से है जिनका कार्य व्यक्तियों तथा व्यवसायिक घरानों के मध्य वित्तीय क्रियाकलापों में सहायता/मध्यस्थता करना है। इसलिए इसमें सभी प्रकार के वित्तीय तथा निवेश संस्थान सम्मिलित हैं जिनके द्वारा वित्तीय बाजार में वित्तीय क्रियाकलापों में सहायता की जाती है। इन्हें मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है;

(i) पूँजी बाजार में मध्यस्थ (Capital Market Intermediaries)

(ii) मुद्रा बाजार में मध्यस्थ (Money Market Intermediaries)

पूँजी बाजार में मध्यस्थ– यह मध्यस्थ मुख्य रूप से व्यक्ति एवं व्यवसायिक उपभोक्ताओं को दीर्घकालीन कोषों को उपलब्ध कराते हैं। लम्बी अवधि के लिए कोषों की आवश्यकता की पूर्ति में यह मध्यस्थ महत्वपूर्ण भूमिका निभात हैं।

मुद्रा बाजार में मध्यस्थ– पूँजी बाजार के मध्यस्थों के विपरीत यह मध्यस्थ व्यक्तिगत या व्यवसायिक उपभोक्ताओं को कम अवधि के लिए कोष उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। इसके उदाहरण के रूप में वाणिज्यिक बैंक तथा सहकारी बैंक प्रमुख हैं।

1.4.3 वित्तीय बाजार (Financial Markets)–

सामान्य भाषा में बाजार से तात्पर्य किसी ऐसे स्थान भवन या स्थानीयता से होता है जहाँ व्यवसायी उपस्थित होते हैं लेकिन वित्तीय बाजार के संदर्भ में ऐसा कोई विशेष स्थान नहीं है जिसे वित्तीय बाजार कहा जा सके। वित्तीय बाजार वह बाजार है जहाँ वित्तीय सम्पत्तियों का उत्पादन तथा विनिमय सम्भव है। एक बार वित्तीय सम्पत्तियों के क्रय–विक्रय में सम्मिलित होने पर हम स्वतः ही वित्तीय बाजार में प्रतिभाग करने लगते हैं। जहाँ एक वित्तीय क्रियाकलाप उत्पन्न होता है उसे वित्तीय बाजार में ही उत्पन्न होना होगा। किस भी देश की आर्थिक प्रणाली में वित्तीय बाजार एक महत्वपूर्ण अंग है। उदाहरण के रूप में समता अंशों को निर्गमन, ऋणपत्रों का क्रय, बैंक जमा, ऋण निर्गत करना, जमा स्वीकार करना आदि वित्तीय बाजार के लेन–देन हैं।

वित्तीय बाजार का वर्गीकरण (Classificaiton of Financial Market)– वित्तीय बाजार का वर्गीकरण निम्नवत किया गया है;

- असंगठित बाजार (Unorganised Market)
- संगठित बाजार (Organised Market)

असंगठित बाजार (Unorganised Market)– असंगठित बाजार का अर्थ उस वित्तीय बाजार से है जिस पर सरकार का प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं है इस बाजार में विभिन्न प्रकार के मुद्रा ऋणदाता, देशी बैंकर्स तथा व्यापारी सम्मिलित हैं जो जनता को ऋण देते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ निजी वित्तीय कम्पनियाँ, चिटफण्ड कम्पनियाँ जिनकी गतिविधियाँ भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा नियंत्रित नहीं की जाती है अपना कारोबार करती है। इनमें से कुछ जनता से जमा भी स्वीकार करते हैं।

कुछ समय पहले भारतीय रिजर्व बैंक ने नॉन बैंकिंग वित्तीय संस्थानों की नियमावली के तहत निजी वित्तीय संस्थानों तथा चिटफण्ड कम्पनियों की कार्यपणाली पर नियंत्रण रखा।

संगठित बाजार (Organised Market)– संगठित क्षेत्र के वित्तीय बाजारों को भारतीय रिजर्व बैंक तथा वित्त मन्त्रालय द्वारा समयपर संशोधित स्पष्ट दिशा निर्देशों तथा नियमावली के आधार पर अपना वित्तीय कारोबार करना होता है। संगठित क्षेत्र के वित्तीय बाजार को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है;

(i) पूँजी बाजार (Capital Market)

(ii) मुद्रा बाजार (Money Market)

पूँजी बाजार (Capital Market)– पूँजी बाजार वित्तीय सम्पत्तियों का वह बाजार है जहाँ वित्तीय सम्पत्तियों की परिपक्वता (डंजनतपजल) लम्बी अवधि में या असीमित समय में होती है। सामान्यतः पूँजी बाजार में उपलब्ध वित्तीय सम्पत्ति की परिपक्वता कम से कम एक साल से अधिक अवधि में होगी। पूँजी बाजार को पुनः निम्नवत विभाजित किया जा सकता है:

(i) औद्योगिक प्रतिभूति बाजार (Industrial Securities Market)

(ii) सरकारी प्रतिभूति बाजार (Government Securities Market)

(iii) दीर्घ अवधि के ऋण बाजार (Long Term Loan Market)

(iv) औद्योगिक प्रतिभूति बाजार औद्योगिक प्रतिभूति बाजार (Industrial Securities Market)–

उपरोक्त वर्णित बाजारों को सामान्य रूप से इनके नाम से ही जाना जा सकता है इससे स्पष्ट होता है कि विभिन्न बाजारों में किस प्रकार की वित्तीय सम्पत्ति का लेन–देन होगा। औद्योगिक प्रतिभूति बाजार से तात्पर्य उस बाजार से है जिसमें औद्योगिक प्रतिभूतियों का लेन–देन होता है। औद्योगिक प्रतिभूतियां मुख्य रूप से सामान्य समता अंश पूर्वाधिकार अंश, ऋणपत्र, होते हैं। इसलिए इन वित्तीय सम्पत्तियों की उत्पत्ति तथा लेन–देन से विभिन्न औद्योगिक संस्थान अपनी–अपनी समता पूंजी, पूर्वाधिकार पूंजी तथा ऋण पूंजी एकत्रित करते हैं। इस बाजार को पुनः दो भागों में विभक्त किया जाता है;

(a) नये निर्गमन बाजार (New Issue Market)

(b) द्वितीयक बाजार (Secondary Market)

नये निर्गमन बाजार– नये निर्गमन बाजार से तात्पर्य उस बाजार से है नये निर्गमन बाजार– जिसके द्वारा नये वित्तीय सम्पत्ति का निर्ममन पहली बार सीधे जनता को किया जाता है। नये वित्तीय सम्पत्ति के कारण इसे हस्तान्तरण लम्बी अवधि के कोषों की प्राप्ति के लिए करती हैं। इस बाजार द्वारा कम्पनियां भिन्न तरीकों से लम्बी अवधि हेतु कोष उपलब्ध करते हैं:

(a) सार्वजनिक निर्गमन (Public Issue)

(b) राइट निर्गमन (Right Issue)

(c) निजी हस्तान्तरण (Private Placement)

सार्वजनिक निर्गमन नयी कम्पनियों द्वारा अपनाया जाने वाला महत्वपूर्ण माध्यम है जिसके द्वारा कम्पनियां अपनी पूँजी प्राप्त करने के लिए नये वित्तीय सम्पत्तियों का निर्गमन सीधे आम जनता को करते हैं। जब कम्पनियों द्वारा वित्तीय सम्पत्तियों

अपने वर्तमान/पूर्व के अंशधारियों को ही निर्गमित कर कोष उपलब्ध कराये जाते हैं इस प्रक्रिया को राईट निर्गमन कहा जाता है। निजी हस्तान्तरण का तात्पर्य वित्तीय सम्पत्तियों को निजी तौर पर छोटे विनियोगकर्त्ताओं को बेचने से है।

- **द्वितीयक बाजार–** द्वितीयक बाजार का सम्बन्ध औद्योगिक प्रतिभूतियों द्वितीयक बाजार– की दूसरी बार बिक्री से है। असाना भाषा में औद्योगिक प्रतिभूतियों जो नये निर्गमन बाजार या प्राथमिक बाजार से एक बार बिक चुकी हैं उनकी लेन–देन/ क्रय–विक्रय इस बाजार से सम्भव होता है। सामान्यतः इन प्रतिभूतियों का शेयर बाजार में लिस्ट किया जाता है। जो इन प्रतिभूतियों के लगातार क्रय–विक्रय की सुविधा प्रदान करता है। यह बाजार भारतीय सरकार द्वारा अधिकृत प्रत्येक शेयर बाजारों का समूह है।
- **सरकारी प्रतिभूति बाजार–** जहां सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है वह सरकारी प्रतिभूति बाजार के नाम से जाना जाता है। सरकारी प्रतिभूतियाँ दीर्घावधि तथा लघु अवधि के लिए हो सकती हैं। सरकारी प्रतिभूति बाजार में लम्बी अवधि की सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय– विक्रय सम्भव होता है जबकि लघु अवधि के सरकारी प्रतिभूतियों का लेनदेन मुद्रा बाजार के माध्यम से होता है। इस बाजार में केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार तथा स्थानीय बोर्डो (सरकारी) द्वारा प्रतिभूतियों का लेन–देन किया जा सकता है। सरकारी प्रतिभूतियाँ सामान्यतः 100 रूपये के मूल्यवर्ग (Denomination) में निर्गत की जाती हैं तथा इन पर छः माही ब्याज देय होने के साथ–साथ यह कर मुक्त भी होता है। इस बाजर में दलालों का चलन सीमित होता है तथा इस बाजार का महत्वपूर्ण प्रतिभागी वाणिज्यिक बैंक होते हैं। सरकारी प्रतिभूतियों का विक्रय भारतीय रिजर्व बैंक के पब्लिक डेब्ट आफिस (PublicDebt Office) से तथा लघु समय (Short Term) की सरकारी प्रतिभूतियों का विक्रय नीलामी (Auction) से किया जाता है।
- **दीर्घ अवधि के ऋण बाजार–** दीर्घ अवधि के ऋण बाजार में औद्योगिक उपभोक्ताओं को उनकी जरूरत के अनुसार लम्बी अवधि के ऋण प्रदान किये जाते हैं इस बाजार में देश के विकास बैंक (Development Bank) तथा वाणिज्यिक बैंकों (Commercial Banks) द्वारा मुख्य भूमिका निभायी जाती है। लम्बी अवधि के ऋणों को निम्नवत वर्गीकृत किया जा सकता है;

(a) अवधि ऋण बाजार (Term Loan Market)

(b) बंधक/गिरवी बाजार (Mortage Market)

(c) वित्तीय गारन्टी बाजार (Financial Guarantee Market)

- **विदेशी मुद्रा बाजार (Foreign Exchange Market)–** विदेशी – विनिमय एक ऐसी प्रणाली या प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक देश की मुद्रा को दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तित किया जा सकता है। विदेशी मुद्रा बाजार, विश्वभर की मुद्राओं के क्रय–विक्रय/परिवर्तन का बाजार है। यह बाजार के वास्तविक (Physical) क्षेत्र से सम्बन्ध नहीं रखता है। बल्कि इसमें प्रत्येक देशके केन्द्रीय बैंक तथा राजकोष अधिकारी (Treasury Authoritiė) नियंत्रक की भूमिका का निर्वहन करते हैं। अन्य वित्तीय बाजारों की अपेक्षा यह नया क्षेत्र है जो पिछली शताब्दी में सत्तर के दशक के लगभग समापन पर आरम्भ हुआ। यह विनिमय संरक्षण

अधिनियम (Foreign Exchange Maintenance Act) द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

विदेशी मुद्रा बाजार के मुख्य कार्यों को निम्नवत अंकित किया जा सकता हैं; ६

- विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए प्रर्याप्त उधार (credit) सुविधायें प्रदान करता।
- एक देश से दूसरे देश को क्रय अधिकार हस्तान्तरण के लिए आवश्यक प्रबन्ध करना।
- विदेशी विनिमय के उत्पन्न जोखिम के प्रतिरक्षा (Hedging) से सम्बन्धित कार्य करना।
- भारत में विदेशी मुद्रा बाजार में दलालों द्वारा महत्वपूर्ण कार्य किया जाता है। अधिकृत डीलर्स के अतिरिक्त भारतीय रिजर्व बैंक ने लाइसेंन्सधारी होटल तथा व्यक्तियों को भी विदेशी मुद्रा बाजार में प्रतिभागिता की अनुमति प्रदान की है।

भारत में विदेशी मुद्रा का कार्य निम्न तीन प्रकार से किया जाता है;

(i) बैंकों तथा उनके व्यापारिक उपभोक्ताओं के मध्य लेन–देन।

(ii) अधिकृत डीलर्स के माध्यम से बैंकों के मध्य लेन–देन।

(iii) विदेशी बैंकों के साथ लेन–देन।

1.5 मुद्रा बाजार (Money Market)

लघु समय (Short period) के लिए वित्तीय सम्पत्तियों में लेन–देन करने के केन्द्र को मुद्रा बाजार कहा जाता है। लघु समय हेतु ऋण या आपातकालीन पूँजी का लेन–देन करने वाली प्रत्येक संस्थायें सामूहिक रूप से मुद्रा बाजार कहलाती हैं। यह एक ऐसा बाजार है जहां अल्प अवधि के लिए ऋण दिये तथा लिये जाते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार ''एक मुद्रा बाजार मुख्यतः अल्पकालीन प्रकृति की मौद्रिक परिसम्पत्तियों के क्रय–विक्रय का केन्द्र है यह ऋण लेने वालों की अल्पकालीन आवश्यकताओं को पूर्ण करता है तथा ऋणदाताओं तरलता या नकदी प्रदान करता है। यह वह स्थान है जहाँ वित्तीय तथा अन्य संस्थाओं एवं व्यक्तियों की अल्पकालीन विनियोग योग्य अतिरिक्त कोषों को ऋण चाहने वाले सस्थाओं, व्यक्तियों तथा सरकार द्वारा प्राप्त किया जाता है।'' मुद्रा बाजार में नकदी या नकदी के समीप विकल्पों जैसे व्यापार बिल (Trade bill) प्रतिज्ञा पत्र (Promissory Note) तथा सरकारी प्रपत्रों के रूप में लेन–देन किया जाता है। जो अल्पकालीन होते हैं तथा इनकी अवधि 1 वर्ष से अधिक नहीं होती है। यह अल्पकालीन विकल्प बिना किसी नुकसान के आसानी से नकदी में परिवर्तित किये जा सकते हैं। मुद्रा बाजार में प्रतिभागियों के प्रतिभाग हेतु उनकी व्यक्तिगत उपस्थिति अनिवार्य नहीं होती है। तथा लेन–देन टेलीफोन, टेलीग्राफ, मेल तथा अन्य माध्यमों से भी किया जाता है मुद्रा बाजार के दो प्रमुख पक्ष होते हैं पहला ऋणग्रहता (ऋण लेने वाला) तथा दूसरा ऋणदाता (ऋण देने वाला) ऋण लेने वाले पक्ष में व्यक्ति, सरकारी एवं अर्धसरकारी संस्थायें, व्यापारी, औद्योगिक कम्पनियां इत्यादि सम्मिलित होते हैं जिनके द्वारा इस बाजार के माध्यम से अपनी अल्पकालीन मौद्रिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। ऋण देने वाले पक्ष का महाजन, साहूकार, वित्त कम्पनियां तथा वाणिज्यिक बैंकों से मिलकर बने हैं।

अन्तिम ऋणदाता होने के कारण केन्द्रीय बैंकों को भी इस पक्षकार के रूप में सम्मिलित किया जा सकता ळें

1.6 मुद्रा बाजार की विशेषतायें (Features of Money Market)

भारतीय मुद्रा बाजार की विशेषताओं को मुख्य रूप से निम्नवत वर्णन किया जा सकता है।

- **अल्पकालीन अवधि (Short Period)**– मुद्रा बाजार की प्रमुख विशेषता है कि इस बाजार में वित्तीय सम्पतियों (परिसम्पत्तियों) का लेनदेन अल्प अवधि के लिए किया जाता है। यह अवधि अधिकतम एक वर्ष की होती है। अतः अल्पावधि की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति इस बाजार का प्रमुख लेन–देन है।
- **केन्द्रीय बैंक का सहयोग (Coopration of Central Bank)**– मुद्रा बाजार में केन्द्रीय बैंक द्वारा अन्तिम दाता की भूमिका निभायी जाती है। अतः किसी भी देश के मुद्रा बाजार के लिए केन्द्रीय बैंक का सहयोग करना आवश्यक है। इस बैंक द्वारा मुद्रा बाजार को नियंत्रित भी किया जाता है।
- **नकदी के निकट विकल्पों में लेन–देन (Transactions in near Money Substitutes)**– मुद्रा बाजार में ऐसी वित्तीय परिसम्पत्तियों में लेन–देन किया जाता है जिन्हें आसानी से तथा बिना किसी नुकसान के नकदी में परिवर्तित किया जा सकता है। इनमें मुख्य हैं व्यापारिक विपत्र, प्रतिज्ञा पत्र, कोषागार विपत्र, बैंकों की स्वीकृत्तियां, मांग पर देय ऋण तथा समपार्श्विक ऋण।
- **व्यक्तिगत सम्पर्क की आवश्यकता नहीं (No need of Physical interaction)**– मुद्रा बाजार में लेन–देन के लिए दो पत्रकारों के मध्य व्यक्तिगत सम्पर्क की आवश्यकता नहीं होती है। सामान्यतः लेन–देन टेलीफोन, टेलीग्राफ, ई–मेल तथा अन्य किसी लिखित या मौखिक रूप से हो सकता है।
- **एक सुसंगठित बैंकिंग प्रणाली का होना (Well Established Banking System)**– किसी भी देश के मुद्रा बाजार की बेहतरी के लिए उस देश में संगठित बैंकिंग प्रणाली का असतित्व में होना आवश्यक है। मुद्रा बाजार के अधिकतर लेन–देन दलालों की सहायता के बिना सम्पन्न होते हैं।
- **सजातीयता (Homogeneousness)**– मुद्रा बाजार के सजातीय बाजार नहीं है अपितु यह छोटे–छोट भिन्न–भिन्न बाजारों के समूह से मिलकर बना है अतः यह छोटे–छोटे बाजार अपने–अपने क्षेत्र के लेनदेनों में निपुण होते हैं। उपरोक्त वर्णित विभिन्न मुद्रा बाजार साधनों में यह बाजर अपनी अपनी विशेषज्ञता के अनुसार कार्य करते हैं।

मुद्रा बाजार के घटक (Components of Money Market)– मुद्रा बाजार की बेहतर कार्य प्रणाली के लिए इसके प्रमुख घटकों में केन्द्रीय बैंक, वाणिज्यिक बैंक, नॉन–बैंकिंग वित्तीय संस्थान, डिस्काउन्ट हाउस तथा एसेप्टैन्स हाउस सम्मिलित होते हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका वाणिज्यिक बैंकों द्वारा निभाई जाती है।

1.7 मुद्रा बाजार के उद्देश्य (Objects of Money Market)

मुद्रा बाजार के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं–

- अल्पकालीन आधिक्य कोषों (Surplus Funds) के निवेश से सम्बन्धित क्रिया–कलापों के केन्द्र के रूप में कार्य करना।
- अल्पकालीन ऋण गृहीता उपभोक्ताओं द्वारा ऋण को आसानी, कम से कम कीमत तथा प्रयाप्त मात्रा में हासिल करने में सहायता करना।
- अल्पकालीन घाटे से उबरने के माध्यम विकसित करना।
- केन्द्रीय बैंक के इस बाजार में हस्तक्षेप से अर्थव्यवस्था में तरलता (Liquidity) को प्रभावित तथा नियंत्रित करना।

1.8 विकसित मुद्रा बाजार की विशेषतायें (Features of Development Money Market)

किसी देश की अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं एवं उक्त वर्णित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि वहाँ विकसित मुद्रा बाजार की उपस्थिति हो। विश्व के प्रत्येक देश में किसी न किसी रूप में मुद्रा बाजार की उपस्थिति होती है जिनमें से बहुत विकसित अवस्था में हैं तथा अन्य विकासशील अवस्था में निम्नांकित विशेषताओं की उपस्थिति बाजार के विकसित होने की ओर इशारा करते हैं;

- **एक सुसंगठित बैंकिंग प्रणाली का होना–** मुद्रा बाजार में विभिन्न वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रतिभाग किया जाता है परन्तु वाणिज्यक बैंक अल्पकालीन ऋण प्रदान करने का मुख्य श्रोत हैं इसलिए वाणिज्यिक बैंकों की ऋण तथा अग्रिम (Loans and Advances) से सम्बन्धित नीतियाँ सम्पूर्ण बाजार को प्रभावित करती हैं। इसके साथ ही केन्द्रीय बैंक के अन्तिम ऋणदाता होने के कारण महत्व है। केन्द्रीय बैंक तथा बाजार के विभिन्न अंगों के मध्य लिंक के रूप में भी वाणिज्यिक बैंक कार्य करते हैं। इसलिए किसी देश के मुद्रा बाजार का विकास वहाँ की बैंकिंग प्रणाली का विकास एक दूसरे से सम्बन्धित होता है।
- **साख साधनों की उपलब्धता–** किसी भी विकसित मुद्रा बाजार के लिए यह आवश्यक है कि वहाँ विभिन्न साख साधनों की उपलब्धता के साथ–साथ इनकी व्यापक रूपसे स्वीकार्यता (Acceptance) हो। इसके लिऐ विनिमय विपत्रों तथा अन्य वित्तीय प्रपत्रों का प्रर्याप्त मात्रा में उपलब्धता होना आवश्यक है। इन साधनों (Instruments) में मुख्य रूपसे बैंकर्स स्वीकृति पत्र, वाणिज्यिक प्रपत्र, प्रतिज्ञा पत्र, अल्पकालिक राजकोष विपत्र तथा अविलम्ब मुद्रा इत्यादि सम्मिलित हैं।
- **केन्द्रीय बैंक की उपस्थिति–** केन्द्रीय बैंक मुद्रा बाजार के विभिन्न अंगों को प्रभावित तथा नियंत्रित करता है। यह बैंकों के बैंक के रूप में भी कार्य करता है क्योंकि यह अन्य बैंकों का नकदी रिजर्व अपने पास रखता है तथ (Surplus Funds) के आपातकाल में इनकी योग्य वित्तीय परिसम्पत्तियों को भुनाकर इन्हें नकदी प्रदान करता है। केन्द्रीय बैंक अपने खुले बाजार क्रियाकलापों से (Open Market Operations) आवश्यकता

पड़ने पर बाजार से आधिक्य नकदी को वापिस लेता है तथा आवश्यकता पड़ने पर बाजार को नकदी प्रदान भी करता है। इसलिए किसी भी देश का केन्द्रीय बैंक वहां के मुद्रा बाजार में नेतृत्व प्रदान करने के साथ–साथ इसको प्रभावित करने तथा नियंत्रित करने की भूमिका निभाता है।

- **अलग–अलग उपबाजारों की उपस्थिति**– जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि मुद्रा बाजार अपनी–अपनी विशेषज्ञता वाले छोटे–छोटे बाजारों में विभाजित होता है इसलिए जितनी अधिक उप–बाजारों की उपस्थिति होगी इतना ही मुद्रा बाजार का विकास सम्भव है। अधिक उप–बाजारों की उपस्थिति अल्पकालीन ऋण साधनों की उपस्थिति की ओर भी संकेत करता है। एक अविकसित या अल्पविकसित मुद्रा बाजार में विभिन्न उप–बाजार मुख्यतः विपत्र बाजार (Bill Market) की अनुपस्थिति होती है। विभिन्न उप–बाजारों में समन्वय का आभाव भी अल्पविकसित मुद्रा बाजार की ओर संकेत करता है।
- साधनों की प्रर्याप्तता तथा पूर्ण गतिशीलता–विकसित मुद्रा बाजार के लिए यह आवश्यक है कि इसके उप–बाजारों में साधन पर्याप्त मात्रा में हों, यह साधन स्वदेशी तथा विदेशी हो सकते हैं। यहाँ साधनों से तात्पर्य पर्याप्त वित्त/कोष से है। मुद्रा बाजार के विकसित अवस्था का मुख्य प्रतीक है कि बाजार का माँग पक्ष तथा पूर्ति पक्ष आपस में क्रियाकलाप करे इसलिए पर्याप्त साधनों की उपलब्धता होने के साथ ही इनका गतिशील होना भी आवश्यक है।
- मुद्रा बाजार में लोच का गुण होना– किसी भी बाजार के विकसित होने का मुख्य संकेत इसके लोचपूर्ण होना भी है। लोचपूर्ण न होने पर कभी–कभी आधिक्य कोष का तथा कभी–कभी उपलब्ध अवसरों का बेहतर प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

1.9 मुद्रा बाजार का महत्व (Importance of Money Market)

विकसित मुद्रा बाजार व्यापारिक तथा औद्योगिक गतिविधियों को अल्पकालिक प्रर्याप्त तथा आसान कोष/ वित्त उपलब्ध कराकर किसी देश की वित्तीय प्रणाली में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। मुद्रा बाजार देश की अर्थव्यवस्था का एक अटूट अंग है इस कारण देश की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए मुद्रा बाजार का विकसित होना आवश्यक है। एक विकसित मुद्रा बाजार निम्न माध्यमों/तरीकों से देश के वित्तीय प्रणाली को विकसित होने में सहायता प्रदान कर सकता है।; २

- **व्यापारिक तथा औद्योगिक गतिविधियों का विकास** २ वाणिज्यिक बैंकों का निर्बाध (Smooth) कामकाज (Functioning)२पूँजी बाजर का विकास केन्द्रीय बैंक का प्रभावी नियंत्रण उपयुक्त मौद्रिक नीतियों का निर्माण सरकारी वित्त का आसान श्रोत॰ वाणिज्यिक तथ औद्योगिक गतिविधियों का विकास– मुद्रा बाजार का कार्य है अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति, इसलिए मुद्रा बाजार वाणिज्यिक तथा औद्योगिक गतिविधियों के लिए अल्पकालीन वित्त उपलब्ध करा इनके विकास में सहायक है। मुद्रा बाजार विभिन्न प्रपत्रों को भुनाकर, विभिन्न पत्रों को बनाकर तथा अन्य

प्रकार से औद्योगिक तथा वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों की कार्यशील पूँजी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इस तरह मुद्रा बाजार राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वाणिज्यिक तथा औद्योगिक गतिविधियों का विकास संम्भव बनाता है।

- **वाणिज्यिक बैंकों का निर्बाध कामकाज–** विकसित मुद्रा बाजार द्वारा वाणिज्यिक बैंकों के आधिक्य कोषों (Surplus Funds) को अल्पकालिक ऋण प्रदान कर बेहतर प्रयोग किया जाता है। मुद्रा बाजार द्वारा इन आधिक्य कोषों का उपयोग इस प्रकार के वित्तीय परिसम्पत्तियों के रूप में ऋण प्रदान किया जाता है जिन्हें वाणिज्यिक बैंक समय पर, आसानी से वापस ले सकते हैं। इस प्रकार वाणिज्यिक बैंकों द्वारा अपने आधिक्य साधनों से आय अर्जित की जाती है तथा अपने ग्राहकों को इनका पैसा भी समय से वापस किया जा सकता है यह एक बेहतर सन्तुलन, मुद्रा बाजार के माध्यम से बनाया जाता है।
- **पूँजी बाजर का विकास–** मुद्रा बाजार में अल्पकालिक ब्याज दरें तथा मुद्रा बाजार के हालात सीधे तौर पर पूँजी बाजार की ब्याज दरों तथा पूँजी बाजार में कोषों की उपलब्धता तथा इनकी गतिशीलता को प्रभावित करता है। इसलिए पूँजी बाजार का विकास देश की मुद्रा बाजार के विकास पर निर्भर करता है। मुद्रा बाजार के विकसित होने का तात्पर्य पूँजी बाजार के विकास से सम्बन्धित है।
- **केन्द्रीय बैंक का प्रभावी नियंत्रण–** मुद्रा बाजार केन्द्रीय बैंक के मौद्रिक नीतियों के क्रियान्वयन में अहम योगदान प्रदान करता है इसलिए एक विकसित मुद्रा बाजार केन्द्रीय बैंक के निर्बाध कामकाज में सहायक है। केन्द्रीय बैंक द्वारा मन्दी काल में बाजार में नयी मुद्रा का प्रवेश किया जाता है तथा अर्थव्यवस्था में उछाल के दिनों में बाजार से मुद्रा वापस ली जाती है। इसलिए केन्द्रीय बैंक द्वारा बाजार में मुद्रा का प्रवाह को प्रभावित कर तथा मौद्रिक नीतियों से अर्थव्यवस्था में स्थायित्व के साथ–साथ वृद्धि सम्भव बनायी जाती है।
- **उपयुक्त (Suitable) मौद्रिक नीतियों का निर्माण–** मुद्रा बाजार में व्याप्त परिस्थितियाँ अर्थव्यवस्था की सही तस्वीर प्रस्तुत करते हैं इसलिए यह सरकार तथा केन्द्रीय बैंक के लिए मौद्रिक नीतियों के निर्माण में अतिआवश्यक तथा सहायक सिद्ध होते हैं।
- **सरकारी वित्त का आसान श्रोत–** विकसित मुद्रा बाजार से विभिन्न सरकारें बाजार में कोषागार पत्रों को जारी कर अपने अल्पकालिक वित्त आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। विकसित मुद्रा बाजार की अनुपस्थिति में सरकार को अपनी इन अल्पकालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए या तो नयी मुद्रा छापनी पड़ेगी या केन्द्रीय बैंक से ऋण लेना पड़ेगा। दोनों ही तरीके अर्थव्यवस्था के लिए मूल्य वृद्धि का संकेत हो सकते हैं।

1.10 मुद्रा बाजार एवं पूँजी बाजार में अन्तर (Differences between Money Market and Capital Market)

मुद्रा बाजार तथा पूँजी बाजार के स्पष्ट ज्ञान के लिए आवश्यक है कि इनमें अन्तर स्पष्ट होना चाहिए। मुद्रा बाजार तथा पूँजी बाजार में निम्नांकित मुख्य अन्तर हैः

मुद्रा बाजार (Money Market)

- मुद्रा बाजार में अल्पकालीन ऋणों का लेनदेन होता है जिनका समय एक वर्ष से अधिक नहीं हो सकता है।
- मद्रु बाजार के साधनो (Instruments) के रूप में विनिमय पत्र (Bills of Exchange), कोषागार पत्र (Treasury Bill) वाणिज्यक विपत्र (Commercial papers) तथा जमा प्रमाण पत्र (Certificate of deposit) आदि का प्रयोग किया जाता है।
- मुद्रा बाजार के माध्यम से व्यवसाय की त्वरित अवसरों का भोग, कार्यशील पूँजी तथा अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं को पर्णू किया जाता है।
- केन्द्रीय बैंक तथा वाणिज्यिक बैंक मुद्रा बाजार में प्रतिभाग करने वाले प्रमुख संस्थान हैं।
- मुद्रा बाजार में लेनदेन दलालों की मदद के बिना सम्पन्न होते हैं।

पूँजी बाजार (Capital Market)

- यह बाजार लम्बी अवधि के ऋणों के लनेदने से सम्बन्ध रखता है जिनकी अवधि कम से कम एक वर्ष से अधिक होती है।
- पजूँी बाजार में लम्बी अवधि के ऋणों के लेनदेन के लिए अंश, ऋण पत्र (Debentures), तथा सरकारी बाण्ड (Government Bonds) का प्रयोग इसके साधनों के रूप में किया जाता है।
- पूँजी बाजार के द्वारा व्यापार तथा व्यवसाय की स्थायी पूँजी से सम्बन्धित तथा लम्बी अवधि की वित्तीय आवश्यकताओं को परूा किया जाता है।
- विकास बैंक (Development Bank) और बीमा कम्पनियाँ पूँजी बाजार के प्रतिभागी के रूप में मुख्य हैं। अधिकृत (Authorised) दलालों के माध्यम स`ही पजूँी बाजार क`लनेदने सम्पन्न होते हैं।
- पजूँी बाजार के साधनों (Instruments) को सामान्यतः द्वितीयक बाजार में लेनदेन किया जाता है। पँजूी बाजार क`लने–दने एक विशेष स्थान पर किये जाते हैं जिसे स्टाकॅ एक्सचेंज कहा जाता है।

1.11 मुद्रा बाजार के संघटक (Composition of Money Market)

जैसा कि पहले चर्चा की जा चुक है कि मुद्रा बाजार सजातीय बाजार नहीं है अपितु विशेषज्ञता से परिपूर्ण छोटे–छोटे विभिन्न प्रकार के बाजारों का समूह है। इसको ध्यान में रखते हुए मुद्रा बाजार के समान्य संघटक निम्न हो सकते हैं;

1. मांग पर देय ऋणों का बाजार (Call Money Market)
2. बिल बाजार (Bill Market)
3. वाणिज्य बिल बाजार (Commercial Bill Market),
4. कोषागार बिल बाजार (Tresuary Bill Market)
5. स्वीकृती बाजार (Acceptance Market)

1.12 सारांश

किसी भी अर्थव्यवस्था के विकसित या विकासशील होने में उस देश में उपस्थित वित्तीय प्रणाली का महत्वपूर्ण योगदान होता है। हमें यह समझना होगा कि वित्त का बेहतर प्रयोग/निवेश किसी अर्थव्यवस्था की प्रगति में अहम भूमिका निभाता है तथा वित्त के बेहतर प्रयोग, वित्त की उपलब्धता तथा वित्त से सम्बन्धित जोखिम प्रबन्धन का प्रमुख कार्य वित्तीय प्रणाली के माध्यम से किया जाता है। किसी भी वित्तीय क्रियाकलाप में वित्तीय सम्पत्ति की उत्पत्ति या हस्तान्तरण आवश्यक है। वित्तीय सम्पत्ति कोषों को ऋणदाता से ऋण मांगने वाले के पास हस्तान्तरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। द्वितीयक बाजार का सम्बन्ध औद्योगिक प्रतिभूतियों द्वितीयक बाजार– की दूसरी बार बिक्री से है। जहां सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है वह सरकारी प्रतिभूति बाजार के नाम से जाना जाता है। सरकारी प्रतिभूतियाँ दीर्घावधि तथा लघु अवधि के लिए हो सकती हैं। सरकारी प्रतिभूति बाजार में लम्बी अवधि की सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय सम्भव होता है जबकि लघु अवधि के सरकारी प्रतिभूतियों का लेनदेन मुद्रा बाजार के माध्यम से होता है।

लघु समय के लिए वित्तीय सम्पत्तियों में लेन–देन करने के केन्द्र को मुद्रा बाजार कहा जाता है। लघु समय हेतु ऋण या आपातकालीन पूँजी का लेन–देन करने वाली प्रत्येक संस्थायें सामूहिक रूप से मुद्रा बाजार कहलाती हैं। किसी देश की अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं एवं उक्त वर्णित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि वहाँ विकसित मुद्रा बाजार की उपस्थिति हो।

1.13 शब्दावली

वित्तीय प्रणाली (Financial System): वित्तीय प्रणाली मुख्य रूप से दो शब्दों वित्त तथा प्रणाली से मिलकर बना है। वित्त का सामान्य अर्थ है मौद्रिक श्रोत जिसमें स्वामित्व तथा उधार दोनों सम्मिलित किया जाता है तथा प्रणाली का अर्थ किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक से अधिक सम्बन्धित कार्यों को करने से है।

वित्तीय सम्पत्ति (Financial Assets):किसी भी वित्तीय क्रियाकलाप में वित्तीय सम्पत्ति की उत्पत्ति या हस्तान्तरण आवश्यक है। वित्तीय सम्पत्ति कोषों को ऋणदाता से ऋण मांगने वाले के पास हस्तान्तरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसलिए किसी भी वित्तीय बाजार का मूल उत्पाद वित्तीय सम्पत्ति होता है। प्रत्येक सम्पत्ति एक दूसरे से भिन्न होती है।

वित्तीय मध्यस्थ (Financial Intermediaries): वित्तीय मध्यस्थ से तात्पर्य उन सभी संगठनों से है जिनका कार्य व्यक्तियों तथा व्यवसायिक घरानों के मध्य वित्तीय क्रियाकलापों में सहायता/मध्यस्थता करना है।

वित्तीय बाजार (Financial Markets): सामान्य भाषा में बाजार से तात्पर्य किसी ऐसे स्थान भवन या स्थानीयता से होता है जहाँ व्यवसायी उपस्थित होते हैं लेकिन वित्तीय बाजार के संदर्भ में ऐसा कोई विशेष स्थान नहीं है जिसे वित्तीय बाजार कहा जा सके। वित्तीय बाजार वह बाजार है जहाँ वित्तीय सम्पत्तियों का उत्पादन तथा विनिमय सम्भव है।

असंगठित बाजार (Unorganised Market): असंगठित बाजार का अर्थ उस वित्तीय बाजार से है जिस पर सरकार का प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं है इस बाजार में विभिन्न प्रकार के मुद्रा ऋणदाता, देशी बैंकर्स तथा व्यापारी सम्मिलित हैं जो जनता को ऋण देते हैं।

संगठित बाजार (Organised Market): संगठित बाजार का अर्थ उस वित्तीय बाजार से है जिसे भारतीय रिजर्व बैंक तथा वित्त मन्त्रालय द्वारा समयपर संशोधित स्पष्ट दिशा निर्देशों तथा नियमावली के आधार पर अपना वित्तीय कारोबार करना होता है।

पूँजी बाजार (Capital Market): पूँजी बाजार वित्तीय सम्पत्तियों का वह बाजार है जहाँ वित्तीय सम्पत्तियों की परिपक्वता (Maturity) लम्बी अवधि में या असीमित समय में होती है।

नये निर्गमन बाजार : नये निर्गमन बाजार से तात्पर्य उस बाजार से है नये निर्गमन बाजार– जिसके द्वारा नये वित्तीय सम्पत्ति का निर्ममन पहली बार सीधे जनता को किया जाता है।

द्वितीयक बाजार : द्वितीयक बाजार का सम्बन्ध औद्योगिक प्रतिभूतियों द्वितीयक बाजार– की दूसरी बार बिक्री से है। असाना भाषा में औद्योगिक प्रतिभूतियों जो नये निर्गमन बाजार या प्राथमिक बाजार से एक बार बिक चुकी हैं उनकी लेन–देन / क्रय–विक्रय इस बाजार से सम्भव होता है।

सरकारी प्रतिभूति बाजार : जहां सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है वह सरकारी प्रतिभूति बाजार के नाम से जाना जाता है। सरकारी प्रतिभूतियाँ दीर्घावधि तथा लघु अवधि के लिए हो सकती हैं।

विदेशी मुद्रा बाजार (Foreign Exchange Market) : विदेशी – विनिमय एक ऐसी प्रणाली या प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक देश की मुद्रा को दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तित किया जा सकता है। विदेशी मुद्रा बाजार, विश्वभर की मुद्राओं के क्रय–विक्रय / परिवर्तन का बाजार है।

मुद्रा बाजार (Money Market) : लघु समय (Short period) के लिए वित्तीय सम्पत्तियों में लेन–देन करने के केन्द्र को मुद्रा बाजार कहा जाता है। लघु समय हेतु ऋण या आपातकालीन पूँजी का लेन–देन करने वाली प्रत्येक संस्थायें सामूहिक रूप से मुद्रा बाजार कहलाती हैं। यह एक ऐसा बाजार है जहां अल्प अवधि के लिए ऋण दिये तथा लिये जाते हैं।

1.14 बोध प्रश्न

बताइये निम्न कथन सत्य है या असत्य

1. पूंजी बाजार प्रथामिक तथा द्वितीयक बाजार के रुप मे विभाजित है।
2. स्टाक एक्सचेंज संगठित क्षेत्र का संगठन है।
3. सरकारी प्रतिभूतियो केन्द्र तथा राज्य सरकार द्वारा निर्गमित नही की जा सकती है।
4. ऋणपत्र कम्पनियो द्वारा निर्गमित किये जाने वाले प्रतिभूति का एक प्रकार है।
5. अभिगोपक सामान्यतः कमीशन पर कार्य किये जाते है।
6. सार्वजनिक कम्पनी कों पब्लिक निर्गमन के लिए विवरण जारी करना आवश्यक है।

1.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर: (1) सत्य (2)सत्य (3)असत्य (4) सत्य (5) सत्य (6) सत्य

1.16 स्वपरख प्रश्न

प्र. 1. वित्तीय प्रणाली को समझाते हुए इसके मुख्य साधनों का वर्णन कीजिए।
प्र. 2. भारतीय मुद्रा बाजार तथा पूंजी बाजार में अंतर स्पष्ट कीजिए।
प्र. 3. भारतीय मुद्रा बाजार के विभिन्न साधनों का वर्णन कीजिए।
प्र. 4. भारतीय मुद्रा बाजार के संघटकों को विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
प्र. 5. भारतीय पूंजी बाजार में किये गये आधुनिक परिवर्तनों को समझाइये।

1.17 सन्दर्भ पुस्तकें

- बिश्नोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्शियल इंस्टीट्यूशन्स
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।
- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।

इकाई 2 मुद्रा बाजार एंव पूँजी बाजार (MONEY MARKET AND CAPITAL MARKET)

इकाई की रुपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 मुद्रा बाजार
2.3 मुद्रा बाजार के संघटक
2.3.1 मांग पर देय ऋणों का बाजार
2.3.2 बिल बाजार, वाणिज्य बिल बाजार, कोषागार बिल बाजार
2.4 मुद्रा बाजार के साधन
2.4.1 कोषागार बिल
2.4.2 वाणिज्यक विपत्र
2.4.3 जमा प्रमाण पत्र
2.4.4 अंतर बैंक प्रतिभाग प्रमाण पत्र
2.5 भारतीय पूंजी बाजार का विकास
2.6 भारतीय पूंजी बाजार का ढांचा
2.7 वित्तीय प्रपत्र
2.8 पूंजी बाजार का संगठन
2.9 प्राथामिक बाजार के कार्य
2.10 प्राथामिक बाजार की संस्थाये तथा साख पत्र
2.11 गौण बाजार के कार्य
2.12 द्वितीयक बाजार की संस्थायें
2.13 स्टाक मार्केट के कार्य व महत्व
2.14 सारांश
2.15 शब्दावली
2.16 बोध प्रश्न
2.17 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.18 स्वपरख प्रश्न
2.19 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- पूँजी बाजार की अवधारणा तथा इसके विकास का वर्णन कर सकें। ।
- पूँजी बाजार में प्रतिभाग करने वाली संस्थाओं को विस्तार से जान सकें
- प्राथमिक बाजार तथा गौण बाजार की संस्थाओं को समझ सकें ।
- पूँजी बाजार के ढाँचे से अवगत हो सकें ।
- प्राथमिक बाजार तथा गौण बाजार की संस्थाओं को समझ सकें
- पूँजी बाजार में प्रतिभाग करने वाली संस्थाओं को विस्तार से जान सकें ।
- प्राथमिक बाजार तथा गौण बाजार की संस्थाओं को समझ सकें ।
- भारत में स्टाक मार्केट के उद्देश्य कार्य तथा महत्व का वर्णन कर सकें।

2.1 प्रस्तावना

"(The capital market deals in long-term funds, both debt and equity – Dougal.) डुगल के शबदों में, "पूँजी बाजार में दीर्घकालीन कोष जैसे ऋणों और शेयरों का लेन देन होता है। पूँजी बाजार से अभिप्राय उस केन्द्र से है जिससे मुद्रा का दीर्घकालीन विनिमय किया जा सकता है। पूँजी बाजार में प्रायः सरकारी, अर्धसरकारी, निजी संस्थान तथा व्यक्ति उधार लेने वाले तथा व्यक्तिगत निवेशकर्ता, संस्थागत निवेशक, स्टॉक एवं संचय, वाणिज्यक बैंक, बीमा कम्पनियाँ इत्यादि उधार देने वाले होते हैं। यह बाजार मूलतः लम्बी अवधि की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यह भी कहा जा सकता है कि पूँजी बाजार लम्बे अवधि के साख पत्रों का लेन देन करता है।

2.2 मुद्रा बाजार (Money Market)

लघु समय (Short period) के लिए वित्तीय सम्पत्तियों में लेन–देन करने के केन्द्र को मुद्रा बाजार कहा जाता है। लघु समय हेतु ऋण या आपातकालीन पूँजी का लेन–देन करने वाली प्रत्येक संस्थायें सामूहिक रूप से मुद्रा बाजार कहलाती हैं। यह एक ऐसा बाजार है जहां अल्प अवधि के लिए ऋण दिये तथा लिये जाते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार ''एक मुद्रा बाजार मुख्यतः अल्पकालीन प्रकृति की मौद्रिक परिसम्पत्तियों के क्रय–विक्रय का केन्द्र है यह ऋण लेने वालों की अल्पकालीन आवश्यकताओं को पूर्ण करता है तथा ऋणदाताओं तरलता या नकदी प्रदान करता है। यह वह स्थान है जहाँ वित्तीय तथा अन्य संस्थाओं एवं व्यक्तियों की अल्पकालीन विनियोग योग्य अतिरिक्त कोषों को ऋण चाहने वाले सस्थाओं, व्यक्तियों तथा सरकार द्वारा प्राप्त किया जाता है।'' मुद्रा बाजार में नकदी या नकदी के समीप विकल्पों जैसे व्यापार बिल (Trade Bill), प्रतिज्ञा पत्र (Promissory Note) तथा सरकारी प्रपत्रों के रूप में लेन–देन किया जाता है। जो अल्पकालीन होते हैं तथा इनकी अवधि 1 वर्ष से अधिक नहीं होती है। यह अल्पकालीन विकल्प बिना किसी नुकसान के आसानी से नकदी में परिवर्तित किये जा सकते हैं। मुद्रा बाजार में प्रतिभागियों के प्रतिभाग हेतु उनकी व्यक्तिगत उपस्थिति अनिवार्य नहीं होती है। तथा लेन–देन टेलीफोन, टेलीग्राफ, मेल तथा अन्य माध्यमों से भी किया जाता है मुद्रा बाजार के दो प्रमुख पक्ष होते हैं पहला ऋणग्रहता (ऋण लेने वाला) तथा दूसरा ऋणदाता (ऋण देने वाला) ऋण लेने वाले पक्ष में व्यक्ति, सरकारी एवं अर्धसरकारी संस्थायें, व्यापारी, औद्योगिक कम्पनियां इत्यादि सम्मिलित होते हैं जिनके द्वारा इस बाजार के माध्यम से अपनी अल्पकालीन मौद्रिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। ऋण देने वाले पक्ष का महाजन, साहूकार, वित्त कम्पनियां तथा वाणिज्यिक बैंकों से मिलकर बने हैं। अन्तिम ऋणदाता होने के कारण केन्द्रीय बैंकों को भी इस पक्षकार के रूप में सम्मिलित किया जा सकता है।

2.3 मुद्रा बाजार के संघटक (Composition of Money Market)

जैसा कि पहले चर्चा की जा चुक है कि मुद्रा बाजार सजातीय बाजार नहीं है अपितु विशेषज्ञता से परिपूर्ण छोटे–छोटे विभिन्न प्रकार के बाजारों का समूह है। इसको ध्यान में रखते हुए मुद्रा बाजार के समान्य संघटक निम्न हो सकते हैं;

2.3.1 मांग पर देय ऋणों का बाजार (Call Money Market)
2.3.2 बिल बाजार (Bill Market) वाणिज्य बिल बाजार (Commercial Bill Market), कोषागार बिल बाजार (Tresuary Bill Market)
2.3.3 स्वीकृती बाजार (Acceptance Market)

2.3.1 माँग पर देय ऋणों का बाजार–

ऐसा बाजार जिसके माध्यम माँग पर देय ऋणों का बाजार– से बहुत ही कम अवधि (एक दिन से चौदह दिन तक) की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है मांग पर देय ऋणों के बाजार के रूप में जाना जाता है। इस बाजार में अति अल्पकालिक ऋणों का लेन देन किया जाता है जैसा कि इसके नम से भी प्रतीत होता है। इस प्रकार के लेन देन स्टाक मार्केट में दलालों तथा डीलर्स को ऋण देकर तथा 'अधिक्य कोष' युक्त बैकों द्वारा 'कोषों की कमी' वाले बैकों के मध्य किये जाते हैं। इस तरह मांग पर देय ऋणों के बाजार के द्वारा अधिक्य कोष एवं धारा के मध्य संतुलन बनाया जाता है। वाणिज्यक बैक भी इस बाजार के महत्वपूर्ण प्रतिभागी होते हैं जिनके द्वारा अपनी वैधानिक तरल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बाजार से ऋण लिया जाता है तथा जब बाजार में ब्याज, दरें ऊंची होती है तो वाणिज्यक बैंकों द्वारा अपने 'अधिक्य कोषों' को इस बाजार में उतारा जाता है। मांग पर ऋण बाजार के क्रियाकलाप तथा इसके प्रतिभागी निम्नवत हैः

- इस बाजार द्वारा वाणिज्यक बैंकों को अपनी तरलता बनाये रखने, बड़े भुगतानों का आसानी से पूरा करने तथा भारतीय रिर्जव बैंक द्वारा निर्देशित नियमों के तहत तरलता बनाये रखने के लिए ऋण दिये जाते हैं।
- बिल बाजार में बिलों की परिपक्वता पर देय भुगतान के लिए। इस बाजार का उपयोग स्टॉक बाजार में डीलर्स तथा दलालों को ऋण देने के लिए भी किया जाता है।
- रसूक वाली व्यक्तिगत इकाईयां भी बैंक अधिविकर्ष के ब्याज से बचने के लिए इस बाजार से ऋण लेते हैं। इस बाजार में प्रतिभाग करने वाले सस्थानों को सामान्यतः दो रूपों में देखा जा सकता है, वह जिन्हें ऋणदाता तथा ऋणगृहीता के तौर पर अनुमति प्रदान है तथा वह जिन्हें सिर्फ ऋणदाता के रूप में मांग पर देय ऋणों के बाजार में प्रतिभागिता की अनुमति प्रदान की गयी है।
- वाणिज्यक बैंक सहकारी बैंक, डी.एफ.एच.आई. इत्यादि को ऋणदाता तथा ऋणगृहीता के रूप में अनुमति प्राप्त होती है परंतु भारतीय जीवन बीमा निगम, युनिट ट्रस्ट आफ इंडिया, सामान्य बीमा कम्पनियां, औद्योगिक विकास बैंक, नावार्ड तथा विशिष्ट म्यूचवल फण्ड्रस को केवल ऋणदाता के रूप में अनुमति प्रदान होती है।,
- यह केवल ऋण प्रदान करते हैं इन्हें ऋण लेने की (इस बाजार से) अनुमति नहीं होती है इस बाजार के निम्नाकित लाभ तथा हानियां देखी जा सकती हैं; ऊँची तरलता– जैसा कि इस बाजार के नाम से ही ज्ञात होता है कि इस बाजार में प्रदत्त ऋण बहुत कम समय अवधि के लिए

तथा मांग पर देय होते हैं इसलिए इस बाजार के द्वारा दिया गया ऋण किसी भी समय मांगा जा सकता है इसलिए इस बाजार की तरलता सर्वाधिक होती है। यह वाणिज्यक बैंकों को अपने बड़े भुगतान संतुलन करने में केवल एक काल पर विनियोजित रकम/कोष वापस प्राप्त करने में सहायता करता है।

- वैधानिक तरलता अनुपात का पालन– इस बाजार द्वारा वाणिज्यक बैंकों को अपने वैधानिक तरलता अनुपात बनाये रखने के लिए बड़े पैमाने पर उधार लेते हैं। इस बाजार की अनुपस्थिति में वाणिज्यक बैंकों को अपनी तरलता अनुपात बनाये रखने के लिए बड़ी मात्रा में कोष अपनी पास व्यर्थ में रखने पड़ेंगे जिसका बैंको की लाभप्रदता पर सीधा प्रभाव पड़ेगा।
- ऊँची लाभप्रदता– बैंक अपनी आधिक्य कोषों के इस बाजार में प्रवाहित कर ऊंची लाभप्रदता कमा सकते हैं। इस बाजार की दरे निरंतर परिवर्तित होती रहती है अतः ऊंची दरों पर बैंकों द्वारा इस बाजार के माध्यम से ऋण दिये जाते है जिसका उद्देश्य अधिक लाभ कमाना होता है। यह बाजार बैंकों के अस्थायी आधिक्य का सही तथा लाभदायक उपभोग करने में सहायक होता है।
- केंद्रीय बैंक के क्रियाकलापों में सहायक– मांग पर देय ऋणों के बाजार को किसी भी वित्तीय प्रणाली का सर्वाधिक संवेदनशील अंग माना जाता है। कोषों की मांग एवं पूर्ति में आये बदलावों का तुरंत प्रभाव इस बाजार की दरों पर पड़ता है तथा इन दरों में परिवर्तन से केंद्रीय बैंक को जो इशारा मिलता है उससे मौद्रिक नीतियों तथा नियमों के निर्माण में सहायता मिलती है। विभिन्न लाभों के अतिरिक्त इस बाजार की कुछ हानियां भी हैं। जो निम्नवत हैं;
- मांग मुद्रा दरों में अस्थिरता– मांग मुद्रा दरों में अस्थिरता इस बाजार की महत्वपूर्ण दोष है। मांग मुद्रा दरें अधिकतम पन्द्रह दिनों के अंत्तराल में अलग–अलग केन्द्रों, अलग–अलग ऋतुओ तथा अलग–अलग दिनों में भिन्न–भिन्न होती हैं तथा यह दरें सामान्यतः 12 प्रतिशत से 85 प्रतिशत तक हो सकती हैं।

एकीकरण में कमी–भारत के विभिन्न केंद्रों में मांग मुद्रा बाजार में एकीकरण की कमी देखी जा सकती है जिसके कारण विभिन्न संसय इस बाजार के प्रतिभागियों में हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थानीय मांग मुद्रा बाजारों में भी एकीकरण का आभाव है।৴ असामान्य विकास– सामान्यतः मांग मुद्रा बाजार का विकास संपूर्ण देश में बराबर नहीं हुआ है। मांग मुद्रा बाजार का विकास तथा प्रचलन अधि ाकतर उन क्षेत्रों में देखने को मिलता है जहां वाणिज्य तथा औद्योगिक गतिविधि ायां अधिक हैं क्योंकि आम व्यक्ति इस बाजार में प्रतिभाग नहीं करते हैं। इसलिए मांग मुद्रा बाजार केवल देश के उन क्षेत्रों में विकसित है जहां व्यवसायिक तथा औद्योगिक गतिविधियां अधिक हैं जैसे कोलकत्ता,मुम्बई, चेन्नई, बैंगलोर, दिल्ली तथा अहमदाबाद, सूरत।

2.3.2 बिल बाजार (Bill Market)

जिसमें अल्पकालिक ऋणों के लिए बिलों का क्रय–विक्रय होता है उसे बिल बाजार कहते हैं। सामान्यतः बिल बाजार को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है पहला वाणिज्यक बिल बाजार तथा दूसरा कोषागार बिल बाजार। वाणिज्यक बिल वह प्रपत्र है जो किसी वास्तविक उधार व्यापारिक क्रिया कलाप से उत्पन्न होता है। जैसे ही विक्रेता द्वारा सामाग्री उधार बेची जाती है वैसे ही विक्रेता द्वारा क्रेता के लिए उधार क्रम का प्रपत्र बनाया जाता है जिसमें देय राशि अंकित होती है क्रेता द्वारा शीघ्र ही इस प्रपत्र को स्वीकार करता है जिसके माध्यम से क्रेता एक निश्चित धनराशि एक निश्चित विधि पर भुगतान के लिए निश्चित राशि, निश्चित विधि को एक निश्चित व्यक्ति को देनी होती है। यह प्रपत्र सामान्यतः तीन महिने से छः महिने की अल्पअवधि के लिए लिखा जा सकता है। वाणिज्यक बिलों के प्रचलन में रहने के निम्नांकित लाभ एवं हानियां संभावित होती हैं;

- **तरलता**— यह बिल तरलता के आधार पर अत्यधिक लाभदायक होते हैं क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर इन बिनों को केंदीय बैंक से पुनः कटोती कराया जा सकता है।
- **भुगतान की निश्चितता**— वाणिज्यक बिल व्यवसायियों द्वारा लिखे तथा स्वीकार किये जाते हैं तथा व्यवसाय लंबी अवधि और विश्वास पर चलने वाल कारोबार हैं इसलिए व्यवसायी अपने वादे के अनुसार भुगतान निश्चित करते हैं।
- **आदर्श निवेश**— वाणिज्यक बिल एक निश्चित समय के लिए अग्रिम का कार्य करते हैं। यह बिल अधिकाधिक छः माहकी अवधि के लिए निर्गत किये जाते हैं इसलिए यह वित्तीय संस्थानों को यह अवसर प्रदान करते हैं कि वह अपने अधिक्य कोषों की लाभदायकता के अनुसार किस अवधि की परिपक्वता वाले बिलों में निवेश करें।
- **सामान्य वैधानिक समाधान**— इस बिलों के अनादरण होने पर भी सामान्य वैधानिक समाधान विक्रेता के पास उपलब्ध रहता है। इस तरह के अनादरित बिल को नोट कर क्रेता के खाते को इस बिल की रकम से डेविड कर दिया जाता है।
- **शीघ्र एवं अच्छी आय**— वित्तीय सस्थानों द्वारा इस प्रकार के बिलों द्वारा शीघ्र तथा अच्छी आम कमायी जाती है। बिलों को डिस्काउन्ट कराते समय छूट (कटौती) घटायी जाती है जबकि अन्य के ऋण तथा अग्रिम के रूप में ब्याज निश्चित परिपक्वता तिथि को चुकाया जाता है। इन बिलों पर कटौती या छूट की दरें सामान्यतः ऊंची होती हैं।
- **केंद्रीय बैंक का आसान नियंत्रण**— केंद्रीय बैंक द्वारा मुद्रा बाजार को बैं दर तथा पुनः कटौती दर को परिवर्तित कर सीधे तौर पर प्रभावित किया जाता है इसके साथ ही केंद्रीय बैंक द्वारा देश के मुद्रा बाजार की स्थितियों के आधार पर मौद्रिक नीतियों का निर्माण किया जाता है। इसलिए वाणिज्यक बिल मुद्रा बाजार का प्रमुख साधन होने के नाते केंद्रीय बैंक द्वारा आसानी से नियंत्रित हो सकता है। उक्त वर्णित लाभ के अतिरिक्त कुछ निम्नवत दोष भी वाणिज्यक बिल बाजार के हैं।

- **स्टॉम्प शुल्क–** बिल बाजार में लगाई जाने वाली स्टाम्प ड्यूटी काफी अधिक होती है तथा इसके साथ–साथ कई बार आवश्यक डिनोमिनेशन राशि के सटाम्प पेपर बाजार में उपलब्ध नहीं होते हैं। इन कारणों से भारत में बिल बाजार का प्रयोग विस्तृत पैमाने पर नहीं हो पाया।
- **बिल संस्कृति की अनुपस्थिति–** भारत में व्यावसायियों तथा उद्योगपतियों द्वारा बिल के मुकाबले बैंक अधिविकर्ष तथा उधार की अधिक प्राथमिकता प्रदान की जाती है जिससे स्पष्ट होता है कि भारत के बिल बाजार में बिल संस्कृति का आभाव है।
- **बिलों के द्वित्तीयक बाजार की अनुपस्थिति–** भारत में बिलों हेतु द्वित्तीयक बाजार की अनुपस्थिति होने के कारण बिलों की कटौती कुछ विशेष केंद्रों तक ही सीमित है तथा यह भी कुछ ही उच्च वित्तीय संस्थानों के द्वारा किया जाता है। इस कारण बिल बाजार को सीमित क्षेत्र में ही प्रचलन है।
- **स्वीकृति सेवाओं का आभाव–** भारत में बिलों की कटौती करने वाले संस्थानों तथा स्वीकृति सेवायें प्रदान करने वाले संस्थानों का आभाव है। इसलिए स्वीकृति सेवाओं तथा पुनः कटौती के क्षेत्र में विशेषज्ञ सेवाओं की कमी या आभाव उत्पन्न होता है।
- **सीमित विदेशी व्यापार–** बिल बाजार मुख्य रूप से विदेशी व्यापार को वित्तीय आवश्यकताओं की अल्पअवधि हेतु पूर्ति करता है विदेशों में खास कर विकसित अर्थव्यवस्थाओं में विदेशी व्यापार अधिक होने के कारण वहां का बिल बाजार भी विकसित अवसीा में होता है। भारत में विदेशी व्यापार अभी भी सीमित क्षेत्र में है। अतः भारत का बिल बाजार भी धीरे–धीरे आगे बढ सकता है। कोषागार बिल क्योंकि सरकार द्वारा निर्गत किये जाते हैं इसलिए यह अपनी तरलता के लिए प्रसिद्ध हैं। कोषागार बिल, सरकार द्वारा निर्गत एक प्रतिज्ञा पत्र है जिसके माध्यम से सरकार अपनी अल्पकालिक ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तथा सरकार द्वारा इनकी कटौती एक निश्चित समय पर (जो बिल में लिखी होती है) की जाती है। सरकार द्वारा इस प्रतिज्ञा पत्र में यह घोषणा की जाती है कि एक निश्चित समय पर इस बिल के धारक को सरकार द्वारा भुगतान किया जायेगा। इस प्रकार के बिलों की अवधि किसी भी दशा में एक वर्ष से अधिक नहीं हो सकती है। यह बिना व्यवसायिक क्रिया के उत्पन्न वित्तीय बिल है।

कोषागार बिलों के प्रकार (Type of Treasury Bills)-

कोषागार बिल निम्न दो प्रकार के होते हैं;

(a) सामान्य या नियमित बिल (Ordinary or Regular Bill)

(b) अडोक बिल (Ad hoc Bill)

सामान्य या नियंत्रित बिल केंद्रीय सरकार द्वारा अपनी अल्पकालिक ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आम जनता तथा वित्तीय संस्थानों को निर्गत किये जाते हैं। इस प्रकार के बिल भारत में काफी अहम/महत्वपूर्ण है। इनकी लेन–देन किसी भी समय किया जा सकता है साथ ही इन बिलों के लिए द्वितीयक बाजार भी उपलब्ध हैं। अडोक बिल भी केंद्रीय सरकार की अल्पकालिक वित्तीय

आवश्यकताओं की पूर्ति का महत्वपूर्ण साधन है। सामान्य बिलों से अलग अडोक बिलों को केंद्रीय सरकार द्वारा केवल रिजर्व बैंक के पक्ष में निर्गत किया जाता है। इन बिलों को टेण्डर तथा निलामी द्वारा नहीं खरीदा जा सकता है। केंद्र सरकार द्वारा निर्गत इन बिलों को भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा खरीदा जाता है जिसके बदले में रिजर्व बैंक केंद्र सरकार को करेंन्सी नोट निर्गत करता है। समय अवधि के आधार पर भी कोषागार बिलों को निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है;

(a) 91 दिन के कोषागार बिल

(b) 182 दिन के कोषागार बिल

(c) 364 दिन के कोषागार बिल।

91 दिन के कोषागार बिलों को एक निश्चित कटौती दर पर निर्गत किया जाता है परंतु 364 दिन के कोषागार बिलों की कटौती दर निश्चित नहीं होती है। इन बिलों पर कटौती की दर निश्चित करने के लिए इस बाजार में प्रतिभागियों द्वारा निलामी में बोली लगायी जाती है तथा इस बोली पर अधिकारियों की स्वीकृति होती है। इस प्रकार निश्चित की गयी दर को कट–आफ–दर कहा जाता है।

कोषागार बिलों के लाभ तथा हानियों को निम्नवत वर्णित किया जा सकता है।

- **सुरक्षा**– कोषागार बिलों के ब्याज तथा मूलधन की वापसी क्योंकि सरकार की जिम्मेदारी है इसलिए यह सुरक्षित होते हैं। इन बिलों के ब्याज तथा मूलधन की वापसी क्योंकि सरकार की जिम्मेदारी है इसलिए यह सुरक्षित होते हैं। इन बिलों के भुगतान पर कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं होता है इन बिलों को भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा केंद्र सरकार के लिए निर्गत किया जाता है।
- **आदर्श अल्पकालिक निवेश**– वित्तीय संस्थानों तथा आम जनता द्वारा आधिक्य कोष के अल्पकालिक निवेश के रूप में कोषागार बिल अच्छा विकल्प है क्योंकि इस निवेश में सुरक्षा के साथ–साथ अच्छी दर से लाभ भी प्राप्त होता है। निश्चित कटौती दर तथा निलामी द्वारा तय की जाने वाली कट–आफ– रेट दोनों प्रकार के कोषागार बिल केंद्र सरकार द्वारा निर्गत किये जाते हैं।
- **तरलता**– तरलता के आधार पर भी कोषागार बिल बेहतर विकल्प होते हैं क्योंकि इन बिलों को इनका निवेशक अपनी इच्छानुसार किसी भी समय नकदी में परिवर्तित कर सकता है। इन बिलों को भारतीय रिजर्व बैंक से भी कटौती कराया जा सकता है। इसलिए कोषागार बिलों के लिए एक तैयार बाजार भारत में उपलब्ध है।
    - **वैधानिक तरलता आवश्यक**– भारतीय रिजर्व बैंक के निर्देशानुसार प्रत्येक वाणिज्यक बैंक को वैधानिक तरलता अनुपात रखना आवश्यक है तथा इस अनुपात के माप के लिए वाणिज्यक बैंकों को कोषागार बिलों में विनियोग करना पड़ता है। कोषागार बिल वैधानिक तरलता अनुपात के माप के लिए योग्य निवेश है। वैधानिक तरलता अनुपात के अतिरिक्त नकदी आरक्षित अनुपात की सीमा को बनाये रखने के लिए भी कोषागार बिलों में निवेश महत्वपूर्ण है। क्योंकि कोषागार बिलों को आवश्यकता पड़ने पर तुरंत नकद में परिवर्तित कराया जा

सकता है इसलिए नकदी आरक्षित अनुपात आसानी से बनाया रखा जा सकता है।

- **अल्पकालिक कोष का बेहतर श्रोत**– सरकार द्वारा अपने अस्थायी बजटीय घाटे को पूरा करने के लिए अल्प–अवधि हेतु कोषागार बिल निर्गत किये जाते हैं । सरकार के लिए यह अल्पअवधि के ऋण प्राप्त करने के लिए बेहतरीन श्रोत हैं क्योंकि इन पर कटौती दर कम होती है अर्थात सस्ती दरों पर अल्पकालिक कोष प्राप्त किया जाता है।
- **बचाव सुविधा की उपलब्धता**– कोषागार बिलों में निवेश से प्राप्त कोष को मुद्रा बाजार में ब्याज दरों में आने वाले उतार– चढाव से बचाव की सुविधा रहती है।

2.4 मुद्रा बाजार के साधन (Money Market Instruments)

भारतीय मुद्रा बाजार में निम्नाकित मुख्य साधनों से क्रय–विक्रय/लेन–देन किया जाता है;

2.4.1 कोषागार बिल (Treasury Bill)

2.4.2 वाणिज्यक विपत्र (Commercial Papers)

2.4.3 जमा प्रमाण पत्र (Certificate of Deposit)

2.4.4 अचर बैंक प्रतिभाग प्रमाण पत्र (Inter Bank Participation Certificate)

2.4.5 पुनः क्रय साधन (Repurchase Instruments)

2.4.1 कोषागार बिल (Treasury Bill)–

मुद्रा बाजार के प्रमुख –साधनों के रूप में कोषागार बिलों को देखा जाता है। कोषागार बिल केंद्र सरकार द्वारा अपनी अल्पकालीन ऋण/वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निर्गत किये जाते हैं। केंद्र सरकार द्वारा निर्गत किये जाने के कारण कोषागार बिलों को निवेशकों द्वारा तरलता, सुरक्षा, द्वितीयक बाजार की उपलब्धता इत्यादि वजहों से प्राथमिकता दी जाती है। कोषागार बिल मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं प्रथम, कोषागार बिल आम जनता तथा अन्य वित्तीय संस्थानों को निर्गत किये जाते हैं तथा इनसे भिन्न दूसरे, कोषागार बिल केंद्र सरकार द्वारा भारतीय रिजर्व बैंक के समय के आधार पर कोषागार बिलों को तीन रूपों में देखा जा सकता है प्रथम, 91 दिनों के लिए कोषागार बिल, द्वितीय 182 दिनों के लिए कोषागार बिल एवं तृतीय, 364 दिनों के लिए निर्गत कोषागार बिल। किसी भी दशा में कोषागार बिलों की परिपक्वता अवधि एक वर्ष से अधिक नहीं हो सकती है। न्यून अवधि के लिए निर्गत कोषागार बिल निश्चित कटौती दर पर तथा इससे अधिक अवधि के बिलों की कटौती दर निश्चित नही होती है। कोषागार बिलों पर इनमें निवेश करने वाले प्रतिभागियों की निलामी में लगी बोली को अधिकृत पक्ष द्वारा स्वीकार कर एक कट–आफ– दर निश्चित की जाती है।

2.4.2 वाणिज्यक विपत्र (Commercial Papers)–

भारतीय मुद्रा बाजार में प्रयोग किये जाने वाले साधनों में वृद्धि करने तथा निवेशकों से सीधे मुद्रा प्राप्त करने के चलन को ब वपत्रों का प्रयोग सामने आया। कंपनियों तथा व्यवसायियों को सीधे निवेशकों से मुद्रा प्राप्त करना आसान के साथ–साथ सस्ता भी लगा जो आसानी से अल्प अवधि प्रपत्रों के माध्यम से किया जा सकता था। वाणिज्यक विपत्र (Certificate of Deposit)– भारतीय रिजर्व बैंक

द्वारा अधिकृत किसी कंपनी द्वारा एक निश्चित परिपक्वता वाला ऐसा प्रतिज्ञा पत्र होता है जो सुपुदर्गी या बेचान द्वारा हस्तान्तरित हो सकता है तथा इसकी बटटे की दर इसको निर्गमित करने वाली कंपनी द्वारा निर्धारित किया जाता है। वाणिज्यक विपत्र की निम्नांकित विशेषतायें होती हैं; यह एक साक्ष्य है जो कारपोरेट उधारी/ऋण का प्रमाण प. है जिसकी परिपक्वता अल्पकाली है। वाणिज्यक विपत्र निर्गानित करने वाली कंपनी द्वारा सीधे निवेशक को या बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से भी निर्गमित किये जा सकते हैं। वाणिज्यक विपत्रों को निर्गमित करने वाला इसमें निवेशक को अल्पअवधि भविष्य में एक निश्चित रकम चुकाने का वचन देता है परंतु इसके लिए (ऋण के लिए) किसी प्रकार की संपत्ति गिरवी नहीं रखी जाती है।. वाणिज्यक विपत्र इसके फेस मूल्य पर बट्रटे के साथ–साथ ब्याज के आधार पर भी निर्गमित किये जा सकते हैं। वाणिज्यक विपत्र भारतीय मुद्रा बाजार अल्पअवधि हेतु एक निश्चित परिपक्वता देने वाला साधन (Instrument) है।

2.4.3 जमा प्रमाण पत्र **(Certificate of Deposit)–**

जून 1989 से जमा प्रमाण पत्र (Certificate of Deposit) निर्गमित किया जाना प्रारंभ हुआ। जमा प्रमाण पत्र अल्पअवधि के जमा साधन (Instrument) है। जिसके माध्यम से बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा बड़ी मात्रा में मुद्रा प्राप्त की जाती है। जमा प्रमाण पत्रों की परिपक्वता न्यूनतम तीन माह से अधिकतम एक वर्ष तक हो सकती है। बैंकों द्वारा जमा प्रमाण पत्रों को बट्रटे पर निर्गामित किया जाता है तथा बट्रटे की दर (Rate of Discount) स्वतंत्र रूप से निर्धारित होती है। जमा प्रमाण पत्रों के निर्गमन से संबंधित नियमों को निरंतर उदार बनाया गया है। जमा प्रमाण पत्रों की भारतीय मुद्रा बाजार के साधन (Instrument) के रूप में निम्न विशेषतायें हो सकती हैं;

- समय जमा के लिए अधिकार प्रपत्र का कार्य करता है।
- यह एक असुरक्षित बेचनीय प्रपत्र है।
- प्रतिज्ञा पत्र (Promissory Note) की तरह इस पर भी स्टाम्प ड्यूटी लागू होती है।
- जमा प्रमाण पत्रों को बेचान से या सुर्पुदगी (Endorsement या Delivery) के माध्यम से हस्तान्तरित किया जा सकता है।
- जमा प्रमाण पत्रों का भुगतान बिना रियायत के दिनों के (without Grace Period) एक निश्चित तिथि को होता है। उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर हम जमा प्रमाण पत्रों के निम्नांकित लाभ अंकित कर सकते हैं; जमा प्रमाण पत्र निवेशकों के लिए आसान तथा अच्छी आय देने वाला मुद्रा बाजार का साधन है जिसके माध्यम से निवेशक अपनी आधिक्य कोष का बेहतर निवेश कर सकता है।
- यह बैंकों के लिए अपनी अल्पअवधि आधिक्य कोषों के निवेश के लिए बेहतरीन साधन है। जमा प्रमाण पत्र अच्छी आय के साथ–साथ तरलता भी प्रदान करता है क्योंकि इसको बेचान तथा सुर्पुदगी के द्वारा आसानी से हस्तांतरित कर या बेचकर नकदी प्राप्त की जा सकती है।यह निर्गमित

करने वाली वित्तीय संस्था या बैंकों के लिए आवश्यकता के समय बड़ी मात्रा में मुद्रा एकत्रित करने का अच्छा साधन है।

2.4.4 अंतर बैंक प्रतिभागिता प्रमाण पत्र (Inter Bank Participation Certification)– 1988, अक्टूबर में रिजर्व बैंक द्वारा भारतीय मुद्रा बाजार के कार्यकारी ग्रुप के साथ बैठक में यह निर्णय लिया गया कि बैंकों द्वारा अपने अल्पअवधि ऋणों की आवश्यकताओं को बैंकिग प्रणाली से ही अत्तर बैंक प्रतिभागिता प्रमाण पत्र के माध्यम से पूरा किया जा सकता है। अत्तर बैंक प्रतिभागिता प्रमाण पत्र द्वारा बैंकों के क्रेडिट भाग में एक निश्चित तरलता प्राप्त की जा सकती है परंतु यह योजना केवल अनुसूचित वाणिज्यक बैंकों तक ही सीमित थी तथा इन प्रमाण पत्रों की अवधि कम से कम 91 दिन तथा अधिकतम 180 दिन हो सकती है। रिजर्व बैंक द्वारा अन्य अनुसूचित बैंकों को दो प्रकार के प्रमाण पत्र निर्गमित करने के विकल्प दिये गये जिसमें ऋण दाता हेतु ''जोखिम के साथ तथा जोखिम के बिना'' थे।

2.5 भारतीय पूँजी बाजार का विकास (Development of Indian Capital Market)

स्वतंत्रता से पहले भारतीय पूँजी बाजार अस्तित्व में होने के बावजूद अविकसित था और इस अविकसित होने के विभिन्न कारणों में मुख्य थे :

(1) अंग्रजों की भारतीय पूँजी बाजार पर कम निर्भरता (अंग्रेज भारतीय पूँजी बाजार पर निर्भर रहने की तुलना में अपनी पूँजी सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लंदन बाजार पर अधिक निर्भर रहते थे।)

(2) पूँजी बाजार में निवेशकों तथा कम्पनियों की संख्या कम होने के कारण स्टॉक एक्सचेंज का विकास नहीं हो पाया क्योंकि स्टॉक एक्सचेंज में व्यापार की जाने वाली प्रतिभूतियों की संख्या काफी कम होती थी।

(3) विशिष्ट वित्तीय तथा गैर बैंकिंग संस्थाओं का अल्प विकास (शासकों की आवश्यकताओं तथा नीतियों के प्रभावीकरण की आवश्यकताओं की पूर्ति भारत से बाहर के संसाधनों से होने के कारण इन संस्थाओं के विकास के बारे में प्रयाप्त नहीं सोचा गया।)

(4) इन सब का निष्कर्ष यह था कि वित्तीय संस्थायें तथा निवेशकर्ताओं की अत्यधिक कमी थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत को स्वयं विकास का मार्ग तलाशना था । अतः पूँजी बाजार के विकास का मार्ग भी प्रशस्त हुआ तथा पूँजी बाजार सही दिशा में विकास के मार्ग पर आगे बढ़ने लगा। भारत में संयुक्त पूँजी कम्पनियों, सरकारी, अर्धसरकारी तथा निजी क्षेत्र की कम्पनियों का विकास तेज गति से होने लगा। विशिष्ट बैंकिंग तथा गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं का देश की प्रगति के लिए निर्माण किया जाने लगा। बचतों को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहन और करों में छूट दी जाने लगी। संयुक्त पूँजी कम्पनियों के विकास के साथ प्राथमिक निर्गमन बाजार तथा नये स्टॉक एक्सचेंज स्थापित किये गये। आज भारतीय अधिक निवेश प्रेरक तथा स्टॉक सचेत हो चुके हैं। अगर भारतीय पूँजी बाजार के पिछले दो दशकों पर नजर डाली जाती है तो देखने में आता है कि पूँजी बाजार की कार्यप्रणाली में विविधता आने के साथ–साथ पूँजी बाजार में लेन–देन के मूल्य में तेजी से वृद्धि आयी है। नये वित्तीय प्रपत्र जैसे पूर्ण व

आंशिक परिवर्तनीय डिवेन्चर, वाणिज्य प्रपत्र आदि का चलन बढ़ने के साथ नयी वित्तीय संस्थयें, म्यूचुअल फण्ड, मर्चेण्ट बैंकर, साहस पूँजी कम्पनियाँ तथा विकास बैंकों की स्थापना भी हुई है। इन सब के साथ यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय पूँजी बाजार निरन्तर विकास कर रहा है।

2.6 भारतीय पूँजी बाजार का ढाँचा (Structure of Indian Capital Market)

भारतीय पूँजी बाजार मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन कोषों में व्यवहार करते हैं। भारतीय पूँजी बाजार के ढाँचे में शामिल होते हैं :

(i) अंग संस्थाएँ और

(ii) वित्तीय यंत्र/प्रपत्र निम्नलिखित चार्ट पूँजी बाजार के ढाँचे को व्यक्त करता है।

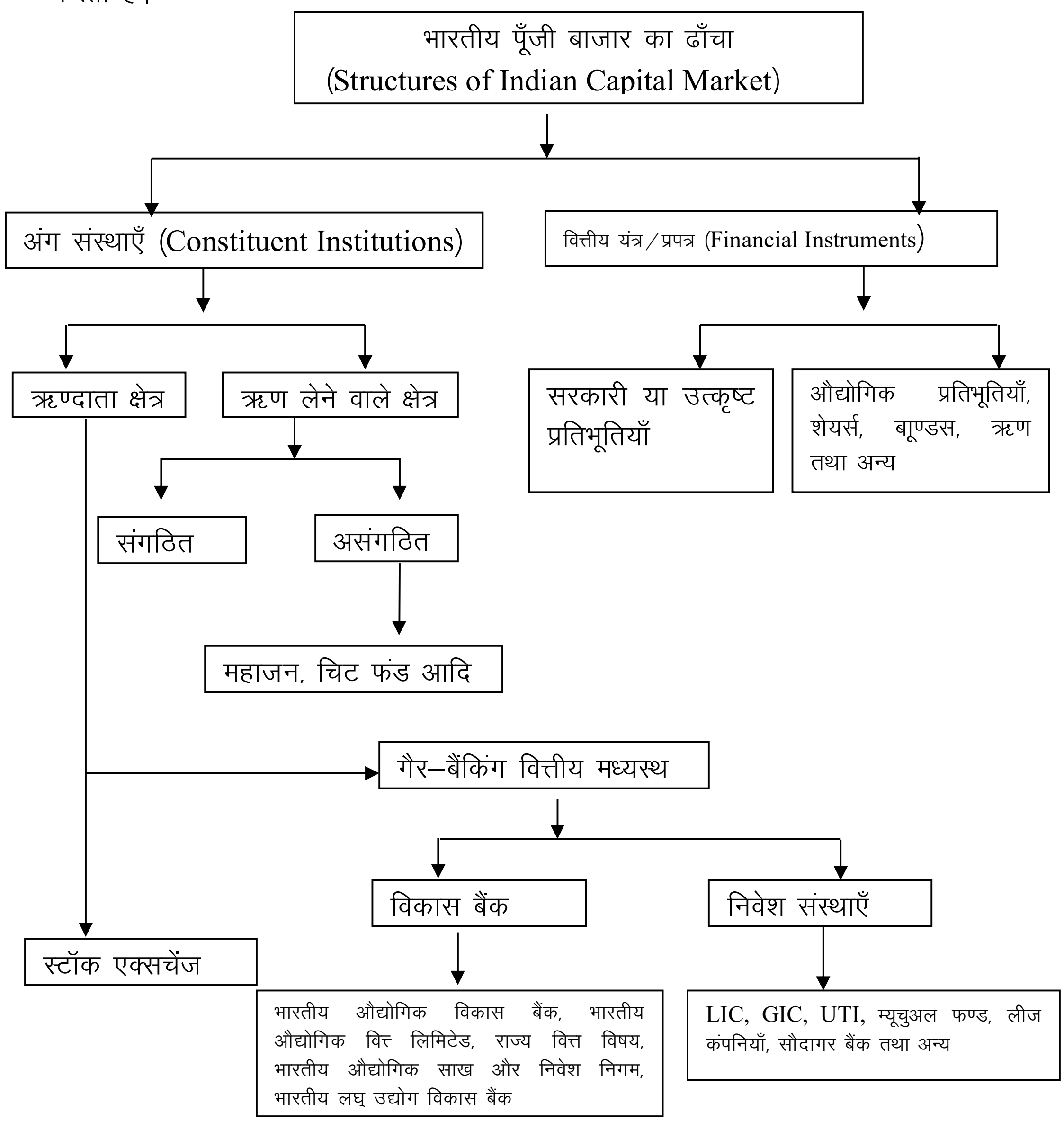

पूँजी बाजार के अंग

(Constituents of capital market)

भारतीय पूँजी बाजार के अंगों को मुख्यरूप से अध्ययन की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है :

(अ) ऋणदाता (Lender's sector),

(ब) ऋण लेने वाला (Borrower's sector)

पूँजी बाजार के अंग (Constituents of capital market)

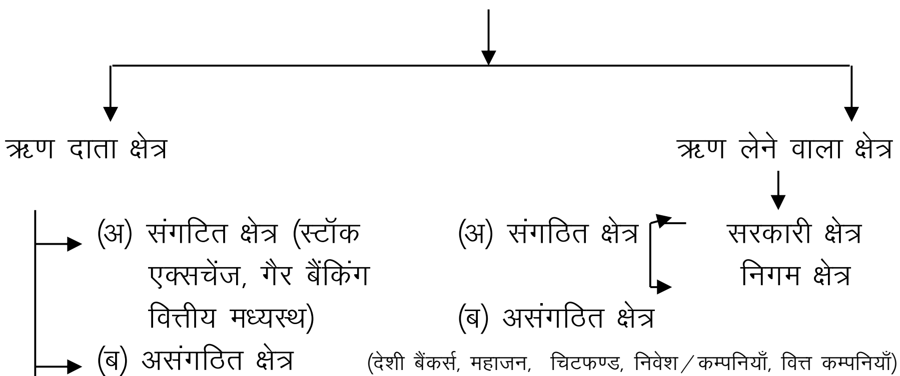

- **पूँजी बाजार (Capital market)**

पूँजी बाजार मूलतः दो वर्गों द्वारा निर्धारित किया जाता है जिसमें ऋणदाता क्षेत्र तथा ऋण लेने वाला क्षेत्र मुख्य है। ऋणदाता क्षेत्र (Lender's sector) में पूँजी की पूर्ति की जाती है और ऋणी क्षेत्र (Borrower's sector) में पूँजी की मांग की जाती है। दोनों ही क्षेत्रों पूँजी की पूर्ति की माँग किनके द्वारा की जाती है इसका विस्तृत अध्ययन पूँजी बाजार को समझने के लिए अतिआवश्यक है।

1. **ऋण्दाता क्षेत्र (Lender's Sector)**

इस क्षेत्र में पूँजी की पूर्ति की जाती है तथा इस क्षेत्र में व्यक्ति तथा संस्थायें दोनों प्रतिभाग करते हैं इनके द्वारा दीर्घकालीन ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है इसको दो भागों में विभाजित किया जाता है।

(अ) संगठित क्षेत्र (Organised Sector)

ब) असंगठित क्षेत्र (Unorganised Sector)

(अ) **संगठित क्षेत्र (Organised Sector)**

पूँजी बाजार का ऋण्दाता क्षेत्र का संगठित ढाँचा निम्नलिखित संस्थाओं से बनता है :

(1) **स्टाक एक्सचेंज (Stock exchange)**

निगमित प्रतिभूजियों में सीधे व्यापार स्टाक एक्सचेंज द्वारा किया जाता है जैसे शेयर, डिवेन्चर, बाण्ड तथा सरकारी प्रतिभूतियाँ। यह अंग पूँजी बाजार का अत्यधिक महत्वपूर्ण घटक है। इसमें निगमित प्रतिभूति बाजार तथा सरकारी प्रतिभूति बाजार सम्मिलित होते हैं। निर्गमित प्रतिभूतियों का वर्गीकरण पुनः प्राथमिक बाजार तथा गौण बाजार के रूप में किया जाता है। प्राथमिक बाजार नये

प्रतिभूतियों के निर्गमन में तथा गौण बाजार पुरानी निगमित प्रतिभूतियों, शेयर, डिवेन्चर तथा बाण्ड आदि का क्रय–विक्रय करता है।

(2) **गैर बैंकिंग वित्तीय संस्था में (Non Banking Financial Intermederies)** गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थायें वह मध्यस्थ होते हैं जो बैंकों की भाँति मांग जमा से जमायें स्वीकार नहीं करते हं बल्कि लोगों/जनता की जमा/बचतों को एकत्रित करते हैं और विभिन्न पक्षों को उधार देते हैं। यह मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं।

(a) विकास बैंक (Deveopment banks)

(b) निवेश संस्थायें (Investment institutions)

(a) विकास बैंक (Deveopment banks)

यह विशिष्ट बैंकिंग संस्थायें होती हैं लिसका मुख्य कार्य मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण प्रदान करना है। भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड (IFCI), भारतीय औद्योगिक साख और निवेश निगम लिमिटेड (ICICI), भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI), भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI), भारतीय औद्योगिक पुनर्निमाण बैंक (IRBI), राज्य वित्त निगम (SFC) तथा राज्य औद्योगिक विकास निगम (SIDC,S) को विशेषतः इसमें सम्मिलित किया जाता है।

(b) निवेश संस्थायें (Investment Institutions)

निवेश संस्थायें वह संस्थायें होती हैं जो विभिन्न प्रकार की कम्पनियों के प्रतिभाूतियों में बढ़ती निवेशकर्ताओं की निवेश सुविधाओं को उपलब्ध कराते हैं। भारतीय निवेश संस्थाओं में मुख्य रूप से भारतीय यूनिट ट्रस्ट (UTI), भारतीय सामान्य बीमा निगम (GIC), भारतीय जीवन बीमा निगम (LIC), मर्चेन्ट बैंकर्स, म्यूचुअल फण्डस, लीज कम्पनियाँ और साहस पूँजी वित्त कम्पनियों को सम्मिलित किया जाता है।

(ब) असंगठित क्षेत्र (Unorganised Sector)

असंगठित क्षेत्र में मुख्य भूमिका निभाने वाले मुख्य रूप से हैं, देशी बैंक, महाजन, चिट फण्ड कम्पनियाँ तथा ऐसी ही अन्य संस्थायें जैसे वित्त कम्पनियाँ, भाड़ा खरीद कम्पनियाँ इत्यादि हैं। पूँजी बाजार पर असंगठित क्षेत्र का अप्रत्यक्ष तथा बहुत कम प्रभाव पड़ता है।

(ब) ऋण लेने वाला क्षेत्र (Borrower's Sector)

उधार लेने वाले (मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण) इस क्षेत्र में सम्मिलित होते हैं। इस क्षेत्र के व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा पूँजी की दीर्घकालीन तथा मध्यकालीन माँग का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार की पूँजी माँग मुख्यतः निम्नलिखित क्षेत्रों में की जाती हैः–

1. निगम क्षेत्र (Corporate Sector)

निगम क्षेत्र में निजी निगम क्षेत्र तथा सार्वजनिक निगम क्षेत्र दोनों को सम्मिलित किया जाता है तथा निजी निगम तथा सरकारी निगम क्षेत्रों से उनकी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दीर्घकालीन पूँजी की आवश्यकता होती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति सामान्यतः विकास बैंकों तथा निवेश संस्थाओं से उधार लेकर, शेयर तथा डिवेन्चर बेचकर तथा सामान्य जनता से सामयिक जमायें एकत्रित कर पूर्ण की जाती हैं।

2. **सरकारी क्षेत्र (Government Sector)**

केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार दोनों को सम्मिलित कर बनता है। यह क्षेत्र, भारत में सरकार द्वारा विकासीय तथा गैर विकासीय क्रियाओं के विकास तथा विस्तार को समयबद्ध सम्पन्न करने के लिए सरकार द्वारा दीर्घकालीन पूँजी कोषों की माँग की जाती है जैसे क्षेत्र यातायात, सड़क यातायात, बिजली, पाली, शान्ति निगम जैसे सरकारी विभागीय उद्यम पूँजी बाजार से अपनी योजनाओं को पूर्ण करने के लिए पूँजी बाजार को कोषों की समय–समय पर माँग करते हैं।

2.7 वित्तीय प्रपत्र (FINANCIAL INSTRUMENTS)

पूँजी बाजार में जिनके माध्यम से पूँजी का प्रवाह होता है उन्हें वित्तीय प्रपत्र कहा जाता है। इन्हें मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है।

(1) सरकारी प्रतिभूतियाँ (Government Securities)

(2) निगम प्रतिभूतियाँ (Corporate Securities)

(1) सरकारी प्रतिभूतियाँ (Government Securities)

समय–समय पर केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न प्रकार के वित्तीय प्रपत्रों का निर्गमन मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋणों की प्राप्ति के लिए किया जाता है, जिसमें मुख्य हैं : राष्ट्रीय बचत प्रमाण पत्र (NSC), रेलवे बॉण्ड, विशेष वाहक बाण्ड, गोल्ड बाण्ड आदि। सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश निवेशकर्ता को कई प्रकार से कर छूट प्रदान करने के साथ उच्च कोटि की सुरक्षा प्रदान करता है, परन्तु इन वित्तीय प्रपत्रों पर ब्याज अपेक्षाकृत कम होता है।

(2) निगम प्रतिभूतियाँ (Corporate Securities)

विभिन्न कम्पनियों (सरकारी, निजी तथा अर्धसरकारी) द्वारा अपनी मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन पूँजी की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निम्नांकित प्रतिभूतियाँ निर्गमित की जाती हैं :

(a) शेयर (Shares)

संयुक्त पूँजी कम्पनियों को अपनी लम्बी अवधि की पूँजी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए या बची पूँजी के निर्माण के लिए अंशों या शेयरों के निर्गमन का अधिकार होता है। कम्पनी अधिनियम 1956 की विभिन्न धाराओं के अनुसार संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियाँ मुख्यतः दो प्रकार के अंशों का निर्गमन कर सकती है

(1) समता अंश (Equity Shares)

(2) पूर्वाधिकार अंश (Proferential shares)।

समता अंशधारी कम्पनी के वास्तविक स्वामी होते हैं जबकि पूर्वाधिकार अंशधारी सम्ता अधिकारियों की तुलना में विभिन्न पूर्वाधिकारों पर अधिकार रखते हैं। पूर्वाधिकार अंशों को पुनः निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(i) परिवर्तनीय तथा अपरिवर्तनीय पूर्वाधिकार अंश

(ii) संचयी तथा असंचयी पूर्वाधिकार अंश

(iii) शोधनीय तथा अशोधनीय पूर्वाधिकार अंश

अंशधारीयों को लाभ तभी प्राप्त होता है जब कम्पनी या निगम लाभ कमाता है। लगातार लाभ अर्जित करने वाले कम्पनीयाँ निगमों के अंशों के मूल्य बढ़ते हैं तथा हानि होने वाले कम्पनियों या निगमों के अंशों के मूल्य घटते हैं। नये अंशों के

निर्गमन प्राथमिक बाजार से तथा इसके पश्चात इनका क्रय–विक्रय गौण बाजार से किया जाता है।

(b) ऋणपत्र (Debentures)

ऋण पत्र जैसा कि इसके नाम से ज्ञात होता है कि यह एक ऐसा वित्तीय प्रपत्र है जो उस व्यक्ति या संस्था को निर्गत किया जाता है जिसके द्वारा पूर्व निर्धारित ब्याज तथा अन्य शर्तों पर कम्पनी या निगम को निश्चितकालीन ऋण दिया गया है। ऋण पत्र धारा को ब्याज की एक निश्चित दर से भुगतान किया जाता है, यह इस बात पर निर्भर नहीं करता है कि कम्पनी या निगम द्वारा लाभ कमाया गया या नहीं। कुछ कम्पनी या निगमों द्वारा अपने ऋण पत्र धारकों को एक विशेष अधिकार भी दिया जा सकता है जिसके द्वारा ऋणपत्र धारी एक निश्चित अवधि के बाद ऋणपत्र को समता अंशों में परिवर्तित कर सकता है।

(c) सार्वजनिक जमायें तथा संस्थओ से ऋण (Public deposits and loans from Institution)

कम्पनियाँ तथा निगम अपनी दीर्घकालीन पूँजी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जनता से सावधिक जमायें स्वीकार कर सकते हैं। इसके साथ ही निगम भारतीय औद्योगिक बैंक जैसी विशिष्ट संस्थाओं से भी दीर्घकालीन ऋण लेकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं।

2.8 पूँजी बाजारों का संगठन (ORGANISATION OF CAPITAL MARKET)

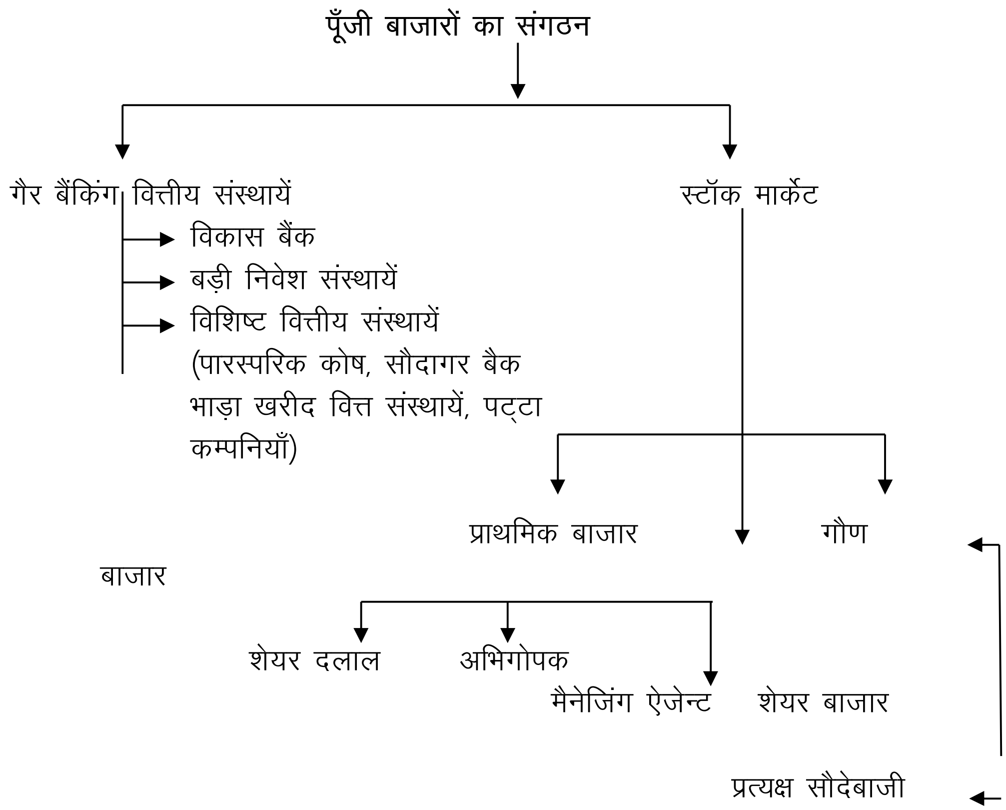

पूँजी बाजार के संगठन से तात्पर्य उन सब संस्थाओं के क्रम तथा कार्यों से है जो पूँजी बाजार में सम्मिलित होती हैं, संगठन के रूप में उपरोक्त वर्गीकरण द्वारा स्पष्ट करने की कोशिश की गयी है कि किन–किन संस्थाओं द्वारा पूँजी बाजार के संगठन को पूर्ण रूप दिया जाता है।

1. **गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ (Non Banking Financial Intermediaries)**

गुरले (Gurley) तथा शॉं (Shaw) द्वारा गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थों की अवधारणा को लोकप्रिय बनाकर पूँजी बाजार की कार्यप्रणाली को तुलनात्मक रूप से आसान बनाने का कार्य किया गया। व्यापारिक बैंकों के विपरीत गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ वह संस्थायें होती हैं जो जनता से जमा स्वीकार नहीं करती हैं बल्कि जनता की बचतों को इकट्ठा करती हैं और निवेशकर्ताओं को उधार देने का प्रबन्ध करती हैं। इनका नाम मध्यस्थ इसलिए रखा गया क्योंकि ये संस्थायें किसी भी अर्थव्यवस्था में बचतकर्ताओं और निवेशकर्ताओं के बीच मध्यस्था कर पूँजी की माँग तथा पूर्ति में सामन्जस्य बनाने का कार्य करती हैं तथा बैंकों की तरह बैंक के सभी कार्य नहीं करती हैं। जैसाकि पहले बताया जा चुका है कि वित्तीय परिसम्पत्तियों को प्राथमिक प्रतिभूति तथा द्वितीयक प्रतिभूति दो शीर्षकों में विभाजित किया जाता है। प्राथमिक प्रतिभूति सीधे अन्तिम निवेशकर्ता द्वारा अन्तिम बचतकर्ता को जारी की जाती है; इसमें शेयर तथा बंधक सम्मिलित होते हैं। द्वितीयक प्रतिभूतियाँ वह दायित्व हैं जो मध्यस्थों द्वारा अन्तिम बचतकर्ताओं को उनकी बचतों के बदले में जारी की जाती हैं। यह अन्तिम निवेशकर्ता तथा अन्तिम बचतकर्ता के बीच दलाल/मध्यस्थ का कार्य करते हैं। इनमें विभिन्न वित्तीय संस्थायें सम्मिलित हैं:

(i) विकास बैंक (Developments Banks)

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI), राज्य वित्त निगम (State Financial Corporation), भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Financial Corporation of India) इत्यादि इसमें सम्मिलित होते हैं।

(ii) निवेश संस्थायें (Investment Institutions)

इसमें भारतीय जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation of India), सामान्य बीमा निगम (General Insurance Corporation), भारतीय यूनिट ट्रस्ट (Unit Trust of India) इत्यादि को शामिल करते हैं।

(iii) विशिष्ट वित्तीय संस्थायें (Special Financial Institutions)

विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं का निर्माण विशेष कार्यों को पूर्ण करने के उद्देश्य से किया जाता ह। इसमें निम्नांकित संस्थाओं को सम्मिलित किया जाता है:

(a) सौदागर बैंक (Merchant Banking)

सौदागर बैंकों का मुख्य कार्य कम्पनियों तथा निगमों के नये निर्गमनों के प्रबन्धन का है। यह बैंक कम्पनी तथा निगमों के अंशों के मूल, अभिगोपन तथा वितरण सम्बन्धी तीनों कार्यों का प्रावधान करते हैं। प्रारम्भ में व्यापारिक बैंकों द्वारा इन कार्यों के लिए सौदागर बैंकिंग विभाग खोला जाता था लेकिन संयुक्त पूँजी कम्पनियों तथा निगमों के विकसित होने के साथ सौदागर बैंकों को अपना अलग अस्तित्व में आन पड़ा। भारत में निजी क्षेत्र में भी कुछ विदेशी कम्पनियों के साथ

मिलकर सौदागर बैंकों का निर्माण किया है। भारत में सौदागर बैंकों के मुख्य कार्य हैं :

(1) कम्पनियों तथा निगमों के नये निर्गमनों का प्रबन्ध करना जिसमें हामी भरना भी सम्मिलित है।

(2) ग्राहकों को कोष बढ़ाने तथा अन्य वित्तीय पहलुओं के संदर्भ में परमर्श तथा विशेषज्ञों सलाह प्रदान करना।

भारतीय प्रतिभूति विनियम बोर्ड (SEBI) द्वारा सौदागर बैंकों का नियमन किया जाता है। भारतीय व्यापारिक बैंकों पदाधिकारियों की सहायक संस्थाओं के रूप में कार्य कर रहे सौदागर बैंकों पर भारतीय रिजर्व बैंक निगरानी रखता है।

(b) पारस्परिक कोष (Mutual Funds)

अपनी स्टॉक को बचतकर्ताओं को बेचकर, आय प्राप्त कर उस आय से विभिन्न प्रचलित कम्पनियों की प्रतिभूतियाँ खरीदने का कार्य पारस्परिक कोषों द्वारा किया जाता है। कम्पनियों की प्रतिभूतियों से प्राप्त होने वाली आय का एक भाग अपने पास लाभ के रूप में रखकर, इनके स्टॉक में निवेशकर्ताओं को भुगतान किया जात है। बचतकर्ताओं के बचत को विशेषज्ञों की सलाह से लाभ वाली प्रतिभूतियों में निवेश कर बचतकर्ताओं के भुगतान के पश्चात लाभ कमाना पारस्परिक कोषों का मुख्य कार्य है। अनेक सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र व बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं ने पारस्परिक कोष खोले हैं। वर्तमान में भारत में पारस्परिक कोषों का नियमन तथा देखभाल भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड (SEBI) द्वारा किया जाता है।

(c) भाड़ा खरीद वित्त संस्थायें (Hire Purchase Finance Institution)

जिन वस्तुओं का भुगतान किस्तों में होता है उनकी सुपदर्गी करना भाड़ा खरीद वित्त संस्थाओं का कार्य होता है। किस्त योजना की स्वीकृति में जिस साख का योगदान होता है, वह साख इन संस्थाओं द्वारा प्रदान की जाती है। छोटे किसानों, छोटे विनियोगकर्ताओं और परिवहनकर्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भाड़ा खरीद वित्त संस्थाओं की अधिक आवश्यकता होती है। यह संस्थायें भाड़ा खरीद प्रणाली पर उपभोक्ताओं को वस्तुऐं खरीदने में सहायता प्रदान करती हैं। आजकल भारत में भाड़ा खरीद प्रणाली पर उपभोक्ताओं को वस्तुऐं खरीदने में सहायता प्रदान करती हैं। आजकल भारत में भाड़ा खरीद प्रणाली में साख तथा वित्त की सुविधा अग्रलिखित संस्थाओं द्वारा उपलब्ध करायी जा रही हैं :

(1) राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम

(2) व्यापारिक बैंक

(3) राज्य वित्त निगम।

इन संस्थाओं का स्वामित्व व्यक्तियों तथा साझेदारी द्वारा किया जाता है तथा अन्य प्रदेशों की तुलना में दक्षिणी प्रदेशों की इन संस्थाओं का चलन अधिक है। भारत में बैंकिंग आयोग के अनुसार इन संस्थाओं के लिए लाइसेन्स बनवाना अनिवार्य किया जाना चाहिए। इन संस्थाओं को संस्थागत बना देना चाहिए तथा व्यापारिक बैंकों को इस क्षेत्र में प्रवेश की अनुमति देनी चाहिए।

(d) पट्टा कम्पनियाँ (Leasing Companies)

पट्टा एक किराया प्रणली है जिसका आगमन भारत में ज्यादा पुराना नहीं है। संयंत्रों को पट्टे पर औद्योगिक कम्पनी को देना तथा इसका प्रबन्धन करना ही पट्टा कम्पनियों का मुख्य कार्य है। पूँजी संयत्र अत्यधिक समय तक उपयोग किया जाता है तथा अत्यधिक कीमत का होता है इसलिए पूँजी संयत्र का उपयोग करने वाला इसको स्वयं नहीं खरीदना चाहता है, केवल संयत्र रखने वाली पट्टा कम्पनी को किराया देकर एक निश्चित समय के पट्टे के द्वारा इसका उपयोग करना चाहता है। भारत में पट्टा व्यवसाय का संचालन अधिकतर सीमित कम्पनियों द्वारा किया जाता है। पट्टा व्यवसाय में पट्टेदार को मुख्य लाभ यह होता है कि उसको पूँजी संयत्र खरीदने के लिए भारी रकम खर्च नहीं करनी पड़ती है।

2. **स्टॉक बाजार (Stock Exchange)**

पूँजी बाजार का एक महत्वपूर्गा अंग स्टॉक बाजार है। स्टाक बाजार में सरकारी, अर्धसरकारी तथा निजी कम्पनियों के निर्गमित प्रतिभूतियों से सम्बन्धित विभिन्न बाजार सम्मिलित होते हैं। निर्गमित प्रतिभूतियों से तात्पर्य उन प्रतिभूतियों से है जो निर्गमित क्षेत्र में जनता से दीर्घकालीन पूँजी प्राप्त करने के लिए निर्गमित की जाती हैं। निर्गमित प्रतिभूतियों का बाजार दो प्रकार से विभाजित होता है :

(अ) प्राथमिक बाजार (Primary market)

(ब) द्वितीयक बाजार (Secondary market)

(अ) प्राथमिक बाजार (Primary market)

प्राथमिक बाजार को नये निर्गमन बाजार के नाम से भी पूकारा जाता है और नाम से ही स्पष्ट होता है जिस बाजार से नयी परिसम्पत्तियों/प्रतिभूतियों को निर्गमित किया जाता है उस बाजार को प्राथमिक बाजार कहते हैं। नये अंशों, पूर्वाधिकार अंशों तथा डिवेन्चरों की जनता तथा संस्थाओं को बिक्री प्राथमिक बाजार द्वारा की जाती है। प्राथमिक बाजार का उद्देश्य उद्यमों के लिए प्राथमिक प्रतिभूतियों के निर्गमन से पूँजी प्राप्त करना होता है। नये तथा पुराने उद्यमों द्वारा इस तरह की प्रतिभूतियाँ निर्गमित की जाती हैं। पुरान उद्यमों द्वारा अपने व्यवसाय के विस्तार के लिए समय–समय पर नये प्रकार के अंशों तथा ऋणपत्रों का निर्गमन किया जाता है जिसकी प्रक्रिया प्राथमिक बाजारों द्वारा पूरी की जाती है। यह उद्यम सरकारी, अर्थव्यवस्था तथा निजी के साथ–साथ सार्वजनिक (Public) तथा निजी (Private Limited) हो सकते हैं।

(ब) गौण/द्वितीयक बाजार (Secondary market)

गौण तथा द्वितीयक बाजार स्टॉक मार्केट का वह भाग है जिसमें पुराने अंशों तथा प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है। विभिन्न प्रकार के उद्यमों को इस बाजार से अपनी प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय करने की सुविधायें प्राप्त होती हैं।

2.9 प्राथमिक बाजार के कार्य (FUNCTIONS OF PRIMARY MARKET)

प्राथमिक बाजार का मुख्य कार्य किसी उद्यम के नये दृश्य या नये प्रतिभूतियों के निर्गमन प्रक्रिया की सफलतापूर्वक सम्पन्न कर उद्यम के लिए दीर्घकालीन पूँजी उपलब्ध कराना है। इस प्रक्रिया में मुख्यतः तीन तरह के कार्य किये जाते हैं:

1. नये निर्गमन का प्रबन्ध
2. नये निर्गमन का अभिगोपन

3. नये निर्गमन का वितरण।

1. नये निर्गमन का प्रबन्ध (Organisation of New Issue)

इस चरण का सबसे मुश्किल तथा आवश्यक कार्य है कि तथ्यों की जाँच कर विभिन्न प्रश्नों के उत्तर ढूढ़ना, जैसे नयी कम्पनी की लाभदायकता क्या होगी, उद्यम ने भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड के नियमों के पालन की सत्यता की जाँच, निवेशकों के नयी कम्पनी की प्रतिभूतियों की खरीद में विश्वास इत्यादि। इस सब प्रश्नों में सबसे मुश्किल है नयी कम्पनी की लाभप्रदता की जाँच, क्योंकि कम्पनी ने अभी तक कोई कार्य/व्यवसाय नहीं किया है, इसलिए इसका अध्ययन रिकार्डस से नहीं लगाया जा सकता है। नामी कम्पनी की लाभप्रदता का अनुमान लगाने के लिए उस कम्पनी की तकनीकी, उसका व्यवसाय तथा साधनों के माध्यमों से लगाया जा सकता है। अन्य प्रश्नों के उत्तर विशेषज्ञों की जाँच द्वारा प्राप्त किया जाता है। साधनों का अनुमान लगाने में मानवीय तथा अमानवीय दोनों प्रकार के साधनों की समीक्षा की जाती है। अमानवीय साधनों से भूमि, पूँजी, ऊर्जा, जल इत्यादि हैं तथा मानवीय साधनों में श्रम, प्रबन्धकों की योग्यता के साथ–साथ व्यवसाय के प्रकार की भी समीक्षा की जानी चाहिए। नये अंशों तथा प्रतिभूतियों के निगमन से पहले यह बात आवश्यक जाँच लेनी चाहिए कि कम्पनी का वित्तीय ढाँचा पर्याप्त है या नहीं। वित्तीय ढाँचों के अन्तर्गत कम्पनी स्थापित करने वालों (Promoters) की अंश पूँजी, बेचे जाने वाले अंशों का मूल्य, अल्पकालीन कोष, तरलता अनुपात, ऋण अंश अनुपात तथा विदेशी विनिमय की आवश्यकता आदि का सम्मिलित किया जाता है। कम्पनी को स्थापित करने तथा उसके द्वारा व्यापार प्रारम्भ करने में कितना समय अन्तराल है इसकी भी जाँच की जानी चाहिए। कुल मिलाकर नयी कम्पनी के इस प्रोजेक्ट की अनुमानित लागत तथा इससे मिलने वाले अनुमानित लाभ के आधार पर ही कम्पनी के प्रबन्धन द्वारा भविष्य में कम्पनी के लाभप्रदता का अनुमान लगाया जाता है।

2. नये निर्गमन का अभिगोपन (Understanding of New Issue)

अभिगोपक शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के उस समूह तथा संस्था के लिए किया जाता है जो कम्पनी द्वारा किये जाने वाले नये निर्गमन के निर्गमित होने की गारन्टी कम्पनी को देता है। नये निर्गमन की बिक्री के लिए उठाया गया दूसरा कदम अभिगोपन है। जैसा कि इससे पहले व्याख्या की जा चुकी है कि नयी कम्पनी द्वारा नया निर्गमन यदि किया जाता है या पुरानी कम्पनी द्वारा नया निर्गमन किया जाता है तो कम्पनी को इस बात की निश्चितता नहीं होती है कि खरीददारों द्वारा सभी निर्गमित प्रतिभूतियाँ खरीद ली जायेंगी। इस अनिश्चितता से मुक्ति दिलाते हैं अभिगोपक जो कम्पनी से निर्धारित/निश्चित मिलने वाले कीमत/कमीशन पर निर्गमित की जाने वाली प्रतिभूतियों को खरीदने/बेचने की गारन्टी देते हैं। अभिगोपक इन प्रतिभूतियों को अपने स्वयं के लिए खरीदने, जनता में बेचने तथा दोनों के लिए खरीदने की गारन्टी देते हैं। यदि अभिगोपकों द्वारा जितनी प्रतिभूतियों के निर्गमन की गारन्टी कम्पनी को दी है उतनी प्रतिभूतियों को वह जनता को बेचने में असमर्थ रहता है तो शेष प्रतिभूतियों को अभिगोपकों द्वारा स्वतः खरीदा जायेगा। अभिगोपन का यह कार्य सामान्यतया वित्तीय संस्थ्झाओं के एक समूह द्वारा किया जाता है तथा इस कार्य के लिए अभिगोपकों को पूर्वनिर्धारित कमीशन कम्पनी द्वारा दिया जाता है।

3. नये निर्गमन का वितरण (**Distribution of New Issue**)

नये निर्गमन के वितरण से यहाँ तात्पर्य है नये प्रतिभूतियों को जनता को बेचना तथा शेयरों को जनता को बेचने के लिए निम्नांकित तीन कदम उठाये जाते हैं:

(1) जनता को प्रविवरण जारी करना (**Issue of Prosepectus to the Public**)

प्रविवरण एक लिखित दस्तावेज होता है जो प्रतिभूति निर्गमित करने वाली कम्पनी/निगम द्वारा जनता को प्रोत्साहित तथा सूचना प्रदान करने के लिए निर्गत किया जाता है। किसी भी उद्यम द्वारा जनता को अपनी नयी प्रतिभूतियाँ बेचने के लिए प्रविवरण जारी करना आवश्यक है यह कम्पनी अधिनियम 1956 के आधीन भी अनिवार्य है। प्रविवरण में कम्पनी के बारे में विभिन्न सूचनाओं के अतिरिक्त अंशों के निर्गमन से सम्बन्धित सूचनायें विस्तारपूर्वक होती हैं। इसके द्वारा कम्पनी की प्रतिभूतियों को खरीदने के लिए जनता को आमन्त्रित किया जाता है। प्रविवरण के माध्यम से ही कम्पनी निर्गमन के अभिगोपकों के बारे में जनता को जानकारी प्रदान करती है।

(2) निजी प्रयास (**Private Placement/Sale**)

जनता में नये प्रतिभूतियों को बेचने के अतिरिक्त इन्हें बेचने का दूसरा तरीका है कि नये निर्गमन को निर्गमन गृहों (Issue Houses) या बड़ी वित्तीय संस्थाओं/संस्था को बेच दिया जाय। इसके पश्चात यह निर्गमन गृह तथा वित्तीय संस्थायें इन प्रतिभूतियों को अपने ग्राहकों को बेच देते हैं।

(3) स्वत्व निर्गमन (**Right Issue**)

इस तरह का निर्गमन नयी कम्पनी द्वारा नहीं किया जा सकता है ययह प्रक्रिया केवल पुरानी कम्पनी द्वार ही अपनाया जा सकता है। इसमें नये निर्गमन को पुरानी कम्पनी द्वारा अपने मौजूदा अंशधारियों को पत्र भेजकर उन्हें उनके अंशों के अनुपात में नये अंश खरीदने का प्रस्ताव देती है। इस प्रस्ताव की विशेषता यह है कि मौजूदा अंशधारियों को कम्पनी द्वारा दिया गया, यह अंश खरीदने का प्रस्ताव बाजार मूल्य से कम मूल्य पर दिया जाता है। इसलिए स्वत्व निर्गमन केवल पुरानी कम्पनियाँ ही कर सकती हैं।

2.10 प्राथमिक बाजार की संस्थायें तथा साख पत्र (INSTITUTIONS AND INSTRUMENTS OF PRIMARY MARKETS)

शेयर दलाल (Stock Brokers) तथा अभिगोपों (Underwriters) जैसी विशिष्ट संस्थायें प्राथमिक बाजार के अन्तर्गत कार्य करती हैं। स्वतंत्रता से पूर्व प्राथमिक बाजार में मुख्य संस्था मैनेजिंग ऐजेन्ट (Managing Agent) होता था जो प्राथमिक बाजार के निर्गमनों का सम्पूर्ण प्रबन्धन करता था लेकिन स्वतंत्रता से पूर्व प्राथमिक बाजार में प्रतिभाग करने वाले कम्पनियों की संख्या भी सीमित होती थी। स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने इस क्षेत्र में तेजी से विकास करते हुए नये–नये कम्पनियों या उद्यमों के निर्माण से प्राथमिक बाजार की गतिविधियों को नये संस्थानों द्वारा नया रूप दिया गया। 1955 में स्थापित "भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम" प्राथमिक बाजार की पहली विशिष्ट संस्था थी, इसके पश्चात कई अन्य संस्थाओं ने प्राथमिक बाजार में कदम रखा जिसमें मुख्य हैं: भारतीय जीवन बीमा निगम, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक तथा युनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, व्यापारिक बैंक, सामान्य बीमा निगम तथा शेयर दलाल।

अंश, ऋणपत्र, पूर्वाधिकार अंश प्राथमिक बाजार के मुख्य साख पत्र हैं। पूर्वाधिकार अंशों के विभिन्न प्रकार प्राथमिक बाजार में निर्गमित किये जाते हैं जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। पिछले कुछ समय से भारतीय प्राथमिक बाजार में कुछ नये प्रकार के साख पत्र निर्गमित किये जा रहे हैं, जिनमें मुख्य हैः पूर्णतः परिवर्तनीय संचयी पूर्वाधिकार अंश, पूर्णतः परिवर्तनीय ऋणपत्र, शून्य ब्याज पर पूर्णतः परिवर्तनीय ऋणपत्र, सिक्योर्ड प्रिमियम नोट्स इत्यादि।

2.11 गौण बाजार के कार्य (FUNCTIONS OF SECONDARY MARKET)

द्वितीयक/गौण बाजार के कार्यों को मुख्यतः दो भागों मे विभाजित किया जा सकता है

1. तरलता प्रदान करना
2. नये निवेश को प्रोत्साहन

1. तरलता प्रदान करना (To provide Liquidity)

तरलता से सामान्य भाषा में तात्पर्य होता है किसी भी प्रतिभूति को कम से कम हानि में नकदी के रूप में परिवर्तित करना। सामान्यतः निवेशक दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के निवेशक कम्पनियों की प्रतिभूतियों में निवेश करते हैं और लम्बे समय के लिए इसे छोड़ देते हैं। दूसरा इन प्रतिभूतियों की टेडिंग कर लाभ कमाते हैं। तरलता की उपस्थिति किस भी प्रतिभूति का एक मुख्य लक्षण है और गौण बाजार की उपस्थिति निवेशकों को यह तरलता उपलब्ध कराने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। गौण बाजार का मुख्य कार्य है प्रतिभूतियों को तरलता प्रदान करना। तरलता का लाभ प्राप्त करने के लिए प्रतिभूतियों को एक बाजार की आवश्यकता होती है जहाँ कम से कम लागत या हानि पर किसी भी प्रतिभूति को खरीदा या बेचा जा सके। निवेशकों को आकर्षित करते का कार्य भी तरलता की उपस्थिति करती है क्योंकि कम्पनियों द्वारा अपने प्रतिभूति धारकों को यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि जब कभी भी प्रतिभूतियों के बदले में धन प्राप्त करना चाहेंगे तो प्रतिभूतियों को गौण बाजार में आसानी से बेचकर प्राप्त कर सकते हैं।

2. भावी निवेश को प्रोत्याहन (Encouragement to New Investment)

गौण बाजार पुरानी प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय का एक महत्वपूर्ण स्थान है तथा इसकी उपस्थिति से देश में विभिन्न कम्पनियों की प्रतिभूतियों के मूल्य में आने वाले उतार–चढ़ाव का ज्ञान भी आसानी से प्राप्त होता है। अतः गौण बाजार के अन्दर जब प्रतिभूतियों में वृद्धि हो रही होती है तभी प्राथमिक बाजार में कम्पनियों द्वारा नये प्रतिभूतियों के निर्गमन को प्रारम्भ किया जाता है तथा प्रभाव यह पड़ता है कि इस माहौल में नये प्रतिभूतियों को निवेशकों द्वारा आसानी से क्रम करा लिया जाता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि अर्थव्यवस्था के प्रचलित वातावरण का गौण बाजार एक प्रमुख सूचक है। इसके विपरीत जब गौण बाजार में क्रय–विक्रय कम हो रहा होता है तथा पुराने प्रतिभूतियों की कीमतों में कमी के संकेत होते हैं, तो प्राथमिक बाजार भी हतोत्साहित होते हैं तथा नये निर्गमन या तो कुछ समय के लिए रोक दिये जाते हैं या कम मात्रा में निर्गमन किया जाता है।

2.12 द्वितीयक बाजार की संस्थायें (INSTUTIONS OF SECONDARY MARKET)

द्वितीयक या गौण बाजार में सक्रिय दो संस्थायें हैं

1. शेयर बाजार (Stock exchanges)
2. प्रत्यक्ष सौदेबाजी (Over the Counter Market)

1. शेयर बाजार (Stock exchanges)

अनुसूचित मौजूदा (listed) अंशों तथा अन्य द्वितीयक प्रतिभूतियों क्रय–विक्रय करने वाला संगठन शेयर बाजार कहलाता है। अनुसूचित अंशों से तात्पर्य उन अंशों से होता है जिन्हें शेयर बाजार द्वारा स्वीकृती प्रदान होती है। शेयर बाजार में प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय के लिए उनका अनुसूचित (listed) होना आवश्यक होता है।

2. प्रत्यक्ष सौदेबाजी (Over the Counter Market)

सवाल उठता है कि उन प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय कैसे किया जायेगा जिनको किसी स्टाक मार्केट में अनुसूचित नहीं किया गया है। ऐसे प्रतिभूतियों का लेन–देन जिनको अनुसूचित नहीं किया गया है प्रत्यक्ष सौदेबाजी (Over the CounterMarket) द्वारा किया जाता है। ये शेयर/अंश प्रायः छोटी कम्पनियों क होते हैं इसी वजह से इनका बाजार सीमित होता है तथा इस बाजार में शेयरों/अंशों का मूल्य दलालों की प्रत्यक्ष सौदेबाजी से तय किया जाता है।

2.13 स्टाक मार्केट के कार्य या महत्व (FUNCTIONS OR IMPORTANCE OF STOCK MARKET)

स्टाक मार्केट के महत्वपूर्ण कार्य निम्नाँकित हैं।

1. तैयार बाजार उपलब्ध कराना
2. निवेशकों की गतिविधियों का संरक्षण
3. अनुशासन स्थापित करना
4. गतिविधियों की जाँच
5. सन्तुलन स्थापित करना
6. तरलता प्रदान करना
7. उ़द्योगों के विकास में सहायक
8. कम्पनियों पर नियंत्रण
9. विदेशी पूँजी को आकर्षित करना
10. पूँजी की सुरक्षा
11. व्यवसाय उन्नति का पैमाना।
12. उद्योगों के विकास में सहायक
13. पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन
14. सरकारी संसाधनों को बढ़ाना
15. प्रतिभूतियों का मूल्यांकन
16. बचतों का प्रवाह
17. आर्थिक पैमाना

1 तैयार बाजार उपलब्ध कराना (Providing Ready Market)

शेयर मार्केट का मुख्य तथा महत्वपूर्ण कार्य है कि द्वितीयक प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय के लिए निवेशकों तथा सट्टेबाजों के लिए बाजार उपलब्ध कराना। मूल रूप से स्टाक मार्केट का अस्तित्व ही क्रय–विक्रय कर सकते हैं। इन बाजारों को नियंत्रित करने के लिए देश में विभिन्न प्रकार के नियम तथा अधिनियम उपलब्ध हैं।

2. **निवेशकों की गतिविधियों का संरक्षण (Safeguarding Activities of Investors)**

विभिन्न प्रकार के नीति और नियमों के तहत स्टाक मार्केट के विभिन्न विभाग बाजार में निवेश करने वालों की गतिविधियों पर नियंत्रण के साथ–साथ इनका संरक्षण भी करते हैं। निवेशक किसी भी प्रतिभूति पर अपना निष्पक्ष निर्णय ले सकता है। वह यदि कुछ जानकारी चाहता है तो वह सब जानकारियाँ उसे उपलब्ध करानी होंगी जिससे उसका निवेश निर्णय प्रभावित हो सकता है। कम्पनियों के निवेशकों को वह सब तथ्य निवेशकों के सामने रखने होते हैं जिन्हें विधान द्वारा आवश्यक समझा जाय। इस प्रकार चालाक दलालों से निवेशकों के हितों तथा गतिविधियों का संरक्षण करता है।

3. **अनुशासन स्थापित करना (Creating the Discipline)**

कम्पनी अधिनियम 1956, तथा भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड द्वारा स्थापित विभिन्न नियमों तथा कानूनों का पालन निवेशकों तथा प्रतिभूति निर्गमन करने वाली कम्पनियों द्वारा किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। किसी भी नियम की अवहेलना नहीं की जा सकती है। स्टाक मार्केट संगठन के विभिन्न विभाग तथा इनके सदस्यों का एक मुख्य कार्य यह भी है कि बाजार में प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय की गतिविधियाँ नियमानुसार ही हों।

4. **गतिविधियों की जाँच (Checking Function)**

स्टॉक मार्केट के एक विभाग का कार्य केवल बाजार की गतिविधियों पर नजर रखना है। इन गतिविधियों में बाजार से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक विभाग, संस्था तथा व्यक्ति की गतिविधियाँ सम्मिलित हैं। मध्यस्थों के बिना स्टाक मार्केट की कल्पना नहीं की जा सकती है लेकिन मध्यस्थों पर नियमों के अनुसार कार्य करने की वाह्यता रखना भी अतिआवश्यक है। इसके अतिरिक्त प्रतिभूतियों तथा निवेशकों की गतिविधियों की जाँच भी एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया होनी चाहिए।

5. **सन्तुलन स्थापित करना (Adjustment of Equilibrium)**

किसी विशेष प्रकार की प्रतिभूति के मूल्य में उतार–चढ़ाव को नियंत्रित करने का कार्य भी अप्रत्यक्ष रूप से स्टाक मार्केट द्वारा किया जाता है। सभी जानते हैं कि स्टॉक मार्केट में मध्यस्थों द्वारा विभिन्न कम्पनियों की प्रतिभूतियाँ विक्रय के लिए उपलब्ध कराये जाते हैं तथा निवेशकों द्वारा विभिन्न पैमानों पर परीक्षण के पश्चात प्रतिभूतियों का क्रय किया जाता है अर्थात प्रतिभूतियों की माँग तथा पूर्ति दोनों ही स्टॉक मार्केट द्वारा उपल्बध करायी जाती हैं, जिसमें किसी विशेष प्रतिभूति के मूल्य/कीमत में अधिक उतार–चढ़ाव नहीं आता है तथा कीमत माँग और पूर्ति के नियम के तहत निर्धारित हो जाती है।

6. **तरलता प्रदान करना (Maintenance of Liquidity)**

स्टॉक मार्केट में प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय होता है उन्हें निवेशक अपनी आवश्यकता अनुसार कभी भी खरीद या बेच सकता है तथा स्टॉक मार्केट में जिन प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय होता है उन्हें निवेशक अपनी आवश्यकता अनुसार कभी भी खरीद या बेच सकता है तथा स्टॉक मार्केट एक ऐसा मैकेनिजम उपलब्ध कराता है जिससे निवेशक को कम हानि के साथ कम समय में तरलता उपलब्ध हो पाती है।

7. **बचत की आदतों को प्रोत्साहन (Promotion of the Habit of Saving)**

सामान्य के लिए स्टॉक मार्केट एक ऐसा स्थान बनाता है जहाँ वह बचतों (छोटी–छोटी) का निवेश कर सकते हैं। इसलिए यह प्रत्यक्ष रूप से सामान्य जनता के मन में बचत की भावना को बढ़ाकर निवेश की प्रवृत्ति पैदा करन का कार्य करता है। यह बचत स्वयं तथा विशेषज्ञों की मदद से निगमों तथा सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश की जाती है। इस तरह की छोटी–छोटी बचतों के प्रोत्साहन तथा इनके निवेश की सुविधा प्रदान करने से स्टॉक मार्केट, सरकार तथा कम्पनियों को इन बचतों को देश की अर्थव्यवस्था में उत्पादक कार्यों में लगाता है।

8. **उ़द्योगों के विकास में सहायक (Helpful in Advancing the Industry)**

स्टॉक मार्केट के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कार्यों में सबसे महत्वपूर्ण कार्य है कि यह देश में व्यापार, व्यवसाय तथा उद्योगों की वित्तीय तथा विशेषज्ञों की सेवाओं से विशेष सहायता करता है। यह पूँजी प्रवाह को उत्पादकता की महत्वपूर्णता को देखते हुए प्रवाहित करता है। इस प्रकार अनुत्पादक क्षेत्र से उत्पादक क्षेत्र में पूँजी प्रवाह होने से देश की अर्थव्यवस्था के साथ–साथ इन क्षेत्रों की कम्पनियों को भी प्रोत्साहन मिलता है।

9. **पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन (Promotion of Capital Formation)**

स्टॉक मार्केट द्वारा प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से देश की अर्थव्यवस्था में सक्रिय योगदान दे रहे उद्योगों की प्रतिभूतियों की पब्लिसिटी इस तरह से की जाती है जिससे सम्पूर्ण जानकारी जनता तथा सम्भावित निवेशकों तक पहुँती है तथा एक ऐसा माहौल बनता है जिसमें निवेश न करने वाले व्यक्ति तथा संस्थान भी निवेश करने के बारे में सोचने लगते हैं। इस तरह निवेश बढ़ने के साथ ही पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है।

10. **सरकारी संसाधनों को बढ़ाना (Increasingh Government Funds)**

स्टॉक मार्केट का प्रमुख कार्य है कम्पनियों तथा सरकारी संस्थानों की द्वितीयक प्रतिभूतियों के व्यापार हेतु बाजार का निर्माण करना। इसलिए सरकारें देश के हित में महत्वपूर्ण प्रोजेक्ट को तथा समाज हित में महत्वपूर्ण प्रोजेक्ट को बढ़ाने तथा विकसित करने के लिए स्टॉक मार्केट द्वारा आसानी से अपनी प्रतिभूतियों का विक्रय कर संसाधनों की प्राप्ति कर सकते हैं।

11. **प्रतिभूतियों का मूल्यांकन (Evaluation of Securities)**

स्टॉक एक्सचेंज किसी भी कम्पनी तथा सरकारी संस्थान की कार्य–कुशलता का इसकी प्रतिभूतियों के मूल्यों/कीमतों के आधार पर निर्धारित करने का मार्ग प्रशस्त करता है। स्टॉक एक्सचेंज कम्पनियों की प्रतिभूतियों की समग्र माँग तथा पूर्ति को बेहतर तरीके से प्रस्तुत कर माँग और पूर्ति के आधार पर कीमतों के निर्धारण से कम्पनी की कार्यकुशलता आँकने का मौका देते हुए किसी कम्पनी विशेष की स्थायित्व के बारे में निवेशकों की संकाओं का समाधान करने

का भी कार्य करता है। इस प्रकार इन आकलनों द्वारा निवेशक एक बेहतर निर्णय लेने की स्थिति में होता है।

12. **पूँजी की सुरक्षा (Saftey of Capital)**

स्टॉक एक्सचेंज के अन्तर्गत की जाने वाले प्रत्येक गतिविधियाँ जनता के समक्ष विभिन्न विधानों, एक्टों, अधिनियमों के नियमानुसार तथा बपनियमानुसार की जाती हैं जिसके आधार पर यह निवेश तथा पूँजी पूर्णतया सुरक्षित होती है। इस तरह के निवेश का चरणबद्ध तरीके से नियंत्रण किया जाता है जिसमें महत्वपूर्ण भूमिका भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड (Securities Exchange Board of India), भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 (Indian Companies,1956) भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India) के साथ–साथ स्टॉक एक्सचेंज द्वारा निभायी जाती है। यह विभिन्न प्रकार के अधिनियम संस्थानों/कम्पनियों की स्थापना से उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यों तथा निर्गमित की जाने वाली प्रतिभूतियों की जाँच–पड़ताल कर नियमों का पालन करवाले का एक अति महत्वपूर्ण कार्य करते हैं, जिसमें निवेशक सुरक्षित रहता है।

13. **व्यवसाय उन्नति का पैमाना (Barometer of Busines Progress)**

देश में व्यवसाय उन्नति के पैमाने के रूप में स्टॉक एक्सचेंज कार्य करते हैं। स्टॉक एक्सचेंज उछाल तथा गिरावट के दौर में विभिन्न कम्पनियों की प्रतिभूतियों के मूल्यों को दर्शाता है तथा स्टॉक एक्सचेंज द्वारा दर्शाये गये उछाल तथा गिरावट के दौर में मूल्यों के तुलनात्मक अध्ययन से निवेशक अपने निर्णय लेता है तथा किसी व्यवसाय विशेष की स्थिति तथा देश में व्यवसाय की समग्र स्थिति का अनुमान आसानी से लगाया जाता है।

14. **बचतों का प्रवाह (Mobilizes Savings)**

स्टॉक एक्सचेंज द्वारा निवेशकों की बड़ी बचतों को कम्पनियों की प्रतिभूतियों में निवेश करने का सीधा अवसर प्रदान करते हैं। आज के दौर में इन्वेस्टमेन्ट ट्रस्ट तथा पारस्परिक कोषों द्वारा भी निवेशकों की निवेश करने में सहायता प्रदान की जा रही है। पारस्परिक कोष जनता की छोटी–छोटी बचतों को प्रवाहित कर एक बड़ी राशि को प्रतिभूतियों में निवेश करने का कार्य कर रहे हैं। इससे छोटे निवेशक भी अप्रत्यक्ष रूप से इस बाजार के निवेशक हैं तथा बाजार की प्रतिक्रियाओं के प्रतिफल का आनन्द ले सकते हैं।

15. **आर्थिक पैमाना (Economic Barometer)**

किसी देश की अर्थव्यवस्था की क्या स्थिति है, इस स्थिति को देश की आर्थिक पैमाने के सूचक के रूप में प्रस्तुत करना किसी भी देश के स्टॉक एक्सचेंज का एक प्रमुख कार्य है। एक राजनीतिक तथा आर्थिक तौर पर मजबूत सरकार वाला देश इस सूचक में अच्छा तथा इसके विपरीत बुरा, स्टॉक एक्सचेंज द्वारा प्रदर्शित होगा तथा यह प्रदर्शन देश के निवेशकों के साथ–साथ विदेशी निवेशकों के निवेश निर्णयों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करेगा। इसलिए देश की सरकारों को इस तरह की नितियों को अपनाना चाहिए जिससे स्टॉक एक्सचेंज की प्रतिक्रिया आपके पक्ष में है।

16. **कम्पनियों पर नियंत्रण (Control on Companies)**

पंजीकृत सरकारी तथा गैर सरकारी कम्पनियों पर नियंत्रण रखना भी स्टॉक एक्सचेंज का एक महत्वपूर्ण कार्य है। जिन कम्पनियों की प्रतिभूतियों किसी

भी स्टॉक एक्सचेंज में अनुसूचित हैं उन कम्पनियों को अपनी खातों से सम्बन्धित वार्षिक रिपोर्ट तथा अकेंशित स्थिति विवरण सम्बन्धित स्टॉक एक्सचेंज में प्रतिवर्ष जमा करना होता है तथा यह दोनों दस्तावेजों का अध्ययन स्टॉक एक्सचेंज में इस कार्य के विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है तथा यह ज्ञात किया जाता है कि देश में निर्धारित नियमों तथा कानूनों का पालन हो रहा है या नहीं, इस तरह केवल वही कम्पनियाँ भविष्य में कार्य कर सकती हैं जो नियमानुसार अपना कार्य कर रही हों। यदि कम्पनियाँ नियमों की अनदेखी करती हैं तो ऐसी कम्पनियों को ब्लेक लिस्टेड किया जाता है तथा नियमानुसार इन कम्पनियों पर कार्यवाही की जाती है।

17. **विदेशी पूँजी को आकर्षित करना (Attract Foreign Capital)**

स्टॉक एक्सचेंज के विभिन्न कार्यों का आँकलन कर यह भी निःसंदेह कहा जा सकता है कि इसका एक कार्य देश में विदेशी पूँजी को आकर्षित करना भी है। इसका प्रमुख कार्य है कम्पनियों की प्रतिभूतियों के क्रय तथा विक्रय को सम्भव बनाना इस कार्य द्वारा ही स्टॉक एक्सचेंज द्वारा कम्पनियों की प्रतिभूतियों की समग्र माँग तथा समग्र पूर्ति का आँकलन कर बाजार द्वारा इसकी कीमत निर्धारित कर इस सूचना को प्रत्येक सम्भावित निवेशक के लिए उपलब्ध करना होता है, दूसरा कार्य स्टॉक एक्सचेंज से विभिन्न कम्पनियों की प्रतिभूतियों के आधार पर संस्थानों का प्रत्यक्ष मूल्यांकन तथा देश की अर्थव्यवस्था का सूचक ज्ञात किया जा सकता है जिसके आधार पर विदेशी संस्थानों, कम्पनियों तथा अन्य निवेशकों को अपने निवेश सम्बन्धी निर्णय लेने में सहायता मिलती है। पूँजी पर अधिक दर से प्रतिफल देने पर स्टॉक एक्सचेंज विदेशी निवेशकों को निवेश करने के लिए आकर्षित करता है। यह प्रत्यक्ष रूप से किसी देश की मुद्रा के विनिमय मूल्य में भी सुधार करता है जिससे देश में निवेश का माहौल बनता है।

2.14 सारांश

भारतीय पूँजी बाजार का विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुआ जब देश में सरकारी, अर्धसरकारी तथा संयुक्त पूँजी कम्पनियों की स्थापना शीघ्र गति से प्रारम्भ हुई। भारतीय पूँजी बाजार के ढ़ाँचे को दो भागों अंग संस्थायें (Constituents Institutions) और वित्तीय प्रपत्र (Financial Instrument) में बाँटा जाता है। इसमें से अग संस्थाओं को पुनः दो भागों में बाँटा गया ऋण दाता क्षेत्र (Lendor's Sector), ऋण लेने वाला क्षेत्र (Borrower's Sector)। इनमें ऋण लेने वाले क्षेत्र को पुनः संगठित (Organised) तथा असंगठित (Unorganised) क्षेत्र में बाँटा गया। संगठित क्षेत्र में जहाँ स्टॉक एक्सचेंज/मार्केट, विकास बैंक तथा निवेश संस्थायें हैं तो असंगठित क्षेत्र में महाजन तथा चिटफण्ड इत्यादि की उपस्थिति है।

वित्तीय प्रपत्रों को भी दो भागों में विभाजित किया गया है प्रथम सरकारी तथा उत्क्रष्ट प्रतिभूतियाँ, दूसरा निगमित प्रतिभूतियाँ हैं। सरकारी प्रतिभूतियों पर आय तुलनात्मक रूप से कम होती हैं लेकिन यह अत्यधिक सुरक्षित होती हैं। निगमित प्रतिभूतियाँ इसके विपरीत हैं। निगमित प्रतिभूतियों के बाजार को भी दो भागों मे विभजित किया जाता है प्राथमिक तथा द्वितीयक बाजार। प्राथमिक बाजार में नये प्रतिभूतियों का निर्गमन होता है, वहीं द्वितीयक बाजार में पुरानी प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है।

स्टॉक एक्सचेंज के द्वारा देश तथा कम्पनियों के लिए विभिन्न तरह के कार्य किये जाते हैं, जिनमें से मुख्य है तैयार बाजार उपलब्ध कराना, निवेशकों की गतिविधियों का संरक्षण, अनुशासन स्थापित करना, तरलता प्रदान करना, बचतों की आदतों को प्रोत्साहित करना, उद्योगों के विकास में सहायक, पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन, सरकारी संसाधनों को बढ़ाना, प्रतिभूतियों का मूल्यांकन, बचतों का प्रवाह, कम्पनियों पर नियंत्रण, विदेशी पूँजी को आकर्षित करना तथा पूँजी की सुरक्षा है।

2.15 शब्दावली

वित्तीय प्रपत्र (Financial Instrument) वित्तीय प्रपत्र (Financial Instrument) वह प्रपत्र/लेख होते हैं जिनके माध्यम से पूँजी बाजार में पूँजी का प्रवाह (Flow) होता है। इन्हें मुख्यतः सरकारी प्रतिभूतियों (Government Securities) तथ निगमित प्रतिभूतियों (Cooporate Securities) में विभाजित किया जाता है।

अंश (Share) संयुक्त पूँजी कम्पनियाँ अपनी लम्बी अवधि की पूँजी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जनता तथा संस्थानों को विभिन्न विधानों के अनुसार इन प्रपत्रों का निर्गमन करती हैं। इनके द्वारा प्राप्त पूँजी (Owners Capital) के नाम से जानी जाती है।

पूँजी बाजार (Capital Market) पूँजी बाजार से तात्पर्य ऐसे बाजार से है जहाँ कम्पनियों की प्रतिभूतियों को आसानी से क्रय–विक्रय किया जा सकता है।

ऋणदाता क्षेत्र (Lendor's Sector) इस क्षेत्र में पूँजी की पूर्ति की जाती है। इस क्षेत्र की संस्थाओं तथा व्यक्तियों द्वारा दीर्घकालीन ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है।

ऋण लेने वाला क्षेत्र (Borrower's Sector) मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋणों की माँग करने वाले संस्थानों तथा व्यक्तियों को इसमें सम्मिलित किया जाता है। इस क्षेत्र के संस्थानों तथा व्यक्तियों द्वारा मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन पूँजी की माँग का निर्माण किया जाता है।

द्वितीयक बाजार (Secondary Market) गौण तथा द्वितीयक बाजार स्टॉक मार्केट का वह भाग है जिसमें पुराने अंशों तथा प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है तथा इस बाजार में प्रतिभूतियों का मूल्य बाजार की ताकतों द्वारा निर्धारित किया जाता है।

ऋणपत्र (Debentures) यह एक ऐसा वित्तीय प्रपत्र है जो उन व्यक्तियों या संस्थानों को निर्गत किया जाता है, जिनके द्वारा पूर्वनिर्धारित ब्याज तथा अन्य शर्तों पर कम्पनी या निर्गमनकर्ता को निश्चितकालीन ऋण दिया जाता है।

स्टॉक एक्सचेंज (Stock Exchange) स्टॉक एक्सचेंज एक ऐसा बाजार है जिसमें सरकारी, अर्धसरकारी, निगम तथा संयुक्त पूँजी कम्पनियों के निर्गमित प्रतिभूतियों से सम्बन्धित विभिन्न बाजार सम्मिलित होते हैं।

प्राथमिक बाजार (Primary Market) जिस बाजार में नयी परिसम्पत्तियों एवं प्रतिभूतियों को जनता तथा संस्थानों से दीर्घकालीन पूँजी की प्राप्ति के लिए निर्गमित किया जाता है उक्त बाजार को प्राथमिक बाजार कहते हैं।

2.16 बोध प्रश्न

बताइये निम्न कथन सत्य है या असत्य

1. पूंजी बाजार प्रथामिक तथा द्वितीयक बाजार के रुप मे विभाजित है।
2. स्टाक एक्सचेंज संगठित क्षेत्र का संगठन है।
3. सरकारी प्रतिभूतियो केन्द्र तथा राज्य सरकार द्वारा निर्गमित नही की जा सकती है।
4. ऋणपत्र कम्पनियो द्वारा निर्गमित किये जाने वाले प्रतिभूति का एक प्रकार है।
5. अभिगोपक सामान्यतः कमीशन पर कार्य किये जाते है।
6. सार्वजनिक कम्पनी कों पब्लिक निर्गमन के लिए विवरण जारी करना आवश्यक है।
7. वित्तीय प्रपत्र पूंजी बाजार मे पूंजी का प्रवाह बढाने मे सहायक होते है।
8. स्टाक मार्केट किसी देश या संस्था के आर्थिक पैमाने की पहचान मे मदद करता है।
9. राष्टीय शेयर बाजार की स्थापना 1990 मे हुई।
10. मल्टी कामोडिटी एक्सचेज ने अपना कारोबार सन् 2013 मे प्रारम्भ किया।

2.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर: (1) सत्य (2)सत्य (3)असत्य (4) सत्य (5) सत्य (6) सत्य (7)सत्य (8) सत्य (9) असत्य (10) सत्य

2.18 स्वपरख प्रश्न

1. पूँजी बाजार से आप क्या समझते हैं? इसका संगठन विस्तारपूर्वक समझाइये।
2. पूँजी बाजार के संगठित तथा असंगठित क्षेत्र पर प्रकाश डालिए
3. गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं से आप क्या समझते हैं? वर्णन करें।
4. वित्तीय प्रपत्र की परिभाषा देते हुए पूँजी बाजार के विभिन्न वित्तीय प्रपत्रों को समझाइये।
5. स्टॉक एक्सचेंज से आप क्या समझते हैं? स्टॉक एक्सचेंज की कार्यप्रणाली को समझाइये।
6. प्राथमिक तथा द्वितीयक बाजार में क्या अन्तर है? प्राथमिक तथा द्वितीयक बाजार के कार्यों को विस्तार पूर्वक समझाइये।
7. स्टॉक मार्केट के महत्व अथवा कार्यों पर प्रकाश डालिए।
8. भारत में प्रतिष्ठित स्टॉक एक्सचेंज के बारे में संक्षिप्त रूप से समझाइये।

2.19 सन्दर्भ पुस्तकें

- बिषनोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्ष्यिल इंस्टीट्यूषन्स
- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।

- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निषा, इंडियन फाइनैन्षियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिषिंग हाउस मुबई।
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्षियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेषन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।

इकाई–3 भारतीय बैंकिंग प्रणाली (The Indian Banking System)

इकाई की रुपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय बैंकिंग संरचना
3.2.1 अभिकर्ता गृहों की स्थापना
3.2.2 प्रसीडेन्सी बैंकों की स्थापना
3.2.3 सीमित दायित्व वाले संयुक्त बैंकों की स्थापना
3.2.4 सन् 1913–17 का बैंकिंग संकट
3.2.5 इम्पीरियल बैंक और रिजर्व बैंक की स्थापना
3.3 स्वतंत्रता के बाद भारतीय बैंकिंग की संरचना
3.3.1 रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण
3.3.2 बैंकिंग नियमन अधिनियम, 1949
3.3.3 विकास बैंकों की स्थापना
3.3.4 सार्वजनिक क्षेत्र में बैंकिंग विकास
3.3.5 बैंकों का एकीकरण
3.3.6 सहकारी बैंकों का समावेश
3.3.7 आंचलिक ग्रामीण बैंक
3.3.8 राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना
3.3.9 निर्यात–आयात बैंक की स्थापना
3.4 भारतीय बैंकिंग संरचना की वर्तमान स्थिति
3.4.1 चार्ट–1 – भारतीय बैंकिंग संरचना
3.4.2 चार्ट–2 – बैंकिंग संस्थाएॅ
3.4.3 शीर्ष बैंकिंग संस्थाएॅ
3.4.4 बैंकिंग संस्थाएॅ
3.4.4.1 व्यापारिक या वाणिज्य बैंक
3.4.4.2 सहकारी बैंक
3.4.4.3 भूमि विकास बैंक
3.4.4.4 औद्योगिक विकास बैंक
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 बोध प्रश्न
3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.9 स्वपरख प्रश्न
3.10 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय बैंकिंग संरचना की व्याख्या कर सके ।
- स्वतंत्रता से बाद भारतीय बैंकिंग संरचना की व्याख्या कर सके।
- भारतीय बैंकिंग की वर्तमान संरचना स्थिति की व्याख्या कर सके।

3.1 प्रस्तावना

ब्रिटिश शासन काल से ही आधुनिक बैंकिंग का विकास माना जाता है। अतः भारतीय बैंकिंग की संरचना एवं संगठन का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं :–

आधुनिक बैंकिंग का विकास

स्वतंत्रता से पूर्व | स्वतंत्रता के बाद | वर्तमान संरचना

(i) स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय बैंकिंग की संरचना

(ii) स्वतंत्रता के बाद भारतीय बैंकिंग की संरचना

(iii) भारतीय बैंकिंग की वर्तमान संरचना स्थिति

3.2 स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय बैंकिंग की संरचना (Structure of Indian Banking System in Pre-Independence)

3.2.1 अभिकर्ता गृहों की स्थापना (Establishment of Agency Houses)–

भारत की देशी बैंकिंग प्रणाली ईस्ट इण्डिया कम्पनी के काल में समाप्त होने लगी थी क्योंकि देशी बैंक विदेशी बैंकिंग प्रणाली से परिचित नहीं थे और उनमें ॲंग्रेजी भाषा के ज्ञान का अभाव था। साथ ही ॲंग्रेजों ने भारतीय बैंकरों की सेवाओं का लाभ उठाने के स्थान पर अभिकर्ता गृहों (Agency Houses) की स्थापना कर उनसे अपनी बैंकिंग सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति करने लगे। आधुनिक बैंकिंग प्रणाली का इतिहास वास्तव में इन्हीं अभिकर्ता गृहों की स्थापना से आरम्भ होता है। ये गृह अपने अन्य व्यवसायों के साथ–साथ जनता से निक्षेप (Deposit) स्वीकार करने का कार्य करते थे और उनकी ऋण सम्बन्धी व्यापारिक तथा औद्योगिक आवश्यकताओं को भी पूरा करते थे। इन गृहों के पास आरम्भ में कोई निजी पूँजी नहीं थी और वे कम्पनी की नौकरी द्वारा जमा की हुई धनराशि से ही व्यवसाय करते थे यद्यपि आगे चलकर इन्होनें धीरे–धीरे अपनी पूँजी प्राप्त कर ली थी। भारत में संयुक्त पूँजी बैंकिंग प्रणाली अर्थात् आधुनिक बैंकिंग प्रणाली का आरम्भ इन्हीं अभिकर्ता गृहों द्वारा हुआ। भारतीय आधुनिक बैंकिंग प्रणाली के विकास का यह पहला युग था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सन् 1813 में भारत के विदेशी व्यापार पर से एकाधिकार समाप्त हो जाने से अभिकर्ता गृहों पर काफी कुठाराघात हुआ और 1832 तक उनका पतन हो गया।

3.2.2 प्रेसीडेन्सी बैंकों की स्थापना (Establishment of Presidency Banks)–

भारत में आधुनिक बैंकिंग के विकास के दूसरे युग का आरम्भ प्रेसीडेन्सी बैंकों की स्थापना होता है। सन् 1806 से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आज्ञा–पत्र के अनुसार 'बैंक ऑफ कलकत्ता' नाम का पहला आधुनिक बैंक स्थापित किया गया। इसके पश्चात् सन् 1840 में 'बैंक ऑफ बम्बई' और सन् 1843 में 'बैंक ऑफ मद्रास' की स्थापना हुई। ये तीनों 'प्रेसीडेन्सी बैंक' ईस्ट इण्डिया कम्पनी की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने तथा आन्तरिक व्यापार का अर्थ–प्रबन्ध करने के लिए स्थापित किये गये थे। इन्हें नोट निर्गमन का अधिकार भी दिया गया था।

इस अधिकार को सन् 1862 में छीन लिया गया। कठिनाइयॉ होते हुए भी ये तीनों बैंक सन् 1920 तक सफलतापूर्वक चालू रहे। सन् 1921 में इन तीनों को मिलाकर 'इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया' स्थापित किया गया।

3.2.3 सीमित दायित्व वाले संयुक्त बैंकों की स्थापना (Establishment of Joint Stock Banks of Limited Liablility)–

आधुनिक बैंकिंग प्रणाली के तीसरे युग का प्रारम्भ 1860 से होता है जबकि संयुक्त पूॅजी वाली बैंकों के साथ सीमित दायित्व के सिद्धान्त की शुरूआत की गई। इस वर्ष यूरोपीय प्रबन्ध के अन्तर्गत अनेक बैंकों की स्थापना हुई और सन् 1874 तक सीमित उत्तरदायित्व वाले बैंकों की संख्या 14 तक पहॅुच गई। भारतीय प्रबन्ध के अन्तर्गत संचालित सबसे पहला बैंक अवध कमर्शियल बैंक था, जो सन् 1881 में स्थापित किया गया था। तत्पश्चात् और भी कई बैंक स्थापित हुए जिनमें पंजाब नेशनल बैंक (1894) भी सम्मिलित है। सन् 1905 के स्वदेशी आन्दोलन ने तो इस प्रवृत्ति को और भी प्रोत्साहन दिया। सन् 1905 और 1913 के बीच स्थापित होने वाले बड़े–बड़े बैंक निम्न थे :–

(i) बैंक आफ इण्डिया, (ii) पंजाब नेशनल बैंक, (iii) सेन्ट्रल बैंक, (iv) बैंक ऑफ बड़ौदा, (v) इलाहाबाद बैंक, (vi) दी इण्डियन बैंक, (vii) बैंक ऑफ मैसूर। इसके अतिरिक्त इस काल में बहुत छोटे–छोटे बैंक भी खाले गये जिनकी संख्या 1913 में 500 तक पहॅुच गई थी।

3.2.4 सन् 1913–17 का बैंकिंग संकट (Banking Crisis of 1913-1917)–

सन् 1905 के पश्चात् ही देश में बैंकिंग का विकास इतनी तीव्रता के साथ हुआ था कि उसमें किसी प्रकार का स्थायित्व न आ सका था। भारतीय मुद्रा बाजार की अस्थायी प्रकृति के कारण बैंकिंग संकट के लिए उपयुक्त दशाएॅ विद्यमान थी। सन् 1912–1913 में वह दिवालिया हो गया। इसका सारी बैंकिंग प्रणाली पर बुरा प्रभाव पड़ा और धीरे–धीरे एक–एक करके बहुत से बैंक दिवालिया होने लगे। सन् 1917–18 तक बैंकों के डूबने का क्रम बराबर चलता रहा। इस काल में 87 बैंक, जिनकी सामूहिक परिदत्त पूॅजी और निधि रू0 175 लाख थी, डूब गये। यह पूॅजी इस समय की कुल बैंकों की पूॅजी का 50 प्रतिशत थी।

3.2.5 इम्पीरियल बैंक और रिजर्व बैंक की स्थापना (Establishment of Imperial Bank and Reserve Bank)–

आधुनिक बैंकिंग के विकास में एक महत्वपूर्ण बात कम्पनी की शेयर पूॅजी में सहभागिता सहित बंगाल (1840), बम्बई (1840), मद्रास (1843) के प्रेसीडेन्सी बैंकों की स्थापना थी, जिन्हें 1921 में मिलाकर इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया का निर्माण किया गया। इसकी परिदत्त पूॅजी और रिजर्व उस समय रू0 9.7 करोड़ थे और इसके निक्षेपों की कुल राशि रू0 73 करोड़ थी। जब तक रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना नहीं हुई थी, इम्पीरियल बैंक सरकार के बैंक के रूप में कार्य करता था।

1930 तक बैंकिंग पर यूरोपवासियों का प्रभुत्व जम गया था और भारतीय व्यापारियों की यह आम शिकायत थी, कि ये बैंक उनके विरूद्ध भेद–भाव करते हैं। इस समस्या तथा भारतीय बैंकिंग प्रणाली की संरचना कार्य पद्धति तथा पर्याप्तता से सम्बन्धित अनेक समस्याओं पर विभिन्न प्रादेशिक बैंकिंग जॉच

समितियों (1930–31) ने विचार किया। उनके निष्कर्षो की केन्द्रीय बैंकिंग जॉच समिति द्वारा समीक्षा की गयी। इस समिति ने व्यापारिक बैंकों की कार्य–प्रणाली में सुधार करने के लिए विभिन्न सिफारिशें कीं। इन सिफारिशों को लागू करने के लिए भारतीय कम्पनी एक्ट, 1936 में आवश्यक संशोधन किये गये।

एक लम्बे समय से देश में एक केन्द्रीय बैंक की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी और इस सम्बन्ध में समय–समय पर अनेक सुझाव भी दिये जाते रहे। देश में एक ऐसी बैंक की कमी अनुभव की गयी, जो कि बैंकिंग व्यवस्था को विकसित एवं नियंत्रित कर सके। केन्द्रीय बैंकिंग जॉच समिति (1932) ने एक केन्द्रीय बैंक स्थापित करने के प्रस्ताव का समर्थन किया। 1935 में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना एक ''निजी शेयरधारियों'' के बैंक के रूप में हुई परन्तु इस बैंक को सरकार के कड़े नियन्त्रण में रखा गया। केन्द्रीय बैंक को निम्नलिखित कार्य सौपें गये : (i) नोट निर्गमन का एकाधिकार सौंपा गया (ii) इसे सरकार और बैंक या बैंक के रूप में कार्य दिया गया। (iii) यह उधार के नियन्त्रण, सार्वजनिक ऋण के प्रबन्ध, विदेशी मुद्रा रिजर्व के प्रबन्ध के लिए जिम्मेदार था। (iv) रूपये की विनिमय दर का प्रबन्ध करने की वैधानिक जिम्मेदारी इसी बैंक को सौंपी गयी। (v) रिजर्व बैंक को ही सस्ती और तीव प्रेषण सुविधाएँ प्रदान करनी थीं और इससे यह भी अपेक्षित था कि यह कृषि ऋण की आवश्यकता की ओर विशेष ध्यान देगा।

रिजर्व बैंक की स्थापना के साथ भारतीय बैंक व्यवस्था वयस्क हो गई थी, परन्तु इसमें तब भी कई महत्वपूर्ण दोष थे, जैसेः (i) अत्यधिक नगरीय उन्मुखता, (ii) कृषि और ग्रामीण क्षेत्रों की उपेक्षा, (iii) अपर्याप्त क्षेत्र, (iv) यूरोपीय विनिमय बैंकों का विदेशी मुद्रा व्यवसाय पर प्रभुत्व, (v) दीर्घकालीन ऋण देने वाली संस्थाओं का अभाव।

इन कमियों के बावजूद भी भारतीय बैंक व्यवस्था निश्चित रूप से सुदृढ़ हो रही थी, वस्तुतः औपनिवेशिक संसार में यह सबसे अधिक विकसित संस्थाओं में से एक थी। इस प्रकार बैंकिंग प्रणाली जो स्वयं भी भारत में बाजार अर्थव्यवस्था के विकास का परिणाम थी, ने इसके आगे के विकास को और अधिक बल प्रदान किया।

3.3 स्वतंत्रता से बाद भारतीय बैंकिंग की संरचना (Structure of Indian Banking System in Post-Independence)

स्वतंत्रता के बाद भारतीय बैंकिंग प्रणाली में अनेक संरचनात्मक एवं संगठनात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। देश में नियोजित विकास के सन्दर्भ में भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने अनेक महत्वपूर्ण प्रयास किये, ताकि देश के आर्थिक विकास में बैंकिंग संस्थाएँ अधिकाधिक योगदान प्रदान कर सके। उस समय देश में एक ऐसी बैंकिंग व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव की गयी, जो कि देश की बैंकिंग प्रणाली को विकसित एवं नियंत्रित कर सके। इस सन्दर्भ में किये गये उपायों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं:

3.3.1 रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation of Reserve Bank)–

1 जनवरी, 1949 को रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया, ताकि रिजर्व बैंक देश के आर्थिक विकास में अधिकाधिक योगदान कर सके।

3.3.2 बैंकिंग नियमन अधिनियम, 1949 (Banking Regulation Act, 1949)–

स्वतंत्रता से पूर्व देश में कोई बैंकिंग विधान नहीं था, फलतः बैंकिंग व्यवस्था में अनेक दोष उत्पन्न हो गये। अतः इन दोषों को दूर करने हेतु भारतीय बैंकिंग (नियमन) अधिनियम, 1949 पारित किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत रिजर्व बैंक को बैंकिंग संस्थाओं के नियंत्रण हेतु विस्तृत अधिकार प्रदान किये गये।

3.3.3 विकास बैंकों की स्थापना (Establishment of Development Banks)–

औद्योगिक वित्त सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक विकास बैंकों (Development Banks) की स्थापना की गई। इन्हें सावधि ऋणदात्री संस्थाएँ (Term Lending Institution) भी कहा जाता है। ऐसी कुछ प्रमुख संस्थाएँ, जैसे– (i) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation of India), (ii) भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम (The Industrial Credit and Investment Corporation of India Ltd.), (iii) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Banks of India) (iv) राज्य वित्त निगम (State Financial Corporation) आदि हैं। इन विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य उद्योगों को मध्यम एवं दीर्घकालीन अवधि के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना है।

3.3.4 सार्वजनिक क्षेत्र में बैंकिंग विकास (Banking Development in Public Sector)–

(i) अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति (All India Rural Credit Survey Committee) के प्रतिवेदन (1954) में प्रस्तुत सुझावों के आधार पर इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण करके भारतीय स्टेट बैंक (State Bank of India) की स्थापना 1 जुलाई, 1955 में की गई।

(ii) सन् 1959 में स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया (सहायक) अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत भूतपूर्व विदेशी रिसायती 8 बैंकों को भारतीय बैंक के सहायक बैंक (Subsidiaries Bank) बना दिये गये।

सन् 1963 में स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एवं स्टेट बैंक ऑफ जयपुर का एकीकरण करके 'स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एवं जयपुर' की स्थापना की गई। अतः अब स्टेट बैंक की सहायक बैंकों की कुल संख्या 7 है।

3.3.5 बैंकों का एकीकरण (Amalgamation of Banks)–

स्वतंत्रता के पूर्व अनेक छोटे–छोटे बैंक कार्यरत थे, जो आपस में अस्वस्थ प्रतियोगिता करते थे, जो कि देश में बैंकिंग विकास के प्रतिकूल था। अतः 1950 से देश में बैंकों का विलीनीकरण प्रारम्भ हुआ। इस प्रक्रिया के प्रथम चरण में बैंकिंग कारपोरेशन बैंक, यूनियन बैंक, हुगली बैंक, दी बंगाल सेन्टर बैंक का 1950 में विलीनीकरण करके, एक नये बैंक दी यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना

की गई। इसी प्रकार आगे भी बैंकों का विलीनीकरण किया गया, परन्तु इस कार्यक्रम की गति बहुत धीमी थी। अतः 1960 में रिजर्व बैंक की विलीनीकरण की योजना बनाकर उसे क्रियान्वित करने का अधिकार दिया गया।

3.3.6 सहकारी बैंकों का समावेश (Incorporation of Co-operative Banks)–

भारतीय बैंकिंग प्रणाली में सहकारी बैंकों का समावेश सन् 1954 में अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति की सिफारिशों के आधार पर किया गया। इस प्रकार त्रिस्तरीय सहकारी बैंकिंग संरचना तथा द्विस्तरीय दीर्घकालीन साख व्यवस्था के अन्तर्गत भूमि विकास बैंक स्थापित किये गये।

3.3.7 आंचलिक ग्रामीण बैंक (Regional Rural Bank)–

भारतीय बैंकिंग प्रणाली में एक नया मोड़ सन् 1975 में दिखाई दिया जब सुदूर आंचलिक क्षेत्रों में साख सुविधाएँ पहुँचाने हेतु व्यापारिक बैंकों द्वारा प्रायोजित क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई। यह क्षेत्रीय बैंक ग्रामीण परिवेश में कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्रों की साख आवश्यकताएँ पूरी करने हेतु स्थापित किये गये।

3.3.8 राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना (Establishment of NABARD)–

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि एवं ग्रामीण विकास के महत्व को देखते हुए सन् 1982 में राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक के रूप में (नाबार्ड) स्थापित की गयी। इस बैंक की स्थापना का उद्देश्य कृषि एवं ग्रामीण विकास हेतु साख का नियमन करना तथा शोध एवं अनुसंधान के माध्यम से ग्रामीण विकास के लक्ष्य प्राप्त करना है। यह संस्था ग्रामीण साख प्रदान करने वाली संस्थाओं को पुनर्वित की सुविधा भी प्रदान करता है।

3.3.9 निर्यात–आयात बैंक की स्थापना (Establishment of EXIM Bank)–

इसी प्रकार निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन देने हेतु तथा एक ही छत के नीचे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार हेतु साख सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए 1982 में निर्यात–आयात बैंक की स्थापना की गई।

3.4 भारतीय बैंकिंग संरचना की वर्तमान स्थिति (Present Banking Structure of India)

बैंकिंग संरचना के संक्षिप्त इतिहास के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि भारतीय बैंकिंग प्रणाली में देश के आर्थिक विकास के साथ–साथ परिवर्तन भी होता रहा है। जहाँ देशी बैंकिंग प्रणाली से देश में बैंकिंग कार्य का प्रादुर्भाव हुआ, वहीं आज उच्च तकनीक युक्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की बैंकिंग प्रणाली स्थापित हो चुकी है। आज बैंकिंग प्रणाली के अन्तर्गत हाईटेक (High-tech) बैंकिंग का विकास हो चुका है। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप देश की बैंकिंग संरचना के कई रूप विकसित हुए हैं जिसे संक्षेप में नीचे चार्टो द्वारा दर्शाया गया है :–

3.4.1 चार्ट–1

भारतीय बैंकिंग संरचना

(Indian Banking Structure)

1. शीर्षक बैंकिंग संस्थाऍ

(Apex Banking Institutions)

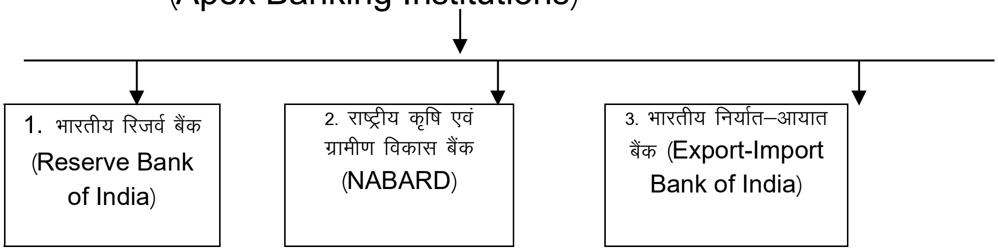

3.4.2 चार्ट–2

बैंकिंग संस्थाऍ

(Banking Institutions)

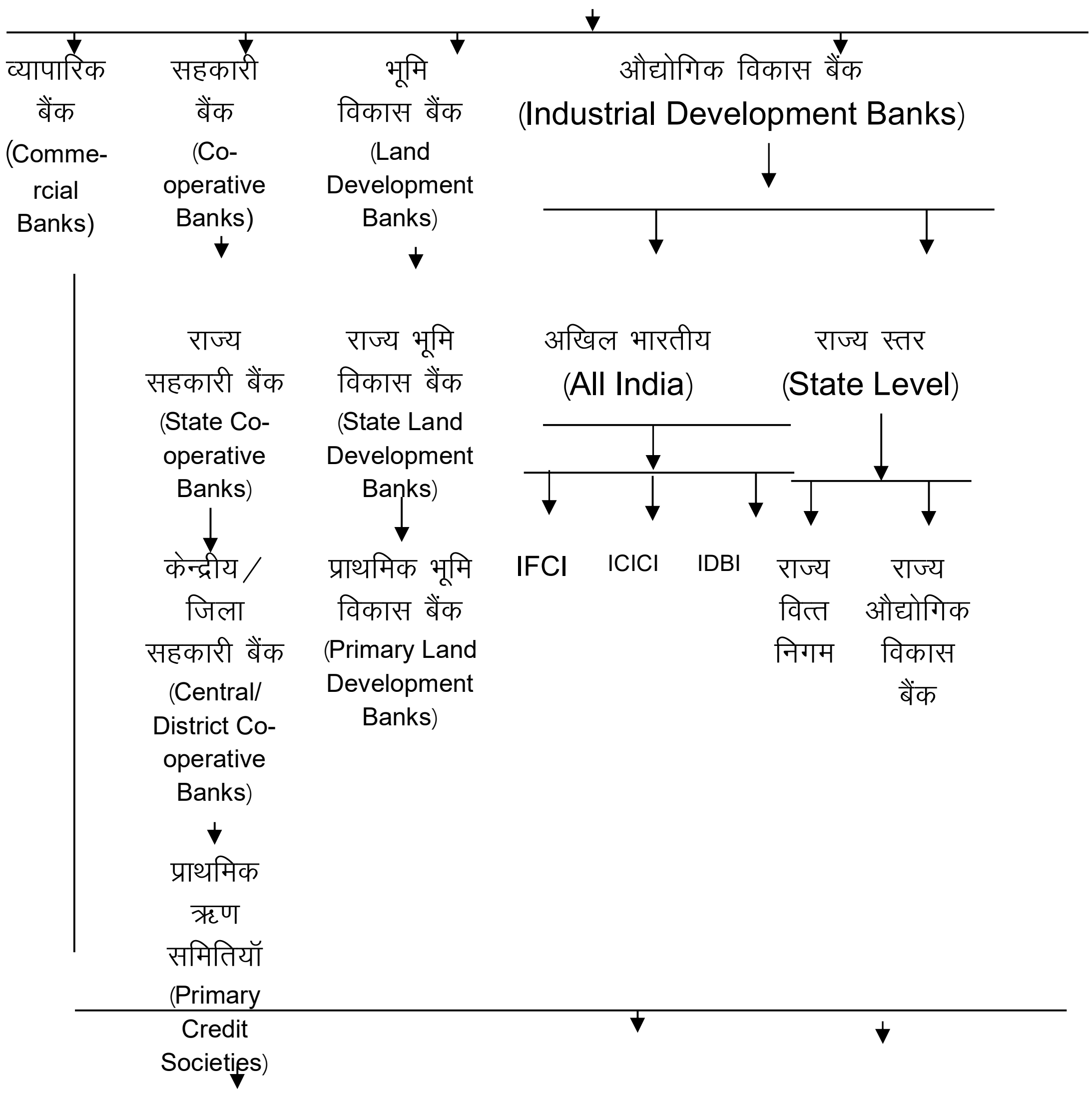

1. सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक (Public Sector Banks)
   - (a) स्टेट बैंक ग्रुप (State Bank Group)
     - भारतीय स्टेट बैंक (State Bank of India)
     - सहायक बैंक (Subsidiary Banks)
   - (b) अन्य राष्ट्रीयकृत बैंक (Other Nationalised Banks)
2. निजी क्षेत्र के बैंक (Private Sector Banks)
   - परम्परागत बैंक
   - नवीन बैंक
3. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (RRB)

3.4.3 **शीर्ष बैंकिंग संस्थाएँ** (Apex Banking Institutions)

शीर्ष बैंकिंग संस्थाओं में निम्न को सम्मिलित करते हैं :

शीर्ष बैंकिंग संस्थाएँ
- रिजर्व बैंक
- राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक
- निर्यात–आयात बैंक

3.4.3 (A) **रिजर्व बैंक** ऑफ इण्डिया देश का सर्वोच्च मौद्रिक एवं बैंकिंग प्राधिकार (Monetary and Banking Authority) है और देश की बैंक प्रणाली को नियन्त्रित करने का दायित्व इसी पर रहता है। सभी वाणिज्य बैंक अपने आरक्षण (Reserves) रिजर्व बैंक के पास रखते हैं, इसलिए इसे **रिजर्व बैंक या बैंकों का बैंक** कहते हैं।

3.4.3 (B) **राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक** (National Bank for Agricultural and Rural Development- NABARD)–

12 जुलाई, 1982 को कृषि तथा ग्रामीण विकास हेतु ऋण प्रदान करने के उद्देश्य से रिजर्व बैंक के 'कृषि साख विभाग' तथा 'कृषि पुनर्वित्त एवं विकास निगम' को मिलाकर इस बैंक की स्थापना की गई। यह बैंक कृषि तथा गैर–कृषि गतिविधियों, जैसे– हथकरघा, दस्तकारी आदि के लिए प्रदान की जाने वाली अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साख का अनुरक्षण एवं समन्वय करने का कार्य करता है। साथ ही सहकारी संस्थाओं तथा व्यापारिक बैंकों को कृषि एवं ग्रामीण विकास हेतु दिये गये ऋणों का पुनर्वित्तीयन भी करता है।

3.4.3 (C) **निर्यात–आयात बैंक** (Export-Import Bank)–

निर्यात–आयात को बढ़ावा देने के उद्देश्य से कई राष्ट्र अपने देश में निर्यात–आयात बैंक की स्थापना करते हैं। ये बैंक आयात के लिए दीर्घकालीन ऋण की सुविधाएँ प्रदान करते हैं। इनके महत्व को देखते हुए भारत में भी सन्

1982 में निर्यात–आयात बैंक की स्थापना की गई है। यह बैंक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार हेतु देश में उच्च स्तरीय संस्था के रूप में कार्यरत हैं।

3.4.4 बैंकिंग संस्थाऍ (Banking Institutions)–

भारतीय बैंकिंग संरचना की प्रमुख बैंकिंग संस्थाऍ निम्नलिखित हैं:

बैंकिंग संस्थाऍ

वाणिज्यिक बैंक | सहकारी बैंक | भूमि विकास बैंक | औद्योगिक विकास बैंक

3.4.4.1 व्यापारिक या वाणिज्य बैंक (Commercial Bank)–

संगठित क्षेत्र की बैंकिंग संस्थाओं में सबसे अधिक पुरानी संस्था वाणिज्य बैंकों की है। जिनकी शाखाओं का जाल देश भर में बड़े व्यापक रूप में बिछा हुआ है तथा इन्हें जनता का सबसे अधिक विश्वास प्राप्त है और इन बैंकों का कुल बैंकिंग काम–काज में सबसे बड़ा हिस्सा है।

भारतीय वाणिज्य बैंकिंग प्रणाली की संरचना को निम्नलिखित भागों में बॉटा जा सकता है :–

3.4.4.1(a) सार्वजनिक क्षेत्र के वाणिज्य बैंक (Commercial Banks of Public Sector)–

1969 के पश्चात् वाणिज्य बैंकों को राष्ट्रीयकृत या सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों और निजी क्षेत्र के बैंकों में वर्गीकृत किया जाता है। भारतीय बैंकिंग का सार्वजनिक क्षेत्र अपनी वर्तमान स्थिति तक पहॅुचने के लिए तीन प्रक्रमों से गुजरा है:– पहला, सन् 1955 में तत्कालीन इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया को भारतीय स्टेट बैंक (State Bank of India) में परिवर्तित किया जाना और तदुपरान्त उसके सात सहायकों बैंकों (Subsidiary Banks) की स्थापना, दूसरा, 19 जुलाई, 1969 को 14 प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया जाना और तीसरा, 15 अप्रैल, 1980 को 6 अतिरिक्त वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया जाना। बाद में सार्वजनिक क्षेत्र के एक बैंक का एक अन्य बैंक में विलय हो गया।

अतः स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, उसके सहायक बैंक और 20 अन्य राष्ट्रीयकृत क्षेत्र के बैंक सम्मिलित रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक कहलाते हैं।

स्टेट बैंक तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों में अन्तर (Difference between State Bank and Nationalised Banks)–

1. यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र के सभी 27 बैंक निगमित निकाय (Corporate Bodies) है परन्तु वे पृथक–पृथक अधिनियमों के अन्तर्गत स्थापित किये गये हैं।

   भारतीय स्टेट बैंक की स्थापना भारतीय स्टेट बैंक अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत, सहायक बैंकों की स्थापना भारतीय स्टेट बैंक (सहायक बैंक) अधिनियम, 1959 के अन्तर्गत और राष्ट्रीयकृत बैंकों की स्थापना बैंकिंग कम्पनियॉ (उपक्रमों का अर्जन तथा अन्तरण) अधिनियम, 1970 तथा 1980 (The Banking Companies (Acquisition and Transfer of

Undertakings) Act, 1970 and 1980) के अन्तर्गत हुई है। अतः ये बैंक सम्बन्धित अधिनियम द्वारा शासित होते हैं।

2. भारतीय स्टेट बैंक भारतीय रिजर्व बैंक के एजेण्ट के रूप में कार्य करता है परन्तु राष्ट्रीयकृत बैंकों को रिजर्व बैंक के एजेण्ट के रूप में कार्य करने का विशेषाधिकार प्रदान नहीं किया गया है।
3. प्रारम्भ में सभी 20 राष्ट्रीयकृत बैंक शत–प्रतिशत भारत सरकार के स्वामित्व में थे जबकि भारतीय स्टेट बैंक की पूँजी का अधिकांश भाग भारतीय रिजर्व बैंक के स्वामित्व में था, केवल कुछ भाग ही निजी अंशधारियों के स्वामित्व में था। सहायक बैंकों का स्वामित्व भारतीय स्टेट बैंक को प्राप्त है।

3.4.4.1(b) निजी क्षेत्र के वाणिज्य बैंक (Commercial Banks of Private Sector)–

निजी क्षेत्र के बैंकों में थोड़े से भारतीय अनुसूचित बैंक जिनका राष्ट्रीयकरण नहीं किया गया था और भारत में कार्य करने वाले कुछ विदेशी बैंक हैं जो अधिकांशतः विदेशी मुद्रा बैंक (Foreign Exchange Bank) भी कहे जाते हैं।

भारत में वाणिज्य बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् कोई नया बैंक स्थापित नहीं हो सका यद्यपि इस सम्बन्ध में कोई प्रतिबन्ध लागू नहीं था। वित्तीय क्षेत्र में सुधारों पर स्थापित नरसिंहम् समिति ने भारत में नये बैंकों की स्थापना की सिफारिश की थी। फलतः RBI ने जनवरी 1993 निजी क्षेत्र में नये बैंकों की स्थापना करने हेतु मार्गदर्शी सिद्धान्त जारी किये जो निम्नलिखित हैंः (i) यह बैंक एक पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के रूप में पंजीकृत हो, (ii) न्यूनतम प्रदत्त पूँजी रू0 100 करोड़ हो, (iii) इसके शेयर स्टाक एक्सचेंज में सूचीबद्ध हो, (iv) इस बैंक का मुख्यालय यदि हो सके तो एक ऐसे नगर में हो जहॉ और किसी बैंक का मुख्यालय न हो, (v) बैंक का काम–काज, हिसाब–किताब या लेखा तथा अन्य नीतियॉ भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित विवेकपूर्ण मानकों के अनुरूप हों। इसे प्रारम्भ से ही आठ प्रतिशत पूँजी पर्याप्तता प्राप्त करनी होगी। निजी क्षेत्र में नये बैंक खोलने के लिए जनवरी 2001 में संशोधित दिशा–निर्देश जारी किये गये जिनकी मुख्य बाते हैं (क) नये बैंक की प्रारम्भिक न्यूनतम प्रदत्त पूँजी रू0 200 करोड़ होनी चाहिए। कारोबार शुरू करने के बाद तीन वर्षो के अन्दर प्रारम्भिक पूँजी बढ़कर रू0 300 करोड़ हो जानी चाहिए, (ख) नए बैंक की स्थापना करने वालों की हिस्सेदारी बैंक की प्रदत्त पूँजी में हर समय कम से कम 40 प्रतिशत बनी रहेगी, (ग) नये बैंक की मूल हिस्सा पूँजी में अनिवासी भारतीयों की अधिकतम पूँजी 40 प्रतिशत तक होगी, (घ) नये बैंक की स्थापना किसी बड़े औद्योगिक घराने द्वारा नहीं की जायेगी।

नये बैंक को स्थापित करने वालों के व्यापारिक काम–काज से तथा नये बैंक की हिस्सा पूँजी में 10 प्रतिशत तक पूँजी लगाने वाली व्यक्तिगत कम्पनियों के व्यापारिक लेन–देन से नया बैंक दूर रहेगा। नये बैंकों को 10 प्रतिशत तक की पूँजी पर्याप्तता बनाए रखना होगी तथा उन्हें अपने कुल बैंक उधार का 40 प्रतिशत भाग प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को देना होगा। बैंकिंग का काम न करने वाली वित्तीय

कम्पनियों को परिगणित बैंकों में बदलने के बारे में भी दिशा–निर्देश जारी किए गए।

3.4.4(c)क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Banks)–

1970–80 के दशक के मध्य में ये बैंक अस्तित्व में आये और इनका विशिष्ट उद्देश्य छोटे तथा सीमान्त किसानों, कृषि मजदूरों, दस्तकारों एवं छोटे उद्यमकर्ताओं को उधार एवं जमा की सुविधाएँ उपलब्ध कराना था। इन बैंकों का यह भी दायित्व है कि वे कृषि–व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग का ग्रामीण क्षेत्रों में विकास करें। क्षेत्रीय ग्राम बैंक अनिवार्यतः वाणिज्य बैंक हैं और उनका कार्य–क्षेत्र एक जिले तक सीमित रहता है।

3.4.4.2 सहकारी बैंक (Co-operative Banks)–

इनका गठन तीनों स्तरों (Three-tier Set-up) वाला है। राज्य सहकारी बैंक सम्बन्धित राज्य की शीर्ष संस्था होती है और केन्द्रीय या जिला सहकारी बैंक जिला स्तर पर तथा प्राथमिक ऋण समितियाँ (Primary Credit Societies) ग्राम स्तर पर कार्य करती है। रिजर्व बैंक द्वारा कृषि क्षेत्र के विकास के लिए उपलब्ध करायी गयी राशि राज्य सहकारी बैंकों और केन्द्रीय सहकारी बैंकों के माध्यम से प्राथमिक सहकारी समितियों को प्राप्त होती है।

3.4.4.3 भूमि विकास बैंक (Land Development Bank)–

ये सहकारी, अर्द्ध–सहकारी या गैर–सहकारी संस्थाएँ हैं जो भूमि को बन्धक रखकर भूमि पर स्थायी सुधार करने के लिए दीर्घकालीन ऋण प्रदान करती हैं। भारत में भूमि विकास बैंकों की द्विस्तरीय संरचना पाई जाती है। राज्य स्तर पर राज्य भूमि विकास बैंक तथा ग्रामीण स्तर पर प्राथमिक भूमि विकास बैंक की अधिकांश पूँजी अंशों तथा ऋण–पत्रों से प्राप्त होती है। यह ऋण दीर्घकाल के लिए बहुत कम ब्याज दर पर प्रदान किये जाते हैं।

3.4.4.4 औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank)–

विकास बैंक ऐसी विशिष्ट संस्थाएँ होती हैं जो उद्योग एवं आधारभूत ढाँचें के विकास के लिए न केवल दीर्घकालीन एवं आसान शर्तों पर ऋण उपलब्ध करवाती है बल्कि प्रबन्धकीय, तकनीकी, विपणन आदि कार्यो के लिए सुविधा एवं सलाह भी प्रदान करती है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् अनेक विकास बैंकों की स्थापना की गई है। भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (1948), भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम (1955), भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक पूर्व नाम भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक (1985) आदि राष्ट्र स्तर पर राज्य वित्त निगम एवं राज्य औद्योगिक विकास निगम राज्य स्तर पर कार्य कर रहे हैं।

3.5 सारांश

स्वतंत्रता के पूर्व तथा स्वतंत्रता के बाद भारतीय बैंकिंग प्रणाली विकास के विभिन्न चरणों से गुजरी है। स्वतंत्रता के पूर्व अभिकर्ता गृहों की स्थापना, भारतीय आधुनिक बैंकिंग प्रणाली के विकास का पहला युग था। भारत में आधुनिक बैंकिंग के विकास के दूसरे युग का आरम्भ प्रेसीडेन्सी बैंकों की स्थापना से होता है। आधुनिक बैंकिंग प्रणाली के तीसरे युग का प्रारम्भ 1860 से होता है जबकि संयुक्त पूँजी वाले बैंकों के साथ सीमित दायित्व के सिद्धान्त की शुरूआत की गई। सन् 1905 से 1913 बीच (i) बैंक आफ इण्डिया (ii) पंजाब नेशनल बैंक (iii) सेन्ट्रल

बैंक (iv) बैंक आफ बड़ौदा (v) इलाहाबाद बैंक (vi) दी इण्डियन बैंक (vii) बैंक आफ मैसूर जैसे बड़े–बड़े बैंक इसके अतिरिक्त इस काल में बहुत छोटे बैंक भी खोले गये, जिनकी संख्या 1913 में 500 तक पहुँच गयी थी। आधुनिक बैंकिंग के विकास में एक महत्वपूर्ण बात कम्पनी की शेयर पूँजी में सहभागिता सहित बंगाल (1840), बम्बई (1840), मद्रास (1843) के प्रेसीडेन्सी बैंकों की स्थापना थी, जिन्हें 1921 में मिलाकर इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया का निर्माण किया गया। 1935 में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गयी। रिजर्व बैंक की स्थापना के साथ भारतीय बैंक वयस्क हो गई थी। स्वतंत्रता के बाद पहला चरण 1969 में 14 बैंकों के राष्ट्रीयकरण तक चला, जिस दौरान भारतीय बैंकों ने पारम्परिक बैंकिंग के अतिरिक्त थोड़ा बहुत नवीन कार्य किया। जुलाई, 1969 से शुरू होने वाले दूसरे चरण के दौरान बैंकिंग प्रणाली के बहुमुखी विस्तार पर जोर दिया गया, जिसमें एक ओर शाखाओं/जमाराशियों तथा ऋणों का विस्तार तथा दूसरी ओर सामाजिक बैंकिंग के काम को हाथ में लिया गया। यह चरण आज भी जारी है। साथ ही साथ बैंकिंग का तीसरा चरण प्रारम्भ हो गया, जिसमें मर्चेंट बैंकिंग, लीजिंग, म्यूचुअल फण्ड, वेन्चर कैपिटल, फैक्ट्रिंग, आवास वित्त, जमा बीमा आदि आते हैं।

3.6 शब्दावली

संरचना	–	संरचना का अर्थ ढ़ाचा है।
अभिकर्ता	–	अभिकर्ता का अर्थ एजेन्ट से है।
औपनिवेशिक	–	औपनिवेशिक का अर्थ अधीनस्थ से है।
सावधि	–	सावधि का अर्थ निश्चित अवधि से है।
प्रतिवेदन	–	प्रतिवेदन का अर्थ रिपोर्ट से है।
एकीकरण	–	एकीकरण का अर्थ एक में मिला देने से है।
आयात	–	आयात का अर्थ, विदेशों से माल खरीदना है।
निर्यात	–	निर्यात का अर्थ, विदेशों को माल बेचना है।
शीर्ष	–	शीर्ष का अर्थ उच्च से है।
रिजर्व बैंक	–	सभी वाणिज्य बैंक अपने आरक्षण (Reserve) रिजर्व बैंक के पास रखते हैं इसलिए इसे रिजर्व बैंक या बैंकों का बैंक कहते हैं।

3.7 बोध प्रश्न

वस्तु निष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)–

1. इम्पीरियल बैंक की स्थापना कितने प्रेसीडेंसी बैंकों को मिलाकर की गईः

   अ. 1 ब. 2

   स. 3 द. 4

2. रिजर्व बैंक की स्थापना कब की गई :

   अ. 1935 ब. 1938

   स. 1940 द. 1947

3. किस बैंक का राष्ट्रीयकरण करके भारतीय स्टेट बैंक का निर्माण किया गया :

अ. बैंक ऑफ बड़ौदा ब. द इण्डियन बैंक
स. इम्पीरियल बैंक द. उपर्युक्त में से कोई नहीं

4. निम्नलिखित में से कौन शीर्ष बैंकिंग संस्था नहीं है :
अ. रिजर्व बैंक ब. नाबार्ड
स. निर्यात–आयात बैंक द. स्टेट बैंक

5. बैंक द्वारा वित्त राशि प्राप्त करने का मुख्य साधन है –
अ. अंश पूँजी ब. जमा धन
स. ऋण पूँजी द. उपर्युक्त सभी

6. सबसे अधिक दर से ब्याज दी जाती है –
अ. बचत खाते पर ब. चालू खाते पर
स. सावधि खाते पर द. उपर्युक्त में से किसी पर नहीं

7. निम्नलिखित में से कौन–सा बैंक के कोष का स्रोत नहीं है –
अ. अंश पूँजी ब. निक्षेप
स. ऋण द. अधिविकर्ष

8. वर्तमान में बचत खाते पर ब्याज दर है–
अ. 3.5 प्रतिशत प्रति वर्ष ब. 8 प्रतिशत प्रति वष
स. 4.5प्रतिशत प्रति वष द. उपर्युक्त में से कोई नहीं

9. बैंक द्वारा ब्याज नहीं दिया जाता है–
अ. बचत खाता पर ब. स्थायी जमा खाता पर
स. चालू खाता पर द. आवर्ती जमा खाते पर

10. बैंक के कोषों का स्रोत है –
अ. अंश पूँजी ब. संचय कोष
स. जमाएँ द. उपर्युक्त में से सभी

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. स	2. अ	3. स	4. द	5. अ
6. स	7. द	8. अ	9. स	10. द

3.9 स्वपरख प्रश्न

1. <u>दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)</u>–

1. भारतीय बैंकिंग संरचना के विभिन्न अंगों की विवेचना कीजिए।
Describe in detail main components of Indian Banking Structure.
2. भारतीय बैंकिंग संरचना के विकास पर एक निबन्ध लिखिए।
Write an essay on Development of Banking structure in India.
3. भारत में शीर्ष बैंकिंग संस्थाओं का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।
Discuss in short the Apex Banking Institutions in India.
4. बैंकिंग व्यवसाय के संगठन का वर्णन कीजिए।
Mention the organisation of Banking Business.

2. <u>लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)</u>–

1. अभिकर्ता गृहों का भारतीय बैंकिंग प्रणाली में क्या महत्व है?
2. रेजीडेंसी बैंकों की स्थापना कब हुई?
3. इम्पीरियल बैंक और रिजर्व बैंक की स्थापना कैसे हुई?
4. स्वतंत्रता के बाद भारतीय बैंकिंग संरचना के मुख्य संगठक कौन–से हैं?
5. सार्वजनिक क्षेत्र में बैंकिंग विकास पर टिप्पणी लिखिए?
6. भारत में शीर्ष बैंकिंग संस्थाएँ कौन–सी हैं?
7. भारतीय व्यापारिक बैंकों को कितने भागों में बॉटा जा सकता है?
8. वर्तमान भारतीय बैंकिंग संरचना को चार्ट द्वारा प्रदर्शित कीजिए?
9. बैंक किन स्रोतों से पूँजी प्राप्त करते हैं?

3.10 सन्दर्भ पुस्तकें

1. मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित्त (तृतीय संस्करण) – एम0एल0 झिंगन
2. मुद्रा एवं बैंकिंग – शर्मा एवं शर्मा
3. अर्थशास्त्र – डा0 जी0सी0 सिंघई, डा0 जे0पी0 मिश्रा, डा0 के0एल0 गुप्ता
4. मुद्रा एवं वित्तीय प्रणालियॉं– डा0 सिन्हा एवं वार्ष्णेय
5. अर्थशास्त्र – डा0 के0पी0 जैन

इकाई–4 भारत में बैंकिंग क्षेत्र में नवीन या वर्तमान सुधार (Recent Reforms in Banking Sector in India)

इकाई की रुपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 भारतीय बैंकिंग प्रणाली के दोष

4.3 कार्य में सुधार के सुझाव : नरसिम्हम समिति की रिपोर्ट

4.4 बैंकिंग क्षेत्र में हुए नवीन या वर्तमान सुधार

4.5 नवीन या प्रवर्तक बैंकिंग

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 बोध प्रश्न

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.10 स्वपरख प्रश्न

4.11 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- भारतीय बैंकिंग प्रणाली के दोष बता सकें ।
- कार्य में सुधार के सुझाव व नरसिम्हम समिति का वर्णन कर सकें ।
- बैंकिंग क्षेत्र में हुए नवीन या वर्तमान सुधार का वर्णन कर सकें ।
- नवीन या प्रवर्तक बैंकिंग के बारे में अवगत हो सके।

4.1 प्रस्तावना

1969 में 14 वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण से लेकर भारतीय बैंकों ने जमा राशियों के संग्रहण तथा शाखा विस्तार के क्षेत्र में बहुत तरक्की की है। सभी वाणिज्यिक बैंकों की कुल शाखाओं की जमा राशियॉ जून, 1969 में 4,646 करोड़ रू0 थी, जो मार्च, 1998 में 6,05,410 करोड़ रू0 हो गई। इसी अवधि में बैंकों की कुल शाखाओं की संख्या 8,262 से बढ़कर 63,788 हो गई। 1988 में इनमें से 51 प्रतिशत शाखाऍ ग्रामीण क्षेत्रों में थी, जबकि 1969 में इनकी संख्या 25 प्रतिशत थी। सामान्य बैंकिंग सेवाओं के साथ–साथ भारतीय बैंकों ने नवीन बैंकिंग शुरू की, जिससे विभिन्न दिशाओं में नई गतिविधियॉ आरम्भ हुई।

इसके बावजूद, बैंक विश्वसनीय, कुशल एवं कम–लागत वाली सेवाऍ प्रदान करने में असमर्थ रहे हैं। बैंकों की उत्पादकता तथा लाभप्रदता दोनों घटी हैं। विशेषकर सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक तो राजकोष पर बोझ बन गये हैं। भारतीय बैंकिंग प्रणाली में सुधार के लिए नरसिम्हम समिति ने बहुत से सुझाव दिये। परन्तु इनके सुझाव` बहुत कम लागू किये गये हैं।

4.2 भारतीय बैंकिंग प्रणाली के दोष (Defects of Indian Banking System)

पिछले दो दशकों में भारतीय वाणिज्यिक बैंकों द्वारा प्राप्त अभूतपूर्व प्रगति के बावजूद उन्हें बहुत–सी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जो निम्न प्रकार हैः–

1. निम्न लाभप्रदता (Low Profitability)–

भारत में बैंकों की लाभप्रदता बहुत कम है। ऋण परिचालन में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा अनियमितताओं, दुरूपयोग, धोखाधड़ी, बढ़ती परिचालन लागत आदि के कारण लाभप्रदता में कमी आई है। 1992–93 तथा 1993–94 के दौरान अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों को क्रमशः 4150 करोड़ रू0 तथा 3625 करोड़ रू0 का घाटा हुआ। परन्तु 1997–98 में उन्होनें 6,499 करोड़ रू0 का शुद्ध लाभ कमाया। सभी 21 बैंकों का शुद्ध लाभ मार्च 2018 में 473.72 करोड़ रूपये था, जबकि पिछले वर्ष (2017) में 5158.14 करोड़ रूपये था।

2. अनर्जक परिसम्पत्तियॉ में वृद्धि (Growing Non-performing Assets)–

भारतीय वाणिज्यिक बैंकों की अनर्जक परिसम्पत्तियों में तेजी से वृद्धि हो रही है। जिनमें (i) वापस लिया गया ऋण, (ii) मुकदमा–दायर खाते अर्थात् जहॉ कानूनी कार्यवाही या वसूली की कार्यवाही आरम्भ कर दी गयी हो, (iii) डिगरी (decree) वाले ऋण अर्थात् जहॉ मुकदमा दायर करने के बाद कुड़की के आदेश ले लिए गये हो, (iv) अशोध्य (bad) एवं संदिग्ध ऋण आदि आते हैं। मार्च, 1998 की समाप्ति पर सार्वजनिक बैंकों की बकाया ऋण राशि का 16 प्रतिशत अनर्जक परिसम्पत्तियों के रूप में था। भारतीय बैंकों का कुल NPAs 31 मार्च 2018 को 10.25 लाख करोड़ रूपये था।

3. निम्न पूॅजी पर्याप्तता अनुपात (Low Capital Adequacy Ratio)–

भारतीय बैंकों का पूॅजी आधार बहुत कम और एक जैसा नहीं है। मार्च, 1993 तक भारतीय बैंकों के लिए पर्याप्त पूॅजी के मापदण्ड के रूप में कोई जोखिम परिसम्पत्ति अनुपात (Capital to risk weighted assets ratio) की व्यवस्था नहीं था। इसके पश्चात् प्रत्येक बैंक के लिए 8 प्रतिशत का पूॅजी पर्याप्तता अनुपात निश्चित किया गया। अधिकतर सार्वजनिक बैंकों का यह अनुपात कम था, जिसे 8 प्रतिशत तक लाने के लिए सरकार प्रतिवर्ष ऐसे बैंकों को पूॅजी प्रदान करती है। साथ ही बैंक अपने शेयर, मार्केट में बेच कर अतिरिक्त पूॅजी प्राप्त करते हैं, ताकि इस अनुपात तक पहॅुच सके। 1996–97 में 2 सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का पूॅजी पर्याप्तता अनुपात 4 प्रतिशत से कम था, और 1997–98 में एक बैंक का। इसी प्रकार, निजी क्षेत्र के 4 पुराने बैंकों का यह अनुपात 1996–97 और 1997–98 में 8 प्रतिशत से कम था।

4. तुलन पत्रों का बाह्य अलंकरण (Window-dressing of Balance Sheets)–

बैंकों की अनिवार्य लेखा परीक्षा के बावजूद, बैंक अपने तुलन–पत्रों का बाह्य अलंकरण अर्थात् ऊपरी दिखावट करते हैं। वे वित्तीय वर्ष के अन्तिम सप्ताह में अपनी जमा राशि में कृत्रिम वृद्धि कर देते हैं।

5. ऋण देने में पक्षपात (Favouritism in Advancing Loans)–

कुछ बैंक, ऋण देने के मामले में कुछ खास कम्पनियों के पक्ष में रहते हैं। यह केवल सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में ही नहीं हो रहा है। इस प्रकार, ऋण अप्राप्य–ऋणों में बदल जाते हैं, और सम्बन्धित बैंकों की वित्तीय स्थिति को कमजोर बनाते हैं।

6. **निम्न कोटि के ऋण निवेश** (Bad Quality of Loan Portfolios)–
बहुत से बैंकों द्वारा दिये गये ऋणों की गुणवत्ता बहुत ही निम्न स्तर की है। ऐसे ऋण प्रायः बाह्य (राजनीतिक) दबाव में आकर दिये जाते हैं। इस प्रकार, बिना वाणिज्यिक प्रक्रियाओं का पालन किये ऋण दिये जाते हैं, साख–पत्र तथा गारंटी आदि जारी की जाती है।

7. **शेयर बाजार के सट्टे मे लिप्त** (Indulge in Share Speculation)–
बहुत से बैंक शेयर बाजार के सट्टे में लगे रहते हैं तथा इस तरह जनता की जमा राशि का दुरूपयोग होता है। कई सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक तथा उनकी सहायक म्यूचुअल फण्ड कम्पनियॉ भी सट्टे में लिप्त पाई गई। हाल में ही हर्षद मेहता तथा अन्य दलालों द्वारा किये गये प्रतिभूति घोटालों में इन बहुत–से सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के बैंकों की भूमिका खुलकर सामने आई।

8. **खातों के रख–रखाव में अनियमितताऍ** (Irregularities in Maintaining Accounts)–
बहुत से बैंकों द्वारा खातों के परिचालन में व्यापक स्तर पर अनियमितताऍ पाई गई हैं। प्रायः एक बैंक के अशोध्य (bad) खातों की पूरी जॉच किए बिना दूसरे बैंकों द्वारा ले लिया जाता है।

9. **बैंक रूग्ण इकाईयों के रूप में** (Banks as Sick Units)–
उपरोक्त बातों के परिणाम स्वरूप, बहुत से बैंक रूग्ण इकाईयों के रूप में कार्य करे हैं। जिसके फलस्वरूप उन्हें या तो बन्द कर दिया गया, परिसमापन कर दिया गया अथवा किसी दूसरे बैंक में उनका विलय कर दिया गया। 1985–91 के दौरान 10 बैंकों का विलय हुआ। 30 जून, 1991 को तीन बैंकों को विघटित कर दिया गया तथा 122 बैंक परिसमापन के लिए तैयार थे। 31 दिसम्बर, 1995 को 103 वाणिज्यिक बैंक, का परिसमापन हुआ। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक न्यू बैंक ऑफ इण्डिया का 1993 में पंजाब नेशनल बैंक में विलय कर दिया गया।

10. **अपर्याप्त सामाजिक बैंकिंग** (Inadequate Social Banking)–
भारतीय समुदाय के कमजोर वर्ग की सहायता के लिए चलाई जा रही बहुत–सी योजनाओं के बावजूद, बैंक मुख्यतः औद्योगिक क्षेत्र की मॉगें पूरी करने में लगे हैं। उदाहरणार्थ, मध्यम तथा बड़े स्तर के औद्योगिक ऋणों में 1996–97 की तुलना में 1997–98 में 41.0 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जबकि कृषि में 9.4 प्रतिशत, लघु उद्योगों में 20.8 प्रतिशत तथा इस अवधि में व्यापार में 2.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

11. **दोहरा नियन्त्रण** (Dual Control)–
भारतीय बैंकिंग व्यवस्था सरकार तथा रिजर्व बैंक के दोहरे नियंत्रण को झेल रही है। इस पर आवश्यकता से अधिक नियन्त्रण व प्रशासनिक दबाव है। बैंकों को ऋण देने के व्यक्तिगत मामलों तथा आन्तरिक प्रबन्धन के मामलों में भी बहुत अधिक प्रशासनिक तथा राजनैतिक दबाव तथा हस्तक्षेप झेलना पड़ता है। ऋण तथा निवेश के कार्यक्रमों के दिशा–निर्देश ऊपर से आते हैं। इसी प्रकार, मुख्य कार्यकारियों तथा निवेशकों की नियुक्तियॉ भी होती हैं।

निष्कर्ष

इससे पता चलता है कि भारतीय वाणिज्यिक बैंक ठीक से काम नहीं कर रहे हैं, उनका प्रबन्धन ढीला–ढाला है, प्रतिस्पर्धात्मक नहीं है, आवश्यकता से अधिक फैला

हुआ है, आवश्यकता से अधिक कर्मचारी है तथा ग्राहक सेवा भी असन्तोषजनक है।

4.3 कार्य में सुधार के सुझाव : नरसिम्हम समिति की रिपोर्ट (Suggestions to Improve Working : Narasimham Committee Report)

भारतीय बैंकिंग प्रणाली के कार्यों में सुधार के लिए समय–समय पर बहुत सी समितियों ने सुझाव दिये हैं, यहाँ संक्षेप में 1991 की नरसिम्हन समिति की सिफारिशें प्रस्तुत हैं :–

1. बैंकिंग क्षेत्र के ढांचे को 3 या 4 बैंकों में पुनर्गठित किया जाए, जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर अपनी पहचान बना सकें।
2. आठ से दस राष्ट्रीय बैंकों की शाखाओं का जाल देशभर में फैला हो, जो 'सार्वभौमिक' (Universal) बैंकिंग पद्धति पर आधारित हों।
3. स्थानीय बैंक परिचालन क्षेत्र विशेष तक सीमित हो।
4. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक सहित ग्रामीण बैंकों का परिचालन क्षेत्र, ग्रामीण क्षेत्रों तक सीमित हो तथा उनके व्यवसाय में कृषि तथा सम्बन्धित गतिविधियों की अधिकता हो, परन्तु लाभप्रदता का भी पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए।
5. प्रत्येक सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक द्वारा एक या अधिक, ग्रामीण बैंकिंग सहायक इकाईयों खोली जाए, जो इसकी सभी ग्रामीण शाखाओं का अधिग्रहण कर लें।
6. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को सभी प्रकार का बैंकिंग व्यवसाय करने की अनुमति हो।
7. शाखाओं के लिए लाइसेसिंग प्रणाली समाप्त की जाए, तथा शाखाएॅ खोलने अथवा बन्द करने का काम सम्बन्धित बैंकों पर छोड़ दिया जाए।
8. विदेशी बैंकों को भारत में शाखाओं के रूप में या सहायक कम्पनियों के रूप में कार्यालय खोलने की अनुमति दी जाए।
9. विदेशी बैंको से भी वही अपेक्षाएॅ की जाएॅ, जो भारतीय बैंकों से की जाती है।
10. भारतीय बैंकों के विदेशों में परिचालन को तर्कसंगत बनाया जाए।
11. बैंक के कार्यों में कम्प्यूटरीकरण को बढ़ाया जाए।
12. बैंकिंग आयोग की स्थापना की आवश्यकता नहीं है।
13. प्रत्येक अलग बैंक को, अधिकारियों की भर्ती की अनुमति दी जाऐ।
14. पर्यवेक्षी स्टाफ द्वारा निरीक्षण का काम, आतंरिक लेखा परीक्षण तथा आन्तरिक निरीक्षण रिपोर्ट पर आधारित हो।
15. बैंकिंग प्रणाली पर रिजर्व बैंक तथा वित्त मंत्रालय के बैंकिंग प्रभाग का दोहरा नियंत्रण समाप्त किया जाए तथा रिजर्व बैंक को ही बैंकिंग प्रणाली को विनियमन का दायित्व सौंपा जाना चाहिए।
16. बैंकों तथा वित्तीय संस्थानों के कार्यो के पर्यवेक्षण के लिए रिजर्व बैंक के नियंत्रण में एक अलग अर्द्धस्वायत्तापूर्ण प्राधिकरण बनाना चाहिए।
17. बैंकों के मुख्य कार्यकारियों तथा निदेशकों की नियुक्ति को राजनीतिकरण से मुक्त किया जाए।

18. बैंकों की एस0एल0आर0 को पॉच वर्ष के भीतर चरणबद्ध कार्यक्रम के तहत घटाकर 25 प्रतिशत तक नीचे लाया जाए।
19. सी0आर0आर0 को भी इसी प्रकार घटाया जाए।
20. निर्देशित ऋण कार्यक्रमों को चरणबद्ध रूप से समाप्त किया जाए।
21. प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को पुनः परिभाषित किया जाए।
22. ब्याज दरों से नियंत्रण हटा लिए जाए, ताकि बाजार प्रवृत्तियों का पता चल सके।
23. मार्च, 1993 तक वाणिज्यिक बैंकों को जोखिम भारित परिसम्पत्तियों के सम्बन्ध में कम से कम 4 प्रतिशत पूॅजी पर्याप्तता प्राप्त कर लेनी चाहिए।
24. बैंकों को समान रूप वाली लेखा पद्धति अपनानी चाहिए।
25. वे अपने तुलन–पत्रों में पूर्ण पारदर्शिता (transparency) बढ़ाऍ।
26. ऋण–वसूली प्रक्रिया को तेज़ बनाने के लिए सरकार को विशेष अदालतें खोलनी चाहिए।
27. बैंकों से उनके अशोध्य और संदिग्ध ऋणों का कुछ भाग अधिग्रहण करने के लिए एक परिसम्पत्ति पुनर्निर्माण निधि (Assets Reconstruction Funds) की स्थापना की जानी चाहिए।

नरसिम्हम समिति की सिफारिशें से बैंकिंग प्रणाली में काफी सुधार होने की आशा है। परन्तु इनमें से बहुत कम लागू की गई हैं।

4.4 बैंकिंग क्षेत्र में हुए नवीन या वर्तमान सुधार (Recent Banking Reforms)

1969 में 14 वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण से लेकर भारतीय बैंकों ने जमा राशियों के संग्रहण तथा शाखा विस्तार के क्षेत्र में बहुत तरक्की की है। सभी वाणिज्यिक बैंकों की कुल शाखाओं की जमा राशियॉ जून, 1969 में 4,646 करोड़ रू0 थी, जो मार्च, 1998 में 6,05,410 करोड़ रू0 हो गई। इसी अवधि में बैंकों की कुल शाखाओं की संख्या 8262 से बढ़कर 63,788 हो गई। 1988 में इनमें से 51 प्रतिशत शाखाऍ ग्रामीण क्षेत्रों में थी, जबकि 1969 में इनकी संख्या 25 प्रतिशत थी। सामान्य बैंकिंग सेवाओं के साथ–साथ भारतीय बैंकों ने नवीन बैंकिंग शुरू की, जिससे विभिन्न दिशाओं में नई गतिविधियॉ आरम्भ हुई। KPMG-CII रिपोर्ट के अनुसार 2020 तक भारतीय बैंकिंग उद्योग का विश्व में पाँचवा स्थान तथा 2025 तक तीसरा स्थान हो जाएगा।

इसके बावजूद, बैंक विश्वसनीय, कुशल एवं कम–लागत वाली सेवाऍ प्रदान करने में असमर्थ रहे हैं। बैंकों की उत्पादकता तथा लाभप्रदता दोनों घटी हैं। विशेषकर सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक, तो राजकोष पर बोझ बन गये हैं। भारतीय बैंकिंग प्रणाली में सुधार के लिए नरसिम्हम समिति ने बहुत से सुझाव दिये। इनमें से कुछ 1991–92 से लागू कर दिये गए। ये निम्न हैं :–

1. पूॅजी पर्याप्तता मानक (Capital Adequacy Norms)–

किसी प्रकार के जोखिम से बचने के लिए, भारतीय रिजर्व बैंक ने अप्रैल, 1992 में पूॅजी पर्याप्तता मानक बनाए, जिनका बैंकों को मार्च, 1996 से पालन करना था। सभी बैंकों को 31 मार्च, 1993 तक 4 प्रतिशत तथा 31 मार्च, 1996 तक 8 प्रतिशत जोखिम–भारित पूॅजी पर्याप्तता अनुपात प्राप्त करना था। भारत में कार्यरत विदेशी

बैंकों तथा भारतीय बैंकों की विदेशी शाखाओं को 8 प्रतिशत का लक्ष्य क्रमशः 31 मार्च, 1993 तथा 31 मार्च,1994 तक प्राप्त करना था। अब सभी बैंकों को 8 प्रतिशत का पूँजी पर्याप्तता अनुपात रखना पड़ता है।

2. पुनः पूँजीकरण (Recapitalisation)–

सभी सार्वजनिक बैंकों द्वारा निर्धारित पूँजी पर्याप्तता अनुपात प्राप्त करने के लिए भारत सरकार ऐसे बैंकों की पूँजी में योगदान दे रही है। सरकार ने सर्वप्रथम 1993–94 के दौरान 19 राष्ट्रीयकृत बैंकों को पुनः पूँजीकरण के लिए 5700 करोड़ रू0 दिए। इस प्रकार प्रत्येक वर्ष जो बैंक 8 प्रतिशत का पूँजी पर्याप्तता अनुपात नहीं रख सकते, उन्हें सरकार पूँजीकरण के लिए अंशदान दे रही है। मार्च, 1998 तक राष्ट्रीयकृत बैंकों को 20,046 करोड़ रू0 का अंशदान दिया जा चुका था।

3. सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक का आंशिक निजीकरण (Partial Privatisation of Public Sector Banks)–

पुनः पूँजीकरण का कोई स्थायी हल नहीं है। चूँकि सरकारी स्रोत सीमित है, अतः बैंकों को आम जनता से पूँजी–संग्रहण की अनुमति दी गई। सबसे पहले भारतीय स्टेट बैंक अधिनियम, को संशोधित कर बैंक को पूँजी बाजार में उतरने की अनुमति दी गई। स्टेट बैंक के 67 प्रतिशत शेयर रिजर्व बैंक के पास रह गये। इसी प्रकार, बैंकिंग कम्पनी (उपक्रम का अन्तरण एवं अधिग्रहण) संशोधन अधिनियम, 1994 द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की प्रदत्त पूँजी में भारत सरकार का अंश 51 प्रतिशत रह गया। शेष 49 प्रतिशत अंश व्यक्तियों, कम्पनियों तथा अप्रवासी भारतीयों को शेयरों के रूप में बेचा जा सकता है। मार्च, 1998 के अन्त तक सार्वजनिक क्षेत्र के 9 बैंकों ने शेयर बेच कर अपनी पूँजी बढ़ाकर 6,015 करोड़ रू0 कर ली थी।

4. विवेकपूर्ण लेखांकन मानदण्ड (Prudential Accounting Norms)–

भारतीय रिजर्व बैंक ने 1992–93 से विवेकपूर्ण लेखांकन मानदण्ड शुरू किया। तद्नुसार यदि लेखांकन वर्ष की किन्हीं दो तिमाही तक मूलधन की किश्त या ब्याज आदि बकाया रहता है तो उस ऋण सुविधा को अनर्जक परिसम्पत्तियॉ (NPA) समझा जाता है। जिन ऋणों की शेष रकम 25,000 रू0 से कम हो, उनके लिए एन0पी0एज (NPAs) के लिए प्रावधान की आवश्यकता को बढ़ाकर मार्च, 1997 के अन्त तक कुल बकाया राशि का 15 प्रतिशत कर दिया गया, जो वर्ष 1996 में 10 प्रतिशत थी। 25000 रू0 तथा इससे अधिक के त्रुटिपूर्ण तथा संदिग्ध ऋणों के लिए उन्हें परिसम्पत्तियों की हानि से सम्बन्धित 100 प्रतिशत प्रावधान करना होता है। रिजर्व बैंक ने मार्च, 1998 को बैंकों को निर्देश दिया कि कृषि अग्रिमों को भी अर्नजक परिसम्पत्तियों (NPAs) में रखा जाए, यदि ब्याज तथा/अथवा मूलधन की किश्त दो पिछली फसलों तक वापस न की जाए, किन्तु यह अवधि दो छमाही से अधिक नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार, बैंकों की अनुमोदित प्रतिभूतियों के अंश में, जो मार्केट के लिए अंकित किए जाते हैं, उन्हें 1998–99 में 60 प्रतिशत से बढ़ाकर 70 प्रतिशत कर दिया गया और आगामी तीन वर्षो में 100 प्रतिशत कर दिया जायेगा।

5. ऋणों की वसूली (Recovery of Debts)–

भारतीय बैंकों द्वारा दिए गए ऋणों की एक बड़ी राशि बकाया है जिससे उनकी नकदी की प्रवाह स्थिति तथा लाभ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन अशोध्य ऋणों की वसूली के लिए "Recovery of Debts due to Banks and Financial Institutions Act, 1993" नामक एक या अधिनियम ऋण वसूली न्यायाधिकरण (Debt Recovery Tribunals) की स्थापना के लिए पारित किया गया। इस प्रकार के न्यायाधिकरणों की स्थापना 10 मुख्य केन्द्रों पर की गई है।

6. **बैंक की शाखाओं सम्बन्धी स्वतंत्रता** (Freedom about Bank Branches)–

जो बैंक पिछले तीन वर्षो सं लगातार लाभ कमा रहे हैं तथा जिन्होनें पूॅजी पर्याप्तता का 8 प्रतिशत मानदण्ड प्राप्त कर लिया है, एन0पी0एज0 15 प्रतिशत से कम तथा कम से कम 110 करोड़ की निधियॉ रखते हैं, उन्हें नई शाखाएॅ खोलने तथा विस्तार काउंटरों का ग्रेड बढ़ाने की छूट दे दी गई है। उन्हें ग्रामीण व अर्द्ध–शहरी क्षेत्रों के अतिरिक्त घाटा दिखाने वाली शाखाएॅ बन्द करने की अनुमति भी मिल गई है।

7. **निजी क्षेत्र के बैंकों का प्रवेश** (Entry of Private Sector Banks)–

बैंकिंग के प्रतिस्पर्धा को और अधिक बढ़ाने तथा बेहतर ग्राहक सेवा उपलब्ध कराने के लिए, रिजर्व बैंक के निर्देशानुसार, निजी बैंकों के प्रवेश की अनुमति दे दी गई है। नये निजी क्षेत्र के बैंकों के कुछ प्रस्तावों को मंजूरी मिल गई है। निजी बैंकों को पूॅजी बढ़ाने के लिए, संस्थागत निवेशकों से 20 प्रतिशत तथा अप्रवासी भारतीयों से 40 प्रतिशत अंश प्राप्त करने की अनुमति दी गई है। 1994 से अब तक 9 नये निजी क्षेत्र के बैंक खुल गये हैं। रिजर्व बैंक द्वारा यह भी स्पष्ट कर दिया गया है, कि पुराने 25 और मौजूदा निजी क्षेत्र के बैंकों को बिना किसी राष्ट्रीयकरण के डर के विस्तार करने की अनुमति है।

8. **पर्यवेक्षण विभाग** (Department of Supervision)–

वाणिज्यिक बैंकों के कार्यो का पर्यवेक्षण करने के लिए रिजर्व बैंक ने 22 दिसम्बर, 1993 से एक पर्यवेक्षण विभाग की स्थापना की है। यह लेखा परीक्षकों की नियुक्ति तथा धोखाधड़ी जैसे मामलों सहित विशेष जॉच, निगरानी तथा निरीक्षण जैसे कार्य करता है।

9. **वित्तीय पर्यवेक्षण के लिए बोर्ड** (Board for Financial Supervision-BFS)–

नवम्बर 1994, में भ0रि0बैं0 के अन्तर्गत ही बी0एफ0एस0 की स्थापना हुई। यह बोर्ड ऋण प्रबन्धन, परिसम्पत्तियों के वर्गीकरण, आय अभिज्ञान, प्रावधानीकरण, पूॅजी पर्याप्तता तथा खजाना परिचालन से सम्बन्धित नियमों के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करता है। जुलाई, 1997 से CAMELS ढ़ाचें के आधार पर वार्षिक वित्तीय निरीक्षण चालू किये गए हैं। कैमल्स प्रणाली में पूॅजी पर्याप्तता (Capital adequacy), परिसम्पत्ति गुणवत्ता (asset quality), प्रबन्धन (management), अर्जन (earnings), तरलता (liquidity) और आंतरिक नियंत्रण प्रणालियॉ (control systems) शामिल हैं। कैमल्स प्रणाली द्वारा बैंकों

के समग्र परिचालनों तथा कार्य–निष्पादन का मूल्यांकन किया जाता है, जिन्हें पर्यवेक्षण विभाग और बी0एस0एफ0 मिलकर करते हैं।

10. व्यतिक्रमी ऋणियों का प्रकटीकरण (Disclosure on Defaulting Borrowers)–

ऋणियों में भुगतान सम्बन्धी अनुशासन लागू करने के लिए अप्रैल 1994 से 31 मार्च तथा 30 सितम्बर को एक करोड़ या उससे अधिक बकाया राशि वाले बैंक के चूककर्ता (Defaulter) ऋणियों से सम्बन्धित सूचना के प्रकटीकरण की योजना चलाई जा रही है।

11. बैंकिंग लोकपाल योजना (Banking Ombudsman Scheme)–

बैंकिंग सेवाओं की कमी से सम्बन्धित ग्राहकों की शिकायतों के तुरन्त व सस्ते निपटान के लिए, बैंकिंग लोकपाल योजना जून, 1995 से चल रही है। देश के महत्वपूर्ण केन्द्रों पर बैंक लोकपाल नियुक्त किए गए हैं।

12. बैंक धोखाधड़ी जॉच का केन्द्रीय बोर्ड (Central Board of Bank Frauds-CBBF)–

महाप्रबन्धक के स्तर तक के बैंक अधिकारियों के विरूद्ध सी0बी0आई0 द्वारा चलाए जा रहे मामलों की जानकारी के लिए वित्त मंत्रालय ने जनवरी, 1997 को सी0बी0बी0एफ0 की स्थापना की। रिजर्व बैंक ने फरवरी 1997 में बैंक धोखाधड़ी पर सलाहकार बोर्ड (Advisory Board on Bank Frauds) गठित किया। बोर्ड उन सभी मामलों में बैंक को सलाह देता है, जो महाप्रबन्धक और उससे उच्च अधिकारियों के खिलाफ जॉच–पड़ताल करने/दर्ज करने के लिए सीधे केन्द्रीय जॉच ब्यूरो के पास भेजे गए हों।

13. संघीय प्रबन्ध (Consortium Arrangements)–

प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करने तथा विमध्यवर्तता (disintermediation) के लिए बैंकों पर ऋण देने सम्बन्धी प्रतिबन्धों को कम कर दिया गया है। बड़े ऋणियों को एक अग्रणी बैंक के नेतृत्व में अन्य अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के संघ से, एक निर्धारित सीमा से अधिक कार्यशील पूँजी के लिए ऋण लेने की अनुमति दी गई थी। यह व्यवस्था उधारकर्ता के लिए 50 करोड़ रू0 से अधिक राशि के लिए थी। अप्रैल, 1997 से इस ऋण वितरण प्रणाली में लचीलापन लाने के लिए बैंक 50 करोड़ रू0 की ऋण सीमा से ऊपर संघीय सहायता के लिए बाध्य नहीं है। अब बैंक ऋण–सीमा की मात्रा पर ध्यान दिए बिना, अपना स्वतंत्र मार्ग अपना सकता है, बशर्ते कि यह व्यवस्था उधारकर्ता और वित्तपोषक बैंक के हितों के अनुकूल हो।

14. उदारीकृत ऋण मानदण्ड (Lending Norms Liberalised)–

रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित त्रैमासिक रिपोर्ट की आवश्यकताओं तथा निर्धारित विवेकपूर्ण मानदण्डों को पूरा करने पर, बैंकों के ऋण मानदण्डों को उदार बना दिया गया है, उन्हें अपने ऋणियों की व्यक्तिगत वस्तुओं की माल–सूची तथा प्राप्तियों के धारणों के स्तर के बारे में निर्णय लेने की छूट है। उन्हें अतिरिक्त ब्याज लिए बिना तदर्थ ऋण–सीमाओं की अवधि तथा मात्रा के बारे में निर्णय लेने की भी छूट है।

15. बैंकों की कार्यविधि को सरल बनाने के उपाय (Measures to Streamline Working of Banks)–
रिजर्व बैंक द्वारा बैंकों के प्रबन्धन तथा कार्य की गुणवत्ता सुधारने के लिए कई उपाय किये गए हैं। इनमें प्रबन्ध सूचना प्रणाली तथा आन्तरिक लेखा परीक्षा एवं नियंत्रण तकनीक, बैंकिंग परिचालन का कम्प्यूटरीकरण, या अभिज्ञान (recognition) परिसम्पत्तियों के लिए विवेकपूर्ण मानदण्ड आदि शामिल हैं।

16. उदार ऋण नियंत्रण (Liberal Credit Control Measures)–
बैंकों की कार्यविधि में हस्तक्षेप तथा नियंत्रण को कम करने के लिए बहुत से उपाय किए गए हैं। वैधानिक तरलता अनुपात (एस0एल0आर0) को घटाया गया है। 1996 से बैंक की निवल माँग एवं सावधि जमाराशि पर एस0एल0आर0 घटाकर 25 प्रतिशत तक कर दी गई। अप्रैल, 1998 से बैंक दर 10 प्रतिशत से घटाकर 9 प्रतिशत तथा CCR को 10 प्रतिशत से बढ़ाकर 11 प्रतिशत कर दिया गया। बैंकों को अपनी जमाराशि तथा ऋण की दरों को निर्धारित करने की छूट दी गई। उन्हें कम्पनियों के शेयरों, डिबेंचरों तथा म्यूचअल फण्ड में अपनी वृद्धिशील जमाराशियों में धनराशि लगाने की अनुमति है। वे माध्यमिक अथवा द्वितीयक बाजार से कम्पनियों के शेयर तथा डिबेंचर खरीद सकते हैं।

4.5 नवीन या प्रवर्तक बैंकिंग (Innovative Banking)

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने हाल ही में नवीन बैंकिंग शुरू की है। रिजर्व बैंक ने बहुत–सी वित्तीय सेवाओं जैसे मर्चेन्ट बैंकिंग, लीजिंग, वेंचर कैपिटल, म्यूचुअल फंड्स, फैक्टरिंग, आवास निर्माण आदि को प्रोत्साहित करने के लिए बैंकों को छूट दी है। इन सेवाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

1. मर्चेन्ट बैकिंग (Merchant Banking)–
मर्चेन्ट बैंकिंग में कई सेवाएँ जैसे शेयरों, डिबेंचरों आदि के जारी करने का प्रबन्धन, ऋण जुटाने का काम, वित्तीय एवं प्रबंधन सम्बन्धी परामर्श, परियोजना परामर्श, विलय तथा अधिग्रहण अप्रवासी निवेशों का प्रबंध आदि आती है। भारत में मर्चेन्ट बैंकिंग की शुरूआत ग्रेंडले बैंक, सिटी बैंक जैसे विदेशी बैंकों ने की थी। आज भारत के कई वाणिज्यिक बैंक अपनी सहायक इकाईयों द्वारा ये सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं। इनमें से कुछ हैं – एस0बी0आई0 कैपिटल मार्केट्स लिमिटेड, बैंक आफ बड़ौदा मर्चेन्ट बैंकिंग डिवीजन, कैनबैंक फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड, आल बैंक फाइनेंस लि., यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया मर्चेन्ट बैंक डिवीजन, पी0एन0बी0 कैपिटल सर्विसेज लि0, बी0ओ0 आई0 फाइनेंस लि0 आदि।

2. पट्टादायी (Leasing) –
पट्टादायी अथवा लीजिंग कम्पनी वित्त का ऐसा प्रपत्र है, जिसके द्वारा औद्योगिक इकाइयाँ एक लीजिंग कम्पनी से अनुबन्ध के अन्तर्गत किसी परिसंपत्ति (अर्थात कोई प्लांट, उपकरण, यातायात सुविधाएँ, भवन या कोई अन्य सेवाएँ) को किसी सहमत अवधि के लिए किराये पर लेती है। लीजिंग कम्पनियाँ, औद्योगिक इकाईयों को वित्त भी उपलब्ध कराती है। उपकरण अथवा संयत्र पट्टेदायी तथा वित्तीय पट्टादायी का काम, भारत में 1973 से निजी कम्पनियों के हाथ में है। अभी हाल ही में मर्चेन्ट बैंकिंग सहायक ईकाइयों की स्थापना के बाद पट्टादायी का काम सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक भी

करने लगे हैं। जून, 1991 के अन्त तक, भारतीय बैंकों द्वारा 9 संयत्र पट्टादायी एवं मर्चेन्ट बैंकिंग सहायक कम्पनियों की स्थापना की जा चुकी थी। परन्तु पट्टादायी के इस प्रतिस्पर्धात्मक बाजार में, उन्हें अपनी जगह अभी बनानी है, जहाँ लगभग 400 निजी क्षेत्र की कम्पनियॉ पहले से ही जमीं हैं।

3. उद्यम पूॅजी (Venture Capital)–

उद्यम पूॅजी का सम्बन्ध, किन्हीं व्यक्तियों या प्रतिष्ठानों, जिन्हें परियोजना की अच्छी सूझबूझ हो, द्वारा प्रोत्साहित लघु/मध्यम स्तर की व्यावसायिक इकाईयों के वित्त पोषण से है। इन परियोजनाओं में नई तकनीक अथवा वस्तुएँ शामिल होती हैं, परन्तु प्रोत्साहक के पास अपनी परियोजना के लिए पर्याप्त वित्तीय स्रोतों की कमी होती है। बैंकों तथा वित्तीय संस्थानों द्वारा कम्पनी के आरम्भ में ही पूँजी निवेश द्वारा उद्यम पूँजी का प्रबन्ध किया जाता है। आई.सी.आई.सी.आई., आई.डी.बी.आई., यू.टी.आई. या आई.एफ.सी.आई. जैसे वित्तीय संस्थान भारत में उद्यम पूँजी की शुरूआत करने वाले हैं। बैंकों में सबसे पहले एस0बी0आई0 कैपिटल मार्केट्स लिमिटेड ने अपनी पूॅजी सहयोग तथा उद्यम पूॅजी योजना के तहत ये सहायता प्रदान करनी शुरू की थी।

4. म्यूचुअल फण्ड (Mutual Funds)–

पारस्परिक निधियाँ अथवा म्यूचुअल फण्ड्स ऐसी योजना है, जिसके अन्तर्गत जनता से जमा राशियाँ इकट्ठी की जाती है तथा उनको शेयर बाजार में प्रतिभूतियों के रूप में निवेश कर दिया जाता है और इस प्रकार निवेशकर्ता तथा उद्योग दोनों को इसका लाभ मिलता है। म्यूचुअल फण्ड्स को इस प्रकार निवेश करने से ब्याज, लाभांश तथा पूँजी लाभ मिलता है जो निवेशकर्ताओं में बॉट दिया जाता है। इस प्रकार, निवेशकों को सुरक्षा, तरलता तथा वृद्धि सभी प्रकार के लाभ मिलते है। इससे शेयरों की कीमतों में भी सन्तुलन बना रहता है, क्योंकि कीमतें घटने पर शेयर खरीद लिए जाते हैं और बढ़ने पर बेच दिए जाते हैं। इस प्रकार निवेशकर्ताओं को सुरक्षा तथा आमदनी हो जाती है और उद्योगों के विकास के लिए उद्यमियों को संसाधन हो जाती है। भारतीय यूनिट ट्रस्ट पहला म्यूचुअल फण्ड था, जिसे 1964 में शुरू किया गया था। हाल में ही, कई सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने सहायक कम्पनियों के रूप में म्यूचुअल फण्ड शुरू किए हैं। इनमें इण्डियन बैंक, बैंक आफ इण्डिया, एस0बी0आई0, केनरा बैंक, बैंक आफ बड़ौदा, पंजाब नेशनल बैंक आदि शामिल हैं। एस0बी0आई0 समूह ने 1989 में इण्डिया मैग्नम फण्ड की शुरूआत की। यह पहला ऐसा 'ऑफ शोर' फण्ड था, जिसमें निजी रूप से संस्थागत तथा अन्य निवेशकों ने प्राथमिक रूप से अमेरिका में धन लगाया गया।

5. फैक्टरिंग (Factoring)–

'फैक्टर' एक कमीशन एजेन्ट होता है, जो अपने ग्राहकों को निधियाँ देने के साथ–साथ प्राप्य खातों का प्रबन्धन, ऋण की वसूली तथा चुकौती न करने के जोखिम के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करने का काम भी करता है। फैक्टरिंग एजेन्सियॉ नकदी के मुक्त प्रवाहों को सुनिश्चित करती है। फैक्टर अपने ग्राहकों (जैसे लघु उद्योग इकाई) के ऋण की वसूली तथा प्राप्य खातों को आधार मानकर इसका वित्त पोषण करता है। वास्तव में, ऋण का काम फैक्टर के हवाले कर दिया जाता है जो समयानुसार उनकी वसूली करता है। फैक्टर उन्हें वसूल करने का सेवा

शुल्क बिलों पर छूट (rebate) अथवा भुनाई के रूप में प्राप्त कर लेता है। संक्षेप में, फैक्टरिंग वसूली तथा वित्तीय सेवा है जिसके तहत बिक्री–बीजकों को तुरन्त नकदीकरण करके लघु फर्मों में नकदी के प्रवाह को सुधारा जाता है।

लघु स्तरीय क्षेत्र में आपूर्तिकर्ताओं की ओर से देय राशियों की उगाही के काम को ध्यान में रखते हुए **वघुल समिति** ने फैक्टरिंग सेवाओं की शुरूआत की सिफारिश की। कल्याण सुन्दरम समिति ने फैक्टरिंग सेवाओं की व्यावहरिकता को परखने के बाद भारत में इसकी शुरूआत करन की सिफारिश की। इस उद्देश्य से बैंकिंग विनियमन अधिनियम में जुलाई, 1990 में संशोधन किया गया तथा रिजर्व बैंक ने अलग सहायक कम्पनियों द्वारा बैंकों को फैक्टरिंग की अनुमति दी, तद्नुसार भारतीय स्टेट बैंक ने 30 जुलाई, 1991 को एक नई सहायक कम्पनी एस0बी0आई0 फैक्टर्स एण्ड कमर्शियल सर्विसेज लिमिटेड बनाई। इसका उद्देश्य महाराष्ट्र, गुजरात, गोवा, मध्य प्रदेश राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेश दादरा व नगर हवेली, दमन एण्ड दिव राज्यों सहित पश्चिमी भारत के औद्योगिक व वाणिज्यिक इकाईयों को फैक्टरिंग सेवाएॅ उपलब्ध कराना है। इसी प्रकार, केनरा बैंक ने दक्षिण भारत की इकाईयों को ये सेवाएॅ प्रदान करने के लिए 24 अगस्त, 1991 को कैनबैंक फैक्टरिंग लि0 शुरू की। पंजाब नेशनल बैंक तथा इलाहाबाद बैंक ने क्रमशः उत्तर भारत तथा पूर्वी भारत में फैक्टरिंग एजेन्सियॉ स्थापित करने की उत्सुकता दिखाई।

6. आवास वित्त (Housing Finance)–

आवासीय बैंकिंग भारत में तेजी से फैल रही है। आवास के लिए वित्तीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए एक राष्ट्रीय आवास बैंक (National Housing Bank-NBH) 1988 में एक शीर्ष संस्थान के रूप में स्थापित किया गया। यह विभिन्न योजनाओं के तहत वित्तीय सहायता देता है। यह व्यक्तिगत आवास के लिए 5 लाख रू0 से 10 लाख रू0 तक आवास वित्त कम्पनियों को पुनर्वित्त सुविधा देता है।

इसमें आवास निर्माण खाता योजना, वाणिज्यिक बैंकों द्वारा उदारीकृत ऋण तथा पुनर्वित्त सुविधाएँ आती हैं। इसके साथ–साथ बैंकिंग क्षेत्र हाल ही के कुछ वर्षो से आवास वित्त पोषण में काफी प्रयास कर रहा है। वाणिज्यिक बैंक निम्न तथा मध्यम आय वर्ग को घर या फ्लैट खरीदने या बनाने के लिए ऋण देते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक तथा एन0एच0बी, वाणिज्यिक बैंकों तथा आवास वित्त संस्थानों द्वारा दिये जाने वाले ऋणों पर ब्याज की दर तय करते हैं। 5 जून, 1991 से बैंकों को भवन निर्माताओं को 3 से 5 वर्ष की अवधि तक के ऋण देने की अनुमति दी गई थी, जो भूमि के विकास की परियोजनाओं तथा उन पर आवास/फ्लैटस के निर्माण कार्य में लगे हैं तथा यह वित्त एन0एच0बी0 द्वारा पुनर्वित्त योजना के अन्तर्गत होता है। बहुत से सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के बैंकों ने आवास वित्त कम्पनियॉ खोल दी हैं जैसे– एस0बी0आई0, बैंक आफ बड़ौदा, आन्ध्रा बैंक, सेन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया, विजया बैंक लि0 आदि।

7. **बैंकिंग मशीनीकरण में नई टेक्नॉलॉजी** (New Technology in Banking Mechanisation)–

बैंकिंग के मशीनीकरण में नई टेक्नालॉजी का प्रयोग भारतीय बैंकिंग के लिए एक और नई बात थी। अधिकतर भारतीय बैंकों ने इलेक्ट्रानिक एकाउण्टिंग मशीन तथा

एडवांस्ड लेजर पोस्टिंग मशीन्स का प्रबन्ध किया है। परन्तु अब धीरे–धीरे बैंक अपनी शाखाओं के पूरी तरह कम्प्यूटरीकरण की ओर बढ़ रहे हैं। बैंकों के लगभग 260 कार्यालय, रिजर्व बैंक तथा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के डाटा कम्युनिकेशन नेटवर्क से मुम्बई, कलकत्ता, नई दिल्ली, चेन्नई, बंगलोर, हैदराबाद तथा नागपुर में जुड़े हैं। इसके साथ–साथ महानगरों में स्थित बैंकों की शाखाओं से मैगनेटिक इंक करेक्टर रिकग्नीशन (एम0आई0सी0आर0) कूट अंक प्रणाली पर आधारित चेक बुक्स जारी करने को कहा गया। रिजर्व बैंक ने एम0आई0सी0आर0 प्रणाली पर आधारित समाशोधन सुविधाएँ मुम्बई, चेन्नई, कलकत्ता, नई दिल्ली तथा नागपुर में उपलब्ध करवाई। कई बैंकों ने स्वयं को 'स्विफ्ट' (सोसाइटी फार वर्ल्डवाइड इन्टर बैंक फाईनेन्शियल टेलीकम्युनिकेशन्स) के साथ जोड़ने के लिए साजो–समान व साफ्टवेयर का प्रबन्ध किया है। सूचना प्रणाली में और अधिक सुधार व गति को ध्यान में रखते हुए, कई बैंकों ने उपग्रह डिश एन्टिना द्वारा, अपने विभिन्न शहरों में स्थित कार्यालयों को जोड़ा है। इस प्रणाली के चालू होने पर यह कार्यालय रिमोट एरिया बिजनेस मैसेज नेटवर्क (आर0ए0बी0एम0एन0) का एक भाग बन जाएगें तथा संदेश का आदान–प्रदान तथा 'स्विफ्ट' के संदेशों को भारत के विभिन्न बैंक कार्यालयों तथा विदेशों तक पहुँचाने में सुविधा रहेगी। कई बैंकों ने इलेक्ट्रानिक समाशोधन सेवाएँ शुरू की हैं, जो बहुत सी कम्पनियों द्वारा अपने शेयर–धारकों को अंशदान/ब्याज आदि के भुगतान के लिए प्रयोग की जा रही है।

8. ग्राहक सेवा (Customer Service)–

ग्राहकों की संतुष्टि के स्तर में सुधार बैंकिंग का एक और उदाहरण है। कुशल ग्राहक सेवा को सुनिश्चित करने के लिए बैंक अपने नियन्त्रक कार्यालयों के वरिष्ठ अधिकारियों को शाखाओं में भेजकर नियमित रूप से सूचनाएँ मंगवाते रहते हैं। ग्राहक सेवा की गुणवत्ता को परखने के लिए, शाखाओं में नियमित अवधि पर ग्राहक बैंकों का आयोजन होता है। कुछ बैंकों ने ग्राहक सेवा समितियां तथा ग्राहक परिषदें भी बना ली हैं। बैंकों ने अपनी शाखाओं में 'शिकायत एवं सुझाव' पेटियाँ रखवा दी हैं तथा इनमें प्राप्त शिकायतों तथा सुझावों पर शीघ्र कार्यवाही की जाती है। कई बैंकों ने उगाही, प्रेषण तथा खातों के अन्तरण में शीघ्रता लाने के लिए कोरियर सेवा भी आरम्भ कर दी है। ग्राहक सेवा सम्बन्धी **गोमपोरिया समिति** की सिफारिशों के आधार पर बैंकों को सूचित किया गया है कि बाहरी चेकों की वसूली में लगने वाले समय को कम करने के लिए माइकर केन्द्रों पर आहरित (drawn) चेकों को राष्ट्रीय समाशोधन कक्ष के माध्यम से प्रस्तुत करें तथा आधुनिक दूर संचार टेकनॉलॉजी का व्यापक प्रयोग करना चाहिए।

9. बैंकिंग लोकपाल (Banking Ombudsman)–

बैंकिंग सेवाओं की कमी के विरूद्ध ग्राहकों की शिकायतों के तुरन्त व कम खर्चीले निपटान के लिए तथा रिजर्व बैंक द्वारा ऋणों तथा अग्रिमों आदि के विषय में दिए गए दिशा–निर्देशों का पालन न करने के विरूद्ध प्राप्त शिकायतों को निपटाने के लिए बम्बई, दिल्ली, भोपाल, चण्डीगढ़, हैदराबाद, पटना, जयपुर आदि में पूर्ण समय आधार पर बैंकिंग लोकपाल अर्थात् ग्राहकों की शिकायतों पर विचार, जांच व निर्णय लेने के लिए सरकार की ओर से एक न्यायाधीश नियुक्त किया गया है। यह योजना क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को छोड़कर सभी वाणिज्यिक बैंकों पर लागू होती है।

10. **क्रेडिट कार्ड या प्लास्टिक मुद्रा** (Credit Card or Platic Money)–
क्रेडिट कार्ड या जिसे प्लास्टिक मुद्रा भी कहते हैं, आजकल बेहतर ग्राहक सेवा का अभिन्न अंग बन गया है। क्रेडिट योजना के अन्तर्गत क्रेडिट कार्ड धारकों को एक निश्चित अवधि के लिए बिना किसी प्रतिभूति के ऋण सुविधाएँ दी जाती है। ग्राहक इस कार्ड द्वारा वस्तुऍ खरीद सकता है तथा सेवाओं का भुगतान, जैसे– होटल का बिल, रेल का किराया, हवाई यात्रा के टिकट आदि, कर सकता है। क्रेडिट कार्ड जारी करने से बैंक की आय डीलर्स से कमीशन तथा ग्राहक से ब्याज के रूप में बढ़ जाती है। भारतीय बैंकों के लिए क्रेडिट कार्ड प्रथा एक आक्रामक क्षेत्र बन गया है। कई मुख्य सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र के बैंक अपनी क्रेडिट कार्ड योजनाएँ ले आए हैं। इनमें से कुछ को रिजर्व बैंक ने भारत तथा विदेशों में अन्य बैंकों से गठजोड़ की अनुमति दे दी है। इससे कार्ड प्रयोग की सुविधाऍ देश तथा विदेशों में बढ़ गई है।

11. **स्वचालित टैलर मशीनों की संस्थापना** (Installation of ATMs)–
लगभग सभी बैंकों ने अपनी शाखाओं तथा विस्तार काउण्टरों पर स्वचालित टैलर मशीनों की संस्थापना की है, ताकि ग्राहक एक सीमा तक 24 घण्टे में कभी भी नकद आहरण ले सकता है।

12. **किराया–खरीद व्यवस्था** (Hire-Purchase Business)–
भारतीय रिजर्व बैंक की सिफारिश पर भारत सरकार ने 7 सितम्बर, 1990 को जारी एक अधिसूचना के तहत बैंकों को किराया खरीद व्यवसाय के लिए अनुमति दे दी। तद्नुसार, केनरा बैंक, भारतीय स्टेट बैंक, पंजाब नेशनल बैंक तथा इण्डियन बैंक को अपनी मर्चेन्ट बैंकिंग सहायक कम्पनियों के माध्यम से किराया–खरीद व्यवसाय में उतरने की अनुमति मिल गई।

13. **उपभोक्ता ऋण** (Consumer Credit)–
भारतीय बैंकों के लिए उपभोक्ता ऋण का क्षेत्र एक अन्य लाभकारी क्षेत्र बन गया है। बैंकों द्वारा मध्यमवर्गीय ग्राहकों को वाहन, रेफ्रीजरेटर, टी0वी0 आदि जैसी उपभोक्ता वस्तुऍ खरीदने के लिए ऋण दिया जाता है। बैंक को इससे ब्याज मिलता है तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योग की बिक्री बढ़ती है, जिससे रोजगार के अवसर पैदा होते हैं।

14. **जमा बीमा और ऋण गारंटी** (Deposit Insurance and Credit Guarantee)–
छोटे जमाकर्ताओं की बैंकों में जमा राशि की सुरक्षा के लिए 1961 में जमा बीमा निगम की स्थापना की गई, जो कमर्शियल और सरकारी बैंकों में जमा का बीमा करता था। कर्मिशयल बैंकों द्वारा छोटे उधार वालों को दिए जाने वाले अग्रिमों को गारंटी के लिए1971 में जमा बीमा निगम ने ऋण गारंटी निगम को अपने अधिकार में ले लिया और जमा बीमा और ऋण गारंटी निगम नाम रखा। निगम, बैंकों में छोटी जमा राशि पर बीमा सुरक्षा प्रदान करता है। बीमा की एक सीमा एक लाख रू0 प्रति बैंक है और बीमा राशि का प्रीमियम 5 पैसे प्रति 100 रू0 प्रति वर्ष है। ऋण गारंटी के अन्तर्गत यह निगम छोटे उधारकर्ता और लघु औद्योगिक इकाईयों द्वारा लिए गए ऋणों पर वित्तीय संस्थाओं को गारंटी प्रदान करता है।

4.6 सारांश

भारतीय वाणिज्यिक बैंकों द्वारा अभूतपूर्व प्रगति के बावजूद, उन्हें बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जैसे– निम्न लाभप्रदता, अनर्जक परिसम्पत्तियों में वृद्धि, निम्न पूंजी पर्याप्तता अनुपात, तुलन–पत्रों का बाह्य अलंकरण, ऋण देने में पक्षपात, निम्न कोटि के ऋण–निवेश, शेयर बाजार के सट्टे में लिप्त, खातों के रख–रखाव में अनियमितताएँ, बैंकिंग रूग्णता, अपर्याप्त सामाजिक बैंकिंग इत्यादि है। भारतीय बैंकिंग के कार्यों में सुधार के लिए समय–समय पर बहुत सी समितियों ने सुझाव दिये हैं। भारतीय बैंकिंग प्रणाली के सुधार के लिए नरसिम्हम समिति ने बहुत से सुझाव दिए, परन्तु नरसिम्हम समिति के बहुत कम सुझावों को लागू की गई है।

4.7 शब्दावली

चूककर्ता (Defaulter)	–	ऐसे ऋणी, जिसने ऋण का भुगतान समय आने पर नहीं किया है।
सार्वभौमिक	–	सर्वभौमिक का अर्थ एक जैसी है।
पर्यवेक्षी	–	पर्यवेक्षी का अर्थ निरीक्षण करने वाला है।
SLR का पूर्ण रूप है	–	वैधानिक तरलता अनुपात (Statutory Liquidity Ratio)
NPA का पूर्ण रूप है	–	अनर्जक परिसम्पत्तियॉ (Non-Performing Assets)
BSF का पूर्ण रूप है	–	वित्तीय पर्यवेक्षण के लिए बोर्ड (Board for Financial Supervision)
ATM का पूर्ण रूप है	–	Automated Teller Machine
RABMN का पूर्ण रूप है	–	Remote Area Business Message Network
SWIFT का पूर्ण रूप है	–	Society for Worldwide Inter Bank Financial Tele Communication
MICR का पूर्ण रूप है	–	Magnetic Ink Recognition Character

4.8 बोध प्रश्न प्रश्न

1. पॅूजी पर्याप्तता मानक है –

(A) 6 प्रतिशत
(B) 8 प्रतिशत
(C) 10 प्रतिशत
(D) 12 प्रतिशत

2. बैंकिंग कम्पनी (उपक्रम का अन्तरण एवं अधिग्रहण) संशोधन अधिनियम 1994 द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की प्रदत्त पूंजी में भारत सरकार का अंश कितने प्रतिशत रह गया–

(A) 51 प्रतिशत

(B) 50 प्रतिशत
(C) 49 प्रतिशत
(D) 48 प्रतिशत

3. Recovery of Debts due to Banks and Financial Institutions Act किस सन् में पास हुआ।
(A) 1990
(B) 1991
(C) 1992
(D) 1993

4. Board for Financial Supervision की स्थापना कब की गयी–
(A) 1992
(B) 1993
(C) 1994
(D) 1995

5. कैमल्स (CAMELS) प्रणाली में शामिल है–
(A) पूँजी पर्याप्तता
(B) परिसम्पत्ति गुणवत्ता
(C) प्रबन्धन, अर्जन, तरलता और आन्तरिक नियन्त्रण प्रणालियॉ
(D) उपरोक्त सभी

6. बैंकिंग लोकपाल नियुक्त किये गये हैं–
(A) जून 1995 से
(B) जून 1996 से
(C) जून 1997 से
(D) जून 1998 से

7. Central Board of Bank Frauds (CBBF) की स्थापना की गई–
(A) जनवरी 1997
(B) जनवरी 1998
(C) जनवरी 1999
(D) जनवरी 2000

8. नरसिम्हम समिति सम्बन्धित है–
(A) बीमा
(B) बैंकिंग
(C) डाक
(D) तार

9. नरसिम्हम समिति की सिफारिश है कि बैंकिंग क्षेत्र के ढॉचें को, जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना सके –
(A) 1 या 2 बैंकों में पुनर्गठित किया जाए।
(B) 3 या 4 बैंकों में पुनर्गठित किया जाए।
(C) 8 या 9 बैंकों में पुनर्गठित किया जाए।

(D) 10 या 11 बैंकों में पुनर्गठित किया जाए।

10. नरसिम्हम समिति की सिफारिश है–
    (A) आठ से दस राष्ट्रीय बैंकों की शाखाओं का जाल देशभर में फैला हो जो सार्वभौमिक बैंकिंग पद्धति पर आधारित हो।
    (B) बैंकों के कार्यो में कम्प्यूटरीकरण को बढ़ाया जाए।
    (C) बैंकिंग आयोग की स्थापना की आवश्यकता नहीं है।
    (D) उपरोक्त सभी।

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. B	2. A	3. D	4. C	5. D
6. A	7. A	8. B	9. B	10. D

4.10 स्वपरख प्रश्न

1. बैंकिंग प्रणाली में हाल ही में आई नवीन प्रवृत्तियों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
2. नोट लिखें– (i) अग्रणी बैंक योजना, (ii) सेवा क्षेत्रोन्मुखता, (iii) प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र का वित्त पोषण, (iv) फैक्टरिंग, (v) निक्षेप बीमा एवं प्रत्यय गारंटी निगम।
3. भारत में नवीन बैंकिंग की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?
4. भारतीय बैंकिंग प्रणाली के मुख्य दोष कौन से हैं? इन्हें दूर करने के सुझाव दीजिए।
5. भारतीय बैंकिंग प्रणाली से सम्बन्धित नरसिम्हम समिति की मुख्य सिफारिशों का वर्णन करें।

4.11 सन्दर्भ पुस्तकें

1. मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित्त (तृतीय संस्करण) – एम0एल0 झिंगन।
2. मुद्रा एवं बैंकिंग – शर्मा एवं शर्मा।
3. अर्थशास्त्र – डा0 जी0सी0 सिंघई, डा0 जे0पी0 मिश्रा, डा0 के0एल0 गुप्ता।
4. मुद्रा एवं वित्तीय प्रणालियॉ– डा0 सिन्हा एवं वार्ष्णेय।
5. अर्थशास्त्र – डा0 के0पी0 जैन।

इकाई–5 भारत में बैंकों का राष्ट्रीयकरण (Nationalization of Banks in India)

इकाई की रुपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण का औचित्य
5.3 बैंक राष्ट्रीयकरण के उद्देश्य
5.4 भारत में राष्ट्रीयकृत बैंकों के कार्यो का आलोचनात्मक मूल्यांकन
5.4.1 उपलब्धियॉ
5.4.2 असफलताएॅ
5.5 राष्ट्रीयकृत बैंकों की अधिक सफलता के उपाय
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 बोध प्रश्न
5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.10 स्वपरख प्रश्न
5.11 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण का औचित्य बता सकें ।
- बैंक राष्ट्रीयकरण के उद्देश्य बता सकें ।
- भारत में राष्ट्रीयकृत बैंकों के कार्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर सकें।
- राष्ट्रीयकृत बैंकों की अधिक सफलता के लिए उपाय बता सकें।

5.1 प्रस्तावना

1949 से पहले, भारत में वाणिज्यिक बैंकों का स्वामित्व, नियंत्रण और प्रबन्धन पूरी तरह निजी उद्यमियों और शेयर धारकों द्वारा किया जाता था। 1 जनवरी, 1949 को रिजर्व बैंक अधिनियम, 1948 (लोक स्वामित्व का हस्तान्तरण) पास करके भारतीय रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण करने से बैंकों के राष्ट्रीयकरण की प्रकिया शुरू हुई। भारतीय रिजर्व बैंक का देश के केन्द्रीय बैंक के रूप में राष्ट्रीयकरण करना आवश्यक था ताकि योजनाबद्ध विकास के पथ पर अग्रसर स्वतंत्र भारत में मौद्रिक, आर्थिक और राजकोषीय नीतियों का अधिक समन्वय सुनिश्चित किया जा सके।

परन्तु वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण का पहला कदम इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया को 1 जुलाई, 1955 को भारतीय स्टेट बैंक के रूप में राष्ट्रीयकृत करके उठाया गया। दूसरा कदम तब उठाया गया जब 1959 में 7 राज्य बैंकों को भारतीय स्टेट बैंक के सहयोगी बैंकों के रूप में राष्ट्रीयकृत कर दिया गया। ये 7 सहयोगी बैंक हैं– स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद, स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर, स्टेट बैंक ऑफ त्रावणकोर, स्टेट बैंक ऑफ मैसूर, स्टेट बैंक ऑफ पटियाला, स्टेट बैंक ऑफ इंदौर और स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र।

तीसरा मुख्य कदम उन 14 बड़े वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण था जिनकी जमा राशि 19 जुलाई, 1969 को 50 करोड़ रू0 से अधिक थी। वे हैं– इलाहाबाद बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा, बैंक ऑफ इण्डिया, बैंक ऑफ महाराष्ट्र, केनरा बैंक, सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, देना बैंक, इण्डियन बैंक, इण्डियन ओवरसीज बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, सिंडीकेट बैंक, यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, यूनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया और यूनाइटिड कामर्शियल (यूको) बैंक।

इस दिशा में अंतिम कदम 15 अप्रैल, 1980 को 6 और वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण था। वे बैंक हैं– आंध्र बैंक, कारपोरेशन बैंक, न्यू बैंक आफॅ इण्डिया, ओरिएंटल बैंक ऑफ कामर्स, पंजाब एण्ड सिन्ध बैंक और विजया बैंक। राष्ट्रीयकरण के समय इनमें से प्रत्येक बैंक की जमा राशि 200 करोड़ रू0 से अधिक थी जबकि 14 बैंकों के राष्ट्रीयकरण के समय उनमें से प्रत्येक बैंक की जमा राशि 50 करोड़ रू0 से अधिक थी।

फरवरी, 2019 में 27 राष्ट्रीयकृत बैंक थे, क्योंकि न्यू बैंक ऑफ इण्डिया को 1993 में पंजाब नेशनल बैंक में विलीन कर दिया गया।

5.2 वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण का औचित्य (Justification for Nationalisation of Commercial Banks)

भारत में वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण जुलाई, 1969 में 14 बड़े बैंकों के राष्ट्रीयकरण तक एक बहुत विवादास्पद मुद्दा था। अर्थशास्त्रियों, राजनीतिक नेताओं, बैंकरों, कामगारों और लोगों द्वारा बैंकों के राष्ट्रीयकरण के समर्थन में अनेक तर्क दिए गए जिनका वर्णन अग्रलिखित है –

1. **प्राथमिक क्षेत्रों की उपेक्षा** (Neglect of Priority Sectors)–

भारत में बड़े बैंकों के विरूद्ध एक बड़ा आरोप यह था, कि वे बड़े पैमाने के उद्योगों को ऋण देते थे और कृषि, लघु पैमाने के उद्योगों आदि जैसे प्राथमिक क्षेत्रों के उपेक्षा करते थे। मार्च, 1968 में बैंकों ने कुल बैंक ऋणों का 60 प्रतिशत बड़े उद्योगों और 19 प्रतिशत व्यापार क्षेत्र को दिया था। दूसरी ओर, इस कुल बैंक ऋण में कृषि का हिस्सा 2.2 प्रतिशत, लघु उद्योगों का 6.9 प्रतिशत और फुटकर व्यापार का 2 प्रतिशत से कम था। बड़े पैमाने पर प्रत्यक्ष बैंक ऋण देना, बैंक राष्ट्रीयकरण के जरिए ही सम्भव था।

2. **योजना प्राथमिकता की उपेक्षा** (Neglect of Plan Priorities)–

दूसरा आरोप यह था, कि वाणिज्यिक बैंकों ने योजना प्राथमिकता की उपेक्षा की और कम महत्वपूर्ण क्षेत्रों में ऋण दिए। बैंक राष्ट्रीयकरण से सरकार सक्षम होगी, कि वह बैंकों को योजना प्राथमिकताओं के अनुसार ऋण देने के लिए निर्देश दे सकेगी।

3. **उच्च लाभ** (High Profits)–

बैंकों पर यह आरोप भी लगाया गया, कि वे अत्यधिक लाभ कमाते थे और यह लाभ उनके द्वारा निवेशित पूँजी के अनुपात से कहीं अधिक था। वर्ष 1968 में अनुसूचित बैंकों का कर–पूर्व लाभ अनुपात प्रदत्त पूँजी और आरक्षण के 12.2 प्रतिशत से बढ़कर 42.5 प्रतिशत हो गया। उन्होनें 42.5 करोड़ रू0 वार्षिक आधार पर कमाए। दूसरी ओर, उनका पूँजी–आधार कम हो रहा था।

बैंकों की जमा की तुलना में पूँजी और जमा का अनुपात 1951 में 9.7 प्रतिशत से गिर 1968 में 2.6 प्रतिशत रह गया। यह भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा बैंकों को दिए गए उन निर्देशों के उल्लंघन में था, जिसके तहत बैंकों को अपनी जमा देयताओं का कम से कम 6 प्रतिशत आरक्षण के रूप में रखना था। बैंक जबकि अत्यधिक लाभ कमा रहे थे और उन लाभों का इस्तेमाल अपने हितों के लिए कर रहे थे, किन्तु शेयर धारकों की आय लगभग न के बराबर थी, क्योंकि शेयर–पूँजी के रूप में जमा का 1 प्रतिशत उनके पास था। बैंक के राष्ट्रीयकरण के लिए सरकार का एक यह भी तर्क था।

4. **योजनाओं के लिए निधियाँ** (Funds for Plans)–

बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके उपरोक्त अत्यधिक लाभ सरकार को उपलब्ध होगें और सरकार अपनी योजनाओं को वित्त सहायता उपलब्ध कराकर योजना उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेगी।

5. **आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण** (Concentration of Economic Power)–

यह आरोप लगाया गया था, कि वाणिज्यिक बैंकों से धन और आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण कुछ बड़े औद्योगिक घरानों और उद्योगपतियों के हाथों में हो गया था। उदाहरणार्थ, सेन्टल बैंक ऑफ इण्डिया लि0 टाटा द्वारा नियंत्रित, दि बैंक ऑफ इण्डिया लि0, मफतलाल द्वारा नियंत्रित, दि पंजाब नेशनल बैंक लि0, डालमिया द्वारा और यूनाइटेड कमर्शियल बैंक लि0 बिरला ग्रुप द्वारा नियंत्रित था। परिणाम स्वरूप, ये बड़े औद्योगिक घराने अनेक उद्योगों पर नियंत्रण करते थे, जिससे ऐसे कारोबार में उनका एकाधिकार था। इसके अलावा, बैंकों के निदेशक मण्डल के सदस्यों में लगभग 90 प्रतिशत उद्योगपति और बड़े व्यावसायिक लोग थे। बैंक का एकल निदेशक अन्य कई औद्योगिक कम्पनियों का साझा निदेशक था और बैंक पर अपने नियंत्रण के कारण वह बैंक का इस्तेमाल अपने औद्योगिक घराने के लाभ के लिए कर सकने में समर्थ थे। निदेशकता के इन अन्तःप्राशन (inter-locking) से बड़े औद्योगिक घरानों को असामान्य रूप से ऋण की काफी राशि प्राप्त होती रही। इसीलिए निदेशकों और उनकी कम्पनियों के हितों और कुछ व्यक्तियों के हाथों में आर्थिक शक्ति और धन के केन्द्रीयकरण को कम करने तथा बैंकों के संसाधनों के दुरूपयोग को रोकने के लिए बैंक राष्ट्रीयकरण आवश्यक था।

6. **समाजवादी तर्क** (Socialist Arguments)–

यह तर्क दिया गया कि भारत में समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बैंकों का राष्ट्रीयकरण आवश्यक था। यह कदम न केवल आर्थिक शक्ति और धन के केन्द्रीयकरण को कम करेगा अपितु राज्य को बैंकों के संसाधनों पर नियंत्रण प्रदान करेगा ताकि इन संसाधनों का इस्तेमाल आम जनता के लिए किया जा सके।

7. **क्षेत्रीय असंतुलन** (Regional Imbalances)–

यह आरोप लगाया गया, कि वाणिज्यिक बैंक क्षेत्रीय असंतुलन को बढ़ावा दे रहे थे। बैंकिंग प्रणाली बड़े शहरों, शहरी स्थानों और कुछ राज्यों में केन्द्रित थी। (Gadgil Study Group of the National Credit Council 1969) ने देश में बैंकिंग के असंतुलन को सुस्पष्ट ढ़ंग से बताया है। इस काउंसिल ने बताया कि

दिसम्बर 1967 तक भारत में 5,64,000 गॉवों में से 1 प्रतिशत गॉवों में भी वाणिज्यिक बैंकों की सेवाएँ उपलब्ध नहीं थी। देश के 13 जिलों में एक भी वाणिज्यिक बैंक की शाखा नहीं थी। 600 से अधिक कस्बों में वाणिज्यिक बैंक सेवाएँ नहीं थीं। देश में 63 जिले ऐसे थे, जिनमें प्रति व्यक्ति ऋण 1 रू0 से भी कम था।

8. भारतीय रिजर्व बैंक के निर्देशों की अवहेलना (Ignored RBI Directives)–

सुदृढ़ वित्तीय पृष्ठभूमि वाले बड़े बैंकिंग विनिमय अधिनियम, 1949 के अन्तर्गत प्रायः भारतीय रिजर्व बैंक के निर्देशों की अवहेलना करते थे। परिणाम स्वरूप, भारतीय रिजर्व बैंक नीति पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा। ऐसे बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके भारतीय रिजर्व बैंक मौद्रिक नीति को अधिक प्रभावशाली ढ़ंग से लागू करके लाभप्रद स्थिति में हो सकता था।

9. जमाकर्ताओं को सुरक्षा (Protection to Depositors)–

यह तर्क दिया गया कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण से लोगों के दिलो–दिमाग से बैंक के फेल होने का भय मिट जाएगा और जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा हो सकेगी। परिणाम स्वरूप, इससे लोगों, विशेषकर अर्थव्यवस्था के ग्रामीण गैर–मुद्रा आधारित लोगों में बैंकिंग आदतें पड़ेंगी।

10. अवांछित गतिविधियों पर रोक (Check of Undesirable Activities)–

वाणिज्यिक बैंक प्रायः समाज–विरोधी और अवांछित गतिविधियों में लिप्त रहते थे। वे ऐसी गतिविधियों के लिए ऋण देते थे, जिनसे सट्टा, मुनाफाखोरी, कालाबाजारी, आदि को प्रोत्साहन मिलता था। इससे बैंक खातों में काला धन इकट्ठा हो जाता था। बैंकों के राष्ट्रीयकरण से इन सब गतिविधियों पर रोक लग गई।

11. मुद्रा–स्फीति को बढ़ावा (Encouraged Inflation)–

यह आरोप लगाया गया, कि वाणिज्यिक बैंक भारतीय रिजर्व बैंक के निर्देशों की अनदेखी करके मुद्रा आपूर्ति को बढ़ा देते थे, जिससे मुद्रा आपूर्ति को बढ़ावा मिलता था। बैंक प्रायः अपने संसाधनों का इस्तेमाल अपने निदेशकों की इच्छानुसार तथा निदेशकों एवं उनके व्यवसायी मित्रों के लिए करते थे। इसलिए, वे भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी ऋण–प्रतिबन्ध के दिशा–निर्देशों का पालन नहीं करते थे। इससे मुद्रा स्फीति पैदा हो गई। इस प्रकार, बैंकों का राष्ट्रीयकरण एकमात्र उपाय समझा गया।

12. कार्यकुशलता में वृद्धि (Increase in Efficiency)–

यह तर्क दिया गया, कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण से बैंकों की कार्यकुशलता और उनकी ग्राहक सेवा में सुधार होगा, क्योंकि कर्मचारियों में अधिक सुरक्षा की भावना आयेगी। समूचे राष्ट्र में बैंकिंग कार्यकरणों के मानकीकरण (Standardisation) से कार्यकुशलता में वृद्धि होगी।

13. बेहतर प्रबन्धन (Better Management)–

बैंकों के राष्ट्रीयकरण से सरकार स्टाफ के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण और आधुनिक प्रबन्धकीय तकनीक विकसित करने और प्रदान करने की स्थिति में होगी।

14. बेहतर सेवा शर्ते (Better Service Conditions)–

यह आशा की गई, कि बैंक राष्ट्रीयकरण से कर्मचारियों को बेहतर सेवा शर्तों में कार्य करने का अवसर मिलेगा। उन्हें सरकारी कर्मचारी होने की संतुष्टि मिलेगी। इससे बैंक प्रबन्धक कर्मचारी संबंधों में सुधार होगा और देश में बैंकिंग व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए मार्ग प्रशस्त होगा।

15. अन्य देशों में सफलता (Success in other Countries)–

बैंक राष्ट्रीयकरण के समर्थकों ने तर्क दिया, कि अनेक विकसित और विकासशील राष्ट्रों में, जहाँ बैंकिंग सरकार के हाथ में थी, यह जनसाधारण की सहायता करने और विकास के संसाधन जुटाने में अत्यन्त सफल रहा है।

उदाहरण के लिए, इटली में 90 प्रतिशत, वाणिज्यिक बैंक सार्वजनिक क्षेत्र में थे। फ्रांस और जर्मनी में ऐसी स्थिति क्रमशः 80 प्रतिशत और 70 प्रतिशत थी। विकासशील राष्ट्रों में मिस्त्र, म्यांमार, इंडोनेशिया और श्रीलंका राष्ट्रीयकृत बैंकों का सफलतापूर्वक कार्य कर रहे थे।

5.3 बैंक राष्ट्रीयकरण के उद्देश्य (Objectives of Bank Nationalisation)

Banking Company (Acquisition and Transfer of Undertakings) Act, 1970, जिसके अन्तर्गत 19 जुलाई, 1969 को 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया, का मुख्य उद्देश्य 'राष्ट्रीय नीति और इसके उद्देश्य तथा इससे जुड़े मामले अथवा प्रासंगिक कार्य तथा अर्थव्यवस्था के विकास की आवश्यकताओं को बेहतर ढ़ंग से पूरा करना था'। ("To serve better the needs of development of the economy in conformity with national policy and objectives and matters connected therewith or incidental thereto".) तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गॉधी द्वारा 21 जुलाई, 1969 को संसद में दिए अपने वक्तव्य में उन विशिष्ट उद्देश्यों की रूपरेखा का उल्लेख किया जिनके पालन की आशा राष्ट्रीयकृत बैंकों से की गई थी। इन उद्देश्यों में शामिल है :–

1. लोगों की बचतों को यथा सम्भव बड़ी संख्या में जुटाना और इस राशि का इस्तेमाल हमारी योजना और प्राथमिकताओं के अनुसार उत्पादक उद्देश्यों के लिए करना।
2. बड़े सामाजिक उद्देश्यों के लिए बैंकिंग प्रचालनों को सुनिश्चित करना तथा इन्हें सार्वजनिक विनिमय के नजदीक लाना।
3. बड़े या छोटे निजी क्षेत्र उद्योग और व्यापार की वैधानिक ऋण आवश्यकताओं को पूरा करना।
4. अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रों, विशेषकर किसानों, लघु क्षेत्र के उद्योगों और स्वनियोजित व्यावसायिक समुदायों की आवश्यकताओं को बढ़ती दर पर पूरा करना।

5. देश के विभिन्न भागों में अब तक उपेक्षित और पिछड़े क्षेत्रों को ऋण के अवसर प्रदान करना और नए तथा प्रगतिशील उद्यमियों की वृद्धि का सक्रिय रूप से पोषण करना।
6. सट्टे और अन्य गैर–उत्पादक उद्देश्यों के लिए बैंक ऋणों के इस्तेमाल पर रोक लगाना।
7. बैंकिंग क्षेत्र में पर्याप्त व्यावसायिक प्रबन्धन और आधुनिक प्रबन्धकीय तकनीकें और विधियॉ विकसित करना।
8. बैंक स्टाफ को पर्याप्त प्रशिक्षण और सही शर्तो पर सेवाएँ प्रदान करना।
9. देश के सभी भागों में बैंकों के नेटवर्क का पर्याप्त रूप से विस्तार करना।
10. बैंकिंग में क्षेत्रीय और क्षेत्रक असंतुलन को कम करना तथा इसके जरिए आर्थिक विकास करना।

5.4 भारत में राष्ट्रीयकृत बैंकों के कार्यो का आलोचनात्मक मूल्यांकन (A Critical Appraisal of the Functioning of Nationalised Banks in India)

5.4.1 उपलब्धियॉ (Achievements)–

19 जुलाई, 1969 को 14 वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण, भारतीय बैंकिंग के इतिहास में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। भारतीय स्टेट बैंक और इसके साथ 7 सहयोगी बैंकों को 1959 में सार्वजनिक स्वामित्व के अन्तर्गत लाया गया। इसके उपरान्त 20 वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण होने के परिणाम स्वरूप बैंकिंग व्यवसाय का 90 प्रतिशत सार्वजनिक क्षेत्र के प्रत्यक्ष नियंत्रण, स्वामित्व और प्रबन्धन में आ गया। राष्ट्रीयकरण की कुछ उपलब्धियों की गणना निम्न प्रकार करते हैं।

1. शाखा विस्तार (Branch Expansion)–

बैंकिंग परिदृश्य में भौगोलिक और कार्यात्मक दोनों प्रकार से काफी परिवर्तन हुआ है। बैंकिंग उद्देश्य के लिए आधारभूत ढॉचा बनाने का उद्देश्य कुल मिलाकर प्राप्त हो गया है। सभी सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की जून, 1969 में 7015 शाखाओं और कार्यालयों से मार्च, 1998 में उनकी संख्या बढ़कर 44,621 हो गई। फरवरी 2019 में इनकी संख्या 33627 थी।

2. जमा वृद्धि (Deposit Growth)–

इसके अलावा, बैंक जमाओं में वृद्धि के रूप में कार्यात्मक विविधीकरण हुआ है। जून, 1969 में इन बैंकों की जमा 3,897 करोड़ रू0 थी जो मार्च, 1998 में बढ़कर 4,52,486 करोड़ रू0 हो गई। 2011 में स्टेट बैंक ग्रुप की जमा 12,45,862 करोड़ थी।

3. साख विस्तार (Credit Expansion)–

साख विस्तार के क्षेत्र में राष्ट्रीयकत बैंकों का प्रभावशाली रिकार्ड रहा है। उनके द्वारा दिए गए अग्रिमों (advances) की राशि जून, 1969 में 3035 करोड़ रू0 से बढ़कर मार्च 1998 में 2,67,830 करोड़ रू0 हो गई।

4. प्राथमिकता क्षेत्र को ऋण प्रदान करना (Priority Sector Lending)–

राष्ट्रीयकृत बैंकों में थोक बैंकिंग से फुटकर बैंकिंग के द्वारा बड़े परिवर्तन हुआ है। अन्य शब्दों में, कृषि, लघु क्षेत्रों के उद्योग, परिवहन, फुटकर व्यापार, पेशेवर एवं स्वनियोजित (self-employed) व्यक्ति तथा शिक्षा से युक्त

प्राथमिकता क्षेत्रों में ऋण वितरण पर अधिक जोर दिया गया है। राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा प्राथमिकता क्षेत्र को दिया गया ऋण जून 1969 में 441 करोड़ रू0 से बढ़कर मार्च 1998 में 91,391 करोड़ रू0 हो गया। इसी अवधि में प्राथमिकता क्षेत्र के ऋण का हिस्सा कुल ऋण के 14.6 प्रतिशत से बढ़कर 41.8 प्रतिशत हो गया जो 40 प्रतिशत लक्ष्य से अधिक था।

अन्य प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के अग्रिम, जिसमें छोटे परिवहन परिचालक, स्वनियोजित व्यक्ति, ग्रामीण कारीगर, सर्वाधिक कमजोर वर्ग के लिए विभेदक ब्याज दर (DRI) योजना आदि भी शामिल है, जो जून 1969 में 22 करोड़ रू0 थे, मार्च 1998 में बढ़कर 18,881 करोड़ रू0 हो गये। 1978–79 में गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे परिवारों के लिए एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) शुरू किया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 1969–84 के दौरान 17.00 लाख लाभार्थियों को ऋण और सब्सिडी के रूप में क्रमशः 1991 करोड़ रू0 और 1106 करोड़ रू0 की भूमि वितरित की गई। इस प्रकार इन बैंकों की आधे से अधिक निधियॉ इस समय पूर्णतया प्राथमिकता क्षेत्र में लगाई गई है।

5. ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग का विस्तार (Spread of Banking in Rural Areas)–

राष्ट्रीयकरण से लेकर अब ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग के विस्तार में पर्याप्त रूप से वृद्धि हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी संख्या में शाखाएँ खोलने की नीति के परिणाम स्वरूप मार्च, 1998 तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों की 43 शाखाएँ ग्रामीण और अर्द्ध–शहरी क्षेत्रों में कार्य कर रही थीं, जबकि जून, 1969 में राष्ट्रीयकरण के समय केवल 22 प्रतिशत शाखाएँ ग्रामीण और अर्द्ध–शहरी क्षेत्रों में स्थित थीं।

6. क्षेत्रीय अंतर को कम करना (Reduction in Regional Disparities)–

बैंकिंग सुविधाओं में क्षेत्रीय असंतुलन पर्याप्त रूप से कम हुआ है। अधिकांश शाखाएँ गैर–बैंकिंग क्षेत्रों में खोली गई हैं। जून, 1969 में असम में 74, हरियाणा में 172, हिमाचल में 42 और नागालैंड में केवल 2 बैंक शाखाएँ थीं। मार्च, 1998 में इनकी संख्या बढ़कर क्रमशः 830,1,098,634 और 62 हो गयी है। प्रति बैंक कार्यालय औसत जनसंख्या जो जून, 1969 में 65,000 थी, वह मार्च 1998 में 11000 प्रति बैंक हो गई।

7. कुछ नयी योजनाएँ (Some New Schemes)–

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक अपनी पारस्परिक भूमिका को छोड़कर कुछ नई योजनाएँ शुरू कर रहे हैं। बचत की नयी और अन्य प्रकार की योजनाएँ चलाने के अलावा इन बैंकों ने मर्चेन्ट बैंकिंग और लीजिंग भी शुरू की है तथा इसके अलावा म्यूचुअल फण्ड और जोखिम पूँजी फण्ड भी चलाये हैं। ग्राहक सेवा में सुधार करने के लिए अन्य अनेक कदम उठाये गये हैं। ग्राहकों के लिए क्रेडिट कार्ड और ए0टी0एम0 की सुविधाएँ प्रारम्भ की गई हैं। बाहरी उधार–पत्रों को शीघ्र प्राप्त करने के लिए दूत (courier) सेवाएँ शुरू की गई है। मृतक खाताधारी के कानूनी उत्तराधिकारियों की कठिनाईयों को कम करने के लिए जमाधारकों के लिए नामांकन सुविधा प्रदान की गई है। सभी बड़े शहरों में ग्राहक सेवा के केन्द्र

स्थापित किये गए हैं। निश्चित अवधि के उपरान्त ग्राहक–सम्बन्ध कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। ग्राहकों को

बेहतर सेवाएँ प्रदान करने के उद्देश्य से सही स्तर पर ग्राहकों की शिकायतों की सुनवाई की व्यवस्था की गई है। नौ राष्ट्रीय बैंकों ने विदेशों में अपने कार्यालय खोले हैं, जिससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और वित्त में लेन–देन बढ़े हैं।

5.4.2 असफलताएँ (Failures)–

ऊपर वर्णित उपलब्धियों के बावजूद सार्वजनिक बैंकों में अनेक कमियाँ हैं जिनकी हम चर्चा करेगें :–

1. ग्राहक सेवा योजना में गिरावट (Deterioration in Customer Service)–

सबसे बड़ी कमी ग्राहक सेवा में निरन्तर गिरावट आना है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से जुड़ी बुराईयाँ, इन बैंकों में भी घुस गई हैं जिसके परिणाम स्वरूप लालफीताशाही, अत्यधिक देरी और जिम्मेवारी की कमी को बढ़ावा मिला है। ग्राहक सेवा की गुणवत्ता में सुधार के लिए भारतीय रिजर्व बैंक के दिशा–निर्देशों के बावजूद शाखा–स्तर पर उनका पालन बहुत कम हुआ है। उदाहरण के लिए, काउंटर खोलने में देरी होती है और कई बार व्यर्थ में थोड़ी–थोड़ी देर के लिए काउंटर बंद कर दिए जाते हैं, जिससे ग्राहकों को असुविधा होती है। यूनियनबाजी के फैलने से शाखा–प्रबन्धक स्टाफ को नियंत्रित करने में असमर्थ होते हैं। अधिकांश शाखाओं में शिकायत पेटियाँ नहीं रखी जाती। इसके अलावा बड़े कार्यालयों में अपील करने के इच्छुक ग्राहकों की सहायता के लिए क्षेत्रीय/अंचल प्रबन्धकों के पते भी

प्रदर्शित नहीं किए जाते हैं। 5000 रू0 या इससे कम के बाहरी शहरों के चेकों के स्वयंमेव जमा होने और अन्य शहरों के चेकों की वसूली के मामले में तीन सप्ताह से अधिक का विलम्ब होने पर बचत बैंक दर पर ब्याज जमा करने जैसे सुविधाएँ ग्राहकों को नहीं प्रदान की जा रही है। इसके अलावा, अधिकतर बैंक शाखाएँ व्यवसायियों को नकदी के बदले बनवाये जाने वाले डिमांड ड्राफ्ट काफी देर से देती है।

2. राजनीतिक हस्तक्षेप (Political Interference)–

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा दिए जाने वाले ऋणों में बहुत अधिक राजनीतिक हस्तक्षेप होता है जिससे बैंकिंग मानदण्डों की पवित्रता नष्ट हो गई है। इससे सामाजिक बैंकिंग का उद्देश्य निष्फल हो जाता है और कदाचार को बढ़ावा मिलता है। इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण राजनीतिक रूप से आयोजित किए जाने वाले ऋण (Loan) मेले हैं।

3. अपर्याप्त सामाजिक बैंकिंग (Social Banking Inadquate)–

प्राथमिकता क्षेत्र को ऋण के प्रवाह के रूप में सामाजिक बैंकिंग अपर्याप्त है। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा दिए जाने वाले कुल अग्रिम से यह कम है। आज भी ये मुख्यतया कम्पनी क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं।

4. तुलनपत्रों का ऊपरी दिखावा (Window-dressing of Balance Sheets)–

सार्वजनिक क्षेत्र के कुछ बैंक तुलनपत्रों के ऊपरी दिखावे का सहारा ले रहे हैं ताकि उनके तुलनपत्रों से सही तस्वीर उजागर न हो जाये। राजकोषीय वर्ष के अंतिम सप्ताह में वे बनावटी तौर पर अपनी जमा–राशि बढ़ा लेते हैं। बैंकों में अपूर्ण और आंशिक लेखा परीक्षण के कारण वे ऐसा करने में असमर्थ होते हैं।

5. **बड़े पैमाने पर अनियमितताएॅ** (Large Scale Irregularities)–

सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक बैंक अपने कार्यों में बड़े पैमाने की अनियमितताएॅ अपना रहे हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं :–

(i) **शेयर सट्टे में लिप्तता** (Indulging in Share Speculation)–

कुछ बैंकों ने म्यूचुअल फण्ड और आनुषंगिक वित्तीय कम्पनियॉ शुरू की हैं और शेयर सट्टेबाजी में उनकी लिप्तता पाई गई है। उदाहरण के लिए, बैंक ऑफ बड़ौदा की एक आनुषंगिक कम्पनी 'बॉब फिस्कल' ने लार्सेन एण्ड टुब्रो के शेयरों को हाशिये पर लाने' के लिए रिलायंस कम्पनी हेतु धनराशि की व्यवस्था की। हर्षद मेहता द्वारा किया गया प्रतिभूति घोटाला तथा अन्य घोटालों से भारतीय स्टेट बैंक तथा अन्य बैंकों के शामिल होने के अनेक मामले प्रकाश में आये हैं।

(ii) **ऋण देने में पक्षपात** (Favouratism in Granting Loans)–

अनेक बैंकों के विरूद्ध ऋण प्रदान करने में पक्षपात का आरोप लगाया गया है। उदाहरणार्थ, विजया बैंक ने कुछ बड़े औद्योगिक घरानों और इनकी समूह कम्पनियों को अपने छोटे कोटों से बड़े ऋण दे दिए ताकि उधार प्राधिकरण योजना (CAS) के अन्तर्गत अनुमोदन से बचा जा सके।

(iii) **ऋण–सूची की खराब गुणवत्ता** (Bad Quality of Loan Portfolios)–

ऋण सूची की खराब गुणवत्ता के बावजूद बैंक बाहरी दबाव के अन्तर्गत ऋण प्रदान कर रहे हैं। कुछ बैंक ऋण देने में सामान्य वाणिज्यिक कार्यविधि को अपनाए बिना साधारण मामले के रूप में साख–पत्र और गारंटी–सीमा प्रदान कर रहे हैं।

(iv) **खातों में अनियमितताएॅ** (Irregularities in Accounts)–

सार्वजनिक क्षेत्र के कुछ बैंक अपने खातों के परिचालन में बड़े पैमाने की अनियमितताओं की आड़ में कार्य कर रहे हैं। कुछ मामलों में तो एक बैंक के डूबे हुए खाते बिना जॉच पड़ताल और विचार के स्वीकार कर लिए।

(v) **डूबे हुए ऋणों को बट्टे खाते डालना** (Writing off Bad Debts)–

इन बैंकों में डूबे हुए ऋणों की बड़ी राशि हो गई थी। ऋण अग्रिम प्रदान करने वाले अधिकारी द्वारा ही इन ऋणों को बट्टे खाते में डाल दिया जाता था। सरकार राष्ट्रीयकृत बैंकों को मार्च 1998 तक 3979 करोड़ रू0 की राशि बट्टे खाते में डालने की अनुमति दे चुकी थी। सरकार इन बैंकों को अप्रैल 2014 से सितम्बर 2017 तक 2.4 लाख करोड़ की राशि बट्टे खाते में डालने की अनुमति दे चुकी थी।

6. **घटती लाभप्रदता** (Declining Profitability)–

राष्ट्रीयकृत बैंकों की सर्वाधिक गम्भीर समस्या उनकी गिरती हुई लाभदायकता है। ऋण देने के परिचालनों में अनियमितताएॅ और भ्रष्टाचार, ऋणों का दुरूपयोग, धोखाधड़ी, बढ़ती हुई परिचालन लागत, और ग्राहक सेवा की

बिगड़ती हुई स्थिति से इन बैंकों की लाभप्रदता गिर रही है। इनका निवल लाभ–अनुपात 1996–97 में 0.62 प्रतिशत से घटकर 1997–98 में 0.38 प्रतिशत रह गया।

7. रूग्ण इकाईयों के रूप में कुछ बैंक (Some Banks as Sick Units)–

अक्टूबर, 1990 में भारतीय रिजर्व बैंक ने एक सर्वेक्षण में पाया कि सभी बैंकों की हालत खराब थी। इस सर्वेक्षण में बैंकों की रूग्ण बैंक के रूप में पहचान की गई। 1993 में 5 और बैंक इस रूग्ण बैंकों की सूची में शामिल हो गए। न्यू बैंक ऑफ इण्डिया तो इतना रूग्ण हो गया कि सरकार ने 4 सितम्बर, 1993 को इसका पंजाब नेशनल बैंक में विलय कर दिया। सरकार प्रति वर्ष ऐसे रूग्ण बैंकों के पुनर्पूंजीकरण के लिए वित्तीय सहायता देती है। मार्च, 1998 तक सरकार से बैंकों को 20,046 करोड़ रू0 पूँजी योगदान प्राप्त हुआ।

8. अनर्जक परिसम्पत्तियों में वृद्धि (Increase in Non-Performing Assets)–

राष्ट्रीयकृत बैंकों की अनर्जक परिसम्पत्तियॉ जिनमें संदिग्ध, निम्न स्टैण्डर्ड और हानि परिसम्पत्तियॉ शामिल हैं, उनमें वृद्धि हो रही है। ऐसा बैंकों के अग्रिमों की वापसी न होने के कारण हैं। मार्च, 1993 में ऐसी अनर्जक परिसम्पत्तियों की कुल राशि 39,253 करोड़ रू0 थी जो मार्च, 1998 में बढ़कर 45,653 करोड़ रू0 हो गई।

5.5 राष्ट्रीयकृत बैंकों की अधिक सफलता के उपाय (Measures for the success of Nationalised Banks)

बैंकों के राष्ट्रीयकरण का उद्‌देश्य देश में समाजवादी समाज के लिए उचित वातावरण निर्माण करना था। ऐसी तभी सम्भव है, जबकि समाज के साधारण नागरिकों तथा आर्थिक दृष्टि से दुर्बल वर्गों को पर्याप्त आर्थिक सहायता मिले, ताकि वे अपना जीवन–स्तर ऊँचा उठा सके। दूसरी ओर बैंकों में जनता का धन जमा होता है, उसका प्रयोग अच्छे से अच्छे ढ़ंग से होना चाहिए, ताकि यह धन डूब न जाय। इन दोनों बातों में समन्वय स्थापित करने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जाने चाहिए, ताकि राष्ट्रीयकृत बैंकों में जनता का विश्वास बढ़े और वह समाज के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो सके।

(1) अधिक कुशल सेवा प्रदान करना (Efficient Service)–

राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा जनता (ग्राहकों) की अधिकतम सेवा करने की योजनाएॅ बनायी जानी चाहिए। यह काम दो प्रकार से किया जा सकता है :–

(i) बैंक कर्मचारियों के मानसिक परिवर्तन के लिए हल्के अल्पकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए, ताकि वह स्वयं को जनता के सेवक के रूप में मानना सीख जायें।

(ii) राष्ट्रीयकृत बैंकों को अपनी सेवा–स्तर (service-level) के सम्बन्ध में जनता का मत जानने के लिए स्थायी व्यवस्था करनी चाहिए। इस कार्य के लिए ग्राहकों को समय–समय प्रश्नावलियॉ भेजी जा सकती है, उनसे प्राप्त उत्तरों को सारणीबद्ध कर बैंक के कर्मचारियों में बॉटा जा सकता है। इससे बैंक के कर्मचारियों को अपने बारे में जनता की राय का पता

चलता रहेगा। श्रेष्ठ काम करने वाले, उत्साही एवं परिश्रमी कर्मचारियों के लिए उचित प्रोत्साहन (पारितोषिक, पदोन्नति, आदि) की व्यवस्था की जानी चाहिए। कम काम करने वाले तथा अनुशासनहीन कर्मचारियों के लिए कड़ी सजा की व्यवस्था करना भी आवश्यक है।

(iii) सभी बड़े बैंकों में विभिन्न प्रकार के परिश्रम एवं समय बचाने के यन्त्रों एवं शीघ्र कार्य करने वाले उपकरणों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(2) सरकारी नीति का पालन (Implementation of Govt. Policy)–

राष्ट्रीयकृत बैंकों के अधिकारियों का यह कर्तव्य है कि, देश की आर्थिक नीति से परिचित रहें और अपनी योजनाओं को नियमित रूप में सरकारी नीति के अनुसार बदलते रहें या उनमें सुधार करते रहें। इससे देश के आर्थिक नियोजन में अपने आप सफलता मिलेगी और बैंकों के सक्रिय योगदान से जनता को भी लाभ होगा।

(3) प्रशिक्षण व्यवस्था को बढ़ाना (Expansion of Training Facilities)–

राष्ट्रीयकृत बैंकों की शाखाओं का जिस गति से विस्तार हुआ है उस गति से बैंकों में काम करने वाले व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण सुविधाओं एवं योग्य कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि नहीं हुई है। इन बैंकों को जिला–स्तर पर प्रशिक्षण के कार्यक्रम चालू करना चाहिए, जिसमें बैंकिंग के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्ष की जानकारी के अतिरिक्त अन्य देशों में दी जाने वाली सेवाओं की जानकारी दी जानी चाहिए।

इस कार्य के लिए प्रति वर्ष कुछ व्यक्तियों को विदेशी बैंकों में प्रशिक्षण के लिए भेजना भी उपयोगी हो सकता है।

(**4**) लागत में कमी करना (Cutting Costs)–

राष्ट्रीयकृत बैंकों को अपनी लागत घटाने के लिए प्रयत्न करने चाहिए। इस दिशा में निम्नलिखित कार्य उपयोगी हो सकते हैं।

(i) देश के 20 राष्ट्रीयकृत बैंकों को आपस में मिलाकर कुल 5 बैंकों में बदल देना चाहिए। इससे बैंकों की प्रबन्ध व्यवस्था के खर्च में पर्याप्त बचत होगी।

(ii) जिन क्षेत्रों में बैंकिंग शाखाओं का संकेन्द्रण है, उनमें अतिरिक्त कार्यालयों को बन्द कर देना चाहिए। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखा जाना चाहिए, कि बैंकों की कुशलता तथा सेवा के स्तर में गिरावट न आने पाये।

(5) प्रबन्ध व्यवस्था को लोचदार बनाना (Flexible Management)–

राष्ट्रीयकृत बैंकों को नौकरशाही, राजनीतिक प्रभाव तथा लालफीताशाही से मुक्त रखना बहुत आवश्यक है। बैंकों में इन वर्गों का प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा है, जिसमें बैंकों में नागरिकों की आस्था डगमगाने लगी है। यदि सरकार ने इस दिशा में ढील दिखायी, तो राष्ट्रीयकरण से लाभ होने के स्थान पर हानि होने लगेगी, जो देश की अर्थ व्यवस्था के लिए हानिकारक हो सकती है।

5.6 सारांश

जब सरकार किसी उद्योग का व्यापार या स्वामित्व स्वयं ग्रहण कर लेती है तो इस क्रिया को राष्ट्रीयकरण कहते हैं। इस व्यवस्था में सम्बन्धित उद्योगों का अधिकार सरकार के हाथ में आ जाता है, उसके संचालन की व्यवस्था सरकार द्वारा की जाती है और उससे सम्बन्धित नीतियों का निर्धारण और पालन भी

सरकार द्वारा होता है। इस प्रकार, राष्ट्रीयकरण करने पर किसी उद्योग का स्वामित्व, नीति निर्धारण, संचालन तथा नियंत्रण आदि सभी कार्य सरकार के हाथ में आ जाते हैं।

बैंक राष्ट्रीयकरण से आशय बैंकों के प्रबन्ध संचालन एवं नियंत्रण सरकार के अधिकार में लेने से है। राष्ट्रीयकरण के अन्तर्गत अध्यादेश जारी करके बैंक का प्रबन्ध एवं नियंत्रण सरकार अपने हाथ में ले लेती है। देश में सन् 1955 में भारतीय स्टेट बैंक सन् 1958 में स्टेट बैंक के 8 सहायक बैंक, सन् 1969 में 14 बड़े व्यापारिक बैंक तथा 1980 में 6 बड़े व्यापारिक बैंकों को सरकार ने अपने अधिकार में ले लिया था अर्थात् इन बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया था। राष्ट्रीयकरण के बाद बैंक सरकारी बैंक बन जाते हैं और इनमें कार्य करने वाले सभी अधिकारी व कर्मचारी सरकारी सेवक माने जाते हैं, जिन पर सरकार के नियम लागू होते हैं।

5.7 शब्दावली

राष्ट्रीयकरण	–	जब सरकार किसी उद्योग का व्यापार या स्वामित्व स्वयं ग्रहण कर लेती है तो इस क्रिया को राष्ट्रीयकरण कहते हैं।
अध्यादेश	–	सरकार के आदेश को अध्यादेश कहते हैं।
मौद्रिक	–	मौद्रिक का अर्थ मुद्रा सम्बन्धी है।
विलीन	–	विलीन का अर्थ मिला देने से है।
निधि	–	निधि का अर्थ कोष से है।
तुलनपत्रों	–	तुलनपत्रों का अर्थ आर्थिक–चिट्ठा से है।
ऊपरी दिखावा	–	सही तस्वीर न दिखाना।
रूग्ण इकाई	–	रूग्ण इकाई का अर्थ बिमार इकाई से है जिनकी आर्थिक स्थिति खराब हो।
अनर्जक परिसम्पत्तियॉ	–	अनर्जक परिसम्पत्तियॉ से अर्थ गैर–निष्पादित सम्पतियों से है।
परिचालन	–	परिचालन का अर्थ संचालन से है।

5.8 बोध प्रश्न

1. राष्ट्रीयकरण करने पर किसी उद्योग का निम्नलिखित कार्य सरकार के हाथ में आ जाते हैं।

(A) उद्योग का स्वामित्व
(B) उद्योग का नीति निर्धारण
(C) उद्योग का संचालन तथा नियन्त्रण
(D) उपरोक्त सभी

2. 14 प्रमुख निजी व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण करने की घोषणा की गयी–

(A) 19 जुलाई 1968
(B) 19 जुलाई 1969

(C) 19 जुलाई 1971
(D) 19 जुलाई 1972

3. 19 जुलाई 1969 को 14 प्रमुख निजी व्यापारिक बैंक जिनका राष्ट्रीयकरण किया गया, की जमाएॅ –

(A) 30 करोड़ रूपये से अधिक थी
(B) 40 करोड़ रूपये से अधिक थी
(C) 50 करोड़ रूपये से अधिक थी
(D) 200 करोड़ रूपये से अधिक थी

4. भारत के 14 निजी व्यापारिक बैंकों का स्वामित्व, जिनकी जमा राशि 50 करोड़ रूपये से अधिक थी, सरकारी अधिकार में लिया गया, इन बैंकों के नाम निम्नलिखित थे–

(A) सेन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया
(B) पंजाब नेशनल बैंक
(C) सिण्डीकेट बैंक
(D) उपरोक्त सभी

5. प्रथम चरण में कितने निजी व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया–

(A) 6
(B) 14
(C) 20
(D) उपरोक्त में से कोई नहीं

6. द्वितीय चरण में कितने निजी व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया–

(A) 6
(B) 14
(C) 20
(D) उपरोक्त में से कोई नहीं

7. 6 अन्य निजी बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया–

(A) 15 अप्रैल 1980
(B) 14 मार्च 1980
(C) 19 जुलाई 1969
(D) इनमें से कोई नहीं

8. 6 अन्य निजी बैंक का राष्ट्रीयकरण किया गया 15 अप्रैल 1980 को, के नाम थे–

(A) आन्ध्रा बैंक
(B) विजया बैंक
(C) कारपोरेशन बैंक
(D) उपरोक्त सभी

9. 15 अप्रैल 1980 को भारत सरकार ने 6 अन्य निजी बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया, जिनकी जमाएॅ 14 मार्च 1980 को थी –

(A) 50 करोड़ रूपये से अधिक

(B) 200 करोड़ रूपये से अधिक
(C) 300 करोड़ रूपये से अधिक
(D) इनमें से कोई नहीं

10. गोरवाला समिति ने अपनी रिपोर्ट कब प्रस्तुत की थी?
(A) 1954
(B) 1958
(C) 1960
(D) 1962

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. D 2. B 3. C 4. D 5. B 6. A
7. A 8. D 9. B 10. A

5.10 स्वपरख प्रश्न

I. <u>दीर्घ उत्तरीय प्रश्न</u>–

1. सरकार ने भारत में वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण क्यों किया? 1969 से इन बैंकों की क्या उपलब्धियॉ हैं?
2. भारत में राष्ट्रीयकृत बैंकों की उपलब्धियों और असफलताओं की चर्चा करें।
3. भारत में राष्ट्रीयकृत बैंकों के आलोचनात्मक मूल्यांकन की विवेचना करें।
4. भारत में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के क्या उद्‌देश्य थे? इन उद्‌देश्यों को कहॉ तक प्राप्त किया गया है?

II. <u>लघु उत्तरीय प्रश्न</u>

1. बैंकों के राष्ट्रीयकरण से क्या तात्पर्य है?
2. प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों को ऋण देने में व्यापारिक बैंक कहॉ तक सफल रहे हैं?
3. बैंक को राष्ट्रीयकरण के विपक्ष में तर्क दीजिए।
4. विकासशील देशों के विकास में व्यावसायिक बैंकों की भूमिका की विवेचना कीजिए?
5. बैंक के राष्ट्रीयकरण से आप क्या समझते हैं?

5.11 सन्दर्भ पुस्तकें

1. मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोक वित्त (तृतीय संस्करण) – एम0एल0 झिंगन
2. मुद्रा एवं बैंकिंग – शर्मा एवं शर्मा
3. अर्थशास्त्र – डा0 जी0सी0 सिंघई, डा0 जे0पी0 मिश्रा, डा0 के0एल0 गुप्ता
4. मुद्रा एवं वित्तीय प्रणालियॉ– डा0 सिन्हा एवं वार्ष्णेय
5. अर्थशास्त्र – डा0 के0पी0 जैन

इकाई 6 भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड की भूमिका (सेबी)

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड की स्थापना की आवश्यकता और उद्देश्य
6.3 भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड का प्रबन्ध एवं संगठन संरचना
6.4 भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड के कार्य
6.5 भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड के अधिकार एवं शक्तियाँ
6.6 भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड की भूमिका
6.7 सारांश
6.8 शब्दावली
6.9 बोध प्रश्न
6.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.11 स्वपरख प्रश्न
6.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड की व्याख्या कर सके ।
- भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड की स्थापना की आवश्यकता और उद्देश्य की व्याख्या कर सके ।
- सेबी के कार्य, अधिकार एवं शक्तियों का वर्णन कर सकें ।
- सेबी की भूमिका को जान सकें।

6.1 प्रस्तावना

स्कन्ध विपणि किसी भी देश की आर्थिक प्रगति का मापक यन्त्र है और पूँजी बाजार की वह धुरी है जो पूँजी को लाभकर एवं सरल उद्योगों की ओर आकर्षित करती है, परन्तु विगत दशक में स्कन्ध विपणि में अनेक उतार चढ़ाव हुये हैं ओर उसकी अनेक कमियां और कमजोरियाँ परिलक्षित हुयी हैं। विशेषकर अंशधारियों के हितों के प्रति कम्पनियों की उदासीनता तीव्रता से बढ़ी है। अंशधारियों को भुगतान में विलम्ब, पारदर्शिता का अभाव, प्रक्रियाओं की जटिलता आदि के कारण अंशधारियों के हित नकारात्मक रूप से प्रभावित हुये हैं। अंशों के मूल्यों में कम्पनियों की दोषपूर्ण नीतियों के कारण असामान्य उतार–चढ़ाव, कम्पनियों द्वारा अंशधारियों के हितों को अनदेखा करने की प्रवृति व्यापक रूप से स्कन्ध विपणि में देखने को मिली है। इन सब प्रवृतियों पर अंकुश लगाने के उदेश्य से रिज़र्व बैंक एवं सरकारी स्तर पर व्यापक चिन्तन किया गया और एक ऐसी संस्था के गठन की परिकल्पना पर विचार किया गया जो इन प्रवृतियों पर अंकुश लगाकर अंशधारियों के हितों की सुरक्षा कर सके तथा सरकारी आर्थिक उदारीकरण की नीतियों के फलस्वरूप पूँजी बाजार में जनता की रूचि बढ़ाने और उनके निवेश को सुरक्षित कर सके। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए सन् 1992 में भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड अधिनियम के अन्तर्गत भारतीय

प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (SEBI) का गठन किया गया। यद्यपि गैर संवैधानिक रूप से इसका गठन 12 अप्रैल, 1988 में ही कर दिया गया था, परन्तु इसे संवैधानिक स्वरूप 4 अप्रैल, 1992 में प्रदान किया गया। इसका मुख्यालय मुम्बई में है सेबी को यह अधिकार है कि अन्य स्थानों पर कार्यालय स्थापित कर सकता है। सेबी के दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई आदि में क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किये गये हैं।

6.2 भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड की स्थापना की आवश्यकता और उद्देश्य

नरसिम्हन समिति की सिफारिशों के आधार पर गठित भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड के गठन से पूर्व रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया इस कार्य को करता था, परन्तु रिजर्व बैंक का कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होने के कारण प्रशासनिक स्तर पर यह अनुभव किया गया कि एक ऐसी संस्था का गठन अत्यन्त आवश्यक है जो कि स्कन्ध बाजार की गतिविधियों को ही नियमित एवं नियन्त्रित करने का कार्य करे। यही विचारधारा भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड के गठन का मूल कारण बनी।

सेबी की स्थापना का मूल उद्देश्य स्कन्ध बाजार में व्याप्त अनियमिताओं पर नियन्त्रण तथा अंशधारियों के हितों की सुरक्षा करना है। इसके अतिरिक्त इसका उद्देश्य पूँजी बाजार, मर्चेंट बैंकों, म्यूचल फण्डों, विदेशी विनियोगों आदि को भी विनियमित एवं नियन्त्रित करना है। सेबी के उद्देश्यों में स्टॉक एक्सचेंज की सकारात्मक क्रियाओं को प्रोत्साहित करना और विनियोक्ताओं की शिकायतों एवं असन्तुष्टि का शीघ्र निस्तारण भी सम्मिलित है।

6.3 भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड का प्रबन्ध एवं संगठन संरचना

स्कन्ध विनियम केन्द्रों में प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय में पारदर्शिता लाने तथा सभी व्यवहारों को नियमानुसार संचालित करने के लिए जिस स्वतन्त्र इकाई का गठन 4 अप्रैल 1992 को किया गया। उसे सेबी कहते हैं। सेबी प्रतिभूति बाजार के माध्यम से साधनों को गतिशीलता प्रदान करता है और बाजार विकास के लिए वातावरण तैयार करता है। इसके लिए नियम एवं शर्ते, संस्थाओं में आपसी सम्बन्ध, संस्थाओं के उपकरण, आधारभूत नीतियाँ, संस्थाओं की कार्यप्रणाली, क्रियाएँ आदि को किया जाता है। **सेबी अधिनियम 1992** के अनुसार,"सेबी एक नियमित संस्था है जिसका अविच्छिन्न उत्तराधिकार होता है। इसको अपने नाम मे वाद करने, चल तथा अचल सम्पत्ति पाने, धारण करने तथा निपटान करने का अधिकार होता है। सेबी पर वाद भी किया जा सकता है।"

सेबी का प्रबन्ध– सेबी का प्रबन्ध नौ सदस्यीए बोर्ड द्वारा किया जाता है। जिसका स्वरूप इस प्रकार है–

1. एक अध्यक्ष जिसकी नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा की जाती हैं।
2. केन्द्र सरकार द्वारा नामांकित दो सदस्य जो केन्द्रीय मंत्रालय के अधिकारी होते हैं जो वित्त और कानून के विशेषज्ञ होते हैं।
3. रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा नामांकित एक सदस्य।
4. पाँच अन्य सदस्य जिनकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है जिनमें से कम से कम तीन पूर्णकालीन सदस्य होंगे।

सेबी की संगठन संरचना– सेबी द्वारा अपने क्रियाकलापों को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए एक संगठन संरचना तैयार की है। जिसमें सेबी के सात सम्भाग निर्धारित किये गये हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. **प्राथमिक बाजार सम्भाग**– यह सम्भाग प्राथमिक बाजार से सम्बनित विभिन्न पहलुओं का निरीक्षण, निर्देशन एवं प्रबन्ध करता है। इसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

(A) प्राथमिक बाजार सम्बन्धी नीतियो एवं नियमों का निर्माण करना।
(B) प्राथमिक बाजार के मध्यस्थों का पंजीयन करना व उनके कार्यो को नियन्त्रित करना।
(C) निवेशकों की शिकायतों व समस्याओं का समाधान करना।
(D) ऋणपत्र प्रन्यासियों का पंजीयन एवं नियमन करना।
(E) प्राथमिक बाजार से जुड़े हूए स्वायत्तशासी संगठनों का नियमन एवं नियन्त्रण करना।
(F) निवेशकों का मार्गदर्शन करना।
(G) निवेशक संघों को मान्यता प्रदान करना तथा उनका पंजीयन करना।
(H) निवेश परामर्शदाताओं एवं अभिगोपकों का नियमन।

2. **निर्गमन प्रबन्ध एवं मध्यस्थ सम्भाग**–इस सम्भाग का कार्य कम्पनियों के निर्गमनों पर ध्यान रखना तथा मध्यस्थों की क्रियाओं पर निगाह रखना है। इसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

(i) नवीन पूँजी निर्गमन प्रस्तावों पर प्रविवरणों की जाँच करना।
(ii) सार्वजनिक एवं प्रथम अधिकार निर्गमनों का नियमन करना।
(iii) निर्गमनों से सम्बन्धित मार्ग–दर्शन नियमों का निर्माण करना तथा उनके क्रियान्वयन को सुनिश्चित करना।
(iv) निर्गमन से सम्बन्धित पक्षकारों को परामर्श प्रदान करना।
(v) निर्गमनों से समबन्धित मध्यस्थों का पंजीयन, नियमन व नियन्त्रण करना।
(vi) कम्पनी से अंशों के आबंटन के बाद सूचनाएँ माँगना एवं भूल या त्रुटि होने पर आवश्यक कार्यवाही करना।

3. **सहायक बाजार प्रशासन सम्भाग**– यह सम्भाग सहायक बाजार की क्रियाओं का नियमन एवं नियन्त्रण करता है इसके मुख्य कार्य निम्नलिखित है–

(i) स्कन्ध विनिमय केन्द्रों के सदस्यों का पंजीयन करना तथा इनके कार्यो का नियमन करना।
(ii) सहायक बाजार के नीतिगत एवं नियमन समबन्धी मामलों की देख–रेख करना।
(iii) स्कन्ध विनियम केन्दों के सूचकांकों पर निगाह रखना।
(iv) आन्तरिक व्यवहारों का नियमन एवं नियन्त्रण करना।
(v) समंकों को उपलब्ध कर उन्हें व्यवस्थित कर सम्बन्धित पक्षकारों को उपलबध कराना।
(vi) आपातकालीन स्थिति में किसी भी स्कन्ध विनिमय केन्द्र की कार्यकारिणी समिति के पद को ग्रहण करना।

4. **स्कन्ध विनिमय केन्द्र–प्रबन्ध सम्भाग–** यह सम्भाग भिन्न–भिन्न स्कन्ध विनिमय केन्द्रों के प्रबन्ध सम्बन्धी सभी कार्यो पर ध्यान रखता है। इसके मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

(i) उप–दलालों एवं प्रतिभूति एजेन्सियों का पंजीयन एवं नियमन करना।

(ii) कुछ विनिमय केन्द्रों का प्रत्यक्ष नियमन व नियन्त्रण करना या इन्हें प्रबन्धकीय निर्देश देना।

(iii) सभी विनिमय केन्द्रों का निरीक्षण एवं नियमन करना।

5. **संस्थागत निवेश, अधिग्रहण, शोध एवं प्रकाशन सम्भाग–** इस सम्भाग के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं।–

(i) विदेशी संस्थागत निवेशक संस्थाओं का पंजीयन एवं नियमन करनां

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के स्कन्ध विनिमय केन्द्रों की कार्यप्रणाली का अध्ययन करना तथा उसका देश में प्रचलित कार्यप्रणाली के साथ समन्वय करना।

(iii) स्कन्ध विनिमय केन्द्रों के सम्बन्ध में आवश्यक शोध करना तथा उसके परिणामों को प्रकाशित करना।

(iv) साहस पूँजी, पारस्परिक निधियों, सामूहिक कोषों का नियमन एवं नियन्त्रण करना।

6. **विधि सम्भाग–** इस सम्भाग का कार्य प्रतिभूतियों से सम्बन्धित कानूनों का अध्ययन एवं प्रावधानों के क्रियान्वयन पर नजर रखना है। यदि प्रावधानों का पालन में त्रुटि है तो यह सम्भाग कानूनी कार्यवाही करता है। यह सम्भाग "सेबी" के विरूद्ध की गयी अपीलों का जबाव देता है तथा अन्य विधिक समस्याओं का समाधान करता है।

6.3.7 अन्वेषण सम्भाग– इस सम्भाग का प्रमुख कार्य स्कन्ध विनिमय केन्द्रों उसके मध्यस्थों, प्राथमिक बाजारों में असूचीबद्ध प्रतिभूतियों के सौदों, कपटपूर्ण व्यवहारों आदि क्रियाओं पर निगाह रखना है। यह सम्भाग इनकी पुनरावृत्ति रोकने के लिए आवश्यक उपाय भी करता है।

6.4 भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड के कार्य

सेबी के कार्य निम्नलिखित हैं–

1. प्रतिभूति बाजार में निवेशको को सुरक्षा प्रदान करना तथा प्रतिभूति बाजार को विकसित एवं नियमित करना।
2. स्कन्ध विपणि तथा किसी भी अन्य प्रतिभूति बाजार में व्यवसाय का नियमन करना।
3. स्टॉक दलाल, उप–दलाल, अंश हस्तान्तरण एजेन्ट, ट्रस्टी, मर्चेन्ट बैंकर्स, अंकेक्षक, पोर्टफोलियों प्रबन्धक आदि के कार्यो का नियमन करना एवं उन्हें पंजीकृत करना।
4. मयूच्युल फण्ड को सम्मिलित करते हुए सामूहिक निवेश की योजनाओं को पंजीकृत करना तथा उसका नियमन करना।
5. स्वयं नियमित संगठनों को प्रोत्साहित करना।
6. स्कन्ध बाजार से समबन्धित अनुचित व्यापार व्यवहारों को समाप्त करना।
7. स्कन्ध बाजार से जुड़ेलोगों को प्रशिक्षित तथा निवेशकों की शिक्षा को प्रोत्साहित करना।
8. प्रतिभूतियों के आन्तरिक व्यापार पर नियन्त्रण लगाना।

9. स्कन्ध बाजार में कार्यरत विभिन्न संगठनों के कार्यकलाापों का निराक्षण करना एवं सुव्यवस्था सुनिश्चित करना।
10. कम्पनियों के अंशों के सारवान क्रय और अधिपत्य प्राप्त करने को विनियमित करना।
11. प्रतिभूति प्रसंविदा (नियमन) अधिनियम 1956 के प्रावधानों के अन्तर्गत ऐसे कार्यो को सम्पादित करना एवं अधिकारों का अनुपालन करना जो केन्द्रीय सरकार द्वारा इसे भारार्पित किये गये हों।
12. उपयुक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लए शोध का कार्य करना।
13. ऐसे अन्य कार्य सम्पादित करना जो निर्धारित किये जाए।

6.5 भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड के अधिकार एवं शक्तियाँ

सेबी को अपने कार्यो को सलतापूर्वक निष्पादन करने के लिए कुछ अधिकार एवं शक्तियाँ प्राप्त हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. प्रतिभूति बाजार में विनियोक्ताओं के हितों की रक्षा करना।
2. स्कन्ध विनिमय केन्द्रों एवं पारस्परिक कोष एवं इनसे जुड़े हुए व्यक्तियों से निरीक्षण करने, जाँच करने एवं अंकेक्षण करने के लिए सूचना माँगने का अधिकार।
3. प्रतिभूति बाजारों में कपटपूर्ण व अनुचित व्यापार व्यवहारों पर रोक लगाने का अधिकार।
4. प्रतिभूतियों के आन्तरिक व्यापार सौदों को रोकने का अधिकार।
5. शुल्क तथा खर्चे निर्धारित करने का अधिकार।
6. स्कन्ध विनिमय केन्द्रों के नियमों एवं उपनियमों के अनुमोदन करने का अधिकार।
7. स्कन्ध विनियम केन्द्रों के अधिकार अपने हाथ में लेने की शक्ति।
8. स्कन्ध विनिमय केन्द्रों को मान्यता प्रदान करने अथवा उससे निरस्त करने का अधिकार।
9. स्कन्ध विनिमय केन्द्रों तथा इनकी क्रियाओं और पूँजी बाजार का आवश्यकतानुसार तथा परिस्थितियों के अनुसार विनिमयन करना।
10. स्वयत्तशासी संगठनों को प्रोत्साहित करना व उनका नियमन करना।
11. साहस पूँजी कोषों तथा पारस्परिक निधियों सहित अन्य सामूहिक निवेश योजनाओं का पंजीयन व नियमन।
12. प्रतिभूति अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त अधिकारी का उपयोग करना।
13. प्रतिभूति बाजार के मध्यस्थों का पंजीयन व नियमन तथा इनके बारे में पर्याप्त सूचनाएँ रखने का अधिकार।
14. ऐसी विनिर्दिष्ट संस्थाओं से सूचनाएँ माँगने का अधिकार जो बोर्ड के कार्यों के कुशलतम निष्पादन के लिए आवश्यक हैं।
15. किसी भी मान्यता प्राप्त स्कन्ध विनिमय केन्द्र में किसी भी व्यवहार को उचित आधार पर निरस्त करने का अधिकार।
16. प्रतिभूति बाजार के निवेशकों की शिक्षा तथा मध्यस्थों के प्रशिक्षण को प्रोत्साहित करना।

17. निक्षेप निधियों व उसके भागीदारों, प्रतिभूतियों के संरक्षकों, विदेशी संस्थागत निवेशकों, क्रेडिट रेटिंग संस्थाओं तथा अन्य मध्यस्थों का पंजीयन व नियमन करना।
18. कम्पनियों के प्रविवरणों में विशिष्ट बातों का उल्लेख करने हेतु उन्हें बाध्य करने का अधिकार।
19. प्रविवरण की जाँच तथा निर्गमन कार्य जारी करने की शक्ति।
20. बोर्ड के कार्य निष्पादन के लिए कार्यवाही करने का अधिकार।
21. केन्द्र सरकार द्वारा समय–समय पर सौपे गये कार्यों, अधिकारों आदि का अनुपालन में प्रयुक्त शक्तियाँ।
22. स्कन्ध विनिमय द्वारा अपने यहाँ प्रतिभूतियों का सूचीयन न करने के विरूद्ध अपील की सुनवाई का अधिकार।
23. कम्पनियों के अंशों का वृहत स्तरीय क्रय करने तथा कम्पनियों की अधिग्रहण क्रियाओं का नियमन करना।
24. इस अधिनियम (सेबी अधिनियम) के पालन न करने वालों पर अर्थदण्ड लगाने का अधिकार।

वर्तमान में सेबी के अधिकारों में और वृद्धि कर दी गयी है। केन्द्र सरकार के पास जो अधिकार थे उन्हें भी सेबी को हस्तान्तरित कर दिये गये हैं।

6.6 भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड की भूमिका

वर्ष 1992 के शेयर घोटाले के परिप्रेक्ष्य में निवेशकों के हितों की सुरक्षा के लिए भारतीय प्रतिभूति अैर विनिमय बोर्ड ने भारतीय पूँजी बाजार की गतिविधियों पर एक के बाद एक अपना शिकंजा कसा है। पहले शेयर बाजार के दलालों व उपदलालों के कार्यकलापों तथा इनसाइडर ट्रेडर के लिए आचार संहिता निर्धारित करने के पश्चात् मर्चेंट बैंकरों के लिए विस्तृत नियमावली की घोषणा की गई। मर्चेंट बैंकरों के क्रियाकलापों को सरकार द्वारा सेबी के दायरे में लाने की घोषणा 1 जनवरी, 1993 में की गई। नये नियमों के तहत् अब कोई भी व्यक्ति अथवा फर्म "सेबी" से पंजीकरण प्रमाणपत्र प्राप्त किये बिना मर्चेंट बैंकर के रूप में कार्य नहीं कर सकेगा। मर्चेंट बैंकर के कार्यकलापों के लिये भी एक आचार–संहिता की घोषणा की गई है। मर्चेंट बैंकरों को 4 श्रेणियों में विभाजित करते हुए प्रत्येक श्रेणी के अन्तर्गत उनके कार्यों को परिसीमित किया गया। मर्चेंट बैंकर्स, जो कम्पनियों के शेयर निगर्मन में सहायक होते हैं, के लिए यह निर्देशित किया गया है कि वे यह सुनिश्चित करें कि शेयरों के आवंटन में कोई अनियमितता न हो तथा आबंटन न होने की दशा में निवेशकों की आवेदन राशि की वापसी में विलम्ब न हो।

मर्चेंट बैंकर्स के पश्चात् पोर्टफोलियों मैनेजरों की बारी आई। जानकी राम समिति ने अपनी तीसरी रिर्पोट में विशेषकर विदेशी बैंकों द्वारा पोर्टफोलियों मैनेजमेंट स्कीम के व्यापक दुरूपयोग का उल्लेख किया था। निवेशकों के हितों की सुरक्षा के लिए अब पोर्टफोलियों मैनेजरों के लिए घोषित नियमावली में कहा गया है कि पंजीकरण के लिए व्यक्ति अथवा फर्म की हैसियत कम से कम 50 लाख रूपये की होनी चाहिए तथा निवेशकों से प्राप्त धनराशि का उपयोग पोर्टफोलियो मैनजरों द्वारा बिलों की कटौती अथवा "बदला" के वित्तीयन हेतु नहीं किया जाए। नियमावली में यह भी निर्देश है कि पोर्टफोलियों मैनेजर प्रतिभूतियों के

मिथ्या बाजार की संरचना अथवा इनके मूल्यों मे तोड़–मरोड़ करने में प्रतिभागी नहीं बनेंगे।

सेबी ने म्युचुअल फण्ड्स के क्रियाकलापों को भी सुचारू करने के लिए एक विस्तृत नियमावली की घोषणा 20, जनवरी 1993 को की। सेबी द्वारा अब केवल उन्हीं म्यूचुअल फण्ड्स को पंजीकरण प्रदान किया जाएगा जो कुशल एवं सुव्यवस्थित व्यापार कर सकेंगें। इसे निर्धारित करने के लिए प्रायोजक का गत वर्षों का रिकार्ड देखा जायगा। प्रायोजक को वित्तीय सेवाओं तथा सुस्वस्थ व्यापारिक लेन–देन का कम से कम 5 वर्ष का अनुभव होना चाहिए।

म्युचुअल फण्डस के लिए जो आचार–संहिता घोषित की गई है, उसमें एक प्रावधान यह भी है कि फण्ड द्वारा किसी भी परिसीमित योजना में एकत्रित की जाने वाली धनराशि 20 करोड़ रूपये तथा खुली योजना 50 करोड़ रूपये से कम नहीं होनी चाहिए। यदि किसी योजना में फण्ड को इससे कम राशि प्राप्त होती है कि पूरी धनराशि निर्गम बन्द होने की तिथि से 6 सप्ताह के अन्दर ही निवेशकों को लौटानी होगी। नियमों के अब फण्ड को अपनी प्रत्येक योजना का वार्षिक विवरण प्रकाशित करना अनिवार्य है। सेबी को यह अधिकार दिया गया है कि वह प्रत्येक म्यूचुअल फण्ड के हिसाब–किताब की जाँच के लिए अपना ऑडीटर नियुक्त कर सकता है।

"सेबी" हमारे देश के प्राथमिक एवं सहायक दोनों प्रकार के प्रतिभूति बाजारों का समुचित नियमन एवं नियन्त्रण करता है। इस महत्वपूर्ण कार्य में "सेबी" संवर्धनात्मक, नियोजनकर्ता एवं पथ–प्रदर्शक की भूमिकाएँ भी निभाता है। प्रतिभूति बाजार में "सेबी" की भूमिका को समझाने के लिए यहाँ पर हम प्राथमिक एवं सहायक बाजारों के सन्दर्भ में विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं।

(अ) प्राथमिक बाजार में "सेबी"की भूमिका

प्राथमिक बाजार में "सेबी" की भूमिका नये निर्गमनों के सम्बन्ध में है। इसने निवेशकों, विशेषकर छोटे निवेशकों के हितों की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। प्राथमिक बाजार में "सेबी" की भूमिका को इस क्षेत्र में इसके द्वारा किये गये महत्वपूर्ण निम्नलिखित योगदान से स्पष्टतः समझा जा सकता है–

1. **प्रविवरण के प्रारूप में सुधार**– पर्याप्त सूचनाएँ प्रदान करने तथा प्रविवरण के माध्यम से कम्पनियों को अधिक पारदर्शी बनाने के उद्देश्य से सेबी ने प्रविवरण का नया प्रारूप तैयार किया हैं। इसमें कुछ ऐसे नये शीर्षकों का समावेश किया गया है जिससे कम्पनियों को अधिक, सही व व्यापक सूचनाएँ उपलब्ध करवानी पड़ती हैं।
2. **प्रथक करने योग्य संक्षिप्त प्रविवरण की शुरूआत**– "सेबी" ने एक ऐसा प्रविवरण युक्त आवेदन–पत्र विकसित किया है जिसमें संक्षिप्त में प्रविवरण की महत्वपूर्ण जानकारी है तथाजिसे अलग किया जा सकता है। इससे तथा जिसे अलग किया जा सकता है। इससे विनियोजकों को विनियोग हेतु विनियोजकों को विनियोग हेतु आवेदन करते समय ही कम्पनी तथा उसकी परियोजनाओं के सम्बन्ध में सभी प्रमुख़ बातों की संक्षिप्त़ जानकारी उपलब्ध हो जाती है।
3. **अंशों के आवंटन व सूचीयन को पूरा करना**– कम्पनियों के अंशों के आवंटन व उनके सूचीयन को निर्दिष्ट समय में पूरा कराने के उद्देश्य से

"सेबी" ने महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं। अब स्कन्ध विनिमय केन्द्र कम्पनी की कुछ निर्गमन राशि का एक प्रतिशत जमा करने लगे हैं। यदि कम्पनी के द्वारा अंशों के आबंटन, राशि वापस करने या अंशों के सूचीयन में कोई विलब्ब या त्रुटि होती है तो जमा की गयी राशि को जब्त किया जा सकता है तथा निवेशक एवं आवेदनकर्ता को राहत प्रदान की जाती है।

4. **जोखिम घटकों को प्रकट करना अनिवार्य–** प्रत्येक कम्पनी को नये तथा अधिकार निर्गमन के समय अपनी परियोजनाओं से सम्बन्धित ऐसे जोखिम घटकों को अनिवार्य रूप से उजागर करना होगा जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निवेशकों के हितों को प्रभावित कर सकते हैं। कम्पनियों को निम्नलिखित के बारे में स्पष्टतः उल्लेख करना होगा जो साधारणतः प्रविवरण में या किसी अन्य सार्वजनिक माध्यम से स्पष्ट किये जा सकते हैं।
   (i) परियोजना के पूरा होने वाला विलम्ब तथा इसकी बढ़ी हुई लागतें।
   (ii) निर्गमन के समय तक ऐसी वैधानिक अनुमतियाँ जो प्राप्त नहीं हो सकी हैं।
   (iii) परियोजनां के सम्बन्ध में प्रवर्तकों का आलोचनात्मक मूल्यांकन।
   (iv) कच्चे माल के मिलने में आ रही /आने वाली बाधाएँ।
   (v) उत्पाद के विपणन में बाधाएँ।
   (vi) विदेशी विनिमय दर की संवेदनशीलता का परियोजना पर प्रभाव।
5. **विनियोजकों संघों का पंजीयन**–विनयोजकों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने के उद्देश्य से "सेबी" ने विनियोजक संघों का पंजीयन करना शुरू किया। विनियोजक संघों के माध्यम से निवेशकों के पक्ष में सीधा प्रस्तुत किया जा सकता है।
6. **प्रमुख संस्थाओं का पंजीयन–** नये निर्गमनों से सम्बन्धित प्राथमिक बाजार की अन्य प्रमुख संस्थाओं जैसे– निर्गमन प्रबन्धक, बैंकर, अभिगोपक आदि के पंजीयन के लिए "सेबी" द्वारा व्यवस्था की गई। इस कार्य का प्रमुख उद्देश्य निर्गमनों को सही व उचित ढंग से निष्पादित करवाना है तथा इस प्रक्रिया में दोषों व त्रुटियों पर कड़ी निगरानी रखना है।
7. **मर्चेन्ट बैंकर्स का पंजीयन–** प्राथमिक बाजार में मर्चेन्ट बैंकर्स द्वारा ही नये निर्गमनों का प्रबन्ध किया जाता है तथा प्रवर्तकों को आवश्यक सहायता प्रदान की जाती । "सेबी" ने इनका पंजीयन अनिवार्य कर दिया है। "सेबी" ने इन्हें कम्पनी प्रविवरण में उल्लेखित बातों से लेकर नये निर्गमनों की समस्त औपचारिकताओं को पूरा करने तक उत्तरदायी ठहराने के लिए नये–नये नियम बनाये हैं
8. **निवेशकों को शिक्षित करना–** निवेशकों के हितों की रक्षार्थ "सेबी" समय–समय पर ऐसी अनेक सूचनाएँ सार्वजनिक प्रकाशन माध्यमों से प्रसारित करता है जो जनोपयोगी है। निवेशकों के लिए "सेबी" द्वारा सही मार्ग दर्शन के लिए कुछ पुस्तकों का प्रकाशन भी किया गया है।

9. **निवेशकों की समस्या का समाधान–** निवेशकों की समस्याओं, शंकाओं तथा शिकायतों के समाधान हेतु "सेबी" पूर्णतः सजग एवं सक्रिय है। लम्बे अन्तराल के बाद भी जब कम्पनियाँ निवेशकों की शिकायतों व समस्याओं पर ध्यान नहीं देती, तब "सेबी" को सूचित किया करने पर "सेबी" द्वारा हस्तक्षेप किया जाता है। यदि समस्या कम्पनी के स्तर की है तब कम्पनी द्वारा अथवा अथवा "सेबी" के स्वयं के द्वारा उसे हल करने के प्रयास कराये/किये जाते हैं।
10. **स्टाक इन्वेस्ट योजना लागू करना–** इस योजना को लागू करवाने में "सेबी" ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। स्टॉक इन्वेस्ट बैंको के द्वारा जारी किया गया एक प्रकार का चैक है। आवेदक इसे अंशों के आवेदन–पत्र के साथ लगा सकता है। जब तक अंश आबंटित नहीं हो जाते तब तक यह राशि "स्टाक इन्वेस्ट" जारी करने वाले बैंक के पास जमा रहती हैं इस राशि पर आवेदक को ब्याज भी मिलता है। जब कम्पनी आवेदनकर्ता को अंश आबंटित कर देती है, तब वह बैंक से उस चैक का भुगतान कम्पनी को भेज देता है।
11. **परदर्शिता से निर्गमनों में विश्वास–** उपरोक्त प्रयासों द्वारा नये निर्गमनों में पारदर्शिता लाने का प्रयास किया गया है। "सेबी" ने मार्गदर्शक नियमों की घोषणा भी की है। इसके फलस्वरूप नये निर्गमनों की पर्याप्त सूचनाओं के साथ–साथ प्रीमियम निर्धारित करने के सूत्रों का भी प्रकाशन किया जाने लगा है। अब कम्पनियों को अपने द्वारा वसूल की जाने वाली प्रीमियम राशि का औचित्य व आधार बताना पड़ता है। इतना ही नहीं बल्कि इसके अलावा उन्हें अपनी परियोजना के भावी वर्षों के अनुमानित परिणामों का भी उल्लेख करना पड़ता है। अब ऋण–पत्रों के लिए भी (18 माह से अधिक अवधि के) जारी करने से पूर्व प्रत्येक संस्था को साख–मूल्यांकन कराना पड़ता है।

(ब) सहायक बाजार में सेबी की भूमिका

सहायक बाजार में "सेबी" की भूमिका स्कन्ध विनियम केन्द्रों के कार्यकलापों में मात्रात्मक एवं गुणात्मक सुधार करने से सम्बन्धित है। इसे निम्नलिखित बिन्दु–विश्लेषण से समझा जा सकता है–

1. **स्कन्ध विनिमय केन्द्रों का नैटवर्क तैयार–** "सेबी" ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। आज देश भर में स्कन्ध विनिमय केन्द्रों का एक विकसित नेटवर्क तैयार हो गया है। "सेबी" की स्थापना के बाद आठ नये स्कन्ध विनिमय केन्द्र स्थापित किये गये हैं। देश में राष्ट्रीय स्कन्ध विनिमय केन्द्र के अलावा 23 अन्य स्कन्ध विनिमय केन्द्र कार्य कर रहे हैं। इसमें छोटी कम्पनियों व निवेशकों के लिए एक "ओवरद द काउण्टर एक्सचेन्ज ऑफ इण्डिया" भी सम्मिलित है।
2. **परामर्शदात्री समिति का गठन–** इस समिति का गठन दोनों प्रकार के बाजारों–प्राथमिक एवं सहायक के लिए लिया गया है। इसका गठन दोनों ही प्रकार के बाजारों के निवेशकों के साथ विचार–विमर्श करने तथा उनकी समसयाओं के निराकरण के लिए किया गया है।

3. **स्कन्ध–विनिमय केन्द्रों के गठन में सुधार–** "सेबी" ने स्कन्ध विनिमय केन्द्रों की शासकीय समिति के गठन के सम्बन्ध में मार्गदर्शक नियम घोषित किये हैं। नियमानुसार शासकीय समिति में पाँच चुने हुए सदस्य, अधिकतम तीन सरकारी या "सेबी" द्वारा नामांकित प्रतिनिधि, अधिकतम तीन जनता के नामांकित प्रतिनिधि तथा कार्यकारी निदेशक को मिलााकर कुल ग्यारह सदस्य होने चाहिए। इस प्रकार प्रशासकीय समिति में सभी केन्द्रों में सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व हो सकेगा।
4. **विदेशी संस्थागत निवेशकों का पंजीयन–** "सेबी" ने विदेशी संस्थागत निवेशकों जैसे– पेन्शन फण्ड, पारस्परिक निधियों, प्रन्यास, विनियोग प्रबन्ध कम्पनियों आदि का पंजीयन करना शुरू कर दिया है। "सेबी" इन विदेशी संस्थागत निवेशकों के बारे में पंजीयन के माध्यम से महत्वपूर्ण जानकारी रखता है। ऐसी विदेशी संस्थाएँ भारतीय स्कन्ध विनिमय केन्द्रों में प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय कर सकती है। इससे प्रतिभूति बाजार में खुलापन आ रहा है तथा वैश्वीकरण की प्रवृतियाँ विकसित हो रही हैं।
5. **पोर्टफोलियो (प्रतिभूति) प्रबन्धकों का पंजीयन–** "पोर्टफोलियो" का आशय किसी व्यक्ति द्वारा "धारित प्रतिभूतयों" से है। आजकल प्रतिभूति बाजार में पोर्टफोलियों प्रबन्धकों का महत्व बढ़ रहा है। पोर्टफोलियो प्रबन्धक किसी व्यक्ति या संस्था की प्रतिभूतियों का प्रबन्ध करता है। उसके कोषों का विनियोजन करता है तथा उन्हें विनियोग परामर्श प्रदान करता है। "सेबी" ने पोर्टफोलियो प्रबन्धकों का पंजीयन अनिवार्य कर दिया है। इसके लिए योग्यताएँ, वित्तीय साधन तथा अन्य आधारभूत साधन सम्बन्धी मानदण्ड भी निर्धारित किये हैं।
6. **शोध एवं प्रकाशन प्रारम्भ–** "सेबी" ने वित्तीय क्षेत्र में नवाचार, बाजार में दक्षता लाने, पेशेवर प्रवृतियों का विकास करने तथा प्रतिभूतियों के श्रेष्ठ प्रबन्ध के लिए शोध करवाना तथा इनके निष्कर्षों का प्रकाशन करना प्रारम्भ कर दिया है।
7. **पारस्परिक निधियों का नियमन व नियन्त्रण–** "सेबी" ने पारस्परिक निधियों के नियमन एवं नियन्त्रण के लिए इनका पंजीयन भी अनिवार्य कर दिया है। "सेबी" ने पारस्परिक निधियों के विज्ञापन के लिए आचार संहिता का भी निर्माण किया है। इसमें वे जनता को सभी जोखिम–घटकों को प्रकट करने तथा कार्य–कलापों को पारदर्शी बनाने के लिए बाध्य हैं।
8. **स्कन्ध विनिमय केन्द्रों की कार्य प्रणाली में सुधार–** इस दिशा में "सेबी" ने अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया है। "सेबी" के प्रयासों के परिणामस्वरूप अब प्रायः स्कन्ध विनिमय केन्द्रों में नकद–समूह के सौदों का निपटारा सात दिन में ही होने लगा है। अधिकांश स्कन्ध विनिमय केन्द्रों की दैनिक न्यूनतम कार्य अवधि को ढाई घण्टे से बढ़ाकर तीन घण्टे कर दिया गया है।
9. **दलालों एवं उपदलालों का पंजीयन–** सभी दलालों वं उप–दलालों का पंजीयन अब "सेबी" द्वारा अनिवार्य कर दिया गया है। इससे शेयर बाजारों तथा स्कन्ध विनिमय केन्द्रों में कार्य करने वाले व्यक्तियों पर प्रभावी

नियन्त्रण रखा जा सकेगा। इसके पंजीयन के लिए "सेबी" ने योग्यताएँ, शुल्क,वित्तीय व आधारभूत साधन की आवश्यकताएँ भी निर्धारित की है।

10. **स्कन्ध विनिमय केन्द्रों का निरीक्षण–** "सेबी" ने स्कन्ध विनिमय केन्द्रों के निरीक्षण कार्य को भी अपने हाथ में लिया है। निरीक्षण से अनेक प्रकार से सुधार हुए हैं तथा स्कन्ध विनिमय केन्द्रों पर एक सीधा अंकुश लगा है। इससे स्कन्ध विनिमय केन्द्रों की कार्य प्रणाली का लगातार नियमन होता रहता है।
11. **अन्दरूनी सौंदों का नियमन–** अन्रूनी सौदे से स्कन्ध विनिमय केन्द्रों में भारी लाभ कमाने की प्रवृति अनेक वर्षों से चली जा रही है। गोपनीय या अन्दरूनी सूचनाओं का लाभ उठाकर ऐस सौदेकिये जाते हैं क्योंकि जो लोग स्कन्ध विनिमय केन्द्रों में कार्य करते हैं, उन्हें अनेक प्रकार की महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती रहती हैं या वे प्राप्त कर लेते हैं, जबकि बाहरी निवेशकों को ऐसी अन्दरूनी जानकारी नहीं होती। "सेबी" ने अन्दरूनी सौदों पर निगरानी रखने तथा इन पर नियन्त्रण रखने के लिए नियम बनाये हैं तथा ठोस कदम उठाये हैं जिने फलस्वरूप अन्दरूनी सौदों पर प्रभावी नियन्त्रण हो पा रहा है।

6.7 सारांश

इस इकाई में आपने जाना कि पूँजी बाजार के प्राथमिक एवं सहायक बाजार में सेबी की भूमिका महत्वपूर्ण रही हैं व सेबी ने अपने मार्गदर्शी सिद्धातों को प्राथमिक बाजार में विनियोक्तओं का विश्वास बढ़ा दिया है। निवेशकों को झूठे, भ्रमपूर्ण, कपटपूर्ण प्रविवरण के आधार पर विनियोजन से मुक्ति दिलाई है तथा मामलों में दण्ड, सजा, जुर्माने का प्रावधान रखकर सेबी ने विनियोक्ता संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया है। सेबी ने दलालों एवं उप दलालों की अवांछनीय गतिविधियों के लिए कड़े नियम एवं सुधार कार्यक्रम बनाये हैं।

विदेशी संस्थागत निवेशकों को पूँजी बाजार में आकर्षित करने के लिए महत्वपूर्ण सकारात्मक निर्णय लिए गये हैं जो सेबी की एक महत्तवपूर्ण उपलब्धि है। सेबी के इन्हीं प्रयासों से आज जहाँ पूँजी बाजार सुदृण हुआ है वहीं इनकी गतिविधियों में पारदर्शिता आयी है जिससे निवेशकों के विश्वास में वृद्धि हुई है और वह पूँजी बाजार की ओर आकर्षित हैं।

6.8 शब्दावली

सेबी– भारतीय प्रतिभूति बोर्ड एवं विनिमय बोर्ड

प्राथमिक बाजार– ऐसा बाजार जहाँ पूर्व निर्गमित प्रतिभूतियों का पुनः क्रय विक्रय होता है।

मर्चेन्ट बैकिंग– मर्चेन्ट बैंक निगर्मन गृह होते हैं जो अपनी सेवाएं किसी बड़ी औद्यिगिक परियोजना की स्थापना, प्रवर्तन इत्यादि हेतु देते हैं।

6.9 बोध प्रश्न

प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्प दिये गये हैं, सही विकल्प छांटिए–

1. SEBI का वैधानिक गठन कब हुआ–

   (A) जनवरी 1992 (B) फरवरी 1992

   (C) मार्च 1992 (D) अप्रैल 1992

2. SEBI प्रबन्ध कितने सदस्यों द्वारा किया जाता है–
   (A) 5 (B) 7
   (C) 9 (D) 11
3. SEBI का चेयरमैन होता है–
   (A) केन्द्रीय वित्त मन्त्री (B) केन्द्रीय उद्योग मन्त्री
   (C) केन्द्रीय सरकार द्वारा नामित व्यक्ति (D)उपरोक्त में कोई नहीं
4. SEBI की संगठन संरचना कसे कितने संभागों में विभक्त किया जाता है–
   (A) 7 (B) 9
   (C) 11 (D) 13
5. SEBI का पूरा नाम किया है–
   (A) जनवरी 1992 (B) फरवरी 1992
   (C) मार्च 1992 (D) अप्रैल 1992
6. SEBI के उद्द्श्य है–
   (A) विनियोक्ता संरक्षण (B) स्कन्ध बाजार पर नियंत्रण
   (C) प्रतिभूति बाजार पर नियमन (D) उक्त सभी
7. SEBI का मुख्यालय है–
   (A) नई दिल्ली (B) मुम्बई
   (C) चेन्नई (D) कोलकाता
8. SEBI की शक्तियाँ हैं–
   (A) अंशों का निर्गमन करना (B) अंशो का आवंटन करना
   (C) लाभांश बाटना (D) उक्त में से कोई नहीं
9. SEBI का कार्य है–
   (A) मध्यस्थों को प्रशिक्षण (B) दलालों का पंजीयन
   (C) जोखिम पूँजी का नियमन (D) उक्त सभी
10. रिर्टन वसूचनाएं न भरने पर दण्ड प्रावधान है–
   (A) एक लाख रूपये प्रतिदिन (B) दो लाख रूपये प्रतिदिन
   (C) पाँच लाख रूपये प्रतिदिन (D) उक्त में सेकोई नहीं
11. SEBI के अध्यक्ष का कार्यकाल होता है–
   (A) दो वर्ष (B) तीन वर्ष
   (C) पाँच वर्ष (D) सात वर्ष नहीं
12. SEBI का गैर संवैधानिक रूप से गठन किया गया था–
   (A) 12 अप्रैल 1987 (B) 12 अप्रैल 1988
   (C) 12 अप्रैल 1989 (D) 12 अप्रैल 1990
13. आन्तरिक व्यापार सौदे पर दण्ड प्रावधान है–
   (A) 5 करोड़ (B) 10 करोड़
   (C) 20 करोड़ (D) 25 करोड़
14. SEBI द्वारा नियुक्त एडजुकेटिग अधिकारी का प्राप्त है–
   (A न्यायालयी शक्तियाँ (B) अर्द्ध न्यायालयी शक्तियाँ
   (C) प्रशासनिक अधिकार (D) उक्त में से कोई नहीं

6.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर– 1. (D) 2. (c) 3. (C) 4. (A) 5. (D) 6. (D) 7. (B) 8. (D) 9. (D) 10. (A) 11. (C) 12. (B) 13. (C) 14. (A)

6.11 स्वपरख प्रश्न

प्रश्न 1– भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड के गठन की आवश्यकता, कार्य, अधिकारों व शक्तियों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2– सेबी क्या है ? सेबी के प्रबन्ध एवं संगठन को समझाइये।

प्रश्न 3– भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) से आप क्या समझते हैं ? भारतीय पूँजी सेबी की भूमिका एवं कार्यों को समझाइये।

6.12 सन्दर्भ पुस्तकें

SEBI Capital Issues- Lexis Nexis
Manual of SEBI- Bharat Law house
SEBI Act- Sumit Agarwal, Robin Joseph Baby@&Amit Agarwal

इकाई 7: भारतीय यूनिट ट्रस्ट

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 भारतीय यूनिट ट्रस्ट के उद्देश्य एवं कार्य
7.3 भारतीय यूनिट ट्रस्ट का संगठन तथा साधन
7.4 भारतीय यूनिट ट्रस्ट की विनियोजित नीति तथा विनियोग ढाचा
7.5 भारतीय यूनिट ट्रस्ट की विनियोजन के लाभ
7.6 भारतीय यूनिट ट्रस्ट की विभिन्न योजनाएं
7.7 भारतीय यूनिट ट्रस्ट का विकास में योगदान
7.8 भारतीय यूनिट ट्रस्ट के विनियोजन का लाभ
7.9 भारतीय यूनिट ट्रस्ट की असफलतायें
7.10 सारांश
7.11 शब्दावली
7.12 बोध प्रश्न
7.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.14 स्वपरख प्रश्न
7.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- भारतीय यूनिट ट्रस्ट की व्याख्या कर सकें ।
- भारतीय यूनिट ट्रस्ट के उद्देश्य व कार्य का वर्णन कर सकें ।
- भारतीय यूनिट ट्रस्ट की विभिन्न योजनाओं व कोषों के विनियोग ढांचे व इसके लाभों का वर्णन कर सकें ।
- भारतीय यूनिट ट्रस्ट के संगठन तथा भारतीय यूनिट ट्रस्ट का अर्थव्यवस्था में योगदान व विनियोजनाओं के अर्जित होने वाले लााभों की व्याख्या कर सके ।

7.1 प्रस्तावना

भारत के प्राकृतिक साधनों के विदोहन, तीव्र औद्योगिक तथा आर्थिक विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये विशाल मात्रा में पूँजीगत साधनों की आवश्यकता होती है । भारत जैसे अर्द्ध–विकसित राष्ट्रों में जहाँ पर कि प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है, पूँजी निर्माण के लिये छोटी–छोटी बचतों को एकत्रित कर उद्योग धन्धों में लगाने की तीव्र आवश्यकता है। इस क्षेत्र में यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया की स्थापना का एक महत्वपूर्ण प्रयास है। श्रॉफ समिति के सुझाव पद सन् 1954 में भारतीय संसद ने यूनिट ट्रस्ट आफ इण्डिया बिल पास कर दिया जो फरवरी, 1964 में लागू हुआ। 1 जुलाई 1964 में यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया ने कार्यारम्भ कर दिया।

7.2 भारतीय यूनिट ट्रस्ट के उद्देश्य एवं कार्य

4 दिसम्बर, 1963 को भारत सरकार के तत्कालीन वित्त मंत्री श्री टी0टी0 कृष्णामूर्ति ने संसद में यूनिट ट्रस्ट विधेयक पेश करते हुए बताया था कि इसका

मूल उद्देश्य मध्यम वर्ग के लोगों की छोटी–छोटी बचतों को विनियोजन कार्य में लगाना है। यह ट्रस्ट निम्न आय वर्ग के विनियोक्ताओं को अपने पैसे का विनियोजन करने का अवसर तो देगा ही, साथ ही उनका धन भी सुरक्षित रहेगा और उस पर लाभ भी मिलेगा। यूनिट अस्ट ऑफ इण्डिया की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु की गयी–

(i) **बचत को प्रोत्साहन**– ट्रस्ट का प्रमुख उद्देश्य निम्न एवं मध्यम आय वर्ग के लोगों में बचत को प्रोत्साहित कर पूँजी निर्माण में वृद्धि करना है।

(ii) **इकाइयों का विक्रय**– यूनिट टस्ट की स्थापना का उद्देश्य देश के विभिन्न भागों में यूनिटों का विक्रय कर बचतों को एकत्रित करना है।

(iii) धन का विनियोग– यूनिटों की बिक्री से प्राप्त धनराशि को यूनिट टस्ट औद्योगिक संस्थाओं में विनियोजित करेगा ताकि देश में रोजगार, औद्योगिकरण एवं उत्पादन को वढ़ावा मिलेगा।

(iv) **लाभों में हिस्सा**– सामान्य जनता एवं निम्न आय वर्ग के लोगों का औद्योगिक तथा व्यावसायिक संस्थाओं से प्राप्त लाभांश में भागीदार बनायेगा यानि यूनिटों पर लाभ भी दिया जायेगा। ट्रस्ट अधिनियम के अनुसार यह अपने शुद्ध लाभ का कम से कम 96 प्रतिशत भाग इकाई धारकों में बाँट देगा।

(v) **प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय**– ट्रस्ट प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय करेगा, जिसमें अंश,बॉण्ड एवं अन्य कम्पनियों, नियमों एवं संस्थाओं के स्टॉक भी शामिल है।

(;vi) **ट्रस्ट द्वारा उद्योगों को आर्थिक सहायता**– ट्रस्ट उद्योगों को निम्नलिखित रूपों में सहायता कर सकता है–

(अ) अंशों एवं ऋणपत्रों में प्रत्यक्ष अभिदान द्वारा (ब) अंशों एवं ऋणपत्रों के अभिगोपन द्वारा तथा (स) प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता द्वारा।

ट्रस्ट की सहायता का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू यह है कि सहायता का 50 प्रतिशत भाग वस्त्र उद्योग को दिया गया है। इंजिनियरिंग उद्योग एवं रसायन उद्योंगों का स्थान क्रमशः दूसरा एवं तीसरा है जिन्हें कुल सहायता का क्रमशः 25 प्रतिशत प्रदान किया गया हैं विद्युत विवरण तथा लोहा इस्पात उद्योंगों का क्रम इनके पश्चात आता है। शेष सभी उद्योगों को कुल मिलाकर केवल 34 प्रतिशत भाग मिला है।

7.3 यूनिट ट्रस्ट का संगठन तथा साधन

संगठन–यूनिट ट्रस्ट का प्रबन्ध एक प्रन्यासी–मंडल के द्वारा किया जाता है। यह मंडल ट्रस्ट के मामलों का कार्य–संचालन करता है। बोर्ड के अध्यक्ष की नियुक्ति रिजर्व बैंक के द्वारा की जाती है। इसके अतिरिक्त चार अन्य प्रन्यासियों की नियुक्ति भारत का औद्योगिक विकास बैंक करता है। ये ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन्हें वाणिज्य, उद्योग बैंकिंग एवं वित्तीय क्षेत्रों में विशेष अनुभव प्राप्त हो। एक प्रन्यासी या ट्रस्टी की नियुक्ति जीवन–बीमा निगम तथा एक ट्रस्टी की स्टेट बैंक करता है। शेष दो ट्रस्टियों का चुनाव अन्य हिस्सेदारों (अनुसूचित बैंकों एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं) द्वारा किया जाता है। प्रारम्भ में इन दो ट्रस्टियों की नियुक्ति भी रिजर्व बैंक ही करता है। इस प्रकार ट्रस्ट का नियन्त्रण एवं प्रबन्ध बहुत कुछ

रिजर्व बैंक को ही सौंपा गया है। यूनिट ट्रस्ट अधिनियम मे यह व्यवस्था भी की गयी है कि नीति सम्बन्धी ऐसे मामले में, जिनका समबन्ध जनहित से है; रिजर्व बैंक को निर्देश जारी कर सकेगा।

यह बोर्ड अपना कार्य–संचालक इकाई धारकों के हितों को ध्यान में रखते हुए व्यापारिक सिद्धांतों के अनुसार करता है। साथ ही सभी दायित्वों को पूरा करने में तथा जनहित से सम्बन्धित मामलों की नीतियों का प्रतिपादन करने में बोर्ड उन निर्देशों का पालन करेगा जो रिजर्व बैंक द्वारा समय–समय पर दिये जायेंगें।

साधन– यूनिट ट्रस्ट की प्रारम्भिक पूँजी 5 करोड़ है जो विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रदान की गयी है। इनमें रिजर्व बैंक द्वारा 2.50 करोड़ रूपये, भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा 0.75 करोड़ रूपये, भारतीय स्टेट बैंक द्वारा 0.75 करोड़ रूपये व अनुसूचित बैंक व अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा 1 करोड़ रूपये प्रदान किये गये हैं।

प्रारम्भिक पूँजी के अतिरिक्त यूनिट ट्रस्ट यूनिट बेचकर पूँजी एकत्रित करता है। यूनिट ट्रस्ट की प्रथम यूनिट योजना यूनिट–64 थी जो 1 जुलाई, 1964 को प्रारम्भ की गयी। इसके अतिरिक्त यूनिट ट्रस्ट की अनेक निवेश योजनायें हैं। यूनिट ट्रस्ट अपने सदस्यों के हितों को ध्यान में रखकर व्यावसायिक आधार पर अपने कार्यों का संचालन करता है। 2001 में यूनिट–64 घोटाले के बाद इसकी साख घटी है। इससे मुक्ति के लिये 30 अगस्त, 2002 को सरकार ने यूनिट ट्रस्ट को 14561 करोड़ रूपये की सहायता देने का निश्चय किया है। इसका उद्देश्य यूनिट–64 व यूनिट ट्रस्ट की निश्चित आय वाली अन्य योजनाओं में निवेशकों के विश्वास को बनाये रखना है।

7.4 भारतीय यूनिट ट्रस्ट की विनियोजन नीति तथा विनियोग ढाँचा

ट्रस्ट अपने मूल उद्देश्य के अनुरूप ही अपनी विनियोजन नीति निर्धारित करता है। यह पूँजी विनियोजित करते समय धन की सुरक्षा के साथ इस बात को भी ध्यान में रखता है कि यूनिट धारकों एवं हिस्सेदारों को उचित व नियमित आय होती रहे। यह अपने कोषों का विनियोजन इस प्रकार करता है जिससे वह निश्चित एवं अनिश्चित आय वाली प्रतिभूतियों का एक संतुलित संविभाग बना सके तथा उस पर पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त हो। ऐसा करते समय ट्रस्ट प्रतिभूतियों के ऐसे नये निर्गमनों को भी ध्यान में रखता है जिनकी भावी संभावनाएं अच्छी हों। लेकिन ऐसे विनियोग तत्कालीन परिस्थितियों को देखकर ही किये जाते हैं।

ट्रस्ट के कोषों का विनियोग ढाँचा

निवेश की मद	कुल निवेश का प्रतिशत
(क) कम्पनी के क्षेत्र में	
इक्विटवटी अंशों में	36.1
अधिमान शेयरों में	0.1
ऋण पत्रों में	22.1
मियादी ऋण	9.9
फाइनेन्स	23.4
(क) का योग	91.5
(ख) अन्य निवेश	

बैंकों में जमा या निवेश	7.9
स्रकारी प्रतिभूतियों में	0.6
(ख) का योग	8.5
कुल योग	**100.0**

ट्रस्ट के कोषों का विनियोग इस प्रकार किया जाता है कि जिससे एक ओर तो कोषों की सुरक्षा बनी रहे तथा दूसरी ओर वह इनके विनियोग पर अधिक प्रत्याय की दर प्राप्त कर सके। पिछले वर्षो में इसने औद्योगिक प्रतिभूतियों में विनियोगों के एक ऐसे संतुलित पोर्टफोलियों का निर्माण कर लिया है जिसके आधार पर यह अपने यूनिट–धारकों को उनके धन की सुरक्षा एवं उस पर प्रत्याय की उचित दर, इन दोनों का लाभ प्रदान कर रहा है। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि यूनिट ट्रस्ट के कोषों के 91.5 प्रतिशत भाग का विनियोग कम्पनी क्षेत्र में किया गया है तथा शेष 8.5 प्रतिशत जमाओं तथा सरकारी प्रतिभूतियों में किया गया है।

ट्रस्ट ने अपने कोषों का विनियोग 661 कम्पनियों के इक्विटी अंशों में; 164 कम्पनियों के अधिमान–शेयरों में तथा 285 कमपनियों के ऋणपत्रों एवं वॉण्डों में किया हुआ है। उसके द्वारा धारित इक्विटी–अंशों के बाजार–मूल्य में 101.63 प्रतिशत की वृद्धि हो चुकी है। ट्रस्ट ने सबसे अधिक विनियोग टेक्स्टाइल कम्पनियों (21.28 प्रतिशत) में किया है। इसके बाद इन्जीनियरिंग (15.87 प्रतिशत), रसायनिक एवं औषधि निर्माण(13.71 प्रतिशत), विद्युत उतपादन एवं वितरण (8.3 प्रतिशत), लौह इस्पात (8.06प्रतिशत), परिवहन–उपकरण (5.55 प्रतिशत), कागज उद्योग (4.92 प्रतिशत) तथा सीमेंट (4.39 प्रतिशत) का स्थान आता है। पिछले कुछ वर्षो में यूनिट ट्रस्ट द्वारा उद्योगों को स्वीकृत एवं वितरित वित्तीय सहायता की वार्षिक राशि पाँच हजार करोड़ रूपये से भी अधिक रही है। अब तक यह उद्योग क्षेत्र को 61500 करोड़ रूपयों की सहायता स्वीकृत कर चुका है जो विविध रूपों में है जैसे ऋणपत्रों एवं वॉण्डों में निवेश, इक्विटी एवं अधिमान अंशों में निवेश, विशेष जमायें एवं निजी तौर पर ऋणपत्रों में निवेश, आदि। इसमें से लगभग 41000 करोड़ रूपयों की सहायता का वितरण इसके द्वारा किया जा चुका है।

कम्पनी क्षेत्र को ट्रस्ट द्वारा स्वीकृत एवं वितरित सहायता

वर्ष	स्वीकृत (रू0 करोड़ में)	वितरित (रू0 करोड़ में)
1980—81	40	51
1990—91	2810	2241
1994—95	7523	4791
1995—96	3686	3006
1996—97	3689	3336
1997—98	4229	3449

इसके द्वारा दी गयी कुल सहायता का 32 प्रतिशत भाग सार्वजनिक क्षेत्र के तथा 68 प्रतिशत भाग निजी क्षेत्र को प्राप्त हुआ है।

7.5 भारतीय यूनिट ट्रस्ट में विनियोजन के लाभ

यूनिट ट्रस्ट के कोषों के विनियोग के प्रायः निम्नलिखित लाभ होते हैं–

(i) **कम से कम जोखिम पर विविधता का लाभ–** यूनिट ट्रस्ट अपनी पूँजी का विनियोजन संतुलित एव ंसुवितरित संविभाग के निर्माण करने के सिद्धांत के आधार पर करता है। यदि किसी व्यक्ति के पास केवल दस "इकाइयाँ" भी हैं तो वह ट्रस्ट द्वारा लिये गये सरकारी ऋणों, औद्याेगिक ऋणपत्रों, अधिमान्य अंशों, सामान्य अंशों में मिले–जुले सम्पूर्ण संविभाग मे भागीदार वन जाता है और इस प्रकार विविधता का लाभ प्राप्त करके अपने जोखिम को न्यूनतम कर देता है।

(ii) **नियमित आय–** इकाई धारकों को लगातार और अच्छी आय प्राप्त होगी। उस ट्रस्ट की 90 प्रतिशत आय का वितरण किया जायेगा और ट्रस्ट 6 प्रतिशत आय उपलब्ध करने का प्रयास करेगा।

(iii) **करों में रियायत–** यूनिट ट्रस्ट से प्राप्त लाभांश की आय पर विभिन्न वर्गों को कर रियायतें प्राप्त हैं।

(iv) **बचत एवं पूँजी निर्माण में सहायक–** सर्वसाधारण की छोटी–बड़ी बचतों को गति प्रदान करके उनके लाभपूर्ण विनियोजन में सहायक होता है। इससे देश में पूँजी–निर्माण की गति तीव्र हो सकेगी। छोटे एवं मध्यम आकार के बचतकर्ताओं को औद्योगिक प्रतिभूतियों में धन लगाने का अवसर ट्रस्ट के माध्यम से मिल सकेगा।

(v) **औद्योगीकरण को प्रोत्साहन–** सरकारी प्रतिभूतियों के अतिरिक्त ट्रस्ट अपनी पूँजी को औद्योगिक प्रतिभूतियों में भी लगाता है। इसेस औद्योगिक विनियोजन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो रहा है, अपनी विशेष स्थिति के कारण ट्रस्ट राष्ट्र व्यापी सूत्रों से पूँजी को आकर्षित करता है और इस योग्य हो गया है कि भारी मात्रा में औद्योगिक प्रतिभूतियों में पूँजी लगा सके। यूनिट ट्रस्ट ने अपने विनियोजन योग्य कार्यो का अधिकांश लागू औद्याेगिक प्रतिभूतियों, मियादी ऋणों एवं बैंकों में जमा पूँजी के रूप में लगाया हुआ है। पूँजी के निर्गमनों के अभिगोपनों में भी इसका योगदान अब पहले की अपेक्षा अधिक है।

(vi) **तरलता–** ट्रस्ट में पूँजी लगाने का महत्वपूर्ण लाभ यह है कि इकाई–धारक इच्छानुसार अपनी पूँजी को वापस प्राप्त कर सकता है। ट्रस्ट द्वारा प्रतिदिन कार्य समाप्ति पर घोषित पुनः क्रय–मूल्य पर कोई भी अपनी इकाइयों को वापस बेंच सकता है। इसी प्रकार प्रतिदिन बिक्री–मूल्य भी ट्रस्ट द्वारा घोषित किया जाता है जिसके आधार पर आवश्यकता होने पर फिर नयी–नयी इकाइयाँ खरीदी जा सकती हैं।

(vii) **उधार लेने में सुविधा–** इकाइयों की समपार्श्विक जमानत पर इकाई–धारक बैंकों या अन्य सूत्रों से ऋण प्राप्त कर सकते हैं।

(viii) **प्रबन्ध कुशलता एवं विशेषज्ञों की सेवाओं का लाभ–** ट्रस्ट के प्रबन्ध का अधिकांश उत्तरदायित्व रिजर्व बैंक को सौंपा गया है, क्योंकि ट्रस्टी–मण्डल के "कार्यकारी–ट्रस्टी" के अतिरिक्त मंडल के अन्य सदस्य की नियुक्ति भी रिजर्व बैंक के द्वारा की जाती है। ट्रस्ट के अध्यक्ष की नियुक्ति भारत सरकार द्वारा रिजर्व बैंक के परामर्श से की जाती हैं। इसके

अतिरिक्त मंडल के चार सदस्यों की नियुक्ति भारत के औद्योगिक विकास बैंक के द्वारा की जाती है।

(ix) **पूँजी में वद्धि–** ट्रस्ट द्वारा आय योजनाओं के साथ–साथ वृद्धि योजनायें भी प्रारम्भ की गयी हैं। इनका स्टॉक एक्सचेंजों में सूचियन है तथा प्रतिदिन इनके बाजार मूल्यों का प्रकाशन किया जाता है। ट्रस्ट द्वारा भी समय–समय पर इनका शुद्ध सम्पत्ति मूल्य प्रकाशित किया जाता है। इन योजनाओं में व्यक्तियों के साथ–साथ संस्थागत विनियोक्ता (जैसे साझेदारी फर्में, कम्पनियाँ, प्रन्यास आदि) भी अपने कोषों का निवेश करते हैं।

"पारस्परिक कोषों" अथवा म्यूचुअल फण्डों को भारत में शुरू करने का श्रेय भी यूनिट ट्रस्ट को ही प्राप्त है, क्योंकि इसने ही देश में सर्वप्रथम मास्टर शेयरों का निर्गमन किया जिन पर उत्तम लाभांश प्रतिवर्ष दिये जाने के साथ–साथ अनेक बार अधिकार निर्गमनों और बोनस पर निर्गमनों का लाभ निवेशकर्ताओं को देकर उनकी पूँजी में अभिवृद्धि का लाभ भी उन्हें प्रदान किया गया है।सात वर्षों के बाद सन् 1993 में निवेशकर्ताओं को इनमें लगी पूँजी को वापस लेने का विकल्प दिया गया। इस विकल्प का प्रयोग न करने वाले मास्टर शेयरधारियों के लिये इनकी अवधि को आगे दस वर्षो (सन 2002 तक) बढ़ा दिया गया।

सन् 1986 के बाद सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों एवं अन्य वित्तीय निगमों द्वारा भी अनेक म्यूचुअल फण्डों की स्थापना की गयी। इन संस्थाओं द्वारा इनके प्रबन्ध एवं संचालन के लिये पृथक सहायक फंडों की स्थापना की गयी है। सन् 1993 के बाद निजी क्षेत्र की कतिपय संस्थाओं को भी म्यूचुअल फण्डों की स्थापना करने की अनुमति दे दी गयी। फिर भी इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि सार्वजनिक क्षेत्र अथवा निजी क्षेत्र के अन्य म्यूचुअल फण्डों की तुलना में यूनिट ट्रस्ट का म्यूचुअल फण्ड व्यवसाय आय एवं पूँजी अभिवृद्धि की दृष्टि से अधिक उत्तम रहा है।

7.6 यूनिट ट्रस्ट की विभिन्न योजनाएं

यूनिट ट्रस्ट ने सन 1966 में पुनर्निवेश योजना सन 1969 में स्वैच्छिक बचत योजना तथा सन 1970 के बाल उपहार योजना प्रचलित की। इन योजनाओं का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों को यूनिटों की खरीद के लिये प्रोत्साहित करना था। इन योजनाओं के अन्तर्गत यद्यपि यूनिटों की खरीद पिछले वर्षों में की जाती रही है, फिर भी ये योजनायें इतनी लोकप्रिय नहीं सिद्ध हुई हैं जितनी कि आशा की गयी थी।

यूनिट सम्बद्ध योजना, 1971

इस योजना को अक्टूबर, 1971 से लागू किया गया। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य छोटी ओर मध्यम आय वाले व्यक्तियों को नियमित बचत एवं उसके उपयुक्त विनियोग के साथ–साथ जीवन बीमा का लाभ प्रदान करना हैं । इस योजना के अन्तर्गत 18 वर्ष से 45 वर्ष तक की आयु का कोई भी व्यक्ति आवेदन कर सकता है। इस योजना में न्यूनतम 3000 रूपयों एवं अधिकतम 12000 रूपयों की राशि के लिये दस वर्षीय अनुबन्ध के अन्तर्गत निश्चित समयान्तर पर निर्धारित धनराशि जमा करनी होती है। यह योजना LIC तथा GIC के सहयोग से लागू की गयी है यह योजना LIC तथा GIC के सहयोग से लागू की गयी है जो

बचत, जीवन–बीमा एवं दुर्घटना–बीमा,तीनों का लाभ प्रदान करती है। वर्तमान में इस पर 18.5 प्रतिशत लाभांश दिया जाता है।

अन्य योजनायें

सन 1982 के बाद यूनिट ट्रस्ट द्वारा अनेक नवीन योजनाओं को कियान्वित किया गया है। ये योजनायें अत्यन्त लोकप्रिय हुई हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–आय यूनिट योजना सन् 1982 में प्रारम्भ की गयी जो पाँच वर्ष के लिये थी। सन् 1983 में ट्रस्ट द्वारा मासिक आय यूनिट योजना प्रारम्भ की गयी। इसके बाद से इसके द्वारा अब तक अनेक ऐसी योजनायें लागू की जा चुकी है। ये पाँच साला योजनायें हैं जो अत्यन्त लोकप्रिय हुई हैं। अवकाश प्राप्त व्यक्तियों, विधवाओं एवं अन्य वृद्धों के लिये ये अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध हुई हैं। प्रति वर्ष दो बार यूनिट ट्रस्ट मासिक–आय योजनायें अनेक नवीन संशोधनों के साथ लागू करता है। इधर कुछ वर्षों से बैंक दर में कमी के बाद से इन पर ब्याज दर लगभग 11 प्रतिशत के आस–पास रहती है। परिपक्वता पर पूँजी अभिवृद्धि का आश्वासन भी अब दिया जाना बन्द कर दिया गया है। बयाज–दर भी अब वर्ष–वार निर्धारित होती है।

सन् 1993 में यूनिट ट्रस्ट द्वारा एक नई Asset Management Company स्थापित करने का निर्णय लिया गया जिसे इसकी समस्त Close ended योजनाओं के संचालन का दायित्व सौंपा गया है।

विदेशी पूँजी के लिये पूँजी–बाजार के द्वारा खोलने के उद्देश्य से सन् 1987 में ट्रस्ट द्वारा इण्डिया फण्ड की स्थापना की गयी। इसकी स्थापना अमेरिका के Merril Lynch Capital Market के सहयोग से की गयी । अप्रवासी भारतीयों को इसके माध्यम से पूँजी लगाने का उत्तम अवसर मिला।

इस प्रकार UTI भरतीय पूँजी बाजार का एक अत्यन्त महतवपूर्ण अंग बन चुका है। वर्ष–प्रतिवर्ष ट्रस्ट के द्वारा लाभांश की दरों में वृद्धि की जाती रही है। उदाहरण के लिये, यूनिट योजना 1964 पर प्रारम्भ में लाभांश केवल 6 प्रतिशत था जो सन् 1995 में 26 प्रतिशत हो गया; किन्तु सन् 1999 में इस पर केवल 13.5 प्रशित लाभांश दिया जा सका। ट्रस्ट के विनियोगों का फैलाव समस्त देश में हो चुका है और यह अपने कोष भारत में तथा विदेशों में अपने चालीस हजार एजेन्टों की सहायता से एकत्रित करता है। इसके Chief Representatives की संख्या इस समय 294 हो गयी है। अब ट्रस्ट के लगभग तीन करोड़ निवेशक हैं जो देश–विदेश में फैले हुए हैं। यूनिट ट्रस्ट अधिनियम में 1986 में किये गये संशोधन के फलस्वरूप अब ट्रस्ट मियादी ऋणों, बिलों की पुनर्भुनाई, उपकरण लीजिंग के क्षेत्र में भी कार्य कर रहा है। हाल ही में यूनिट ट्रस्ट के द्वारा विदेशों से 500 करोड़ रूपये तीन नये कोषों के आधार पर प्राप्त किये हैं। ये कोष हैं–The India Debt Fund, An Equity Fund (जिसका उपयोग सार्वजनिक उपक्रमों के अंशों में निवेश के लिये होगा) तथा The India Information and technology Fund.

अब यूनिट ट्रस्ट के और अन्य म्यूचुअल कोषों के यूनिटों से प्राप्त होने वाली लाभांश आय यूनिटधारकों के हाथों में कर–मुक्त होगी। इतना अवश्य है कि अब समस्त ऋण आधारित योजनाओं पर वितरित किये जाने वाले लाभांशों पर यूनिट ट्रस्ट (अथवा अन्य म्यूचुअल फण्ड) को 10 प्रतिशत लाभांश–कर देना होगा।

केवल ऐसी Open ended Schemes पर तीन साल तक लाभांश–कर नहीं देना होगा जिनके कोषों का कम से कम 50 प्रतिशत इक्विटी अंशों में लगा हुआ हो।

पूँजी लगाने वाले की दृष्टि से उपर्युक्त लाभ महत्वपूर्ण हैं। यही नहीं, औद्योगिक एवं व्यापारिक कम्पनियों तथा सरकार की विकास योजनाओं की दृष्टि से भी ट्रस्ट की उपयोगिता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सैद्धांतिक दृष्टि से ट्रस्ट का कार्य सराहनीय है, क्योंकि इस प्रकार समाज की बचत को गतिमान करके व्यापार एवं उद्योग में विनियोग किया जाता है। लेकिन दुर्भाग्य से उच्च प्रबन्ध की अदूरदर्शिता तथा मुद्रा तथा पूँजी बाजार की बिगड़ती स्थिति के कारण यू0टी0आई0 की विभिन्न योजनायें घोर असफलता का शिकार हो गई तथा सरकार द्वारा अनेक उपायों के माध्यम से इसके अस्तित्व को बचाया जा सका। वर्तमान में इसको दो भागों UTI-1तथा UTI-2 में बांटा जा चुका है।

7.7 भारतीय यूनिट ट्रस्ट का विकास में योगदान

यूनिट ट्रस्ट के विकास में योगदान को निम्न बिन्दुओं से देखा जा सकता है–

(1) ट्रस्ट जनता की छोटी–छोटी बचतों को उद्योगों में विनियोजित करके औद्योगिक विकास को बढ़ावा देता है।

(2) ट्रस्ट पिछडे क्षेत्रों के उद्योगों को उदारतापूर्वक ऋण सवीकृत करता है।

(3) ट्रस्ट नई औद्योगिक कम्पनियों के अंशों में धन लगाकर उन्हें प्रोत्साहित करता है।

(4) यद्यपि ट्रस्ट ने सर्वाधिक विनियोग सूती वस्त्र उद्योग में किया है, किन्तु इसने अन्य कई महत्वपूर्ण उद्योगों; जैसे इन्जीनियरी, रसायन एवं औषधि, सीमेंट, लोहा, इसपात, पेपर, विद्युत उत्पादन आदि में भी बहुत धन लगा रखा है।

(5) ट्रस्ट भावी विनियोग को बढ़ावा देने के लिये अनेक योजनायें चला रहा है। ट्रस्ट ने गैर–निवासी भारतीयों की 140 करोड़ रूपये की धनराशि "वृद्धि कोष" में एकत्रित की है। सितम्बर, 1986 में ट्रस्ट ने छोटे विनियोक्ताओं को पूँजी अभिदान में सहयोगी बनाने हेतु "मास्टर शेयर" जारी किये थे जिनसे 150 करोड़ रूपये का म्यूचुअल फण्ड बनाया गया है। इस प्रकार नई कम्पनियों में और अधिक धन विनियोजित किये जाने की संभावना बढ़ गयी है। यद्यपिट्रस्ट नें प्रारम्भ में केवल ऋणत्रों में धनराशि विनियोजित की थी, किन्तु सत्तर के दशक से इसने अंश में भी विनियोग प्रारम्भ कर दिया है।

स्पष्ट है कि यूनिट ट्रस्ट विभिन्न प्रकार से उद्योगों को आर्थिक सहायता उपलब्ध कराकर प्रोत्साहित करता है। यह देश की बचतो को गतिशील बनाकर औद्योगीकरण में योगदान करता है। यह उद्योगों में सीधे अंशदान देकर एवं अभिगोपन कार्य कर योगदान देता है। सामान्य रूप से न्यास दीर्घकालीन विनियोग करता है, किन्तु यह सेतु वित, कम्पनियों में जमायें एवं बैंकों में माँग जमाओं आदि के रूप में अल्पकालीन विनियोग भी करता है।

7.8 भारतीय यूनिट ट्रस्ट के विनियोजन का लाभ

यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया की यूनिटों में विनियोग करना छोटे व बड़े सभी विनियोक्ताओं के लिये लाभप्रद है। ट्रस्ट अपने कोषों का विनियोजन संतुलित एवं सुवितरित संविधान के निर्माण करने का सिद्धांत पर करता है। इससे विनियोग में विविधता का लाभ सभी यूनिट–धारकों को मिल जाता है। यूनिटों में विनियोग से यूनिट–धारकों को निश्चित आय प्राप्त होती रहती है क्योंकि विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों में विनियोग से यूनिट ट्रस्ट को औसत रूप से पर्याप्त आय प्राप्त हो जाती है। इससे विनियोक्ता करों में छूट का लाभ भी प्राप्त कर लेते हैं। यूनिट–धारक यूनिटों को कभी भी बेच सकता है। इसके लिये यूनिट ट्रस्टने पुनः खरीद योजना चालू कर रखी है। इस प्रकार निवेशक यूनिटों को कभी भी नकद में परिवर्तित कर सकता है। वह जब चाहे तब यूनिट दुबारा खरीद सकता है। इसे बचत, पूँजी निर्माण एवं औद्योगीकरण को बढ़ावा मिला है। यूनिट ट्रस्ट के पास विनियोग विशेषज्ञ होते हैं जो कोषों का लाभप्रद विनियोजन करते हैं। एक छोटा–सा निवेशक भी इनकी विशेषज्ञता से लाभान्वित होता है।

2 जुलाई, 2001 को यूनिट ट्रस्ट ने यूनिट स्कीम US-64 की पुनः खरीद योजना को कुछ समय के लिये निलम्बित कर दिया था, इससे भारतीय यूनिट ट्रस्ट की प्रतिष्ठा को आघात लगा है।

यू0टी0आई0 की स्थापना का उद्देश्य छोटे निवेशकों की बचतों को एकत्रित कर औद्योगिक कम्पनियों को वित्त उपलब्ध करवाना था। इसलिये यू0टी0आई0 ने विभिन्न वर्ग के निवेशकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर अनेक योजनायें प्रारम्भ की हैं। यू0टी0आई0 के क्रियाकलापों में अच्छी प्रगति हुई है। इसके यूनिट धारकों की संख्या लगभग 2.5 करोड़ है जिन्होंने यू0टी0आई0 की विभिन्न योजनाओं में लगभग 73000 करोड़ रूपये विनियोजित कर रखे हैं।

यू0टी0आई0 ने अपने निवेश का 85 प्रतिशत भाग कम्पनियों में अंशों, ऋणपत्रों व जमाओं के रूप मे विनियोजित किया है। शेष 15 प्रतिशत राशि बैंकों व सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोजित है।

यू0टी0आई0विभिन्न कम्पनियों को ऋण प्रदान करती है। विगत वर्षों में इसके द्वारा स्वीकृत एवं वितरित ऋण को निम्न तालिका में दर्शाया गया है–

कम्पनी क्षेत्र में ऋण

वर्ष	स्वीकृत (रू0 करोड़ में)	वितरित (रू0 करोड़ में)
1980–81	40	51
1884–85	357	236
1990–91	2,809	2,241
1994–95	7,522	4,791
1999–00	6,844	5,162
2000–01	6,770	4,599
2001–02	991	1,270
31 मार्च, 2002 तक कुल	**70,151**	**53,540**

निम्नलिखित तालिका से यू0टी0आई0 द्वारा स्वीकृत व वितरित ऋणों कर स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

यू0टी0आई0द्वारा स्वीकृत व वितरित सहायता
(मार्च 2002 तक संचयी)

वर्ष	स्वीकृत (रू0 करोड़ में)	वितरित (रू0 करोड़ में)
सार्वजनिक क्षेत्र	14,935	12,369
संयुक्त क्षेत्र	618	496
सहकारी क्षेत्र	179	147
निजी क्षेत्र	45,634	32,577
कुल	**61,366**	**45,589**

तालिका में यू0टी0आई0 द्वारा विभिन्न क्षेत्रों को दी गयी सहायता को दर्शाया गया है। तालिका से स्पष्ट है कि मार्च 2002 तक यू0टी0आई0 ने कुल 61,366 करोड़ रूपये की सहायता स्वीकार की तथा 45,589 करोड़ रूपये वितरित किये हैं। इसमें सर्वाधिक स्वीकृत सहायता 74 प्रतिशत निजी क्षेत्र को तथा 24 प्रतिशत सार्वजनिक क्षेत्र को रही हैं। शेष सहायता संयुक्त व सहकारी क्षेत्र को दी गयी है।

7.9 भारतीय यूनिट ट्रस्ट की असफलतायें

सरकार ने ट्रस्ट की स्थापना निम्न एवं मध्यवर्गीय विनियोक्ताओं की बचतों को आकर्षित करने के उद्देश्य से की थी, परन्तु यह अपने इस उद्देश्य को प्राप्त करने में असफल रहा है। इसके सदस्य बहुत कम हैं जो केवल शहरो तक ही सीमित हैं। ग्रामीण जनता में अभी ट्रस्ट ज्यादा प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सका है। ट्रस्ट द्वारा प्रदत्त आयकर में छूट का लाभ भी अच्छी आर्थिक स्थिति वाले लोग उठाने लगें हैं। अतः भविष्य में ट्रस्ट को ग्रामीण क्षेत्रों में यूनिट बेचनें की कोई प्रभावी योजना आरम्भ करनी चाहिए।

भारतीय यूनिट ट्रस्ट की स्थापना फरवरी 1964 में की गयी थी तथा इसने 1 जुलाई 1964 से यूनिट बेचना प्रारम्भ किया। यूनिट ट्रस्ट का मुख्य उद्देश्य लोगों की छोटी–छोटी बचतो को इकट्ठा करके उन्हें औद्योगिक इकाईयों की प्रतिभूतियों में विनियोग करना व उसका लाभ छोटे विनियोजकों को देना है।

ट्रस्ट की प्रारम्भिक पूँजी 5 करोड़ रूपये थी जिसमें से 2.50 करोड़ रूपये IDBI ने 75–75 लाख जीवन बीमा निगम व स्टेट बैंक ने तथा शेष 1 करोड़ रूपया वाणिज्यिक बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थााओं ने प्रदान किया है।

ट्रस्ट ने विभिन्न प्रकार की योजनाये प्रारम्भ की हैं जिसके अन्तर्गत व जनता से धन इकट्ठा करती है व विनियोग करती है। ये योजनाएं हैं– (1) यूनिटि स्कीम 1964, जिसके अन्तर्गत ट्रस्ट 10–10 रूप्ये की यूनिटें बेचती हैं, (2) पुनर्विनियोग योजना 1966 (3) बाल उपहार योजना 1970 (4) यूनिट से संबंधित बीमा योजना 1971 (5) पूँजीगत यूनिट स्कीम 1976 (6) पुण्यार्थ एवं धार्मिक ट्रस्ट सोसायटीज स्कीम 1981 (7) मासिक आय इकाई योजना 1983 जिसमें विनियोग कर्ता को उसके द्वारा खरीदी गयी इकाइयों पर मासिक आय प्राप्त होती है। विभिन्न वर्ग के लोगों के लिये अप्रैल, 1989 तक ऐसी 13 योजनाएं प्रारम्भ की जा

चुकी थीं। (8) माता पिता उपहार एवं विकास योजना 1987–यह योजना 15 दिसम्बर,1987 को प्रारम्भ की गयी।

7.10 सारांश

इस इकाई में हमने भारतीय यूनिट ट्रस्ट के उद्देश्यों व स्थापना के कारणों व विभिन्न योजनाओं व विनियोग ढांचे तथा भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में चर्चा की। निश्चित रूप से देश की छोटी– छोटी बचतों को सग्रहीत कर राष्ट्र निर्माण में लगाने के लिए भारतीय यूनिट ट्रस्ट ने महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत कर रहा है । भारतीय यूनिट ट्रस्ट अपने मुख्य उद्देश्यों के साथ–साथ व विभिन्न उद्योगों में इस प्रकार विनियोजन कर रहा है कि जिससे न्यूनतम जोखिम पर अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। इस प्रकार भारतीय यूनिट ट्रस्ट ने पूँजी निर्माण को बढ़ाया है व औद्योगिक प्रतिभूतियों का अभिदान तथा अभिगोपन करके भारतीय पूँजी बाजार को विश्व पटल पर स्थापित किया है।

7.11 शब्दावली

Cum: सहित–प्रतिभूति का मूल्य उसमें अर्जित लाभ सहित है।

Derivative: प्रतिभूतियों में Future तथा Option के सौदे होने की दशा।

Discount: जब कोई प्रतिभूति उसके अंकित मूल्य से कम मूल्य पर उद्धत हो।

Dumping: मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों की चिन्ता किए बिना बड़ी मात्रा में अंश बाजार में भर देना।

Liquidity Risk: किसी शोधक्षम्य संस्थान द्वारा अस्थायी रूप से मौद्रिक दायित्व की पूर्ति में डिफोल्ट की सम्भावना।

7.12 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्प दिये गये हैं, सही विकल्प छांटिए–

2. भारतीय यूनिट ट्रस्ट की स्थापना कब हुई
   (A) 1962 (B) 1963
   (C) 1964 (D) 1965
2. भारतीय यूनिट ट्रस्ट का क्या उद्देश्य है
   (A) बचतों को प्रोत्साहन देना (B) इकाईयों का विक्रय करना
   (C) धन का विनियोजन करना (D) उपरोक्त सभी
3. भारतीय यूनिट ट्रस्ट के प्रारम्भिक पूँजी क्या थी
   (A) पाँच करोड़ रूपये (B) दस करोड़ रूपये
   (C) 25 करोड़ रूपये (D)पचास करोड़ रूपये
4. भारतीय यूनिट ट्रस्ट का विभाजन कब हुआ
   (A) 1 फरवरी 2003 (B) 1 फरवरी 2004
   (C) 1 फरवरी 2005 (D) 1 फरवरी 2006
5. संस्थागत निवेशकर्ताओं में सम्मिलित है
   (A) भारतीय यूनिट ट्रस्ट (B) भारतीय जीवन बीमा निगम
   (C) भारतीय साधारण बीमा निगम (D) उपरोक्त सभी

7.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर– 1. (C) 2. (D) 3. (A) 4. (B) 5. (D)

7.14 स्वपरख प्रश्न

प्रश्न–1 यूनिट ट्रस्ट द्वारा लागू की गयी विभिन्न योजनाओं की विशेषतायें बताइये। ये योजनाएं जनता की तथा बचत को गति प्रदान करने में कहाँ तक सफल हुई हैं?

प्रश्न–2 भारतीय यूनिट ट्रस्ट के उद्देश्यों एवं कार्यों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए तथा औद्योगिक विकास एवं वित्त के क्षेत्र में इसने जो भूमिका प्रदान की है, उसकी समीक्षा कीजिए।

प्रश्न–3 भारतीय यूनिट ट्रस्ट के कार्यों, साधनों, संगठन एवं कार्य प्रणाली की समीक्षा कीजिए।

7.15 सन्दर्भ पुस्तकें

UNIT TRUST OF INDIA: Retrospect and Prospects–VG Pendeharkar.

इकाई 8 : पारस्परिक निधि

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 पारस्परिक निधियों के उद्देश्य व निवेश लाभ
8.3 भारत में पारस्परिक निधियों का विकास और कार्यकरण
8.4 पारस्परिक निधियों की यूनिट योजनायें
8.5 पारस्परिक निधियों की निवेश पद्धितियाँ
8.6 भारत में पारस्परिक निधियों के कियाकलापों पर सेबी का नियमन
8.7 म्यूचुअल फण्ड निवेश के मार्ग दर्शक नियम
8.8 पारस्परिक निधि की एम0आई0पी0 योजनाओं का मूल्यांकन
8.9 सारांश
8.10 शब्दावली
8.11 बोध प्रश्न
8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.13 स्वपरख प्रश्न
8.14 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- पारस्परिक निधियां क्या होती हैं, की व्याख्या कर सके ।
- पारस्परिक निधियों के उद्देश्य, व निवेश लाभ को जान सकें।
- भारत में पारस्परिक निधियों के किया कलापों पर सेबी का नियमन व मार्गदर्शक नियम की जानकारी व पारस्परिक निधि की एम0 आई0 पी0 योजनाओं मूल्यांकन कर सकें।

8.1 प्रस्तावना

पारस्परिक निधियाँ, अंशों, ऋणपत्रों एवं अन्य प्रतिभूतियों का ऐसा संयोजन है जिन्हें निवेशकों की एक बहुत बड़ी संख्या खरीदती है और प्रतिभूतियों के इस संयोजन का प्रबन्ध एक पेशेवर निवेशकर्ता कम्पनी द्वारा किया जाता है। प्रतिभूतियों के ऐसे प्रत्येक संयोजन को जिसकी अपनी एक विशिष्ट निधि होती है उसे पारस्परिक निधियाँ कहते हैं।

सेबी (पारस्परिक निधि) नियमन, 1994 के अनुसार,"पारस्परिक निधि एक प्रयोजक द्वारा एक प्रन्यास के रूप में स्थापित निधि है। जिसका उद्देश्य प्रन्यासियों के माध्यम से प्रतिभूतियों के निवेश हेतु इन नियमनों के अधीन एक या अधिक योजनाओं के अनतर्गत जनता में इकाइयों के विकय के माध्यम से धनराशि जुटाना है।"

एनसाइकलाकपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार,"पारस्परिक निधि एक ऐसी कम्पनी है जो इसके अभिदानकर्ताओं के कोषों का विविध प्रतिभूतियों में निवेश करती है और इस निवेश के बदले में इनके प्रतिनिधि स्वरूप अपनी इकाइयाँ प्रस्तावित करती हैं और माँग किये जाने पर इन अंशों व इकाइयों का उसके द्वारा धारित प्रतिभूतियों

दिन प्रतिदिन के बाजार–मूल्य के आधार पर निर्धारित कर उनके शुद्ध आस्ति मूल्य पर शोधन करती है।"

पारस्परिक निधि एक ऐसी कम्पनी है जो आम जनता को अपनी यूनिटों या निवेश विलेख बेचकर धन जुटाती है। इस धन से वह विभिन्न कम्पनियों के अंशों और ऋणपत्रों में विनियोजित है और इसके द्वारा धारित अंशों व ऋणपत्रों के बाजार मूल्य पर ही इसके द्वारा जारी की गयी इकाइयों का निवेश विलेखों का मूल्य निर्भर करता है। यह कमपनी इन यूनिटों या विलेखों को प्रचलित बाजार–मूल्य पर वापस भी लेती है। इस प्रकार पारस्परिक निधियों के माध्यम से प्रतिभूतियों में निवेश का जोखिम बँट जाता है।

पारस्परिक निधियों की स्थापना एवं संचालन किसी नियमित निकाय द्वारा किया जाता है जिसे प्रायोजक कहते हैं। यह "प्रायोजक आस्ति प्रबन्ध कम्पनी" की तरह कार्य करता है। पारस्परिक निधियों का गठन करने के लिये इसकी यूनिटें निवेश प्रलेख बेचे जाते हैं। इनसे प्राप्त धन को अंश, ऋणपत्र या अन्य प्रतिभूतियाँ खरीदकर विनियोजित किया जाता हैं इस प्रकार अत्यन्त छोटे–छोटे निवेशक भी न्यूनतम जोखिम के साथ अपनी बचतों का पारस्परिक निधियों की यूनिटों में निवेश कर प्रतिभूतियों में निवेश का परोक्ष लाभ उठा सकते हैं। पारस्परिक निधियों की यूनिटें अतयन्त न्यून अंकित मूल्य की होती हैं जिसे छोटे–छोटे निवेशकर्ता भी खरीद सकते है। पारस्परिक निधियों का नियमन भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम बोर्ड द्वारा किया जाता है। ये निधियाँ अनेक प्रकार की होती हैं, जैसे वृद्धि निधि, आय निधि, तरलता निधि, सन्तुलित निधि, खुलासीरा निधि, बन्द सीरा निधि आदि।

म्यूचुअल फण्ड (पारस्परिक निधियाँ) वित्तीय मध्यस्थ होते हैं जो निवेशकों की बचतों को इकट्ठा करते हैं और उन्हें मुद्रा बाजार उपकरणों, कम्पनी और सरकारी बॉण्डों तथा संयुक्त स्टॉक कम्पनियों के शेयरों जैसे प्राथमिक एवं द्वितीयक प्रतिभूतियों में निवेश करते है। वे बचतें एकत्रित करने में बैंकों के प्रतिद्वन्दी उभरकर आए हैं। ऐसा इस कारण कि बैंकिंग सेवायें घरेलू बचतों को लाभदायक क्षेत्रों में अत्यधिक प्रयत्नों के साथ प्रयोग करने में असमर्थ रही हैं। व्यक्तिगत निवेशकों की पूँजी बाजार में बहुत रूचि विकसित हुई है; क्योंकि इससे उन्हें ऊँचे प्रतिफल, पूँजी लाभ और राजकोषीय छूटें प्राप्त होते है। चूँकि सामान्यतः छोटे निवेशकों के पास पूँजी बाजार में कार्य करने के लिये पर्याप्त समय, ज्ञान, अनुभव और संसाधनों का अभाव होता है, इसलिये उन्हें मध्यवर्ती पर निर्भर रहना पड़ता है जो सूचना पर आधारित निवेश–निर्णय लेता है और पेशेवर विशेषज्ञ के लाभ प्रदान करता है। यही कार्य एक म्यूचुअल फण्ड करता है। निवेशक म्यूचुअल फण्ड से महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त करते है जैसे कुशल पेशेवर प्रबन्धन, जोखिम में कमी, विधियों पोर्टफोलियों, निवेश की तरलता, कर लाभ , और पैमाने की किफायतें ंनिवेशको के हितों की सेबी सुरक्षा करता है। सेबी इन्हें दिशा निर्देश देता है, निरीक्षण करता है और इनके कार्यकरण का नियमन करता है पारस्परिक निधियाँ सेबी द्वारा **Mutual Funds Regulations,** 1993, जो समय–समय पर संशोधित किये गये हैं, शासित होती हैं। वे स्टॉक मार्किट को स्थिरता और निरंतरता भी प्रदान करती हैं।

पारस्परिक निधियाँ पूँजी ओर मुद्रा बाजारों में कार्यरत विभिन्न वित्तीय संस्थाओं के बीच श्रंखला प्रदान करती हैं जिनके साथ घरेलू और कम्पनी क्षेत्र निकट तौर से जुड़े हुए हैं। वे निजी बचतों को जुटाती हैं ओर छोटे एव मध्यम निवेशकों को अपनी निवेशों से लाभ प्राप्त करने में सहायक होती हैं कम्पनी क्षेत्र इन निवेशकों को अपनी कम्पनियों के उत्पादन और वृद्धि में निवेश करके लाभ उठाता है। इस प्रकार ,पारस्परिक निधियाँ बचतों और निवेशों को जुटाकर और उनका आवंटन करके भारत की आर्थिक वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

8.2 पारस्परिक निधियों के उद्देश्य व निवेश लाभ

1. पारस्परिक निधियों के मुख्य निवेश उद्देश्य निम्न प्रकार हैं–

(i) पारस्परिक निधियों के उद्देश्य पूँजी लाभ कमाना है। यें सामान्यतः अधिकतम जोखिम को सुरक्षित करती हैं।

(ii) पारस्परिक निधियाँ लाभांश आय और पूँजी लाभ दोनों के लिये सामान्य शेयरों ओर बाण्डों से प्रयत्न करती हैं। वे मध्यवर्ती जोखिम से सुरक्षा करती है।

(iii) वे पूँजी लाभ, लाभांश और ब्याज आय प्राप्त करने के उद्देश्य से विविध सामान्य स्टॉक, अधिमानित स्टॉक तथा बाण्डों के पोर्टफोलियों को अपने पास रखती है। इनके लिये वे अधिक ब्याज और ऊँचे लाभांश लेने वाली प्रतिभूतियों में निवेश करती हैं जो न्यूनतम जोखिम की सुरक्षा करती हैं।

(iv) छोटे निवेशकों को बाजार के अनुरूप आय प्राप्त करने वाले अतिरिक्त निवेश के अवसर उपलब्ध करना।

(v) मुद्रा बाजार विलेखों के वित्तीयन द्वारा सरकारी एवं अर्द्धसरकारी प्रतिभूतियाँ खरीदकर ऋण आवश्यकतायें पूरी करना।

(vi) मुद्रा बाजार को पर्याप्त तरलता प्रदान करना।

(vii) ऐसे छोटे निवेशकों को मुद्रा बाजर में निवेश के अवसर उपलब्ध करवाना जो अपने सीमित साधनों के कारण अन्यथा मुद्रा बाजार में निवेश नहीं कर पाते।

(viii) मुद्रा बाजार की वित्त व्यवस्था के लिये अतिरिक्त संसाधन जुटाना विशेष रूप से तब जब सरकार को वित जुटाने में कठिनाई हो।

(ix) छोटी बचतों को गतिशील करना।

2 **निवेश लाभ**

लोग पारस्परिक निधियों के निम्नलिखित लाभों के लिये इनमें निवेश करते हैं–

(i) **जोखिम में कमी**– पारस्परिक निधियाँ विविध निवेश और कम जोखिम प्रदान करती हैं। ये विविध स्टॉकों, सौदा लागतों में पैमाने की किफायतों ओर पेशेवर पोर्टफोलियों प्रबन्धन द्वारा जोखिम कम करके छोटे निवेशकों की सहायता करती है।

(ii) **कर लाभ**–सेबी द्वारा अधिकृत पारस्परिक निधियों को कर से छूट है, यदि वे अपने लाभ का 9 प्रतिशत वितरित कर देती हैं।

(iii) **विषेषज्ञ पेषेवर**– छोटे निवेशकों साथ सीधे पूँजी बाजार में पहुँचने के लिये पर्याप्त समय, ज्ञान ओर अनुभव नहीं होते हैं। म्यूचुअल फण्डों स्टॉकों के चुनाव, और प्रतिभूतियों की समय पर खरीद और बिक्री के पेशेवर विशेषता प्रदान करते हैं। इस प्रकार वे निवेशकों के लिये उच्च प्रतिफल उत्पन्न करते हैं।

(iv) **पैमाने की किफायतें**– पारस्परिक निधियों के यूनिटों के बिना देरी के नकदी में परिवर्तित किया जा सकता है इससे निवेशकों को विभिन्न नियमों और अधिनियमों से छुटकारा मिल जाता है।

(v) **निवेष की तरलता**– निवेशक अपनी परिसम्पत्तियों को पारस्परिक निधियों द्वारा इकट्ठा करके पैमाने की किफायतें प्राप्त करती है।

(vi) **विविध पोर्टफोलियो**– पारस्परिक निधियाँ विविध निवेश सुअवसर प्रदान करके जोखिम को कम करती हैं। वे परिवर्ती प्रकार के निवेश भी प्रदान करती हैं पूँजी लाभों और लाभांशों के अपने–आय पुनर्निवेश से यूनिट धारकों को कर राहत मिलती है।

8.3 भारत में प्रथम पारस्परिक निधियों के विकास और कार्यकरण

भारत में प्रथम पारस्परिक निधि भारतीय यूनिट ट्रस्ट है जो संसद के एक एक्ट द्वारा 1994 में सथापित किया गया था। इसका उद्देश्य "यूनिट" की बिक्री द्वारा छोटे निवेशकों की छोटी बचतों को प्रोत्साहित करना और जुटाना तथा उन्हें कम्पनियों की प्रतिभूतियों में प्रवाहित करना था। यू0टी0आई0 की प्रथम योजना Unit Scheme-1964 है जो US-64 कहलाती है। 1968 में सरकार ने भारतीय स्टेट बैंक और अन्य वाणिज्यिक बैंकों को पारस्परिक निधि स्थापित करने की स्वीकृति दी। तद्नुसार, 1987–92 के बीच सरकारी क्षेत्र के बैंकों द्वारा सात नये और एल0आई0सी0 और जी0 आई0 सी0 द्वारा एक–एक पारस्परिक निधि स्थापित की गयी।

पारस्परिक निधियों के लिये कोई विनियामक ढाँचा न होने के कारण ये फण्ड प्रबन्धकों द्वारा अपने तरीकों से प्रबन्धित किये जा रहे थे इनके लिये प्रथम दिशा–निर्देश भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 5 जुलाई, 1889 को और भारत सरकार द्वारा 28 जून, 1990 को जारी किये गये। परन्तु इन दिशा–निर्देशों में कोई समन्वय नहीं था। चूँकि उनमें कोई दंड नियम नहीं थे, ये पारस्परिक निधियों को विनियमित करने के लिये अप्रभावी थें । उनके कार्य में कोई पारदर्शिता नहीं थी, न ही उनके लेन–देन में ईमानदारी थी और न उनमें स्वस्थ प्रतिस्पिर्धा थी। परिणामस्वरूप, 14 फरवरी,1992 को सरकार ने उनके लिये विस्तृत दिशा–निर्देश जारी किये जिन्होंने पहले के सभी दिशा–निर्देशों को हटा दिया बाद में सेबी द्वारा पारस्परिक निधियों के कार्य–करण की जाँच ने इनमें गंभीर गड़बड़ियां पायी। उनसे बचने और निवेशकों के हितों की सुरक्षा करने हेतु, पारस्परिक निधियों का विलियमन SEBI(Mutual Funds) Regulations, 1993 के अन्तर्गत लाया गया है। इन विनियमों के अन्तर्गत पारस्परिक निधियों की मुद्रा और पूँजी बाजारों में स्थानान्तरणीय प्रतिभूतियों या निजी तौर पर रखे गये डिवेंचरों अथवा प्रतिभूति ऋणों में निवेश करने की स्वीकृति दी गयी है। इन विनियमों के अनुसार, एक निजी योजना के अन्तर्गत निवेश 5 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकते हैं। निधि का

सभी योजनाओं में निवेश एक कम्पनी शेयरों और डिवेंचरों का 15 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता।

पारस्पारिक निधियाँ ट्रस्ट के रूप में बनाई जाती हैं और उनका प्रबन्धन अलग से बनायी गयी सम्पत्ति प्रबन्ध कम्पनी Asset Management Company(AMC) द्वारा होता है। ऐसी AMC की शुद्ध पूँजी 5 करोड़ निर्धारित की गयी है जिसमें से संस्थापकों का न्यूनतम योगदान 40 प्रतिशत होना चाहिए। एक बंद–अवधि योजना की न्यूनतम राशि 20 करोड़ रूपये और खुली–अवधि योजना 50 करोड़ रूपये होनी चाहिए।

पारस्परिक निधियों को योजना–वार अपनी वार्षिक रिपोर्ट छापनी होती हैं, छमाही गैर–अंकेक्षण लेख रिपोर्ट NAV का गति की तिमाही विवरण और पोर्टफोलियो को तिमाही विवरण सेबी को देना होता है। सेबी फण्ड की लेखा पुस्तकों की जाँच के लिये अथवा इसके कार्यकरण लिये एक अंकेक्षक नियुक्त करता है। यह म्यूचुअल फण्ड के पंजीकरण को निलम्बित कर सकता है यदि ऐसा पाया जाये कि वे जानबूझकर हेरा–फेरी करते हैं, कीमतों को बढ़ाते या घटाते हैं अथवा उनकी वित्तीय स्थिति खराब हो गयी है।

1993 के नियमनों को स्थानापन्न करते हुए, सेबी ने दिसम्बर 1996 में नये पारस्परिक निधि नियमनों की घेषणा की। इन नए नियमनों के अनुसार, पारस्परिक निधि को वास्तविक संपदा, जायदाद, मुद्रा बाजार, उपकरणों और विभिन्न ऋण उपकरणों के विशेषीकृत योजनाये चालू करने की स्वीकृति दी गयी है। सेबी Mutual Funds स्कीमों के लिये कुछ मूल्यांकन नाम और लेखा रीतियाँ निर्धाति करता है। Mutual Funds को निवेशकों के लिये अधिक आकर्षक बनाया गया है। न्यूनतम बंद अवधि को 46 दिनों से कम करके 30 दिन कर दिया गया है। 1997 में सेबी ने Mutual Funds को नियमित आय योजनाओं के लिये जिनमें भुगतान की क्षमता है पर सांकेतिक प्रतिफल वर्णन करने की अनुमति प्रदान की। भारतीय रिजर्व बैंक ने सेबी रजिस्टर्ड Mutual Funds को विदेशी मार्किटों में निवेश करने की अनुमति दी है। इसके लिए प्रारम्भिक कुल सीमा डॉलर 50 मिलियन एक फण्ड के लिये रखी गयी । SEBI (Mutual Funds) Regulations, 1996 को 1998 से संशोधित किया गया। ये नए विनियम Mutual Funds असूचीबद्ध अथवा संस्थापकों की सहयोगी या ग्रुप कंपनियों द्वारा निजी तौर पर रखी गयी प्रतिभूतियों में निवेश करने में रोक लगाते हैं। संस्थापकों के ग्रुप कम्पनियों की सूचीबद्ध प्रतिभूतियों में उनके निवेश पर निधि की NAV की 25 प्रतिशत सीमा लगाई गयी है। Mutual Funds को वार्षिक रिपोर्ट में अपने पोर्टफोलियों को पूरी तरह से प्रकट करना होता है। फण्ड के ट्रस्ट बोर्ड में स्वतन्त्र ट्रस्टियों की संख्या दो तिहाई होनी चाहिये। सभी खुली–अवधि, स्कीमें जिनमें यूनिट–स्कीम–64 में शामिल है अपनी NAV प्रतिदिन आधार पर करेंगी।

सरकार ने 1999–2000 बजट में Mutual Funds के लिए अनेक नीति उपाय प्रारम्भ किये । इसने Mutual Funds द्वारा अर्जित सभी प्रकार की आय को आयकर से छूट की घोषणा कीं। 1999–2000 की RBI मौद्रिक और ऋण नीति में Mutual Funds को निवेशकों के लिए किसी वाणिज्यिक बैंक का चैक लिखने की सुविधा प्रदान की।

31 मार्च, 1999 की सेबी द्वारा रजिस्टर्ड Mutual Funds जिनमें भारतीय यूनिट ट्रस्ट शामिल है, की संख्या 40 थी।

1981—82 से 1991—92 तक MFs द्वारा संसाधन जुटाव मे औसतन 71 प्रतिशत दर से वृद्धि हुई। यह तेजी वाली द्वितीयक मार्किट, नए म्यूचुअल फण्डों की स्थापना, उनके द्वारा नई योजनायें चालू करने और ऊँची प्रतिफल की दर के कारण थी। 1992—93 पारस्परिक निधियों द्वारा साधन जुटाव अब तक सबसे अधिक 11275 करोड़ रूपये था। 1995—96 से इसमें निरंतर कमी होती गयी जो 1998—99 में सबसे कम 3611 करोड़ रूपये थी। 1995—97 के बीच गिरावट का कारण मार्किट में मंदी की स्थितियां थी। जबकि 1998—99 में गिरावट भारतीय यूनिट ट्रस्ट द्वारा US-64 की खरीद थी। 1999—2000 में अनेक राजकोषीय प्रोत्साहनों का पारस्परिक निधियों पर अनुकूल प्रभाव पड़ा जिनमें सभी पारस्परिक निधियों ने 21971 करोड़ रूपये का निबल संसाधन जुटाव किया।

8.4 पारस्परिक निधियों की यूनिट योजनाएं

भारत में सर्वप्रथम पारस्परिक निधि—यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया—1964 में स्थापित हो चुकी थी, परन्तु वाणिज्यिक बैंकों ने 1987 से ही ऐसे फण्ड स्थापित किये हैं। इस दिशा में भारतीय स्टेट बैंक तथा केनरा बैंक अग्रणीय रहे हैं। इनके पश्चात बैंक ऑफ इण्डिया, इण्डियन बैंक और पंजाब नेशनल बैंक ने यह फण्ड स्थापित किये हैं। इस प्रकार से 5 राष्ट्रीयकृत बैंकों ने यह फण्ड स्थापित किये हैं। साथ ही, जीवन बीमा निगम तथा साधारण बीमा निगम ने भी इस क्षेत्र में प्रवेश किया है।

पारस्परिक निधि से तात्पर्य निवेशकर्ताओं के एक बड़े वर्ग द्वारा सामूहिक रूप से प्रतिभूतियों में निवेश करने से है। ऐसा करने से दो प्रमुख लाभ मिलते हैं। पूँजी बाजार में निवेश करने से जो जोखिम निहित होती है उसका विविधीकरण हो जाता है, अर्थात उसमें कमी हो जाती है। दूसरे, ऐसे निवेश से अधिक आय अर्जित की जा सकती है। अतः यह फण्ड बचत राशियों को इकट्ठा करने , विशेष रूप से कम आय अर्जित करने वाले व्यक्तियों से तथा घरेलू क्षेत्र से और प्रतिभूति बाजार में निवेश करने का प्रमुख माध्यम बन गये हैं।

भारत मे पारस्परिक निधियाँ, रिजर्व बैंक तथा भारत सरकार द्वारा जारी दिशा—निर्देशों के अन्तर्गत कार्य करती हैं। नवीन दिशा—निर्देश रारत सरकार ने फरवरी, 1992 में जारी किये हैं। इसके अनुसार, भारत में कोई भी पारस्परिक निधि, भारतीय ट्रस्ट एक्ट के अन्तर्गत एक ट्रस्ट के रूप में स्थापित की जा सकती है तथा इसका प्रबन्ध, पृथक से स्थापित की जा सकती है तथा उसका प्रबन्ध, पृथक से स्थापित आस्तियाँ प्रबन्ध कम्पनी द्वारा किया जायेगा। अतः वाणिज्यिक बैंकों द्वारा स्थापित न्यू फण्ड ट्रस्ट के रूप में सथापित हुए हैं। इन बैंकों ने या तो स्वयं को प्रबन्धक ट्रस्टी के रूप में नियुक्त किया है अथवा अपनी वाणिज्यिक बैंकिंग सहायक कम्पनी को। अस्तियाँ प्रबन्ध कम्पनियों को भी बैंक के सहायक कम्पनी के रूप में स्थापित करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

दिशा निर्देशों के अनुसार, अस्त्यिाँ प्रबन्ध कम्पनी की निबल सम्पत्ति कम से कम 5 करोड़ रूपये होनी चाहिये और उसके संचालन मंडल के कम से कम 50 प्रतिशत सदस्य स्वतन्त्र संचालक होने चाहिये, जिनका बैंक के संगठन से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये।

पारस्परिक निधियों की योजनायें

पारस्परिक निधियाँ सेबी की पूर्व अनुमति से विभिन्न योजनाओं को चला सकती हैं। उन्हें बंद–अवधि दोनों प्रकार की योजनाये चालू करने की इजाजत होती हैं।

(क) **बंद–अवधि की योजनाएं** – ऐसी योजनाओं की निम्नलिखित विशेषतायें होती हैः–

(i) बन्द अविधि योजनाओं को शेयर प्रारम्भिक बिक्री के बाद पारस्परिक निधि द्वारा बेचे नहीं जा सकते हैं।

(ii) कम्पनी प्रतिभेतियाँ प्राप्त करने के लिये उन्हें द्वितीय मार्किट में पारस्परिक निधि द्वारा चलाया जाता है।

(iii) इन शेयरों की **NAV** पर भुगतान नहीं किया जाता है, बल्कि इन्हें द्वितीय मार्किट में किसी स्टॉक एक्सचेंज पर बेचा या खरीदा जाता है जो उनकी NAV से कम या अधिक कीमत हो सकती हैं

शेयरों की कीमतें उनकी सटॉक मसर्किट में माँग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होती हैं।

(ख) **खुली–अवधि की योजना**– एक खुली–अवधि योजना वाली पारस्परिक निधि की निम्न विशेषतायें होती हैं–

(i) खुली–अवधि पारसपरिक निधि के शेयर एक पारस्परिक निधि निरंतर बेंच सकती है।

(ii) इनका भुगतान पारस्परिक निधि द्वारा इनकी NAV पर किया जाता है।

(iii) वह निवेशकों को अपने शेयर जब भी संभव होता है उस शेयर की NAV पर बेचता है और सदैव उनकी पुनर्खरीद के लिये तैयार रहता है।

(iv) खुली–अवधि के पारस्परिक निधि शेयरों की कीमतें उनकी NAV द्वारा निर्धारित होती है।

भारत में MFs बंद–अवधि दोनों प्रकार की योजनाओं के साथ–साथ चलाते हैं, परन्तु हाल के वर्षों में , बंद–अवधि की अपेक्षा MFs खुली अवधि की योजनाओं को प्राथमिकता दे रहे हैं। MFs के शेयर– होल्डर लाभांश पूँजी –लाभ अथवा NAV के आधार पर अपने निवेश का प्रतिफल प्राप्त करते हैं।

पारस्परिक निधि के एक शेयर या यूनिट का शुद्ध परिसम्पत्ति बाजार उसका NAV होता है। मान लीजिए कि NAV एक यूनिट के अंकित मूल्य से अधिक है। इसका मतलब है कि शेयर का मूल्य बढ़ गया है और इसके विपरीत NAV कम होने पर इसका कीमत मूल्य कम होता जाता है। पारस्परिक निधि अपने यूनिटों को अपनी स्कीमों के अन्तर्गत अंकित मूल्य (रू 10) पर लोगों को बेचती हैं और उसका भुगतान चालू NAV करते हैं। NAV की गणना निम्न प्रकार से की जाती है–

NAV of MF=Total Market Value of All MF Holdings- All Liabilities No. of Units of the Scheme

इस प्रकार, एक पारस्परिक निधि योजना की NAV उस योजना की सभी परिसम्पत्तियों का प्रति 1 यूनिट बाजार मूल्य है।

प्रत्येक पारस्परिक निधि का विभिन्न प्रकार की योजनायें लागू करने की अनुमति दी गयी है। इन योजनाओं को लागू करने से पूर्व इनका पंजीकरण सिक्यूरीटीज एवं ऐक्सचेन्ज बोर्ड ऑफ इण्डिया से कराना आवश्यक है। पारस्परिक निधियों को दोनों प्रकार की, अर्थात सीमित अवधि वाली योजनाओं तथा असीमित अवधि वाली योजनाओं को चालू करने की अनुमति है, परन्तु इन योजनाओं के कमशः 20 करोड़ रूपये तथा 50 करोड़ रूपये की धनराशि अवश्य ही एकत्रित की जानी चाहिये । पारस्परिक निधियों को लगातार तरलता भी उपलब्ध करानी चाहिये। सीमित अवधि की योजनाओं को स्टॉक एक्सचेन्जों में सूचीकरण कराना आवश्यक है असीमित अवधि वाली योजनाओं में फण्ड को यूनिटों का कय व विकय निर्धारित कीमतों पर करते रहना चाहिये । इन कय–विकय मूल्य का आधार योजना की आस्तियों का निवल मूल्य होना चाहिये। ऐसी कीमतें सप्ताह में कम से कम एक बार अवश्य प्रकाशित की जानी चाहिये।

वाणिज्यिक बैंकों द्वारा स्थापित पारस्परिक निधियों ने अनेक योजनाये लागू की हैं जिनमें से लगभग सभी सीमित अवधि की योजनायें हैं अर्थात यूनिटों की बिकी का एक निश्चित समय होता है। इन योजनाओं के उद्देश्य अलग–अलग हैं और इनका अभिप्राय विभिन्न आर्थिक स्थिति के लोगों को आकर्षित करना है। मोटे तौर पर ये योजनायें निम्न श्रेणियों में विभाजित की गयी हैं–

(i) आय योजनाये
(ii) आय तथा वृद्धि योजनायें
(iii) वृद्धि योजनायें
(iv) कर–आयोजन योजनायें

इन योजनाओं के उद्देश्य उन्हें चालू करते समय घोषित कर दिये जाते हैं इनके परिणाम स्वरूप इन योजनाओं द्वारा एकत्रित धन का निवेश भी भिन्न–भिन्न प्रकार से होता है।

8.5 पारस्परिक निधियों की निवेश पद्धतियाँ

दिशा–निर्देशों के अनुसार, पारस्परिक निधि को इस बात की अनुमति दी गयी है कि वे केवल पूँजी बाजार अथवा मुद्रा बाजार में हस्तांतरणीय प्रतिभूतियों में ही धन का निवेश करें।

इसमें वे ऋणपत्र भी शामिल हैं जो निजी तौर पर बिकी के लिये प्रस्तुत किये जाते हैं। साथ ही फण्ड ऐसे ऋणों में जिनका प्रतिभूतिकरण किया जा चुका है साथ ही फण्ड से ऋणों में जिनका प्रतिभूतिकरण किया जा चुका है (Securitised debt) में भी निवेश कर सकते हैं, परन्तु एक शर्त यह है कि ऐसी प्रतिभूतियों तथा ऐसे ऋणपत्रों में जिनका मूल्य शेयर बाजार की सूची में शामिल नहीं होता, निवेश वृद्धि योजना में अधिक से अधिक 10 प्रतिशत तक और आय योजना में 40 प्रतिशत तक हो सकता है ओर इसके साथ ही यह भी अनिवार्य है कि सभी ऋणपत्रों का मूल्यांकन ऋणपात्रता मूल्यांकन करने वाली संस्था द्वारा (विनियोजन योग्य श्रेणी) में किया जाना चाहिये। म्यूचुअल फण्ड किसी भी उद्देश्य के लिये सावधि ऋण नहीं दे सकते।

साधारण अंशों मे निवेश करने मे जो जोखिम उठानी पड़ती है उसक विविधीकरण करने के उद्देश्य से दिशा – निर्देश निम्न प्रकार से हैं–

(i) म्यूचुअल फण्ड की किसी एक योजना के अन्तर्गत एकत्रित राशि का 5 प्रतिशत से अधिक भाग किसी एक कम्पनी के अंशों में निवेश नहीं किया जाना चाहिये।

(ii) एक म्यूचुअल फण्ड की सभी योजनाओं क अन्तर्गत किसी एक कम्पनी की प्रदत्त पूँजी का अधिक से अधिक 5 प्रतिशत भाग ही रखा जा सकता है।

(iii) एक म्यूचुअल फण्ड अपनी सभी योजनाओं के अन्तर्गत अपने फण्ड का अधिकतम 10 प्रतिशत भाग ही किसी एक कम्पनी के अंशों, ऋणपत्रों या अन्य किसी प्रतिभूतियों में विनियोजित कर सकता है।

(iv) कोई म्यूचुअल फण्ड अपनी सभी योजनाओं के अन्तर्गत अपने फण्ड का अधिकतम 15 प्रतिशत भाग ही किसी विशेष उद्योग के अंशों और ऋणपत्रों में विनियोजित कर सकता है; जैसे सूती वस्त्र उद्योग, कागज उद्योग, चीनी उद्योग आदि।

पारस्परिक निधि के लिये यह भी अनिवार्य है कि जब प्रतिभूतियों को क्रय करे तो उनकी वास्तविक सुपुर्दगी लें ओर जब प्रतिभूतियों को बेचे तो उनकी वास्तविक सुपुर्दगी दें ओर किसी भी दशा में मंदड़िया बिक्री तथा बदल सौदे मे संलग्न न रहें।

आस्तियाँ प्रबन्ध कम्पनी, पारस्परिक निधि, से निवेश के प्रबन्ध करने की तथा परामर्शदायी शुल्क तथा अन्य खर्चे दिशा–निर्देश के अनुसार प्राप्त करेगी। इन खर्चों को आय में से घटाने के बाद, शेष आय को यूनिट धारियों में लाभांश के रूप में बाँटा जायेगा। भारत में पारस्परिक निधियों ने आय योजनाओं के सम्बन्ध में जिस न्यूनतम लाभांश की घोषणा की थी, वह सदैव वितरित किया गया है। साथ ही, वृद्धि योजनाओं के बारे में बांटे गये लाभांश में क्रमशः वृद्धि की गयी है। सीमित अवधि की योजनायें निर्धारित अवधि, जैस 5,7,8 वर्षों के बाद समाप्त कर दी जायेंगी और उनकी समाप्ति पर उनके अन्तर्गत रखे गये निवेशों की बिक्री से जो मूल्य प्राप्त होगा, उनमें से सब खर्चे घटा देने के पश्चात वह राशि यूनिट धारकों में बराबर–बराबर बाँट दी जायेगी।

भारतीय विनियोजक जनता में पारस्परिक निधियाँ प्र्याप्त लोकप्रिय हो गयी हैं। सरकार ने ऐसे फण्ड निजी क्षेत्र में भी खोलने की अनुमति दे दी है। रिजर्व बैंक ने मुद्रा बाजार म्यूचुअल फण्ड स्थापित करने का भी निर्णय ले लिया है।

8.6 पारस्परिक निधियों के क्रियाकलापों पर सेबी का नियमन

भारत में म्यूचुअल फण्ड के क्रियाकलापों पर नियमन SEBI Regulation - 1996 द्वारा किया जाता है जिसका उद्देश्य निवेशक संरक्षण के साथ–साथ इस उद्योग का विकास करना भी शिामिल है। इन Regulations के कुछ प्रमुख प्रावधान निम्न हैं–

(i) Registration- म्यूचुअल फण्ड की स्थापना से पूर्व Sponsors को SEBI के पास रजिस्ट्रेशन के लिए आवेदन करना आवश्यक हैं। Sponsors का अपनी निष्ठा, ख्याति, साख और व्यापारिक लेन–देनों में ईमानदारी का Track Record होना आवश्यक है।

Sponsor को AMC की नेटवर्थ का न्यूनतम 40 प्रतिशत भाग अवश्य चुकाना होता है साथ ही उन्हें किसी आर्थिक अपराध या अनैतिक अपराध का अपराधी नहीं होना चाहिये।

(ii) Trustees – म्यूचुअल फण्ड एक ट्रस्ट के रूप में स्थापित किये जाते हैं, अतः योग्य ट्रस्टी का भी होना आवश्यक है। इसके लिये उसे निष्ठ, योग्यता तथा व्यापार में साख का धारक होना आवश्यक है। उसे आर्थिक या नैतिक अपराधी नहीं होना चाहिये। ट्रस्टी की नियुक्ति से पूर्व SEBI से उसका अनुमोदन प्राप्त करना आवश्यक है।

(iii) Assets Management Company (AMC) फण्ड के Sponsors या Trustee द्वारा एक AMC की नियुक्ति SEBI से अनुमोदन से की जायेगी। AMC की Networth न्यूनतम 10 करोड़ रूपये होना आवश्यक है। AMC अन्य किसी व्यापार में लिप्त नहीं होना चाहिये। सिवाय किसी सलाहकारिता सेवा जो किसी पेंशन फण्ड या प्रोविडेन्ट फण्ड को प्रदान की गयी हो।

(iv) Costodian- म्यूचुअल फण्ड एक कस्टोडियन की नियुक्ति करेगा जो कि उसकी विभिन्न स्कीमों में सहयोग करेगा कस्टोडियन की नियुक्ति की सूचना SEBI को देना आवश्यक हैं। और Trustee का अनुमोदन आवश्यक है।

(v) Scheme of Mutual Fund- म्यूचुअल फण्ड AMC के माध्यम से तथा trustee के अनुमोदन से किसी भी स्कीम का प्रारम्भ कर सकते हैं। प्रत्येक स्कीम की एक प्रति SEBI के अनुमोदन के लिये उनके पास भेजना आवश्यक है। इस स्कीम में निवेश उद्देश्यों का वर्णन, सम्पत्तियों का मूल्याँकन तथा यूनिट्स के पुनर्खरीद की शर्तों का उल्लेख होना आवश्यक है।

8.7 म्यूचुअल फण्ड निवेश के मार्गदर्शक नियम

अक्टूबर, 1999 में SEBI ने म्यूचुअल फण्ड के निवेश सम्बन्धी कुछ मार्गदर्शक नियम जारी किये , जो कि सार रूप में यहाँ प्रस्तुत हैं–

(i) प्रत्येक स्कीम की Net Asset का अधिकतम 10 प्रतिशत ही किसी एक कम्पनी की अंश–पूँजी में निवेश किया जा सकता है।

(ii) प्रत्येक स्कीम की Net Asset का 15 प्रशित तक ही किसी एक Issuer की ऋण प्रतिभूतियों में विनियोजित किया जा सकता है।

(iii) प्रत्येक स्कीम अपनी Net Asset का 15 प्रतिशत ही किसी एक कम्पनी की Unlisted समता अंशों में निवेश कर सकती है।

(iv) उपर्युक्त बन्धन तथा सीमायें सरकारी प्रतिभूतियों तथा मुद्रा बाजार की प्रतिभूतियों में निवेश पर लागू नहीं होती हैं।

(v) कोई स्कीम अपने NAV का 25 प्रतिशत से अधिक Unrated ऋण प्रतिभूतियों में निवेश नहीं कर सकती है ।

8.8 पारस्परिक निधि की एम0आई0पी0 योजनाओं का मूल्यांकन

एक अच्छी मासिक आय योजना निवेशकों को मासिक आधार पर बेहतर रिटर्न मुहैया करवाने का लक्ष्य लेकर कारोबार करती है। इसके लिये जरूरी है कि निधि ने इक्विटी और ऋण प्रतिभूतियों में निवेश किया हो। बाजार में उपलब्ध अधिकतर पारस्परिक निधियों की एम0आई0पी0 योजनाओं पोटफोलियों के 20 फीसदी हिस्सा इक्विटी मार्केट में लगाते हैं जबकि शेष का निवेश प्रतिभूतियों में करते हैं। इसका अर्थ यह निकाला जा सकता है कि एम0आई0पी0 शुद्ध ऋण प्रतिभूतियों की तुलना में ज्यादा जोखिम भरा हो जाता है। लेकिन संतुलित निधि

की तुलना में यह कम जोखिम भरा है, जो इक्विटी में 50–60 प्रतिशत तक निवेश करता है।

इस पर मिलने वाले रिटर्न की बात करे ंतो अभी इक्विटी मार्केट में बूम का माहौल देखा जा सकता है। इस माहौल का एम0आई0पी0 ने पूरा पूरा फायदा उठाया है। इसके अलावा, ब्याज दरों के कमोवेश न्यूनतम स्तर पर पहुँच जाने के कारण भी एम0आई0पी0 योजनायें इक्विटी बाजार में अपने संतुलित निवेश के कारण फायदे में रही हैं। वैसे कोइ्र इसकी स्पष्ट भविष्यवाणी नहीं कर सकता है कि किसी विशेष समय सीमा में इक्विटी मार्केट या ऋण प्रतिभूति बाजार किस तरह का कारोबारी व्यवहार करेगा। जैसा कि मौजूदा बाजार परिदृश्य में जाहिर हैं अधिकतर उद्योग बेहतर कारोबारी प्रदर्शन कर रहे हैं और ऑटो, स्कीम और सीमेंट जैसे आधारभूत उद्योगों में उम्दा वोल्यूम ग्रोथ दर्ज किय गया हैं इसके पीछे निश्चित ही अच्छे मानसून की भूमिका रही हैं बाजार की स्थिति को देखते हुए निवेशक अपने पोर्टफोलियो में बढ़त की उम्मीद कर सकते हैं। हालांकि 10–15 प्रतिशत जोखिम की संभावना बनी रहती है। बाजार विश्लेशकों के मुताबिक एम0आई0पी0 पारस्परिक निधि प्रबंधकों ने अगले साल भर के लिये इसके जरिये 12 प्रतिशत लाभ का लक्ष्य निर्धारित किया है। इसके लिये शेयर बाजार के प्रदर्शन को आधार बनाया जायेगा। इस कारण ऐसी निधि योजनाओं के बेहतर प्रदर्शन की संभावना और प्रबल हो जाती है, क्योंकि इनकी परिसम्पत्तियों का वितरण संतुलित होता है। पर ऐसे निवेश जो अपने निवेश के अन्तर्गत जोखिम के बाजार सुरक्षा को जयादा महत्व देते हैं, उनके लिये डाकघर एम0आई0पी0 योजनाओं में निवेश (8 प्रतिशत तयशुदा) का विकल्प खुला है। हालाकि इन योजनाओं पर निश्चित रिटर्न की गारंटी इसे ज्यादा आकर्षक बनाती है, पर यह योजना उन लोगों के लिये है जो अपनी निधि को छः वर्ष तक लॉक करने की चिन्ता नहीं करते हैं। इसके उलट पारस्परिक निधि योजनायें खुली अवधि वाली होती है; अर्थात जब चाहो इसमें शामिल हो जाओ और इससें आसानी से बाहर भी हो जाओं। सही बात तो यह कि यू0टी आई0 संकट के बाद सभी पारस्परिक निधियों ने अपनी बन्द अवधि वाली एम0आई0पी0 योजनाओं को बन्द कर दिया है।

क्रम0सं0	पारस्परिक निधि	क्रिसिल रेटिंग (दिसम्बर 2013)	क्रिसिल रेटिंग (नवम्बर 2013)	शुद्ध आस्त मूल्य (19जनवरी 2004)
1.	प्रूडेंशियल आई0सी0आई0एम0आई0पी0 प्लान–कम्युलेटिव	1	2	14.75 रूपये
2.	टेम्पलटन मंथली इन्कम प्लान–ग्रोथ	2	4	15.79 रूपये
3.	एस0बी0आई0 मैग्नम मंथली इनकम प्लान–ग्रोथ	3	5	13.69 रूपये
4.	एलायंस मंथली इन्कम ग्रोथ	4	3	19.91 रूपये

5.	रिलायंस मीडियम टर्म फंड ग्रोथ	5	1	14.07 रूपये
6.	एफ0टी0इन्डिया मंथली इन्कम प्लान–ग्रोथ	6	6	15.83 रूपये
7.	प्रिंसिपलद एम0आई0पी0 ग्रोथ एक्यूम्यूलेशन प्लान	7	8	12.67 रूपये
8.	विरला मंथली इन्कम प्लान सी–ग्रोथ	8	7	15.48 रूपये
9.	सन एफ0एंड सी0 मंथली इन्कम प्लान (रिस्क एडलेस्ट रिटर्न–2003	9	9	13.9 रूपये

जहाँ तक कर –लाभ का सवाल है पारस्परिक निधि द्वारा निवेशको को दिया जाने वाला लाभांश 12.5 प्रतिशत की दर पर वितरण करने की स्थिति में ही इस पर कर लगाया जाता है और ऐसे लाभांश कर–कटौती के बाद निवेशकों के हाथों तक कर मुक्त लाभांश की शक्ल में पहुँचता है। इसके विपरीत बाँड या दूसरी जमाओं में किये जाने वाले निवेश पर अर्जित होने वाला ब्याज धारा 80 एल के तहत साल भर में अधिकतम 12,000 तक भी कर–मुक्त माना जाता है।

इक्विटी में निवेश के कारण हम एम0आई0पी0 योजनाओं को पूरी तरह जोखिम–मुक्त नहीं मान सकते हैं। इसके अलावा, इस पर मिलने वाला रिटर्न भी पूर्व निर्धारित नहीं रहता है। पर यू0ओ0आई0 अकेली ऐसी पारस्परिक निधि है जो अपने एम0 आई0 पी0 योजनाओं पर एश्योर्ड रिटर्न देने की बात करती है। इसकी एम0आई0पी0 योजना 95 और एम0आई0पी0 96 निवेश के पहले साल के दौरान एश्योर्ड रिटर्न की गारंटी देती है। यह शुरूआत में 15 प्रतिशत रिटर्न का ऑफर देती है पर आगे यह वार्षिकी आधार पर 5 प्रतिशत के लगभग पहुँच जाता है। एम0 आई0 पी0 2000 के मामले में , जिसमें पहले साल के निवेश के तहत यह निश्चित रिटर्न की गारंटी देतीहै और परिपक्वतों के बाद मूलधन की वापसी के लिये भी निवेशकों को आश्वस्त करती है, ने मूलधन में गिरावट को संभालने के लिये पिछले वर्ष अपने निवेशकों को काई भी लाभांश नहीं जारी किया।

8.9 सारांश

इस इकाई में पारस्परिक निधियों, निधियों के उद्देश्य, निवेश लाभ, भारत में पारस्परिक निधियों का विकास, विभिन्न योजनायें, निवेश पद्धतियाँ, सेबी का नियमन व मार्ग दर्शक नियम को आप समझ गए हैं। अब आप पारस्परिक निधि की एम0आई0पी0 योजनाओं का मूल्यांकन की पद्धति से परचित हो गये हैं और किसी भी पारस्परिक निधि की एम0आई0पी0 योजना का विश्लेषण और मूल्यांकन का प्रयास कर सकते हैं।

8.10 शब्दावली

SEBI- भारतीय प्रतिभूति एवं नियमन बोर्ड
MIP– मासिक आय योजना
NAV – शुद्ध वार्षिक मूल्य
AMC – सम्पत्ति प्रबन्ध कम्पनी

8.11 बोध प्रश्न

प्रश्न 1— "पारस्परिक निधि का आशय इकाई प्रन्यास से है।" यह कथन है—

(A) सेबी (B) कम्पनी अधिनियम

(C) आक्सफोर्ड डिक्शनरी (D) उक्त में कोई नहीं।

प्रश्न 2— पारस्परिक निधियों का लाभ है—

(A) तरलता (B) कम जोखिम

(C) कोषों की सुरक्षा (D) उक्त सभी

प्रश्न 3— निजी क्षेत्र में पारस्परिक निधि को स्थापित करने की स्वीकृति मिली—

(A) 14 फरवरी 1994 (B) 14 मार्च 1992

(C) 14 **फरवरी 1992** (D) 14 मार्च 1993

प्रश्न 4— पोर्टफोलियों के अनुसार पारस्परिक निधि होता है—

(A) वृद्धि निधि (B) स्कन्ध निधि

(C) विशिष्ट निधि (D) उक्त सभी।

8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर— 1. **(A)** 2. **(D)** 3. **(C)** 4. **(D)**

8.13 स्वपरख प्रश्न

प्रश्न 1— पारस्परिक निधियां क्या होती हैं उनके उद्देश्य क्या हैं लोग इनमें निवेश किस लिए करतें हैं भारत में पारस्परिक निधियों के विकास की विवेचना कीजिए।

प्रश्न 2— भारत में पारस्परिक निधियों के विकास ओर कार्यकरण की समीक्षा कीजिए।

प्रश्न 3— पारस्परिक निधियों की यूनिट योजनाओं एव ंनिवेश पद्धतियों का विवेचन कीजिए।

प्रश्न 4— पारस्परिक निधि की एम0आई0पी0 योजनाओं पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

प्रश्न 5— पारस्परिक निधियों के क्रियाकलापों के नियमन पर एक टिप्पणी लिखिए।

8.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Mutual fund in India: Vehicle for fixed income investments- Jaydeep Sen.
2. Mutual funds :The Money multipiler- Lalitha.
3. Indian Mutual funds Hand Book- Sundar Sankaran.
4. Bogle on mutual funds – John C. Bogle.

इकाई 9 स्कन्ध विपणि

इकाई की रूपेरखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 स्कन्ध विपणि के लक्षण
9.3 स्कन्ध विपणि के कार्य
9.4 भारत में विनियम विपणियों का विकास
9.5 स्कन्ध विपणि के प्रमुख विभाग
9.6 वित्तीय विकास में स्कन्ध विपणि की भूमिका
9.7 भारतीय अर्थव्यवस्था में स्कन्ध विपणि का महत्व
9.8 स्कन्ध विपणि पर प्रतिभूतियों के मूल्यों में परिवर्तन के कारण
9.9 स्कन्ध विपणि के दोष
9.10 स्कन्ध विनिमय में सुधार के सुझाव
9.11 सारांश
9.12 शब्दावली
9.13 बोध प्रश्न
9.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.15 स्वपरख प्रश्न
9.16 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- स्कन्ध विपणि व इसके लक्षण, कार्यो का वर्णन कर सकें ।
- भारत में विनिमय विपणियों का विकास व प्रमुख विभाग के बारे में अवगत हो सके।
- भारतीय वित्तीय विकास में स्कन्ध विपणि की भूमिका का वर्णन कर सकें।
- स्कन्ध विपणि पर प्रतिभूतियाँ के मूल्यों में परिवर्तनों के कारणों और दोषों की व्याख्या कर सके।

9.1 प्रस्तावना

किसी भी देश की स्कन्ध विपणि उस देश के पूँजी बाजार का आधार होती है जैसा कि इसके नाम से विदित है स्कन्ध विपणि में स्टॉक का क्रय विक्रय होता है अन्य शब्दों में स्कन्ध विपणि से आशय ऐसे स्थायी एवं संगठित बाजार से है जहां सूचीबद्ध संयुक्त पूँजी वाली कमपनियों के विभिन्न प्रकार के अंशों, ऋण पत्रों, सरकारी प्रतिभूतियों वं अन्य सार्वजनिक संस्थाओं की प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय किया जाता है। स्कन्ध विपणि की प्रमुख परिभषायें निम्नलिखित है–

"स्कन्ध विपणि का आशय व्यक्तियों के एक ऐसे संगठन या संस्था से है, चाहे वह सममेलित हो या न हो, जिसकी स्थापना प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय और लेन–देन में सहायता, नियमन तथा नियन्त्रण करने के उद्देश्य से की गई हो।"–प्रतिभूति अनुबन्ध अधिनियम 1956

स्कन्ध विपणि एक बड़े गोदाम की तरह है, जहाँ पर विभिन्न प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जाता है। – **हार्टले विदर्स**

"प्रतिभूति विनिमय बाजार वह स्थान है जहाँ सूचीबद्ध प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय विनियोजन अथवा सटटे के लिए किया जाता है।" –**पायले**

"स्कन्ध विपणि दलालों का एक संघ है, जिसका संगठन सरकारी एवं व्यावसायिक इकाइयों की प्रतिभूतियों की नियमित एवं सुगम बाजार प्रदान करने के लिए किया जाता है।" – **प्रो0 हेने**

उपरोक्त परिभाषाओं के विवेचन से स्पष्ट है कि स्कन्ध बाजार एक संगठित बाजार है जिसमें सूचीबद्ध प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय अधिकृत सदस्यों द्वारा निर्धारित नियमों के अन्तर्गत किया जाता है।

9.2 स्कन्ध विपणि के लक्षण

स्कन्ध विपणि की परिभाषाओं के आधार पर उनकी प्रमुख विशेषतायें या लक्षण निम्नलिखित है–

(i) स्कन्ध विपणि संगठित पूँजी बाजार हैं जहाँ से उद्योगो, निगमों आदि को पूँजी प्राप्त होती है।

(ii) स्कन्ध विपणि में अंश, ऋणपत्र, बन्धकपत्र आदि का क्रय–विक्रय होता है जिनको सार्वजनिक कम्पनियां ट्रस्ट, केन्द्र सरकार व राज्य सरकार नियमित करती है।

(iii) स्कन्ध विपणि में सभी व्यवहार उसके सदस्यों द्वारा या विनियोजकों की ओर से या उनके लिए किये जाते हैं।

(iv) इसमें किये जाने वाले सभी व्यवहार बनाये गये नियमों व उपनियमों के अनुकूल ही होते हैं।

(v) स्कन्ध विपणि में केवल उन्हीं प्रतिभूतियों में व्यवहार होता है जो सूचीबद्ध होती है।

(vi) स्कन्ध विपणि का समामेलन अनिवार्य है अर्थात स्कन्ध विपणि समामेंलित हो भी हो सकती है और न भी।

(vii) स्कन्ध विपणि में प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय, पंजीकृत दलालों, उपदलालों के द्वारा ही किया जाता है।

(viii) स्कन्ध विपणि का सदस्य व्यक्ति ही बन सकता है फर्म या कम्पनी नहीं।

(ix) इसमें प्रतिभूतियों का व्यवहार नकद या वायदे के आधार किया जाता है।

(x) इसमें प्रतिभूतियो का क्रय–विक्रय राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किय जाता है।

9.3 स्कन्ध विपणि के कार्य

स्कन्ध विपणि के कार्यो को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्न दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

A. स्कन्ध विपणि के आर्थिक कार्यों का वर्णन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है–

(i) **नियमित बाजार प्रदान करना–** स्कन्ध विनिमय विपणि एक ऐसा केन्द्र है जहाँ प्रतिभूतियों के क्रेता एवं विक्रेता आपस में मिलते हैं तथा व्यवहार करते हैं। इस प्रकार स्कन्ध विपणि विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय के लिये एक निरन्तर बाजार प्रदान करती है।

(ii) **प्रतिभूतियों का मूल्य निर्धारित करना–** संगठित स्कन्ध विपणि प्रतिभूतियों की माँग एवं पूर्ति की शक्तियों के पारस्परिक टकराव को सम्भव बनाकर उनका वास्तविक मूल्य निर्धारित करती हैं जिससे निवेशकों को प्रतिदिन अपने निवेशों का विक्रय मूल्य ज्ञात हो सकता हैं

(iii) **पूँजी निर्माण–** स्कन्ध विपणि में प्रतिभूतियों का हस्तान्तरण सुविधाजनक होने के कारण बचत को प्रोत्साहन मिलता है। इससे पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि होती है जो तीव्र औद्योगिक विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए स्कन्ध बाजार को "पूँजी का दुर्ग" कहा जाता है।

(iv) **बचतों का उचित प्रवाह–** स्कन्ध विपणि बचतों को सबसे लाभप्रद दिशाओं में प्रवाहित करने का महत्वपूर्ण कार्य भी अप्रत्यक्ष रूप से करती है। स्कन्ध विपणि में प्रतिभूतियाँ उसके अंकित मूल्य से अध्धिक मूल्य पर बिकती हैं जो कम्पनी की लाभदायकता व कुशल संचालन की द्योतक होती हैं। अतः स्कन्ध विपणि नये स्थापित उद्योगों को पूंजी तथा पुराने उद्योगों के नवीनीकरण, विस्तार व विकास के लिए पर्याप्त पूंजी उपलब्ध करवाने का मार्ग है। विनियोजक अपना धन उन कम्पनियों की प्रतिभूतियों में लगाता है जहाँ धन की सुरक्षा के साथ–साथ उचित प्रतिफल मिले।

(v) **लेन– देनों में सुरक्षा–** स्कन्ध बाजार में सभी लेन–देन निर्धारित नियमों के अनुसार किया जाते हैं। इससे विनियोजकों के हितों की रक्षा होती है और दलाल उनका शोषण नहीं कर सकते।

(vi) **नई प्रतिभूतियों के विक्रय के लिये व्यापक बाजार–** देश के विभिन्न भागों में स्थापित स्कन्ध विपणि में अपनी प्रतिभूतियों का सूचीयन कराने से नई कम्पनियों को अपनी प्रतिभूतियों के लिये एक व्यापक बाजार मिल जाता है। इसके अतिरिक्त स्कन्ध विपणि द्वारा प्रतिभूतियों का दैनिक मूल्य समाचारों में प्रकाशित करने से विनियोजकों की रूचि बढ़ती है। इससे प्रतिभूतियों की माँग में वृद्धि होती है।

(vii) **परिकाल्पनिक व्यवहारों को प्रोत्साहित करना–** स्कन्ध विपणियाँ प्रतिभूतियों में परिकल्पना तथा सट्टे को प्रोत्साहित करती है। नियमित ढंग से किया जाने वाला सट्टा माँग व पूर्ति को नियमित कर मूल्यों को सन्तुलित बनाये रखने में सहायक होता है।

(viii) **मूल्यों में स्थिरता–** स्कन्ध विपणि में बड़ी मात्रा में क्रय–विक्रय होता है तथा उनके मूल्यों का निर्धारण माँग–पूर्ति की शक्तियों

द्वारा स्वतन्त्र रूप से होता है जिससे मूल्यों में एक दम उतार चढ़ाव नहीं होते और स्कन्ध विपणि प्रतिभूतियों के मूल्यों में सन्तुलन बनाये रखती है।

(ix) **सूचियन द्वारा प्रतिभूतियों को दृढ़ता प्रदान करना–** स्कन्ध विपणि पर केवल उन्हीं प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय होता है जिनका कि सूचीयन हो चुका है। प्रतिभूतियों का सूचीयन उनकी दृढ़ता व उत्तमता का प्रतीक होता है क्योंकि स्कन्ध विपणियाँ केवल उन्हीं कम्पनियों के अंश ऋणपत्रों का सूचीयन करती है जिनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है।

(x) **पूँजी की गतिशीलता–** स्कन्ध विपणियाँ प्रतिभूतियों के व्यवहारों का सुव्यवस्थित तैयार एवं सतत बाजार है। जहाँ प्रतिभूतियों का लेन–देन निरन्तर चलता रहता है, जिसके फलस्वरूप प्रतिभूतियाँ गतिमान रहती है और उनमें विपणनशीलता का गुण सरलता से उत्पन्न हो जाते हैं।

(xi) **व्यवसायिक सूचनाओं का समाशोधन गृह–** स्कन्ध विपणियाँ व्यवसयिक सूचनाओं के समाशोधन गृह के रूप में भी कार्य करती है। कम्पनिया अपने वित्तीय विवरणों, वार्षिक प्रतिवेदनों और अन्य आवश्यक सूचनाओं को स्कन्ध विपणियों पर भेजती है जिससे कम्पनियों के कार्य संचालन के सम्बन्ध में व्यापक समंकों का संकलन सम्भव हो जाता है।

B. **अन्य कार्य– स्कन्ध विपणि के अन्य कार्य निम्नलिखित हैं–**

(i) प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय एवं मूल्य के सम्बन्ध में नियमित रिपोर्ट प्रकाशित करना।

(ii) अनूसूचित कम्पनियों की आर्थिक स्थिति एवं अन्य महत्वपूर्ण सूचनाओं को वार्षिक पुस्तिका में प्रकाशित करना।

(iii) कपट पूर्ण व्यवहारों के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करना

(iv) सूचीयन के नियमों द्वारा कम्पनी प्रबन्ध एवं निष्पादन को नियमित करना।

9.4 भारत में विनिमय विपणियों का विकास

भारत में स्टॉक एक्सचेंज का प्रादुर्भाव अठारहवीं शताब्दी की अन्तिम अवधि में पाया जा सकता है जब ऋण– प्रपत्र तथा ईस्ट इन्डिया कम्पनी के अंशोंमें सीमित व्यवहार होता था। मुम्बई के स्थानीय दलालों ने 1875 में Native Shares and Stock Brokers Association के रूप में सर्वप्रथम एक संगठित स्टॉक एक्सचेंज की स्थापना की थी जिसे आजकल Bombay Stock Exchange के रूप में जाना जाता है। दूसरा स्टॉक एक्सचेंज 1894 में Ahmedabad Shares and Stock Brokers Association के रूप में अवतरति हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान कुछ नए स्टॉक एक्सचेंज दिल्ली, हैदराबाद, बंगलौर एवं इन्दौर में स्थापित हुए। इन स्टॉक एक्सचेंजों पर नियमन एवं नियन्त्रण के लिए स्वतन्त्रता के बाद Securities Contracts (Regulation) Act 1956 में लागू हुआ। आजकल भारत में कुल 23 स्टॉक एक्सचेंज हैं जिनके अन्तर्गत प्रतिभूति बाजार के विभिन्न क्षेत्रों (लिस्टेड कम्पनियों की संख्या, उसकी नेटवर्थ, अंशधारियों की संख्या, मध्यस्थों की संख्या

तथा मार्केट कैपटिलाइजेशन)में अत्यधिक वृद्धि हुई है और इन एक्सचेंजों की कायापलट ही हो गई है।

भारत में स्टॉक एक्सचेंज का उदय एक "अलाभकारी व्यक्तियों के समूह" के रूप में कम्पनी अधिनियम की धारा 25 के अन्तर्गत हुआ है। ये संचालन की दृष्टि से म्यूचुअल (Mutual) के रूप में और स्वयं संचालित प्रबन्ध व्यवस्था के अन्तर्गत अपने सदस्यों को ही "स्वामित्व", "प्रबन्ध" एवं "ब्रोकिंग" में सहभागी बनाते हैं।

विभिन्न एक्सचेजों का संगठन स्वरूप पृथक–पृथक है। जहां एक ओर 14 एक्सचेंज पब्लिक कम्पनी के रूप में निगमित हैं वहीं 6 स्टॉक एक्सचेंज प्राइवेट कम्पनी के रूप में और शेष 3 स्टॉक एक्सचेंज अलाभकारी संस्था के रूप में हैं । सभी स्टॉक एक्सचेजों का संगठन गवर्निंग बॉडी द्वारा संचालित होता है। जिसमें चुने हुए ब्रोकर डायरेक्टर्स एवं नामांकित जनप्रतिनिधि, सरकार एवं SEBI प्रतिनिधि शामिल होते हैं। स्टॉक एक्सचेजों के संगठन स्वरूप को Corporatisation अथवा Demutualisation द्वारा एक नया रूप दिया जा रहा है।

9.5 स्कन्ध विपणि के प्रमुख विभाग

स्टॉक एक्सचेंज की गवर्निंग बॉडी में लिए गए निर्णयों को कार्यकारी निदेंशक एवं सचिव द्वारा स्टॉक एक्सचेंज के विभिन्न विभागों द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। ये विभाग भी आपस में समन्वय द्वारा सदस्यों एवं निवेशक जनता की सेवा में सक्रिय रहते हैं। स्टॉक एक्सचेंज के कुछ प्रमुख विभाग निम्न हैंः–

(i) **लिस्टिंग विभाग**– लिस्टिंग के लिए प्राप्त प्रस्तावों का इस विभाग द्वारा निरीक्षण एवं अनुसन्धान किया जाता है कि प्रस्ताव नियमानुकूल एवं SEBI के मार्गदर्शन के अनुरूप हैं या नहीं।

(ii) **ऑपरेशन विभाग**– यह विभाग स्टॉक एक्सचेंज में किए जाने वाले सौदों पर निगरानी एवं रिकार्ड रखने का कार्य करता है।

(iii) **निरीक्षण एवं अंकेक्षण विभाग**– विभाग यह सुनिश्चित करता है कि स्टॉक एक्सचेंज द्वारा रखे गये सभी रिकार्ड सही तथा नियामानुकूल है। इसके लिए आन्तरिक निरीक्षण एवं दृढ़ अंकेक्षण पद्धति लागू की जाती है।

(iv) **कम्पयूटर एवं इडीपी विभाग**– टर्नओवर, भाव/कुटेशन, वित्तीय परिणाम एवं अन्य सम्बन्धित सूचनाओं का एकत्रीकरण्ण एवं श्रेणीयन कम्प्यूटरजनित पद्धति द्वारा रखा जाता है।

(v) **मानीटरिंग विभाग**– ट्रेडिंग रिंग में की जाने वाली ब्रोकर्स/सदस्यों की कार्यवाही पर यह विभाग निगाह रखता है। इसके अन्तर्गत मूल्यान्तर एवं टर्नओवर, किन्हीं विशेष प्रतिभूतियों में केन्द्रीकरण, अत्यधिक ट्रेडिंग, सट्टेबाजी, मूल्यों में बनावटी उठान, इनसाइडर ट्रेडिंग जैसी क्रियाएं आती है।

(vi) **निवेशक सेवा विभाग**– यह विभाग निवेशक के हित–संरक्षण सेवाओं का विस्तार एवं उनकी शिकायत निवारण सम्बन्धी सेवा प्रदान करता है। निवेशक की सौदे, ब्रोकर्स एवं लिस्टेड कम्पनी की कमियों सम्बन्धी शिकायतों के निवारण सम्बन्धी महत्वपूर्ण कार्य करता है। भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति को रोकने का प्रयत्न करता है।

इन प्रमुख विभागों के अतिरिक्त स्टॉक एक्सचेंज में अन्य विभाग जैस प्रकाशन विभाग, पुस्तकालय एवं शोध, सेटिलमेंट, कुटेशन तथा जनसम्पर्क जैसे विभाग भी कार्यरत होते हैं।

9.6 वित्तीय विकास में स्कन्ध विपणि की भूमिका

औद्योगिक जगत में पूँजी की प्राप्ति बचतों के उचित बहाव पर आधारित हे और यह बहाव पूँजी बाजार की सक्रियता पर निर्भर करता है। आज पूँजी बाजार देश के दूर दराज के इलाकों से भी छोटी–छोटी बचतों को आकर्षित कर ओद्योगिक जगत को जहाँ पूँजी को उपलब्ध करा रहा है वहीं उस निवेशकों को अपनी बचत पर उचित प्रतिफल और पूँजी की सुरक्षा दिलाकर उसे और अधिक बचत के लिए प्रोत्साहित कर रहा है।

दीर्घकालीन विकास की योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए दीर्घकालीन पूँजी की आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति वित्तीय संस्थाओं व सरकार के कोष से पूरी नहीं हो पाती अतः इन योजनाओं को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने के लिए स्कन्ध विपणि छोटी–छोटी बचतों को सुरक्षा प्रदान कर इन योजनाओं के लिये ऋण सुलभ कराती है। आज के संरक्षण रहित एवं प्रतियोगी वातावरण में परियोजनाओं का क्षेत्र उनकी दिशा, निवेश मात्रा, फलदायी अवधि, जोखिम की मात्रा आदि निवेश के विभिन्न पहलुओं में आधारभूत परिवर्तत आया है। आज निवेश विश्वस्तर को ध्यान में रखकर किया जाता है। जिसके लिए पूँजी बाजार विभिन्न विकल्प वाले वित्तीय उपकरण उपलब्ध कराकर आवश्यक कोष प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है जिसकी सफलता के लिए एक सक्रिय एवं प्रभावी स्कन्ध विपणि अति आवश्यक है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्कन्ध विपणि प्रत्यक्ष रूप से कोष सृजित नहीं करते वल्कि पूँजी बाजार को एक दृढ़ आधार एवं विश्वास प्रदान करते हैं जिससे बचतें निरन्तर पूँजी में परिवर्तित होती है।

9.7 भारतीय अर्थव्यवस्था में स्कन्ध विपणि का महत्व

स्कन्ध विपणि प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है इसी कारण एक विद्वान ने कहा है कि, **"स्कन्ध विनिमय विपणि किसी देश की समृद्धि का मापक यन्त्र है;"** वास्तव में स्कन्ध विपणि पूँजी बाजार की धुरी के समान है जो पूँजी को लाभकर एवं सरल उद्योगों की ओर आकर्षित करते हैं। डबल्यू टी0 सी0 किंग के शब्दों में , **"इसके बिना जनसाधारण की बचतों का जो आर्थिक प्रगति और उत्पादन कुशलता का महत्वपूर्ण साधन है, आज की अपेक्षा कहीं कम पूर्णता से और कहीं अधिक क्षतिजनक रूप से उपयोग किया गया होता है।"** स्कन्ध विपणियाँ ऐसे सुव्यवस्थित बाजार है जो एक ओर पूँजी निर्माण में सहायता करते हैं तो दूसरी ओर प्रतिभूतियों की विपणनशीलता में भी वृद्धि करते हैं।

स्कन्ध विपणि प्रत्येक देश की आर्थिक, व्यावसायिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति को स्पष्ट करती है। इस सम्बन में प्रख्यात राजनीतिक विस्मार्क का यह कथन उल्लेखनीय है, **"यदि तुम ब्रिटेन की आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहते तो "हाउस ऑफ कामन्स" की कार्यवाहियों का अध्ययन करने की अपेक्षा तुम्हें लन्दन के सकन्ध विपणि का अध्ययन करना**

चाहिये।" इन शब्दों से स्कन्ध विपणि का महत्व स्पष्ट हो जाता है। प्रो0 मार्शल ने एक स्थान पर लिखा है, "स्कन्ध विपणियाँ केवल व्यावसायिक व्यवहारों का मुख्य प्रदर्शनकर्ता ही नहीं है बल्कि वे ऐसे मापदण्ड भी हैं जो व्यवसाय के वातावरण की सामान्य दशाओं को दर्शाती है।" यही कारण है कि आधुनिक अर्थशास्त्री स्कन्ध विपणि को पूँजीवाद तन्त्र का महत्वपूर्ण स्नायु केन्द्र मानते हैं। वास्तव में इनके अभाव में न तो किसी देश की अर्थव्यवस्था ही सफल हो सकती है और नही प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्थां पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में तो स्कन्ध विपणि को ऐसी धुरी माना जाता है जिसके चारों ओर दीर्घकालीन पूँजी बाजार एवं द्रव्य बाजार चक्राकार घूमता है।

स्कन्ध विपणि के लाभ–स्कन्ध विपणियों से होने वाले लाभों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्न तीन वर्गो में रखा जा सकता है–

A. विनियोक्ताओ को लाभ– विनियोक्ताओं की दृष्टि से स्कन्ध विपणि के निम्न लिखित लाभ हैं–

(i) **धन विनयोजन में सुविधा**– स्कन्ध विपणियाँ लोगों को धन विनियोग करने के लिये सुदृण आर्थिक स्थिति वाली कम्पनियों की प्रतिभूतियाँ उपलब्ध कराती हैं तथा प्रतिभूतियों के चुनाव के लिये पर्याप्त सूचनायें उपलब्ध कराती हैं।

(ii) **प्रतिभूतियों के विपणन की सुविधा**– स्कन्ध विपणि विनियोक्ताओं को प्रतिभूतियों के विपणन की सुविधा प्रदान कराती है। स्कन्ध विपणि पर आसानी से प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय किया जा सकता है।

(iii) **विनियोगों की सुरक्षा**– स्कन्ध विपणियाँ विनियोक्ताओं को सुरक्षा प्रदान करती है क्योंकि इनमें प्रतिभूतियों का क्रय –विक्रय निश्चित नियामों के अन्तर्गत ही होता है। इसके अतिरिक्त इन पर सरकार का नियन्त्रण रहता है। इस प्रकार विनियोक्ताओं को धोखा नहीं होता और उनके विनियोगों की रक्षा रहती है।

(iv) **मूल्य सूची का प्रकाशन**– स्कन्ध विपणि में प्रतिभूतियों के मूल्य नित्य प्रकाशित किये जाते हैं इससे विनियोक्ताओं को अपने नियोजन के दैनिक मूल्यों का ज्ञान रहता है।

(v) **विनियोगों में तरलता**– स्कन्ध विपणि तैयार बाजार प्रदान करके प्रतिभूतियों में तरलता लाती है। विनियोक्ता अपनी इच्छानुंसार प्रतिभूतियों का बेचकर नकदी में परिवर्तित कर सकते हैं।

(vi) **ऋण में सुविधा**– स्कन्ध विपणि पर केवल सूचीयन प्रतिभूतियों का क्रय –विक्रय होता है और सूचीयन प्रतिभूतियों की जमानत पर आसानी से ऋण प्राप्त किया जा सकता है।

(vi) **व्यक्तिगत बचतों का सदुपयोग**– स्कन्ध विपणियों के माध्यम से कोई भी व्यक्ति अपनी बचतों का उचित निवेश कर अपनी बचतों का सदुपयोग कर सकता है। यही नहीं वह अपने धन को अलाभकारी निवेश से हटाकर लाभकारी निवेश में लगा सकता है।

B. कम्पनियों को लाभ–कम्पनियों को स्कन्ध विपणि के निम्नलिखित लाभ हैं–

(i) **कम्पनी की साख में वृद्धि–** जिस कम्पनी के अंश व ऋणपत्र स्कन्ध विपणि में लेन–देन के लिये स्वीकृत होते हैं उनकी विश्वसनीयता बढ़ जाती है जिसके कारण उनकी ख्यााति एवं साख में भी वृद्धि हो जाती है।

(ii) **पर्याप्त पूँजी की व्यवस्था**–जिन कम्पनियों की प्रतिभूतियाँ स्कन्ध विपणि पर सूचीबद्ध हो जाती है उन्हें आसानी से बेचा जा सकता है। इस प्रकार कम्पनी को कार्य के लिये पर्याप्त पूँजी प्राप्त हो जाती है।

(iii) **विस्तृत बाजार–** स्कन्ध विपणि पर प्रतिभूतियों का सूचीयन होने से उनकी माँग में वृद्धि हो जाती है तथा बाजार क्षेत्र विस्तृत हो जाता है।

(iv) **मध्यस्थ का कार्य**–स्कन्ध विपणि कम्पनी तथा विनियोक्ताओं के बीच मध्यस्थ का कार्य करती है अर्थात वैयक्तिक धन को संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियों में विनियोग करने के लिये प्रोत्साहित करती है।

C. समाज व राष्ट्र को लाभ– **स्कन्ध विपणियों से समाज व राष्ट्र को** निम्नलिखित लाभ हैं–

(i) **बचतों को प्रोत्साहन–** स्कन्ध विपणियाँ देश के कोने–कोने से छोटी–छोटी बचतों को विनियोजन के लिये प्रोत्साहिता करती है।

(ii) **विकास योजनाओं के लिये वित्तीय संसाधन**–स्कन्ध विपणियाँ सरकारी प्रतिभूतियों को विक्रय कर देश की विकास योजनाओं के लिये आवश्यक वित्त उपलब्ध कराती है। इस प्रकार स्कन्ध विपणियाँ समाज एवं राष्ट्र को समृद्धशाली बनाने में अपना सहयोग करती है।

(iii) **देश की समृद्धि का मापक यंत्र–** स्कन्ध विपणियाँ उस दर्पण के समान हैं जिनमें देश की आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक प्रगति प्रतिबिम्बित होती है अर्थात स्कन्ध विपणियों में चल रही गतिविधियों के अध्ययन से देश की आर्थिक ,सामाजिक एवं राजनीतिक दशाओं का यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

(iv) **पूँजी निर्माण में वृद्धि**–स्कन्ध विपणि जनता की बचतों को उद्योग में लगाने का अवसर प्रदान करती है, जिससे पूँजी निर्माण में वृद्धि होती हैं।

(v) **पूँजी का सर्वोत्तम उपयोग–** स्कन्ध विपणियाँ अकुशल व अनुत्पादक तथा अनार्थिक व्यवसायों एवं उद्योगों से पूँजी निकालकर कुशल उत्पादक तथा आर्थिक व्यवसायों एवं उद्योगों में विनियोजित करवाती है। इससे पूँजी साधनों का सर्वोत्तम उपयोग होता है।

(vi) **आयात– निर्यात सम्बन्धी भुगतान में सुविधा–** विश्व की समस्त स्कन्ध विपणियाँ परस्पर एक–दूसरे से सम्बन्धित होने के कारण, इनके माध्यम से आयात–निर्यात सम्बन्धी भुगतान बिना विदेशी मुद्रा या स्वर्ण के आदान–प्रदान के सरलतापूर्वक कियाजा सकता है।

(vii) **राजकीय उद्यमों के लिए पूँजी प्राप्ति की सुविधा–** सरकार समाजिक एवं राष्ट्रीय महत्व के उद्यमों को चलाने के लिए स्कन्ध विपणियों के माध्यम से प्रतिभूतियों को बेचकर आवश्यक पूँजी जुटा सकती है।

9.8 स्कन्ध विपणि पर प्रतिभूतियों के मूल्यों में परिवर्तन के कारण

स्कन्ध विपणि में मूल्य के उतार चढ़ाव का आशय उस मूल्य परिवर्तन से होता है जो प्रतिभूतियों के अंकित मूल्य से कम अथवा अधिक होता है। प्रतिभूतियों के मूल्यों में परिवर्तन उसकी माँग व पूर्ति की स्थिति पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त देश– विदेश में होने वाली सभी महत्वपूर्ण घटनाओं का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव स्कन्ध विपणि पर पड़ता है। प्रतिभूतियों के उतार चढ़ाव के सम्बन्ध में आर्म्स स्ट्रांग ने एक स्थान पर लिखा है कि, "समुद्र की भांति स्कन्ध विपणियों में नाना प्रकार की हवाएँ चलती हैं तथा वे सभी क्रमबद्ध नहीं होती हैं। प्रायः ये हवाएँ आँधी के समान उत्पाद पैदा करने वाली होती हैं। यहाँ बहुत तीव्र गति से अच्छी और बुरी खबरे फैला करती है, जिसके मूल्यों में भयंकर परिवर्तन पैदा हो जाते हैं,"। प्रतिभूतियों के मूल्यों को प्रभावित करने वाले प्रमुख घटक निम्नलिखित हैं–

(i) **माँग और पूर्ति–** वस्तुओं के मूल्यों की भाँति प्रतिभूतियों के मूल्य भी माँग और पूर्ति पर निर्भर करते हैं यदि किसी प्रतिभूति की माँग उसकी पूर्ति की अपेक्षा अधिक होती है तो उससे पूल्य बढ़ जाते हैं और इसके विपरीत यदि प्रतिभूति की माँग उसकी पूर्ति अपेक्षा कम होती है तो उसके मूल्य गिर जाते हैं। इस प्रकार माँग व पूर्ति का प्रतिभूतियों के मल्यों के उतार चढ़ाव पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

(ii) **लाभांश की दर–** कम्पनी के लाभों का भी प्रतिभूतियों के मूल्यों पर प्रभाव पड़ता हैं यदि किसी वर्ष कम्पनी के लाभों में वृद्धि हो जाती है तो वह प्रतिभूतियों पर अधिक लाभांश देती है जिससे उनकी माँग बढ़ जाती है और मूल्य बढ़ जाते हैं। इसक विपरीत यदि कम्पनी किसी वर्ष कम लाभांश देती है, तो उसकी प्रतिभूतियों के मूल्य भी गिर जाते हैं।

(iii) **बैंक दर–** बैंक दर से आशय उस दर से है जिस पर देश का केन्द्रीय बैंक अन्य बैंकों की प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियों को भुनाता है अथवा अपहार करता है। अन्य बैंकों की ब्याज दर इस दर से अधिक होती है। अतः यदि बैंक दर में वृद्धि हो जाती है तो अन्य बैंक भी अपने ब्याज की दर बढ़ा देते हैं जिससे लोग ऋण कम कर देते हैं। अतः प्रतिभूतियों का मूल्य गिर जाता है और इसके विपरीत स्थिति में प्रतिभूतियों के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है।

(iv) **कम्पनी की प्रबन्ध कुशलता–** यदि कम्पनी के संचालक मण्डल में कुशल और योग्य व्यक्ति हैं जिनकी ख्याति हो तो ऐसी दशा में प्रतिभूतियों के मूल्य बढ़ जाते हैं क्योंकि सामान्य विनियोजक का ऐसी कम्पनी में अधिक विश्वास होता है किन्तु यदि प्रबन्ध संचालक अयोग्य व बेइमान है तो प्रतिभूतियों का मूल्य कम होगा क्योंकि ऐसी कम्पनी के प्रति विनियोंजकों को विश्वास नहीं होगा।

(v) **व्यापार चक्र–** व्यापार चक्र अर्थात मन्दी तेजी का प्रतिभूतियों के मूल्यों पर प्रभाव पड़ता है। तेजी काल में व्यापार एवं उत्पादन में वुद्धि होती है तथा जनता की आय बढ़ जाती है फलस्वरूप प्रतिभूतियों के मूल्य बढ़ जाते हैं। इसके विपरीत मन्दी काल में प्रतिभूतियों की माँग में कमी आने से उसके मूल्यों में कमी आ जाती है।

(vi) **परिकाल्पनिक दशाएं–**परिकाल्पनिक सौदे भी प्रतिभूतियों के मूल्यों को काफी सीमा तक प्रभावित करते हैं। जब सटोरिये भावी क्रय के सौदा करते हैं तो प्रतिभूतियों के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत जब भविष्य में मन्दी की आशंका से भावी विक्रय के सौदे किये जाते हैं, तो प्रतिभूतियों के मूल्य कम हो जाते हैं।

(vii) **कम्पनियों की वित्तीय स्थिति–** जिन कम्पनियों की वित्तीय स्थिति सुदृण होती है उनकी प्रतिभूतियों के मूल्यों में वृद्धि की प्रवृति पायी जाती है और जिन कम्पनियों की वित्तीय स्थिति कमजोर होती है उनकी प्रतभूतियों के मूल्यों में कमी की प्रवृति पायी जाती है।

(viii) **कम्पनियों का आन्तरिक संगठन–** कम्पनियों का आन्तरिक संगठन एवं प्रबन्ध भी प्रतिभूतियों के मूल्यों पर प्रभाव डालता है। कम्पनी केआन्तरिक संगठन के अन्तर्गत पूँजी का कलेवर, प्रबन्ध संचालन, आर्थिक स्थिति को शामिल किया जाता है। यदि कम्पनी का आन्तरिक संगठन सुदृण एवं सुसंगठित है तो उस कम्पनी की प्रतिभूतियों का मूल्य भी अधिक होगा। इसके विपरीत प्रतिभूतियों का मूल्य कम होगा।

(ix) **सरकारी नीति–** सरकार की औद्योगिक, आयात निर्यात,कर तथा अन्य आर्थिक नीतियों का भी स्कन्ध विपणि के मूल्यों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यदि किसी कम्पनी के निर्यातों पर प्रतिबन्ध है तो उस पर उत्पादन कर अधिक है तो उसका लाभ कम होगा जिससे वह कम लाभांश कम बांटेगा। अतः उस कम्पनी की प्रतिभूतियों का मूल्य अपेक्षाकृत कम होगा अन्यथा प्रतिभूतियों का मूल्य अधिक होगा।

(x) **राजनैतिक नेताओं के विचार–** सत्तारूढ़ दल के नेताओं और मन्त्रियों द्वारा दिये गये भाषणों एवं विचारों का प्रभाव भी स्कन्ध विपणि पर पड़ता है।

(xi) **सत्ता परिवर्तन–** स्कन्ध विपणि पर मूल्य स्तर इतने संवेदनशील होते हैं कि सत्ता परिवर्तन होने पर इनमें उतार–चढ़ाव आ जाता है अभी हाल में केन्द्र में सत्ता परिवर्तन पर स्कन्ध बाजार भी प्रभावित हुआ है। 11 मार्च को जापान में सुनामी व भूकम्प से भी भारत का स्कन्ध बाजार प्रभावित हुआ है।

(xii) **समाचार पत्रों का मत–** समाचार पत्रों के मत का भी प्रतिभूतियों के मल्यों पर प्रभाव पड़ता है। यदि राष्ट्रीय स्तर का अखवार किसी कम्पनी की तारीफ कर देता है तो उसकी प्रतिभूतियों के मूल्य बढ़ जाते हैं। इसके विपरीत स्थिति में प्रतिभूतियों के मूल्य कम हो जाते हैं।

(xiii) **अफवाहे एवं अवांछनीय क्रियाएं–** स्कन्ध विपणि पर तेजड़िये तरह–तरह की अफवाहें फैलाकर बाजार को अपने पक्ष में लाने का प्रयास करते हैं और इसके कारण अंशों के मूल्यों में उतार–चढ़ाव आते रहते हैं।

(xiv) **बजट–** देश में बजट प्रस्तुत होने से पूर्व फैलने वाली अफवाहें और बजट प्रस्तुत होने के पश्चात बजट की विशेषताएं प्रतिभूतियों के मूल्यों को प्रभावित करती है।

(xv) **अन्य कारण–** प्रतिभूतियों के मूल्यों में उतार–चढ़ाव के उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त भी अनेक ऐसे कारण हैं जिनका प्रभाव पड़ता है। जैसे– औद्योगिक सम्बन्ध, मौसम, सरकार में आकस्मिक परिवर्तन आदि।

9.9 स्कन्ध विपणि के दोष

स्कन्ध विपणियाँ यद्यपि राष्ट्र के आर्थिक विकास का मापक यन्त्र है किन्तु इसके कुछ दोष भी है। जो निम्नलिखित हैंः–

(i) **सट्टेबाजी को प्रोत्साहन–** स्कन्ध विपणियाँ अनावश्यक सट्टेबाजी को प्रोत्साहन देती है। उन सटोरियों के लिये जिन्होने इनके द्वारा धन एकत्रित कर लिया है यह "यह जादू का पिटारा" है। परन्तु उनके लिये जिनको इनसे अपार हानि हुई है "नरकीय पीड़ा के समान" है।

(ii) **मूल्यों में अधिक उतार–चढ़ाव–** सट्टेबाजी तथा अन्य आर्थिक एवं राजनीतिक कारणों से प्रतिभूतियों के मूल्यों में भारी उतार–चढ़ाव आते रहते हैं, जिससे उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं दोनों को हानि होती है तथा देश की अर्थव्यसस्था पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(iii) **अनुपयुक्तता–** स्कन्ध विपणियों से सभी लोग लाभ नहीं उठा सकते। नये व अनुभवहीन व्यक्तियों को इससे प्रवेश करने पर लाभ के स्थान पर हानि उठानी पड़ती है।

(iv) **निपटारे की कोई एकरूप प्रणाली नहीं–** देश की सभी स्कन्ध विनिमय में अंशों के लेन–देन को पूरा करने के लिए निपटाारा प्रणाली एकरूप नहीं है। इससे सट्टेबाजी को प्रोत्साहन मिलता है।

(v) **बदला या आगे ले जाने वाली अनुचित है–** बदला या आगे ले जाने वाली प्राली अनुचित व अस्वास्थ्यपूर्ण है। यह ऊँचे स्तर के सट्टा के लिए शक्तिशाली कारक है। यह सही निवेशकर्ताओं को कोई सहायता नहीं करता है।

(vi) **निवेशकर्ताओं की रूचि की अवहेलना–**भारतीय स्कन्ध विनिमय में व्यापारिक किया केवल दलालों को लाभ पहुँचाने के लिए की जाती है और निवेशकर्ताओं की रूचियों की अवहेलना की जाती है। निवेशकर्ताओं की शिकायतों पर तुरन्त प्रभाव पूर्ण समाधान नहीं किया जाता है।

(vii) **स्कन्ध विनिमय प्रबन्ध की कमजोरी**– स्कन्ध का प्रबन्ध विनिमय का प्रबन्ध, संगठन तथा संरचना बहुत कमजोर है। इसका प्रबन्ध केबल सदस्य दलालों के लाभ के लिए किया जाता है।

9.10 स्कन्ध विनिमय में सुधार के सुझाव

डॉ0 एल0सी0 गुप्ता ने अपनी पुस्तक Export Stydy of Trading in Shares in Exchange में स्कन्ध विनमय के कुशल कार्यकरण के लिए निम्नलिखित उपाय सुझाए हैंः

(i) **एक सप्ताह एकरूप प्रणाली का समावेश**– स्कन्ध विनिमय पर निपटारे की प्रणाली एकसमान होनी चाहिए। सामान्यतः निपटारा सप्ताह में एक बार हो जाना चाहिए।

(ii) **प्रतिदिन मार्जिन प्रणाली**– प्रतिदिन मार्जिन प्रणाली को अपनाना चाहिए। प्रत्येक ारक का मार्जिन मुद्रा कों स्कन्ध विनिमय में प्रतिदिन आधार जमा करवा देना चाहिए। इसे बाजार से बाजार प्रणाली कहा जाता है।

(iii) **आगे ले जाने की प्रणाली**– सट्टे से बचने के लिए आगे ले जाने की प्रणाली को समाप्त कर देना चाहिए।

(iv) **बाजार बनाने बालों का प्रावधान**– हमारे स्कन्ध विनिमयों में बाजार बनाने वालों का प्रावधान होना चाहिए। बाजार बनाने वाले दी हुई कीमतों पर किसी अंश को खरीदने की जिम्मेवारी रख लेते हैं। वे निवेशकर्ताओं को स्कन्ध दलालों के शोषण से बचाते हैं। ये इस बात के लिए भी आश्वस्त होते हैं कि लेन देन बेहतर बाजार दर पर चलाए जाते है।

(v) **स्कन्ध विनिमययों के प्रबन्ध में सुधार**– स्कन्ध विनिमय में कार्यपालक निदेशक की नियुक्ति सरकार या SEBI द्वारा की जानी चाहिए। गवर्नरों के बोर्ड के लिए व दलाल वाले स्वतन्त्र निदेशक होने चाहिए

स्कन्ध विपणियों के उपरोक्त लाभों व दोषों का अध्ययन करने के पश्चात यह कह सकते हैं कि स्कन्ध विपणियाँ वास्तव में किसी देश की प्रगति का मापक यन्त्र हैं तथा इनका राष्ट्र के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान है।

9.11 सारांश

इस इकाई में हमने स्कन्ध विपणि की स्थापना से लेकर कार्यविधि व भारतीय अर्थव्यवस्था को इसकी महत्वपूर्ण भूमिका की चर्चा की । जिससे यह निष्कर्ष निकला कि औद्योगिक विकास आवश्यक पूँजी, बचतों के उचित बहाव पर आधारित है और यह बहाव पूँजी बाजार की सक्रियता पर आधारित है। पूँजी बाजार बचत को Savers to Users के बहाव को पूरा करता है। इस पूँजी के निर्माण में" तरलता सम्भावना" का अति महत्वपूर्ण स्थान है जिसकी पूर्ति स्टॉक एक्सचेंज सेवा से होती है। अतः स्पष्ट है कि स्टॉक एक्सचेंज प्रत्यक्ष रूप से कोष सर्जित नहीं करते, परन्तु पूँजी बाजार का एक दृढ़ आधार एवं विश्वास प्राप्त करते हैं जिसे "बचतें" निरन्तर"पूँजी" में परिवर्तित होती रहें।

9.12 शब्दावली

Bear Market– जिसमें अधिक विक्रेता गिरते मूल्य पर भी प्रतिभूति बेचनें को तत्पर हों।

Bull Market –बढ़ता हुआ बाजार जिसमें विक्रेता अपेक्षा क्रेता अधिक हों।
Book Value – समता अंश पूँजी तथा संचित लाभों को समता अंशों की संख्या से विभाजन करने पर प्रापत मूल्य।
Market Risk – प्रतिभूति के बाजार मूल्य में गिरावट के कारण होने वाली हानि की संभावना।

9.13 बोध प्रश्न

प्रत्येक प्रश्न के चार विकल्प दिये गये हैं, सही विकल्प छांटिए–

भारत में सर्वप्रथम स्कन्ध विपणि की स्थापना कब हुई–
(A) दिल्ली (B) मुम्बई
(C) चेन्नई (D) कोलकाता

2. स्कन्ध विनिमय लेन–देन करता है–
(A) केवल प्रतिभूतियों से (B) सभी कम्पनियों की प्रतिभूतियों का
(C) केबल सूचीबद्ध प्रतिभूतियों का (D) बिना जोखिम वाली प्रतिभूतियों का

3. स्कन्ध विनिमय में केवल निम्नलिखित व्यक्ति ही व्यवहार कर सकते हैं–
(A) प्रत्येक विनियोजक (B) केन्द्रीय सरकार
(C) स्कन्ध विनिमय विपणि के सदस्य (D)बैंक व बीमा कम्पनियाँ

4. भारत में स्कन्ध विपणियों का नियमन किस अधिनियम द्वारा किया जाता है–
(A) प्रतिभूति अनुबन्ध अधिनियम (B) रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम
(C) नियमित मण्डी अधिनियम (D) पूँजी निर्गमन अधिनियम

5. किस स्कन्ध विनिमय केन्द्र के सदस्य को 'तरावनी वाला' नाम से पुकारा जाता है–
(A) दिल्ली (B) मूम्बई
(C) चेन्नई (D) कोलकाता

6. स्कन्ध विपणि में निम्नलिखित में से किसके अन्तर्गत प्रतिभूतियों के क्रय या विक्रय का अधिकार प्राप्त किया जाता है–
(A) अन्तर राशि व्यापार (B) कोरा हस्तान्तरण
(C) मूल्यान्तर (D) विकल्प सौदे

7. निम्नलिखित में से कौन स्कन्ध विपणि सट्टेबाज नहीं है–
(A) चंचल सटोरिया (B) दलाल
(C) मंदड़िया (D) तेजड़िया

8. भारत में मान्यता प्राप्त स्कन्ध विपणियों की संख्या है–
(A) 23 (B) 24
(C) 25 (D) 26

9.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर– 1. (B) 2. (C) 3. (C) 4. (A) 5. (B) 6. (D) 7. (B) 8. (C)

9.15 स्वपरख प्रश्न

प्रश्न–1 स्कन्ध विपणि किसे कहते हैं ? एक स्कन्ध विपणि के कार्यों की विवेचना कीजिए।

प्रश्न–2 देश के आर्थिक विकास में स्कन्ध विपणि के महत्व को स्पष्ट हुए इसके गुण दोषों की विवेचना कीजिए।

प्रश्न–3 स्कन्ध विपणि से आप क्या समझते हैं? स्कन्ध विपणि पर प्रतिभूतियों के मूल्यों को प्रभावित करने वाले प्रमुख घटकों की विवेचना कीजिए।

9.16 सन्दर्भ पुस्तकें

1. Wealth Engine- Sundar Sankarna
2. Stock Market Works- Michel Becket
3. Fundamental Analysis For Investors- Raghu Palat
4. Security Analysis and portfolio Management- Prasoon Chandra

इकाई–10 बीमा 'विनियमन एवं विकास प्राधिकरण तथा भारत में बीमा व्यवसाय (IDRA and Insurance Business in India)

इकाई की रुपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 बीमा विनियमन एवं विकास प्राधिकरण अधिनियम, 1999
10.3 बीमा विनियमन और विकास प्राधिकरण अधिनियम के उद्देश्य
10.3.1 परिभाषाएं
10.3.2 प्राधिकरण की विशेषताये
10.3.3 प्राधिकरण का गठन
10.3.4 प्राधिकरण की बैठक
10.3.5 प्राधिकरण की कार्यवाही की अमान्यता
10.3.6 प्राधिकरण के अधिकार शक्तियॉ और कार्य
10.3.7 बीमा सलाहकार समिति की स्थापना
10.3.8 विविध प्रावधान
10.4 भारत में बीमा क्षेत्र
10.5 भारतीय बीमा क्षेत्र
10.6 भारत में बीमा क्षेत्र का अतीत
10.7 भारत में बीमा क्षेत्र की उपस्थिति
10.8 भारत में बीमा क्षेत्र का भविष्य
10.9 भारतीय बीमा क्षेत्र की कम्पनियों का प्रदर्शन
10.10 सांराश
10.11 शब्दावली
10.12 बोध प्रश्न
10.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.14 स्वपरख प्रश्न
10.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उददेश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- बीमा तथा बीमा के संदर्भ में विभिन्न कानूनों से अवगत हो सके।
- बीमा विनियमन तथा विकास प्राधिकरण अधिनियम की जानकारी प्राप्त कर सके।
- बीमा विनियमन तथा विकास प्राधिकरण अधिनियम के उददेश्यों की जानकारी प्राप्त कर सके ।
- बीमा विनियमन तथा विकास प्राधिकरण अधिनियम 1999 की विभिन्न धाराओं के अन्तर्गत विभिन्न प्रावधानों की जानकारी प्राप्त कर सके।
- भारतीय बीमा क्षेत्र की कम्पनियों के प्रदर्शन से अवगत हो सके।

10.1 प्रस्तावना

भारत में वर्ष 1912 में भारत सरकार ने दो कानूनों 1912 प्रोविडेंट इंश्योरेंस सोसाईटी एक्ट V व 1912 भारतीय जीवन बीमा अधिनियम VI को पारित कर बीमा करोबार पर नियंत्रण करना प्रारम्भ किया। बाद में इन कृत्यों को व्यापक रूप से संशोधित किया गया और एक नया अधिनियम अर्थात् बीमा अधिनियम 1938 अस्तित्व में आया जिसका उददेश्य था धन व्यय और निवेश पर नियंत्रण व बीमा कंपनियों का प्रबंधन। इस अधिनियम को लागू करने के लिए नियंत्रक कार्यालय की स्थापना की गई थी। फिर, इस अधिनियम को 1950 में समय की आवश्यकता के अनुसार संशोधित किया गया था। लेकिन जीवन बीमा कारोबार में बढ़ती कदाचार के मददेनजर और जीवन बीमा कारोबार के फैलाव के लिए निरक्षरता स्तर की कमी और इच्छा शक्ति की कमी के कारण, इसे भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीयकृत किया गया था। जून में एलआईसी अधिनियम पारित किया गया था; 1956, और यह अधिनियम 1 सितंबर 1956 से लागू हुआ। इसी प्रकार सामान्य बीमा व्यवसाय राष्ट्रीयकृत किया गया था। यह अधिनियम 1 अप्रैल 1973 को जनरल इंश्योरेंस बिजनेस नेशनललाइजेशन एक्ट 1972 (जीआईबीएनएक्ट) के माध्यम से लागू हुआ।

इन अधिनियमों को लागू करने के लए सरकार ने बीमा अधिनिय 1938 में कुछ मामूली बदलाव किए। 90 के दशक की शुरूआत में, विश्व बाजार बलों ने पूरी ताकत के साथ खेलना शुरू किया; साक्षरता स्तर बढ़ रहा है; बेहतर नियामक प्रणाली और इस क्षेत्र में तेजी से विकास की जरूरत है, इस समय की आवश्यकता दुनिया के साथ जाना और निजी उद्यमियों को एक बार फिर से जीवन और सामान्य बीमा क्षेत्र खोलना था ताकि कोई एकाधिकार नहीं हो और ग्राहक/उपभोक्ता/खरीदार को बीमा उत्पाद के एक से अधिक विकल्प मिलते।

भारत में बीमा क्षेत्र में उदारीकरण प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिए, मल्होत्रा समिति का गठन स्वर्गीय आर एन मल्होत्रा की अध्यक्षता में किया गया था। मल्होत्रा समिति ने 1994 में अपनी रिपोर्ट जमा की जिसमें सिफारिश की गई कि निजी कंपनियों को भारत में काम करने की अनुमति दी जाए। सरकार ने बीमा उद्योग की निजीकरण के लिए मार्ग दिखाने के लिए 1996 में समिति की सिफरिश और बीमा नियामक प्राधिकरण (आईआरए) की स्थापना की थी। मुख्य उददृश्य समाज के सभी स्तरों को कवर करने वाले बीमा का विकास था (न केवल अमीर लेकिन गरीब, ग्रामीण, आदिवासी, असंगठित क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, विकलांग समुदाय, दैनिक मजदूरों, महिलाओं को बड़े पैमाने पर, आदि) को राजनीतिक नेताओं, व्यापार संघवादियों, सामाजिक संगठनों, सहकारी समितियों और नीति निर्माताओं द्वारा महत्व दिया गया जो भारतीय बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण के उददेश्यों के अनुरूप था।

फिर आईआरडीए के सुचारू कामकाज के लिए बीमा अधिनियम 1938 में कुछ संशोधन किए गए थे। बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण (आईआरडीए) भारत सरकार द्वारा संचालित एक राष्ट्रीय एजेंसी है। आईआरडीए हैदराबाद में स्थित है और भारतीय संसद के एक अधिनियम द्वारा 1999 के आईआरडीए अधिनियम के रूप में नामित किया गया था। भारतीय बीमा उद्योग की कुछ उभरती आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, आईआरडीए 2002 में संशोधित

किया गया था। जैसा कि आईआरडीए के कार्य मिशन में कहा गया है ''पॉलिसीधारकों के हितों की रक्षा, बीमा उद्योग के व्यवस्थित विकास को विनियमित करने, बढ़ावा देने और सुनिश्चित करने के लिए और उसके साथ जुड़े मामलों या आकस्मिक मामलों के लिए।'' भारतीय बीमा उद्योग आईआरडीए के नियमों और शर्तो द्वारा नियंत्रित है।

भारतीय कानून में आईआरडीए से भारतीय बीमा उद्योग में अच्छा प्रदर्शन करने की कुछ उम्मीदें हैं। बीमा कंपनियों द्वारा निष्पक्ष उपचार सुनिश्चि करके आईआरडीए को पॉलिसीधारकों के हितों की रक्षा करनी चाहिए। बीमा कंपनियों की वृद्धि तेजी से और व्यवस्थित ढंग से आईआरडीए द्वारा की जानी चाहिए। इसे उद्योग में बीमा कंपनियों की गुणवत्ता क्षमता और निष्पक्ष व्यवहार की निगरानी और कार्यान्वयन करना चाए। आईआरडीए को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बीमाकर्ता बीमा ग्राहकों के लिए उनवके द्वारा पेश किए गए उत्पादों के बारे में सटीक और सही जानकारी प्रदान कर रहे हों। आईआरडीए को पॉलिसीधारकों के वास्तविक दावों के त्वरित निपटारे को सुनिश्चित करना चाहिए और दावों के निपटारे की प्रक्रिया में कदाचार को रोकना चाहिए।

10.2 बीमा विनियमन और विकास प्राधिकरण अधिनियम, 1999

यह अधिनियम दिसंबर 1999 में संसद द्वारा पारित किया गया था और इसे जनवरी 2000 में राष्ट्रपति की सहमति मिली थी। प्राधिकरण का उददेश्य ''बीमा पॉलिसी के धारकों के हितों की रक्षा करना, बीमा उद्योग के व्यवस्थित विकास को विनियमित करना, बढ़ावा देना और सुनिश्चित करना या उसके साथ जुड़े मामलों या आकस्मिक वादों का समयानुसार निस्तारण हो सके।'' इस अधिनियम के तहत, आईआरडीए नामक एक प्राधिकरण स्थापित किया गया है। बीमा अधिनियम 1938 के तहत बीमा नियंत्रक की जगह लेता है।

10.3 बीमा विनियमन एवं विकास प्राधिकरण अधिनियम के उद्देश्य

बीमा विनियमन एवं विकास प्राधिकरण अधिनियम के उद्देश्य निम्न हैः

1. पॉलिसीधारकों को उचित उपचार के हितों की रक्षा और सुरक्षित रखने के लिए;
2. आम आदमी के लाभ के लिए बीमा उद्योग (वार्षिकी और सुपरन्यूएशन भुगतान सहित) की तेजी से और व्यवस्थित वृद्धि लाने के लिए, और अर्थव्यवस्था के विकास में तेजी लाने के लिए दीर्घकालिक धन प्रदान करना;
3. अखंडता, वित्तीय सुध्ढ़ता, निष्पक्ष व्यवहार और उन लोगों की योग्यता के उच्च मानकों को स्थापित करने, प्रचार करने, निगरानी करने और लागू करने के लिए;
4. यह सुनिश्चित करने के लिए कि बीमा ग्राहकों को उत्पादों और सेवाओं के बारे में सटीक, स्पष्ट और सही जानकारी मिलती है और उन्हें इस संबंध में उनकी जिम्मेदारियों और कर्तव्यों से अवगत कराया जाता है;
5. बीमा धोखाधड़ी और अन्य कदाचारों को रोकने के लिए वास्तविक दावों के त्वरित निपटारे को सुनिश्चित करने के लिए।

6. निष्पक्षता को बढ़ावा देने के लिए, पारस्परिकता बीमा से निपटने वाले वित्तीय बाजारों में पारस्परिक आचरण और बाजार के खिलाड़ियों के बीच वित्तीय सुढता के उच्च मानकों को लागू करने के लिए एक विश्वसनीय प्रबंधन सूचना प्रणाली का निमाण;
7. ऐसी कार्रवाही करने के लिए जहां ऐसे मानकों अपर्याप्त या अप्रभावी रूप से लागू होते हैं;
8. विवेकाधीन विनियमन की आवश्यकताओं के अनुरूप उद्योग के दिन–प्रतिदिन काम करने में अधिकतम विनियमन लाने के लिए।

10.3.1 परिभाषाएं

किसी अन्य अधिनियम की तरह, विभिन्न शर्तो को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है धारा 2 के तहतः

- ''नियुक्त दिन'' का अर्थ है जिस तारीख पर प्राधिकरण स्थापित किया गया है।
- ''प्राधिकरण'' का आशय बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण है।
- ''अध्यक्ष'' का आशय प्राधिकरण के अध्यक्ष हैं।
- ''फंड'' का आशय बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण निधि है।
- ''अंतरिम बीमा नियामक प्राधिकरण'' का आशय केंद्र सरकार द्वारा स्थापित बीमा नियामक प्राधिकरण है।
- ''मध्यस्थ या बीमा मध्यस्थ'' में बीमा दलाल, पुनर्बीमा, दलाल, बीमा सलाहकार, सर्वेक्षक और निर्धारक शामिल हैं।
- ''सदस्य'' का अर्थ पूरे समय या प्राधिकरण का अंशकालिक सदस्य है और इसमें अध्यक्ष भी शामिल है।
- ''अधिसूचना'' का अर्थ आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना है।
- ''निर्धारित'' का आशय इस अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों द्वारा निर्धारित किया गया है।
- ''विनियम''का आशय प्राधिकरण द्वारा बनाए गए नियम हैं।

10.3.2 प्राधिकरण की विशेषताएं

- उपर्युक्त नाम से कॉर्पोटेट निकाय जिसका अर्थ यह है कि यह सदस्यों के समूह के रूप में कार्य करेगा, जिन्हें सदस्यों कहा जाता है, जो बीमा के नियंत्रक जैसे व्यक्तिगत व्यक्ति के रूप में संयुक्त रूप से काम नहीं करेंगे।
- निरंतर उत्तराधिकार होने का मतलब है कि कोई भी सदस्य इस्तीफा दे सकता है या किसी या कुछ सदस्यों के इस्तीफे या मर जाने से प्राधिकरण के काम–काज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा यह चलता रहेगा।
- किसी अनुबन्ध में प्रवेश के लिए दस्तावेजों पर कामन शील लगाकर तथा एक टिकट लगाकर सम्भव होता है प्राधिकरण का मुख्य हथियार कामन शील (Common Seal) होता है।

- मुकदमा या मुकदमा चलाया गया है से तात्पर्य है कि प्राधिकरण किसी भी व्यक्ति या संगठन के खिलाफ मामला दर्ज कर सकता है और इसके विपरीत।

10.3.3 प्राधिकरण का गठन

दिए गए विवरण के अनुसार प्राधिकरण में नौ व्यक्ति शामिल होंगे

- अध्यक्ष।
- अधिकतम पॉच (5) पूर्णकालिक सदस्य हो सकते है।
- अधिकतम चार (4) अंशलालिक सदस्य हो सकते है।
- इन व्यक्तियों को केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा। क्षमता, अखंडता और ऐसे व्यक्तियों मं से जिनके पास जीवन में ज्ञान या बीमा, सामान्य बीमा, वास्तविक विज्ञान, वित्त, अर्थशास्त्र, कानून लेखा, प्रशासन या अन्य अनुशासन का अनुभव हो जो केन्द्र सरकार की जो राय में प्राधिकरण के लिए उपयोगी हो। (धारा 4)

कार्यकाल (धारा 5)

- अध्यक्ष कार्यकाल 5 साल तक होगा और 65 वर्ष की आयु प्राप्त होने तक पुनः नियुक्ति के लिए पात्र होगा।
- सदस्यों की नियुक्ति 5 साल तक होगी और पुनः नियुक्ति के लिए पात्र होगी लेकिन 62 वर्ष से अधिक नहीं है।

सदस्यों को हटाना (धारा 6)

केन्द्र सरकार प्राधिकरण के किसी भी सदस्य को हटा सकती है यदि वह–

ए) दिवालिया घोषित किया गया है।

बी) एक सदस्य के रूप में कार्य करने के शारीरिक या मानसिक रूप से अक्षम हो गया है।

सी) किसी भी अदालत द्वारा किसी अपराध में सजा सुनाई गयी हो।

डी) इस तरह के वित्तीय या अन्य हितों को हासिल किया है जो सदस्य के रूप में उनके कार्य को प्रभावित करता है।

ई) सदस्य की कार्यालय में निरन्तरता द्वारा अपनी स्थिति का सार्वजनिक हितों की हानि के लिए दुरउपयोग किया जा रहा हो। लेकिन जब तक इस मामले में ऐसे सदस्य को सुनाई जाने का उचित अवसर नहीं दिया जाता है तब किसी भी सदस्य को कार्यालय के रूप में हटाया नहीं जा सकता है।

वेतन और भत्ते (धारा 7)

अध्यक्ष और पूर्णकालिक सदस्यों को सरकार द्वारा निर्धारित वेतन और भत्ता प्राप्त होगा।

भविष्य के रोजगार पर रोक (8)

कार्यालय से निस्कासन या सेवानिवृत्त होने के अगले 2 साल तक वह व्यक्ति (अध्यक्ष या पूर्णकालिक सदस्य) केन्द्र सरकार की पूर्व अनुमति के बिना किसी भी नियुक्ति को स्वीकार नही कर सकते है।

अधीक्षण और दिशा (धारा 9)

अध्यक्ष के पास संपूर्ण नियंत्रण होगा और प्राधिकरण के सभी प्रशासनिक मामलों के संबंध में दिशा प्रदान करेगा। जब वह बैठक में उपस्थित होते हैं तो वह बैठक की अध्यक्षता करेंगे।

10.3.4 प्राधिकरण की बैठक (धारा 10)

प्राधिकरण की बैठक इस अधिनियम के तहत किए गए विनियमन के अनुसार अध्यक्ष द्वारा तय समय और स्थान पर आयोजित की जाएगी। यदि अध्यक्ष बैठक में भाग लेने में असमर्थ है तो सदस्य वर्तमान सदस्यों में से अध्यक्ष का चयन करेंगे। बैठक में चर्चा के लिए सभी मुद्दो पर वर्तमान और मतदान द्वारा बहुमत के वोटों से निर्णय लिया जाएगा। समान मतदान के मामले में उस बैठक के अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होगा।

10.3.5 प्राधिकरण की कार्यवाही की अमान्यता (धारा 11)

निम्नलिखित कारणों से प्राधिकरण की कार्यवाही अवैध नहीं होगी (कानून की आंखों में वैध नहीं)–

- प्राधिकरण के गठन में दोष।
- किसी भी सदस्य की नियुक्ति में दोष।

अधिकारी और प्राधिकरण के कर्मचारी (धारा 12)

प्राधिकरण अधिकारी और कर्मचारियों को नियुक्त कर सकता है जिन्हें यह अपने कार्यो के कुशल निर्वहन के लिए आवश्यक मानता है। ऐसे अधिकारियों के नियम और शर्ते इस अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों के अनुसार शासित होंगी।

परिसंपत्तियों, देनदारियों आदि का हस्तान्तरण (धारा 13)

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि प्रारंभ में प्राधिकरण ''बीमा नियामक प्राधिकरण (आईआरए)'' नाम के तहत गठित किया गया था और बाद में नाम ''बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण'' (आईआरडीए) में बदल दिया गया था इसलिए आईआरए की संपत्ति और देनदारियों को बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण (आईआरडीए) की स्थापना की तारीख से स्थानांतरित कर दिया जाएगा।

10.3.6 प्राधिकरण के अधिकार, शक्तियां और कार्य (धारा 14)

<u>कर्तव्य :–</u> प्राधिकरण के पास बीमा कारोबार और पुनः बीमा व्यवसाय के व्यवस्थित विकास को विनियमित करने, बढ़ावा देने और सुनिश्चित करने का कर्तव्य होगा, अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान के प्रावधानों के अधीन।

शक्तियां और कार्य करने के लिए:–

- आवेदक (बीमा कम्पनी या बीमा एजेंट या सर्वेक्षक या बीमा दलाल या तृतीय पक्ष प्रशासक) पंजीकरण, नवीनीकरण, संशोधन, निकासी, निलंबित या ऐसे पंजीकरण को रद्द करने का प्रमाण पत्र निर्गत करना।
- पॉलिसी असाइन करने से संबंधित मामलों में पॉलिसीधारकों के हितों की सुरक्षा, पॉलिसीधारकों द्वारा नामांकन, बीमा योग्य ब्याज, बीमा दावे का निपटान, पॉलिसी का सरेंडर मूल्य और बीमा के अनुबंध के अन्य नियम और शर्ते;

- बीमा दलालों, एजेंटों, सर्वेक्षकों, थर्ड पार्टी प्रशासक के लिए अपेक्षित योग्यता, आचार संहिता और व्यावहारिक प्रशिक्षण निर्दिष्ट करना;
- सर्वेक्षणकर्ताओं और हानि निर्धारकों के लिए आचारण संहिता निर्दिष्ट करना (सामान्य बीमा के मामले में पॉलिसीधारक के नुकसान का आकलन करने वाले)
- बीमा कारोबार के आचरण में दक्षता को बढ़ावा देना;
- बीमा और पुनः बीमा व्यवसाय से जुड़े पेशेवर संगठनों को बढ़ावा देना और विनियमित करना;
- बीमा कंपनियों, एजेंटों, बीमा दलाल, सर्वेक्षक और तृतीय पक्ष प्रशासक पर शुल्क और अन्य शुल्क लेना;
- बीमाकर्ताओं, मध्यस्थों, बीमा मध्यस्थों और बीमा से जुड़े अन्य संगठनों के लेखापरीक्षा सहित पूछताछ और जांच आयोजित करने, निरीक्षण करने, निरीक्षण करने, निरीक्षण करने, व्यापार;
- सामान्य बीमा कारोबार के संबंध में बीमाकर्ताओं द्वारा प्रदान की जाने वाली दरों, फायदों, नियमों और शर्तो का नियंत्रण और विनियमन, जो धारा के तहत टैरिफ सलाहकार समिति द्वारा नियंत्रित और विनियमित नहीं है तथा बीमा अधिनियम, 1938 का 64 यू (डब्ल्ईएफ, 1/1/2007 टीएसी कार्य करना बंद कर दिया है)।
- फॉर्म और तरीके निर्दिष्ट करना जिसमें खाते की किताबें बनाए रखी जाएंगी और खातों का विवरण बीमाकर्ताओं और अन्य बीमा मध्यस्थों द्वारा प्रदान किया जाएगा;
- बीमा कम्पनियों द्वारा धन के निवेश को विनियमित करना।
- सॉलवेन्सी के मार्जिन के रखरखाव को विनियमित करना, यानी बीमा दावा राशि का भुगतान करने के लिए पर्याप्त धनराशि रखना;
- बीमाकर्ताओं और मध्यस्थों या बीमा मध्यस्थों के बीच विवादों को सुलझाने के लिए;
- टैरिफ सलाहकार समिति के कामकाज का पर्यवेक्षण;
- क्लॉज (एफ) में निर्दिष्ट पेशेवर संगठनों को बढ़ावा देने और विनियमित करने के लिए बीमा योजनाओं की प्रीमियम आय का प्रतिशत निर्दिष्ट करना;
- ग्रामीण बीमा या सामाजिक क्षेत्र में बीमाकर्ता द्वारा किए जाने वाले जीवन बीमा व्यवसय और सामान्य बीमा व्यवसाय का प्रतिशत निर्दिष्ट करना; तथा निधारित अन्य शक्तियों का प्रयोग करना।

केन्द्र सरकार से अनुदान (धारा 15)

संसद से अनुमोदन के बाद सरकार इस अधिनियम के अनुसार अपने कर्तव्यों को निर्वहन करने के लिए धन दे सकती है।

निधि का संविधान (धारा 16)

(1) ''बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण कोष'' कहने के लिए एक फंड होगा और वहां जमा किया जाएगा–

- प्राधिकरण द्वारा प्राप्त सभी सरकारी अनुदान, शुल्क और शुल्क;
- प्राधिकरण द्वारा इस तरह के अन्य स्रोत से प्राप्त सभी रकम केन्द्र सरकार द्वारा तय की जा सकती है;
- बीमाकर्ता/बीमा मध्यस्थों से प्राप्त निर्धारित प्रीमियम आय का प्रतिशत।

(2) निम्नवत भुगतानों के लिए निधि लागू की जाएगीः—

- प्राधिकरण के सदस्यों, अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों के वेतन, भत्ते और अन्य पारिश्रमिकः
- निर्वहन के संबंध में प्राधिकरण के अन्य खर्च।

इसके कार्यो और इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए।

लेखा और लेखा परीक्षा (धारा 17)

1. प्राधिकरण उचित खातों और अन्य प्रासंगिक अभिलेख बनाए रखेगा और भारत के महालेखा परीक्षक एवं नियंत्रक के परामर्श से केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित प्रारूप में खातों का वार्षिक विवरण तैयार करेगा।
2. प्राधिकरण के खातों का लेखा परीक्षक और महालेखापरीक्षक द्वारा इस तरह के अंतराल पर उनके द्वारा अंकेक्षण किए जा सकते है जो उनमें खुद के द्वारा निर्धारित हो ऐसे लेखापरीक्षा के संबंध में किए गए किसी भी व्यय को प्राधिकरण द्वारा नियंत्रक और लेखा परीक्षक को देय होगा।
3. भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक द्वारा प्राधिकरण के खातों के अंकेक्षण के संबंध में उनके द्वारा नियुक्त किसी भी अन्य व्यक्ति के पास नियंत्रक और लेखा परीक्षक के रूप में ऐसे अंकेक्षण के संबंध में समान अधिकार, विशेषाधिकार होगा जैसा आमतौर पर सरकारी खातों के लेखा परीक्षा के संबंध में होता है और विशेष रूप से खाते की किताबों के उपस्थिति की मांग करने का अधिकार होगा। जुड़े वाउचर और अन्य दस्तावेज और कागजात और प्राधिकरण के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने के लिए।
4. भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक द्वारा प्रमाणित प्राधिकरण के खाते या उसके द्वारा नियुक्त किसी भी अन्य व्यक्ति को उस पर अंकेक्षक रिपोर्ट के साथ केन्द्र सरकार को वार्षिक रूप से अग्रेषित किया जाएगा और सरकार उस अंकेक्षक रिपोर्ट को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाना चाहिए।

10.3.7 बीमा सलाहकार समिति की स्थापना (धारा 25)

1. प्राधिकरण, अधिसूचना द्वारा, इस तरह की अधिसूचना मुें निर्दिष्ट तारीख से प्रभाव स्थापित कर सकता है, एक समिति जिसे बीमा सलाहकार समिति के रूप में जाना जाता है।
2. बीमा सलाहकार समिति में वाणिज्य, उद्योग, परिवहन, कृषि, उपभोक्ता मंच, सर्वेक्षक, एजेंटों के हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिए पूर्व—सदस्य सदस्यों को छोड़कर पच्चीस सदस्यों से अधिक को शामिल नहीं किया जाएगा।

   मध्यस्थ, बीमा क्षेत्र में सुरक्षा और हानि रोकथाम, अनुसंधान निकायों और कर्मचारियों के संगठन में लगे संगठन।

3. अध्यक्ष और प्राधिकरण के सदस्य बीमा सलाहकार समिति के एक्स अध्यक्ष और एक्स पदाधिकारी सदस्य होंगे।
4. बीमा सलाहकार समिति का कार्य बीमा से संबंधित मामलों पर प्राधिकरण को सलाह देना होगा।
5. बीमा सलाहकार समिति प्राधिकरण को ऐसे अन्य मामलों पर सलाह दे सकती है जैसा निर्धारित किया जा सकता है।

10.3.8 विविध प्रावधान

- केन्द्र सरकार प्रशासनिक और तकनीकी मामलों पर, नीतिगत मामलों पर प्राधिकरण को दिशा निर्देश जारी कर सकती है और प्राधिकरण ऐसी दिशा निर्देशों का पालन करने के लिए बाध्य है।
- केन्द्र सरकार प्राधिकरण के किसी भी अधिनियम का अधिग्रहण कर सकती है।
- इस अधिनियम के प्रावधान के अनुसार कर्तव्यों का पालन करते समय प्राधिकरण के अध्यक्ष, सदस्य और कर्मचारी सार्वजनिक कर्मचारी के रूप में समझा जाएगा।
- प्राधिकरण इस अधिनियम के तहत बनाए गए विनियमन के अनुसार प्राधिकरण के अध्यक्ष या सदस्यों या अधिकारियुं और कर्मचारियों को अपनी शक्तियां दे सकता है।
- प्राधिकरण के पास वेतन और भत्ते और उसके नियम, सदस्यों, कर्मचारियों या अधिकारियों के लिए लागू होने वाले अन्य नियमों और शर्तो से संबंधित नियम बनाने की शक्ति है।
- प्राधिकरण के पास अपनी बैठकों में नियमों का पालन करने की शक्ति है।
- प्राधिकरण द्वारा बनाए गए नियम और विनियमन को संसद के समक्ष रखा जाएगा।
- इस अधिनियम के तहत किए गए किसी भी नियम या विनियम के अन्य कानूनों की प्रयोज्यता को रोक देंगे।
- प्राधिकरण के पास बीमा अधिनियम 1938 एलआईसी अधिनियम 1956 और जीआईबीएन अधिनियम 1972 में संशोधन करने की शक्तियां हैं।

10.4 भारत में बीमा क्षेत्र (Insurance Sector in India)

भारत में बीमा उद्योग ने पिछले दशक में बड़ी संख्या में उन्नत उत्पादों की शुरूआत के साथ एक बड़ा विकास देखा है। इससे सकारात्मक और स्वस्थ परिणाम के साथ एक कठिन प्रतिस्पर्धा हुई है। भारत में बीमा क्षेत्र अपनी अर्थव्यवस्था के कल्याण में गतिशील भूमिका निभाता है। यह व्यक्तियों के बीच बचत के अवसरों को काफी हद तक बढ़ाता है, उनके भविष्य की सुरक्षा करता है और बीमा क्षेत्र को धन का विशाल पूल बनाने में मदद करता है।

इन फंडों की मदद से, बीमा क्षेत्र पूंजी बाजारों में अत्यधिक योगदान देता है, जिससे भारत में बड़े बुनियादी ढांचे के विकास में वृद्धि होती है।

10.5 भारतीय बीमा क्षेत्र (Indian Insurance Sector)

भारतीय बीमा क्षेत्र मूल रूप से दो श्रेणियों में बांटा गया है– जीवन बीमा और गैर–जीवन बीमा। गैर–जीवन बीमा क्षेत्र को सामान्य बीमा भी कहा जाता है। जीवन बीमा और गैर–जीवन बीमा दोनों को आईआरडीएआई (भारत के बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण) द्वारा शासित किया जाता है।

यह सरकारी संगठन पूरी तरह से भारत में पूरे क्षेत्र की निगरानी करता है और सभी बीमा उपभाक्ता अधिकारों के संरक्षक की तरह कार्य करता है। यही कारण है कि सभी बीमा कंपनियों को आईआरडीएआई के नियमों और विनियमों का पालन करना पड़ता है। भारत में बीमा क्षेत्र में कुल 57 बीमा कंपनियां शामिल हैं। जिनमें से 24 कंपनियां जीवन बीमा प्रदाता हैं और शेष 33 गैर–जीवन बीमा कंपनियां हैं। बाहर सात सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियां हैं।

जीवन बीमा कंपनियां व्यक्तियों के जीवन को कवरेज प्रदान करती हैं, जबकि गैर–जीवन बीमा कंपनियां यात्रा, स्वास्थ्य, कार और बाइक और गृह बीमा जैसे कवरेज प्रदान करती हैं। न केवल यह, लेकिन गैर–जीवन बीमा कंपनियां हमारे औद्योगिक उपकरणों के लिए भी कवरेज प्रदान करती हैं। हमारे किसानों के लिए फसल बीमा, मोबाइल के लिए गैजेट बीमा, पालतू पशु बीमा इत्यादि कुछ अन्य बीमा उत्पाद भारत में सामान्य बीमा कंपनियों द्वारा उपलब्ध कराए जा रहे हैं।

जीवन बीमा कंपनियों ने हाल ही में बचत के विकास के साथ बीमा प्रदान करने के विचार के साथ, एक निवेश प्रॉस्पेक्टस प्राप्त किया है। लेकिन, सामान्य बीमा कंपनियां व्यक्तियों को शुद्ध जोखिम कवर प्रदान करने के लिए अनिच्छुक रहती हैं।

10.6 भारत में बीमा क्षेत्र का अतीत (Past of Insurance Sector in India)

भारतीय बीमा क्षेत्र के इतिहास में, एक दशक पहले एलआईसी एकमात्र जीवन बीमा प्रदाता था। नेशनल इंश्योरेंस, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेस, ओरिएंटल इंश्योरेंस और न्यू इंडिया इंश्योरेंस जैसी अन्य सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियां गैर–जीवन बीमा प्रदान करती थी या भारत में सामानय बीमा देती थी।

हालांकि, नई निजी क्षेत्र की कंपनियों के परिचय के साथ, भारत में बीमा क्षेत्र ने वर्ष 2000 में एक गति प्राप्त की। वर्तमान में, 24 जीवन बीमा कंपनियां और 30 गैर–जीवन बीमा कंपनियां भारत में बीमा क्षेत्र पर शासन करने के लिए आक्रमक रही हैं।

लेकिन, अभी तक कई और बीमा कंपनियां हैं जो भारत में जीवन बीमा और गैर–जीवन बीमा क्षेत्रों दोनों शुरू करने के लिए आईआरडीएआई अनुमोदन के लिए इंतजार कर रही हैं।

10.7 भारत में बीमा क्षेत्र की उपस्थिति (Presence of Insurance Sector in India)

जहां तक बीमा उद्योग की बात है, एलआईसी, न्यू इंडिया, नेशनल इंश्योरेंस, यूनाइटेड इंश्योरेंस एवं ओरिएंटल एकमात्र सरकारी शासित इकाई है जो बाजार हिस्सेदारी में और भारत में बीमा क्षेत्र में उनके योगदान दोनों में उच्च है।

दो विशेष बीमा कंपनियां हैं– कृषि बीमा कंपनी लिमिटेड जो कि क्रॉप इंश्योरेंस और क्रेडिट बीमा को भारत की निर्यात क्रेडिट गारंटी प्रदान करती है। जबकि, अन्य निजी बीमाकर्ता (जीवन और सामान्य दोनों) हैं जिन्होंने विदेशी बीमा कंपनियों के साथ संयुक्त उद्यम किया है ताकि वे भारत में अपने बीमा कारोबार शुरू कर सकें।

विदेशी बाजारों के साथ इस सहयोग ने भारत में बीमा क्षेत्र को उच्च वर्तमान बाजार हिस्सेदारी के साथ बढ़ता है। भारत ने 2000 में बीमा क्षेत्र में निजी कंपनियों को अनुमति दी, एफडीआई पर 26% की सीमा तय की, जो 2014 में 49% हो गई थी। एचडीएफसी, आईसीआईसीआई और एसबीआई जैसे निजी बीमा कंपनियां भारत में बीमा क्षेत्र में जीवन और गैर–जीवन उत्पादों को उपलब्ध कराने के लिए कुछ कठिन प्रतिस्पर्धी रही हैं।

10.8 भारत में बीमा क्षेत्र का भविष्य (Future of Insurance Sector in India)

हालांकि एलआईसी भारत में बीमा क्षेत्र पर हावी है, फिर भी नए निजी बीमा कंपनियों की शुरूआत 2017 में जीवन और गैर–जीवन दोनों क्षेत्रों के जीवंत विस्तार और विकास को देखेंगी। जेब के अनुकूल प्रीमियम के साथ नई बीमा पॉलिसी की मांग आसमान उच्च है। चूंकि घरेलू अर्थव्यवस्था में भारी वृद्धि नहीं हो सकती है, इसलिए भारत में बीमा क्षेत्र को मजबूत विकास के लिए नियंत्रित किया जाता है। आय में वृद्धि और क्रय शक्ति के साथ–साथ घरेलू बचत की घातीय वृद्धि के साथ, भारत में बीमा क्षेत्र भारतीय बाजार में उत्पाद नवाचार, बहु वितरण, बेहतर दावों के प्रबंधन और नियामक रूझान जैसे उभरते रूझान पेश करेगा।

सरकार निम्न योजनाओं को शुरू करके गरीबी रेखा में व्यक्तियों को बीमा प्रदान करने के लिए भी कड़ी मेहनत करती है

- प्रधान मंत्री सुरक्षा बीमा योजना (पीएमएसबीवाई)
- राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (आरएसबीवाई) और
- प्रधान मंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना (पीएमजेजेबीवाई)।

इन योजनाओं का परिचय भारत में निचले प्रीमियम वाले नई नीतियों का उपयोग करने के लिए निम्न और निम्न–मध्यम आय श्रेणियों की सहायता करेगा।

भारत में बीमा क्षेत्र में कई नियामक परिवर्तनों के साथ, भविष्य में जीवन बीमा उद्योग के लिए बहुत बढ़िया और आशाजनक दिखता है। इसके कारण बीमाकर्ता व्यवसाय की देखभाल करते हैं और अपने वास्तविक खरीदारों के साथ सक्रिय रूप से संलग्न होते हैं।

बीमा, सेवानिवृत्ति योजना, बढ़ती मध्यम वर्ग और युवा बीमा योग्य भीड़ की बढ़ती बीमा जागरूकता जैसे कुछ जनसंख्यिकीय कारक भारत में बीमा क्षेत्र की वृद्धि में काफी वृद्धि करेंगे।

10.9 भारतीय बीमा क्षेत्र की कम्पनियों का प्रदर्शन (Performance of Companies in Indian Insurance Sector)

List of Life Insurance Companies in India

1.	Aegon Life Insurance Co. Ltd.
2.	Aviva Life Insurance Co. India Ltd.
3.	Bajaj Allianz Life Insurance Co. Ltd.
4.	Bharti AXA Life Insurance Co. Ltd.
5.	Birla Sun Life Insurance Co. Ltd.
6.	Canara HSBC Oriental Bank of Commerce Life Insurance Co. Ltd.
7.	DHFL Pramerica Life Insurance Co. Ltd.
8.	Edelweiss Tokio Life Insurance Co. Ltd
9.	Exide Life Insurance Co. Ltd.
10.	Future Generali India Life Insurance Co. Ltd.
11.	HDFC Standard Life Insurance Co. Ltd.
12.	ICICI Prudential Life Insurance Co. Ltd.
13.	IDBI Federal Life Insurance Co. Ltd.
14.	IndiaFirst Life Insurance Co. Ltd
15.	Kotak Mahindra Old Mutual Life Insurance Ltd.
16.	Life Insurance Corporation of India
17.	Max Life Insurance Co. Ltd.
18.	PNB MetLife India Insurance Co. Ltd.
19.	Reliance Life Insurance Co. Ltd.
20.	Sahara India Life Insurance Co. Ltd.
21.	SBI Life Insurance Co. Ltd.
22.	Shriram Life Insurance Co. Ltd.
23	Star Union Dai-Ichi Life Insurance Co. Ltd.

24.	Tata AIA Life Insurance Co. Ltd
	List of Non-Life Insurance Companies in India
1.	Agriculture Insurance Co. of India Ltd.
2.	Apollo Munich Health Insurance Co. Ltd.
3.	Bajaj Allianz General Insurance Co. Ltd.
4.	Bharti Axa General Insurance Co. Ltd.
5.	Cholamandalam MS General Insurance Co. Ltd.
6.	Cigna TTK Health Insurance Co. Ltd.
7.	Export Credit Guarantee Corporation of India Ltd.
8.	Future Generali India Insurance Co. Ltd.
9.	HDFC ERGO General Insurance Co. Ltd.
10.	ICICI Lombard General Insurance Co. Ltd.
11.	IFFCO Tokio General Insurance Co. Ltd.
12.	L&T General Insurance Co. Ltd.
13.	Liberty Videocon General Insurance Co. Ltd.
14.	Magma HDI General Insurance Co. Ltd.
15.	Max Bupa Health Insurance Co. Ltd.
16.	National Insurance Co. Ltd.
17.	The New India Assurance Co. Ltd.
18.	The Oriental Insurance Co. Ltd.
19.	Raheja QBE General Insurance Co. Ltd.
20.	Reliance General Insurance Co. Ltd.
21.	Religare Health Insurance Co. Ltd.

22.	Royal Sundaram Alliance Insurance Co. Ltd.
23.	SBI General Insurance Co. Ltd.
24.	Shriram General Insurance Co. Ltd.
25.	Star Health and Allied Insurance Co. Ltd.
26.	Tata AIG General Insurance Co. Ltd.
27.	United India Insurance Co. Ltd.
28.	Universal Sompo General Insurance Co. Ltd.
29.	Kotak Mahindra General Insurance Co. Ltd.
30.	Aditya Birla Health Insurance Co. Ltd.

Life Insurance Business Performance:	**2015-16**		**2014-15**	
	Public Sector	**Private Sector**	**Public Sector**	**Private Sector**
Premium Underwritten (Rs in Crores)	266444.21	100499.02	239667.65	88433.49
New Policies Issued (in Lakhs)	205.47	61.92	201.71	57.37
Number of Offices	4892	6179	4877	6156
Benefits Paid (Rs in Crores)	141201.05	60565.05	144125	67054
Individual Death Claims (Number of Policies)	761983	114697	755901	121927
Individual Death Claims Amount Paid (Rs in Crores)	9690.17	2946.49	9055.18	2733.49
Group Death Claims (Number of lives)	247504	297833	273794	192989
Group Death Claims Amount Paid (Rs in Crores)	2494.03	2303.00	2037.27	1483.55
Individual Death Claims (Figures in per cent of policies)	98.33	91.48	98.19	89.40
Group Death Claims (Figures in per cent of lives covered)	99.69	94.65	99.64	91.20
No. of Grievances reported during the year	64750	139951	80944	198048
Grievances resolved during the year	64750	145125	80944	193119
Grievance Resolved (in percent)	100	103.69	100.00	97.51
Non-Life Insurance Business	**2015-16**		**2014-15**	

Performance:	Public Sector	Private Sector	Public Sector	Private Sector
Premium Underwritten (Rs in Crores)	47691	39694	42549.48	35090.09
New Policies Issued (in Lakhs)	671.32	549.44	677.82	504.97
Number of Offices	8414	2389	8207	2200
Net Incurred Claims (Rs in Crores)	38104.27	21764.44	31567.75	19430.46
Number of Grievances reported during the year	17808	41802	15860	44828
Grievances Resolved During the Year	17718	42493	16105	43318
Grievance Resolved (in percent)	99.49	101.65	101.54	96.63

Source: Annual Report (2015-16 & 2014-15)

Stand Alone Health Insurance Companies	**2015-16**				**2014-15**			
	Gross Direct Premium (Rs in Crores)	Net earned premium (Rs in Crores)	U/W Profit / Loss (Rs in Crores)	Net incurred claim ratio	Gross Direct Premium (Rs in Crores)	Net earned premium (Rs in Crores)	U/W Profit / Loss (Rs in Crores)	Net incurred claim ratio
	1	2	3	4	5	6	7	8
Star Health and Allied Insurance	2007	1513	N.A.	53.81%	1469	1017	N.A.	63.96%
Apollo Munich Health Insurance	1022	774	N.A.	64.61	803	655	N.A.	60.03%
Max Bupa Health Insurance	476	393	N.A.	59.53	372	315	N.A.	55.16%
Religare Health Insurance	503	287	N.A.	57.25	275	154	N.A.	61.13%
Cigna TTK Health Insurance	143	70	N.A.	78.66	21	6	N.A.	64.33%
Specialised Insurer in Agriculture	**2015-16**				**2014-15**			
	1	2	3	4	5	6	7	8
Agriculture Insurance Co. Ltd.	3521	1862	61.66	99.66	2740	1598	Loss 158	108.47%

Specialised Insurer in export credit insurance	2015-16				2014-15			
	1	2	3	4	5	6	7	8
Export Credit Guarantee Corporation of India Limited	1321	979	Loss 250	102	1362	1019	loss 291.91	114%

Source: Annual Report (2015-16 & 2014-15)

10.10 सांराश

आईआरडीए बनाने का मुख्य उद्देश्य एक नियामक बनाना है जो देश में बीमा क्षेत्र को विनियमित और विकसित करेगा और सभी व्यक्तियों या संगठनों को नियंत्रित करेगा जो बीमा क्षेत्र से सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से शामिल हैं। प्राधिकरण के पास बीमाकर्ताओं, बीमा से संबंधित नियम जारी करने की शक्तियां हैं।

मध्यस्थों, सर्वेक्षणकर्ताओं, तीसरे पक्ष के प्रशासकों को उनके पंजीकरण के लिए, उनके लाइसेंस का नवीनीकरण और बीमा क्षेत्र की सुचारू कार्यप्रणाली के लिए उनके कार्यकलापों की समीक्षा करना। प्राधिकरण उन पॉलिसीधारकों के हितों की भी रक्षा करता है जिनके लिए बीमाकर्ता पॉलिसी जारी कर रहे हैं।

10.11 शब्दावली

बीमा विनियमन और विकास प्राधिकरण अधिनियम 1999: यह अधिनियम दिसंबर 1999 में संसद द्वारा पारित किया गया था। प्राधिकरण का उददेश्य ''बीमा पॉलिसी के धारकों के हितों की रक्षा करना, बीमा उद्योग के व्यवस्थित विकास को विनियमित करना, बढ़ावा देना और सुनिश्चित करना या उसके साथ जुड़े मामलों या आकस्मिक वादों का समयानुसार निस्तारण हो सके।''

10.12 बोध प्रश्न

1. एलआईसी अधिनियम 1 सितंबर .... से लागू हुआ।
2. भारत में बीमा क्षेत्र में उदारीकरण प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिए .... समिति का गठन किया गया था।
3. .... का उददेश्य ''बीमा पॉलिसी के धारकों के हितों की रक्षा करना, बीमा उद्योग के व्यवस्थित विकास को विनियमित करना, बढ़ावा देना और सुनिश्चित करना या उसके साथ जुड़े मामलों या आकस्मिक वादों का समयानुसार निस्तारण हो सके।''
4. भारत में बीमा क्षेत्र में एफडीआई .... % तय की गई हैं।

10.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 1956, 2. मल्होत्रा, 3. बीमा विनियमन और विकास प्राधिकरण, 4. 49

10.14 स्वपरख प्रश्न

1. बीमा को परिभाषित कीजिए तथा बीमा के विभिन्न प्रकार बताइये।

2. बीमा विनियमन एवं विकास प्राधिकरण अधिनियम के उददेश्यों की व्याख्या कीजिए।
3. आई आर डीए की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. आई आर डीए के सदस्यों, इनके कार्यकाल, सदस्यों को हटाना तथा प्राधिकरण की कार्यवाही की अमान्यता को सक्षिप्त में समझाइये।
5. प्राधिकरण के अधिकार, शक्तियां तथा कार्यो की व्याख्या कीजिए।
6. भारत के बीमा क्षेत्र के भूत, वर्तमान तथा भविष्य पर टिप्पणी लिखिए।
7. भारतीय बीमा क्षेत्र की कम्पनियों के प्रदर्शन को सक्षेप में समझाइये।

10.15 सन्दर्भ पुस्तकें

- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्षियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेषन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।
- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- बिश्नोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्ष्यिल इंस्टीट्यूषन्स
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिषिंग हाउस मुबई।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निषा, इंडियन फाइनैन्षियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- डॉ0 राधाकृष्ण विश्नोई (2007), ''बीमा के सिद्धान्त'', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- www.Policy Bazar.com
- www General Insurance.com
- डॉ0 टी0टी0 सेठी (2015) ''मुद्रा बैकिंग एवं लोक वित्त'', लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

इकाई–11 सामान्य बीमा के सिद्धान्त एवं प्रथायें (Principles and Practices of General Insurance)

इकाई की रुपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 बीमा अनुबन्ध की आवश्यकतायें
11.3 सामान्य बीमा अनुबन्ध
11.4 सामान्य बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण
11.5 अधिनियम के उद्देश्य
11.6 सामान्य बीमा निगम का मिशन
11.7 बीमा विनियमन प्राधिकरण (आईआरए)
11.8 बीमा विनियमन एवं विकास प्राधिकरण (आईआरडीए)
11.9 सामान्य बीमा के प्रकार
11.10 सामान्य बीमा निगम के कार्य
11.11 साराश
11.12 शब्दावली
11.13 बोध प्रश्न
11.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.15 स्वपरख प्रश्न
11.16 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- सामान्य बीमा की परिभाषा तथा अर्थ की जानकारी प्राप्त कर सके।
- बीमा अनुबन्ध की आवश्यकताओ का वर्णन कर सके।
- सामान्य बीमा अनुबन्ध के विभिन्न सिद्धान्तो का वर्णन कर सके।
- सामान्य बीमा व्यवसाय के राष्टीयकरण व सामान्य बीमा निगम के मिशन तथा सामान्य बीमा परिषद की जानकारी प्राप्त कर सके।
- अग्निबीमा, समुद्री बीमा तथा मोटर बीमा की आवश्यकता, लाभ, तथा प्रीमियम निर्धारण से अवगत हो सके।

11.1 प्रस्तावना

प्रत्येक व्यक्तिगत परिवार और व्यापार संगठन को जोखिम से बचने के लिए बीमा की आवश्यकता होती है, बीमा अनिश्चित घटना की स्थिति में हानि एक्सपोजर के वित्तीय परिणामों से आश्वासन को हल करने का प्रयास करता है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी संपत्ति, या यहां तक कि आय कमाई का नुकसान होता है।

बीमा वास्तव में तीन तत्वों का संयोजन है एक स्थानांतरण प्रणाली, एक व्यापार व एक अनुबंध

1 एक स्थानांतरण प्रणाली के रूप में बीमा

एक स्थानांतरण प्रणाली के रूप में, बीमा किसी व्यक्ति, परिवार या व्यापार को बीमा कंपनी को घाटे की लागत को स्थानांतरित करने में सक्षम बनाता है। बदले

में कंपनी बीमाधारक के लिए भुगतान करती है क्योंकि एक हस्तांतरण प्रणाली बीमाधारक से बीमा कंपनी को जोखिम में स्थानांतरित करने के लिए संदर्भित करती है जो आर्थिक रूप से अच्छी है।

व्यक्ति कंपनी को हानि के परिणामों को स्थानांतरित करता है, जिससे बहुत कम आवधिक भुगतान (प्रीमियम) की निश्चितता के लिए बड़े नुकसान की संभावना का आदान–प्रदान होता है। हानि की लागत को स्थानांतरित करने के लिए हानि होना जरूरी नहीं है। हानि की एकमात्र संभावना एक हानि एक्सपोजर बनती है जो हो सकती है।

बीमित या स्थानांतरित। एक हानि एक्सपोजर तीन प्रकार के नुकसान को जन्म दे सकता है, अर्थात्

- संपत्ति हानि (शुद्ध आय हानि सहित)
- देयता हानि, और
- मानव और कर्मियों के नुकसान।

दूसरी तरफ, जोखिमों को साझा करने से बीमाधारकों द्वारा भुगतान किए गए प्रीमियमों को पूल में शामिल किया जाता है, जिसमें से नुकसान होने पर भुगतान किया जाता है। इस प्रकार, बीमा की भूमिका बीमाधारक की संपत्ति/या जीवन को हानि के वित्तीय परिणामों से बचाने के लिए है। लेकिन, सभी जोखिम बीमा योग्य नहीं हैं। बीमा केवल शुद्ध जोखिम को कवर करता है।

2. एक व्यवसाय के रूप में बीमा

एक व्यवसाय के रूप में, बीमा मुख्य रूप से प्रीमियम से अपनी लागत और व्यय को पूरा करने का प्रयास करता है और अपनी स्थिरता के लिए लाभ का उचित मार्जिन भी बनाता है। एक व्यापार संगठन के रूप में, यह जीवन और गैर–जीवन बीमा कंपनियों, एजेंसियों, ब्रोकरेज फर्मो में लाखों लोगों को रोजगार प्रदान करता है। विभिन्न परिचालन इन कंपनियों में विपणन, अंडरराइटिंग, दावा हैंडलिंग, रेटमेकिंग और सूचना प्रसंस्करण शामिल हैं। एक व्यापारिक चिंता के रूप में, इसे नियामकों, बीमाधारकों और अन्य वित्तीय स्थिरता से सम्बन्धित के अन्य लोगों को भी संतुष्ट करने की आवश्यकता है। इसलिए, उपभोक्ताओं की सुरक्षा के लिए, नियामक दरें, नीति रूपों, साल्वेंसी मार्जिन की निगरानी करना, और जांच करना अतिआवश्यक हो जाता है।

नुकसान के भुगतान के अलावा, बीमा व्यवसाय व्यक्तियों और परिवारों और समाज को कई लाभ प्रदान करता है जैसे–

- कवर किए गए नुकसान की लागत के लिए भुगतान।
- बीमित व्यक्ति के वित्तीय अनिश्चितता में कमी।
- संसाधनों का कुशल उपयोग।
- क्रेडिट के लिए समर्थन।
- कानूनी आवश्यकताओं की संतुष्टि।
- व्यापार आवश्यकताओं की संतुष्टि।
- बुनियादी ढांचे के विकास के लिए निवेश निधि का स्त्रोत।
- सामाजिक बोझ में कमी।

हालांकि, बीमा का लाभ लागत मुक्त नहीं है। कुछ प्रत्यक्ष लागत और अप्रत्यक्ष लागतें हैं, जैसे कि भुगतान किए गए प्रीमियम, बीमाकर्ताओं की परिचालन लागत, अवसर लागत, बढ़ी हुई हानि, और कानून सूट में वृद्धि।

3. **एक अनुबंध के रूप में बीमा**

एक अनुबंध के रूप में, एक बीमा पॉलिसी एक कानूनी रूप से लागू करने योग्य अनुबंध है। अनुबंध बीमा कंपनी और बीमित व्यक्ति के बीच है। बीमा पॉलिसियों के माध्यम से, बीमित व्यक्ति बीमा कंपनी को घाटे की लागत को स्थानांतरित करता है। बीमित व्यक्ति द्वारा भुगतान किए गए प्रीमियम के बदले में, बीमाकर्ता पॉलिसी के तहत कवर किए गए नुकसान के लिए भुगतान करने का वादा करते हैं। पॉलिसी में इसकी लागू करने योग्यता और बीमाकर्ता द्वारा देय लाभ के लिए सभी नियम और शर्ते शामिल हैं। किसी भी पार्टी द्वारा इन शर्तों के उल्लंघन के परिणामस्वरूप अनुबंध की अमान्यता होगी। इस प्रकार, बीमा पॉलिसी द्वारा प्रदान किए गए कवरेज के माध्यम से, व्यक्तियों, परिवारों और व्यवसायों को उनकी सुरक्षा के लिए सक्षम किया जाता है।

परिसंपत्तियों, और हानियों के प्रतिकूल वित्तीय प्रभाव को कम करें। इसलिए, एक बीमा अनुबंध को व्याख्या और सावधानीपूर्वक डिजाइन करने की आवश्यकता है ताकि सभी सौहार्दपूर्ण नुकसान कवर किए जाएं और बीमाकृत हों। बीमा के सबसे आम चार मूल प्रकार हैं;

आम तौर पर दो व्यापक श्रेणियों में विभाजितः

1. संपत्ति / देयता बीमा
2. जीवन / स्वास्थ्य बीमा

1. संपत्ति बीमा संपत्ति और शुद्ध आय हानि एक्सपोजर के लिए कवरेज प्रदान करता है। यह बीमाधारक की परिसंपत्तियों की मरम्मत, या क्षतिग्रस्त, खोए या नष्ट होने वाली संपत्ति को प्रतिस्थापित करने या संपत्ति की हानि के परिणामस्वरूप किए गए अतिरिक्त आय और अतिरिक्त व्यय को प्रतिस्थापित करता है। देयता बीमा, देयता हानि एक्सपोजर को शामिल करता है। यह बीमाधारकों की ओर से दूसरे को चोट पहुंचाने या दूसरों की संपत्ति को नुकसान पहुंचाने के लिए भुगतान प्रदान करता है जिसके लिए बीमित व्यक्ति कानूनी रूप से उत्तरदायी है।
2. जीवन और स्वास्थ्य बीमा, मानव (व्यक्तिगत) हानि एक्सपोजर के वित्तीय परिणाम को कवर करते हैं। जीवन बीमा मृत्यु के माध्यम से खोई आय की कमाई क्षमता को प्रतिस्थापित करता है और बीमित व्यक्ति की मृत्यु से संबंधित खर्चो का भुगतान करने में भी मदद करता है। स्वास्थ्य बीमा, चिकित्सा खर्चो के भुगतान के द्वारा अतिरिक्त आय सुरक्षा प्रदान करता है। अधिकांश पश्चिमी देशों में लोकप्रियता के रूप में विकलांगता आय, बीमित व्यक्ति की आय के रूप में बदल जाती है अगर बीमित व्यक्ति चोट या बीमारी के कारण काम करने में असमर्थ है।

<u>'अनुबंध' की परिभाषा :–</u>

कानून द्वारा लागू किये जाने वाले एक समझौते को अनुबंध कहा जाता है। यह सहमत कुछ पक्षों के लिए कुछ अधिकार और दायित्व बनाता है। एक वैध अनुबंध वह है, जो अदालत द्वारा लागू करवाया जा सकता है।

11.2 बीमा अनुबंध की आवश्यकताएं

बीमा अनुबंध भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 के प्रावधानों द्वारा भी शासित होते हैं। आमतौर पर, चार मान्यताएं होती हैं जो सभी वैध अनुबंधों के लिए आम होती हैं। कानूनी रूप से लागू करने योग्य होने के लिए, बीमा अनुबंध को इन चार आवश्यकताओं को पूरा करना होगा–

1. प्रस्ताव और स्वीकृति
2. विचार
3. क्षमता
4. कानूनी उद्देश्य

1. <u>वैध प्रस्ताव और स्वीकृति होना चाहिए</u> :–

बाध्यकारी बीमा अनुबंध की पहली आवश्यकता यह है कि एक प्रस्ताव और इसकी शर्तो की स्वीकृति होनी चाहिए। ज्यादातर मामलों में, बीमा के लिए आवेदक इस प्रस्ताव को बनाता है, और कंपनी प्रस्ताव स्वीकार या अस्वीकार करती है। एक एजेंट केवल संभावित बीमाधारक को प्रस्ताव देने के लिए अनुरोध करता है या आमंत्रित करता है।

बीमा के लिए आवेदन द्वारा कानूनी प्रस्ताव प्रीमियम के निविदा द्वारा समर्थित होना चाहिए और इसे हमेशा 'कवरेज' शुरू करने से पहले होना चाहिए। एजेंट आमतौर पर बीमित व्यक्ति को एक सशर्त रसीद देता है जो कि स्वीकृत प्रदान करता है। संपत्ति और देयता बीमा में, प्रस्ताव और स्वीकृति मौखिक या लिखित हो सकती है।

2. <u>वादा को अवधारण के आदान–प्रदान द्वारा समर्थित किया जाना चाहिए</u> :– प्रत्येक अनुबंध पार्टी को दिया गया एक विचार है। बीमित व्यक्ति का विचार प्रीमियम में भुगतान मौद्रिक राशि से बना है, साथ ही साथ बीमा अनुबंध की शर्तो का पालन करने के लिए समझौता। बीमाकर्ता का विचार कुछ खतरों के कारण हानि की घटना, कानूनी कार्यो में बीमित व्यक्ति की रक्षा करने, या निरीक्षण या संग्रह सेवाओं, या हानि रोकथाम और सुरक्षा सेवाओं जैसी अन्य गतिविधियों को करने के लिए क्षतिपूर्ति करने का वादा है।

3. <u>पार्टियों के पास अनुबंध करने की कानूनी क्षमता होनी चाहिए</u> :– वैध बीमा अनुबन्ध की यह आवश्यकता है कि अनुबंध के लिए प्रत्येक पक्ष कानूनी रूप से सक्षम होना चाहिए। इसका आशय है कि पार्टियों के पास बाध्यकारी अनुबंध में प्रवेश करने की कानूनी क्षमता होनी चाहिए। जिन पार्टियों के पास अनुबंध करने की कोई कानूनी क्षमता नहीं है उनमें शामिल हैः

- पागल व्यक्ति जो समझौते की प्रकृति (दायित्वों और देनदारियों) को नहीं समझ सकते है।
- व्युत्पन्न व्यक्तियों।
- निगम जो अपने चार्टर्स, उपनिवेशों, या निगमन के लेख, या प्राधिकरण के दायरे से बाहर काम करते है।
- नाबालिग।

4. <u>अनुबंध कानूनी उद्देश्य के लिए होना चाहिएः–</u>

बीमा पॉलिसी के लिए, इस आवश्यकता का मतलब है कि अनुबन्ध न तो बीमा योग्य ब्याज की आवश्यकताओं का उल्लंघन करेगा और न ही अवैध उद्यमों की रक्षा या प्रोत्साहित करेगा। दूसरे शब्दों में, एक बीमा पॉलिसी जो अवैध और अनैतिक कुछ को प्रोत्साहित करती है या प्रचार करती है व सार्वजनिक हित के विपरीत है और इसे लागू नहीं किया जा सकता है।

11.3 सामान्य बीमा अनुबंध

बीमा का उद्देश्य किसी व्यक्ति के संपत्ति या जीवन के आर्थिक मूल्य की रक्षा करना है। बीमा के अनुबंध के माध्यम से बीमाकर्ता बीमाकृत संपत्ति या जीवन की हानि (जैसा भी मामला हो) पर कोई नुकसान उठाने के लिए सहमत होता है जो बीमित व्यक्ति द्वारा भुगतान किए जाने वाले छोटे प्रीमियम के विचाराधीन समय के दौरान हो सकता है। वैध अनुबंध के उपर्युक्त अनिवार्यताओं के अलावा, बीमा अनुबंध अतिरिक्त सिद्धांतों के अधीन हैं। ये हैं:

1. परम सदविश्वास का सिद्धानत (The principle of utmost good faith)
2. बीमा योग्य हित के सिद्धान्त (The Principle of Insuranble Interest)
3. क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त (The Principle of Indemnity)
4. प्रत्यासन का सिद्धान्त (The principle of Subrogation)
5. अभिदाय का सिद्धान्त (The Principle of Contribution)
6. आसन्न कारण का सिद्धान्त (The Principle of Proximate cause)
7. क्षति के अल्पीकरण का सिद्धान्त (Principle of mitigation of Loss)
8. आश्वासनों का सिद्धानत (Principle of Warranties)

ये विशिष्ट विशेषताएं कानून के बुनियादी सिद्धान्तों पर आधारित हैं और सभी प्रकार के बीमा अनुबंधों पर लागू होती हैं। ये सिद्धान्त दिशानिर्देश प्रदान करते हैं कि कि प्रकार बीमा समझौते किए जाने चाहिए। इन सिद्धान्तों की उचित समझ बीमा अनुबन्धों की स्पष्ट व्याख्या के लिए आवश्यक है और विवादों के मामले में अनुबन्धों के उचित समाप्ति, दावों का निपटान, नियमों के प्रवर्तन और फैसले के सुचारू पुरस्कार में मदद करता है।

1. परम सदविश्वास का सिद्धान्त (The principle of utmost good faith)

एक सकारात्मक कर्तव्य स्वेच्छा से खुलासा, सटीक और पूरी तरह से, प्रस्तावित जोखिम के लिए सभी तथ्यों की सामग्री, चाहे अनुरोध किया गया हो या नहीं।

बीमा का यह सिद्धान्त ''उबेर्रिमा फड्स'' के सिद्धान्त से उत्पन्न होता है जो वैध बीमा अनुबंध के लिए आवश्यक है। इसका आशय है कि बीमा के अनुबंध में, संबंधित अनुबंध पक्षों को एक–दूसरे की ईमानदारी पर भरोसा करना चाहिए। आम तौर पर ''कैविट एम्प्टर'' का सिद्धान्त वाणिज्यिक अनुबंधों के गठन को नियंत्रित करता है जिसका अर्थ है 'खरीदार से सावधान रहें'। खरीदार सेवा और उनकी विशेषताओं और कार्यो की जांच के लिए जिम्मेदार है। पार्टियों पर जानकारी का खुलासा करने के लिए बाध्यकारी नहीं है, जिसके लिए नहीं पूछा जाता है। लेकिन बीमा के मामले में, बेचे जाने वाले उत्पाद अमूर्त हैं। कहां आवश्यक तथ्यों प्रस्तावक से संबंधित है, जो बहुत ही निजी हैं और केवल उन्हें ही जानते हैं। कानून वाणिज्यिक अनुबन्धों में शामिल लोगों की तुलना में बीमा अनुबंध के लिए पार्टियों पर अधिक शुल्क लगाता है। उन्हें एक–दूसरे में अत्यधिक भरोसा

रखने की जरूरत है, जिसका तात्पर्य बीमा के अनुबंध के लिए दोनों पक्षों द्वारा सभी भौतिक तथ्यों के पूर्ण और सही प्रकटीकरण से है।

शब्द ''भौतिक तथ्य'' प्रत्येक तथ्य या जानकारी को संदर्भित करता है, जिससें शामिल जोखिम की गंभीरता और प्रीमियम की मात्रा के निर्धारण के संबंध में निर्णयों पर असर पड़ता है। भौतिक तथ्यों का खुलासा पॉलिसी के कवरेज की शर्तो को निर्धारित करता है। भौतिक तथ्यों को छिपाने से बीमा कंपनी के सामान्य व्यवसाय के कामकाज पर नकारात्मक असर पड सकता है। किसी भी तथ्य का खुलासा बीमाधारक के हिस्से पर अनजान हो सकता है। यहां तक कि इस तरह के एक अनुबंध बीमाकर्ता के विकल्प पर शुन्य हो जाता है और यह किसी भी मुआवजे से इन्कार कर सकता है।

भौतिक तथ्यों को छिपाना जानबूझकर माना जाता है। इस मामले में नीति को शून्य माना जाता है। जानबूझकर गैर–प्रकटीकरण धोखाधड़ी के बराबर है। उदाहरण के लिए, जीवन बीमा में प्रकटीकरण उम्र, आय, स्वास्थ्य, निवास, पारिवारिक विवरण, व्यवसाय और बीमा की योजना से संबंधित है। इसी तरह, संपत्ति या सामान्य बीमा के मामले में, भौतिक तथ्य संपत्ति (कार) के विवरण, जैसे कि बनाने, उपयोग, मॉडल, बैठने की क्षमता आदि के विवरण से संबंधित हैं, खासकर समुद्री बीमा के मामले में, बीमा कंपनी हमेशा शारीरिक रूप से बंदरगाह पर जहाज का निरीक्षण करने की स्थिति में रहें और यह बीमाधारक द्वारा प्रदान किए गए तथ्यों पर निर्भर करता है। इसलिए बीमाधारकों के स्वेच्छा से सभी तथ्यों का खुलासा करना अनिवार्य है। हालांकि, कुछ तथ्यों को प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है :

- कोई ऐसी बात जो किसी वारण्टी के कारण बताना आवश्यक हो।
- ऐसी बाते जो बीमादार का पहले से मालूम हों जैसे विधान सम्बन्धि बाते।
- वह तथ्य जिन्हें बीमादार को स्वतः जानना चाहिए
- ऐसे तथ्य या बाते जिन्हें बीमादार को स्वतः जानना चाहिए
- वे तथ्य जो सार्वजनिक जानकारी के स्वभाव के हो।
- ऐसी जानकारी या तथ्य जो जोखिम को कम करने में सहायक हों।
- सबसे अच्छे विश्वास के कर्तव्य का उल्लघन निम्न में से एक या दोनों के तहत उत्पन्न होता है:

ए) गलतफहमी जो झूठी तथ्यों, जोखिम की स्वीकृति या मूल्यांकन के संदर्भ में निर्दोष या धोखाधड़ी हो सकती है।

बी) गैर प्रकटीकरण जो कि निर्दोष या धोखाधडी हो सकता है, दूसरी पार्टी द्वारा टालने के लिए आधार प्रदान करता है जहां एक तथ्य पहली पार्टी के ज्ञान के भीतर है और दूसरी पार्टी को ज्ञात नहीं है।

2. बीमा योग्य हित के सिद्धान्त (The Principle of Insuranble Interest)

बीमा योग्य हित का अस्तित्व किसी भी बीमा अनुबंध का एक आवश्यक घटक है। यह बीमा का एक महत्वपूर्ण और मौलिक सिद्धान्त है। बीमा योग्य हित का मतलब है ''बीमा करने का अधिकार''। पॉलिसीधारक के पास संपत्ति में एक आर्थिक या

मौद्रिक रूचि होनी चाहिए। जिसका उसने बीमा किया है। बीमा का विषय कोई भी हो सकता है।

सम्पत्ति का प्रकार या कोई भी घटना जिसके परिणामस्वरूप कानूनी अधिकार का नुकसान हो सकता है या कानूनी देयता का निर्माण हो सकता है। इसलिए बीमा योग्य हित के अनिवार्य शामिल हैं:

सम्पत्ति जो बीमा का विषय होना चाहिए। बीमित व्यक्ति को बीमा के विषय के साथ संबंध में खड़ा होना चाहिए जिससे वह अपनी सुरक्षा, कल्याण या उत्तरदायित्व से स्वतंत्रता से लाभ उठाए और देयता के नुकसान, क्षति या अस्तित्व से पूर्वाग्रह होगा। बीमित व्यक्ति और बीमा के विषय वस्तु के बीच संबंध कानून में पहचाना जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, अग्नि नीति के तहत बीमा का विषय वस्तु एक बिल्डिंग, स्टॉक, मशीनरी, देयता नीति के तहत हो सकती है, यह चोट के लिए व्यक्ति की कानूनी देयता हो सकती है या क्षति, समुद्री नीति आदि में एक जहाज आदि। सम्पत्ति के लिए किसी भी नुकसान के परिणामस्वरूप पॉलिसीधारक को वित्तीय नुकसान होने चाहिए। केवल तभी बीमा योग्य हित मौजूद है। ऐसे कई तरीक हैं जिनमें बीमा योग्य हित होगा या सीमित होगा।

<u>ए) बी वाई आम कानून</u> :—

सामान्य कानून के तहत बीमा योग्य हित स्वचालित रूप से 'स्वामित्व' अधिकारों द्वारा बनाया जाता है। इसी प्रकार, 'देखभाल का कर्तव्य' का सामान्य कानून जो कि दूसरे के लिए बकाया है, वह देयता को जन्म दे सकता है जो बीमा भी है। उदहारण के लिए एक ट्रैक्टर का मालिक जो उसके कृषि संचालन के लिए उस पर निर्भर करता है, वह ट्रैक्टर दुर्घटनागस्त होने पर स्वामी को वित्तीय हानि होगी, क्योंकि उसका व्यवसाय/कृषि स्थिर हो जाएगा। इस प्रकार मालिक के पास संपत्ति में बीमा योग्य हित है, यानी, उसका ट्रैक्टर। इसलिए जब बीमा खरीदा जाता है तो ट्रैक्टर विषय वस्तु बनाता है।

इस पर।

<u>बी) बी वाई अनुबन्ध</u> :—

कभी—कभी बीमा योग्य दायित्वों द्वारा भी बीमा योग्य हित उत्पन्न होता है उदाहरण के लिए, मकान मालिक और किरायेदार के बीच एक पट्टा समझौता भवन के रखरखाव या मरम्मत के लिए जिम्मेदार किरायेदार बना सकता है। यह अनुबंध किरायेदार को इमारत के कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त रिश्तों में रखता है जो उसे बीमा योग्य हित देता है।

<u>सी) बी वाई कानून</u> :—

कभी—कभी संसद का कार्य लाभ प्रदान करके या कर्तव्य लगाकर बीमा योग्य हित पैदा कर सकता है। बीमा योग्य हित का उल्लेख नीचे उल्लिखित तीन मुख्य श्रेण्यिां हैं।

(अ) जीवन बीमा एवं बीमा योग्य हित

(ब) अग्नि बीमा एवं बीमा योग्य हित

(स) समुद्री बीमा एवं बीमा योग्य हित

जीवन बीमा में बीमा योग्य हित :—

जीवन बीमा प्रसंविदा कराते समय बीमा योग्य हित होना आवश्यक है। बीमित व्यक्ति की मृत्यु की दशा में बीमा की धनराशि मृत बीमित व्यक्ति को नहीं

मिल सकती, उसके उत्तराधिकारी को मिलेगी। बीमा योग्य हित किसी भी व्यक्ति के जीवन में पारिवारिक सम्बन्धों के कारण उत्पन्न होता है। जीवन बीमा के सम्बन्ध में बीमा योग्य हित निम्नलिखित परिस्थितियों में माना जाता है।

- पति–पत्नी का एक दूसरे के जीवन में बीमा योग्य हित। प्रत्येक व्यक्ति का अपने स्वयं के जीवन में बीमा योग्य हित होता है। पुत्र का पिता के जीवन में यदि पुत्र अपने पिता पर निर्भर है। पिता का अपने पुत्र के जीवन में बीमा योग्य हित यदि पिता पुत्र पर निर्भर हो। एक साझेदार द्वारा अन्य साझेदारों का बीमा कराने में उनके द्वारा लगायी गयी पूँजी की सीमा तक बीमा योग्य हित। किसी महाजन का अपने कर्जदार की जीवन में बीमा योग्य हित। एक कर्मचारी का अपने नियोजन के जीवन में बीमा हित है यदि उसकी नियुक्त निश्चित वेतन पर संविदा पर एक निश्चित समय के लिए की गयी है। जमानत देने वाले उस व्यक्ति के जीवन में बीमा योग्य हित जिसकी जमानत दी गयी हो, जमानत की राशि तक बीमा हित रहता है। अवैधानिक रूप से विवाहित स्त्री अपने पति पर निर्भर हो तो वह भी अपने पति के जीवन में बीमा योग्य हित रखती है।

अग्नि बीमा में बीमा योग्य हित :–

अग्नि बीमा प्रसंविदा कराते समय बीमा योग्य हित का होना अति आवश्यक है। यहां आवश्यक है कि अग्नि बीमा कराते समय एवं दुर्घटना/क्षति होते समय (दोनो समय) बीमा योग्य हित का होना आवश्यक है। दोनों समय बीमा योग्य हित होने की आवश्यकता से लोग एवं व्यवसायी बीमे के माध्यम से अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न नहीं कर सकते हैं। अग्नि बीमा में निम्न का बीमा योग्य हित माना जाता है;

- सम्पत्ति या माल के स्वामी का अपनी सम्पत्ति या माल पर। ऐजेन्ट का नियोक्ता की सम्पत्ति/माल पर। गिरवीकर्ता का गिरवी रखे माल पर। साझेदारों का फर्म की सम्पत्ति पर। गोदाम के स्वामी का गोदाम में रखे माल पर बीमा योग्य हित होता है। बीमा कम्पनी का पुनर्बीमा की गयी सम्पत्ति में बीमा योग्य हित होगा। एक सार्वजनिक वाहन के मालिक का वाहन में रखे गये माल में बिमा योग्य हित होता है। निक्षेप गृहीता का निक्षेप की गयी सम्पत्ति पर।

सामुद्रिक बीमा में बीमा योग्य हित :–

सामुद्रिक बीमा प्रसंविदा में क्षति होने के समय बीमा योग्य हित होना आवश्यक है। सामुद्रिक बीमा में प्रायः निम्न लोगों का हित होता है;

- माल के स्वामी का माल पर। जहाज के स्वामी का जहाज में। बन्धक गृहीता का बन्धक रखे माल पर। भाडे के अधिकारी का भाडे पर। निक्षेप गृहीता का निक्षेप पर रखे माल पर। पुनर्बीमा कराने वाली कम्पनी का बीमा किये गये माल पर। यात्रियों का अपने सामान में बीमा योग्य हित तथा जहाज के कप्तान व कर्मचारियों का अपने वेतन में बीमा योग्य हित।

जीवन बीमा में बीमा कराते समय बीमा योग्य हित होना आवश्यक है जबकि बीमे की राशि प्राप्त करते समय इसका होना आवश्यक नहीं है। अग्नि बीमा प्रसंविदा में बीमा कराते समय तथा क्षति होते समय, दोनों समय बीमा योग्य

हित होना आवश्यक है। समुद्री बीमा में जोखिम/क्षति घटित होते समय ही बीमा योग्य हित होना आवश्यक है।

3. क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त (The Principle of Indemnity)

'क्षतिपूर्ति' का शब्दकोश अर्थ 'क्षति या हानि या कानूनी जिम्मेदारी के खिलाफ सुरक्षा' है। क्षतिपूर्ति को एक तंत्र के रूप में संदर्भित किया जा सकता है जिसके द्वारा बीमाकर्ता बीमाधारक को उसी आर्थिक स्थिति में बीमा करने के प्रयास में वित्तीय मुआवजे प्रदान करते हैं। ''क्षतिपूर्ति'' शब्द का शाब्दिक अर्थ हानि की पूर्ति करना है। क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध केवल क्षतिपूर्ति के लिए है लाभ कमाने के लिए नहीं। इसको समझने के लिए दो बातों पर विचार करना आवश्यक है

यह सिद्धान्त नियम निर्धारित करता है कि बीमा कम्पनियां बीमा अनुबंध में सहमत सभी शर्तो की पूर्ति पर बीमित व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करने के लिए तैयार हैं। बीमाकर्ता जोखिम को कवर करने की देयता लेने के लिए प्रीमियम के रूप में एक छोटी राशि का शुल्क लेता है और बदले में बीमा के मूल्य का भुगतान करने का वादा करता है। पॉलिसी या नुकसान की मात्रा जो भी कम हो। क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त यह सुनिश्चित करता है कि बीमाकर्ता हानि की राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है और उससे अधिक नहीं। दूसरे शब्दों में इसका तात्पर्य है कि बीमित व्यक्ति को किसी नुकसान से किसी भी अनचाहे लाभ प्राप्त नहीं करना चाहिए। आमतौर पर क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त संपत्ति और देयता बीमा अनुबन्ध पर लागू होता है और यह वादा करता है कि बीमित व्यक्ति को उसी वित्तीय स्थिति में बहाल किया जाएगा जो नुकसान की घटना से पहले अस्तित्व में था।

जब भी बीमा कम्पनी बीमाकर्ता को पूर्ण मूल्य के लिए क्षतिपूर्ति करती है बीमा पॉलिसी (जब परिसंपत्ति पूरी तरह से क्षतिग्रस्त हो जाती है) बीमाकर्ता क्षतिग्रस्त परिसंपत्ति का कब्जा लने के लिए क्षतिग्रस्त संपत्ति का कब्जा लेता है।

क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त का महत्व

1. क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त इस अर्थ में हमत्वपूर्ण है कि यह सुनिश्चित करता है कि बीमित व्यक्ति को नुकसान से कोई अनुचित लाभ नहीं मिलता है।
2. क्षतिपूर्ति का सिंद्धान्त भी नैतिक खतरे को नियंत्रित करना है। यह संभव है कि बीमित व्यक्ति संदिग्ध और अनुचित साधनों के माध्यम से अधिकतम राशि सुरक्षित करने का प्रयास कर सकता है।

- मुआवजे की तलाश करने के लिए जानबूझकर संपत्ति को नुकसान पहुचाएं।
- नुकसान को अतिरंजित करने के लिए रिजॉर्ट।
- झूठे दावों।

इस तरह के दावे जब बीमित व्यक्ति पर अनुचित लाभ प्रदान करते हैं। बीमित व्यक्ति संपत्ति के मूल्य को बढ़ाने और लाभ लेने के लिए बीमा करने का प्रयास कर सकता है। यदि बीमाकर्ता द्वारा भुगतान किया जाने वाला मुआवजा नुकसान या उसके बाजार मूल्य तक ही सीमित है, तो यह बीमित व्यक्ति के लिए अनुचित लाभ के लिए इस एवेन्यू पर एक रोक लगाएगा। इस प्रकार क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त इस संभावना को खत्म करने में मदद करता है। गैर–जीवन बीमा में, व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा और कुछ प्रकार के स्वास्थ्य बीमा जैसे 'गम्भीर बीमारी',

'अस्पताल कैश' इत्यादि शामिल हैं, जहां सहमति राशि बिना दावों के दावों के रूप में भुगतान की जाती है पॉलिसीधारक द्वारा वास्तविक खर्च स्थापित करने के लिए। किसी व्यक्ति का जीवन किसी सामग्री या संपत्ति से अलग होता है। भौतिक संपत्ति का मूल्यांकन करने का सिद्धान्त जैसे कि प्रतिस्थापन लागत कम मूल्यह्रास और छूट वाले नकद प्रवाह किसी व्यक्ति के जीवन के मौद्रिक मूल्य को निर्धारित करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है। जीवन का मूल्य व्यापक रूप से कुछ गुणात्मक कारकों द्वारा निर्धारित किया जाता है और किसी की राय के अधीन होता है । यहां सबसे महत्वपूर्ण कारक व्यक्ति की कमाई क्षमता है और बीमा योग्य मूल्य व्यक्ति द्वारा उठाई गई नीति पालिसी का मूल्य है। जीवन बीमा पॉलिसी क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त के अधीन नहीं है बल्कि एक मूल्यवान नीति है जिसमें जीवन की हानि के मामले में लाभार्थी को पूर्ण राशि पर सहमति दी जाती है।

<u>क्षतिपूर्ति सिद्धान्त का प्रयोग</u> :–

क्षतिपूर्ति सिद्धान्त के सम्बन्ध में निम्नवत तथ्यों को समझा जा सकता है;

- क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त जीवन बीमा प्रसंविदा तथा व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा को छोडकर शेष सभी प्रकार के बीमा प्रसंविदा पर लागू होता है। क्षतिपूर्ति की राशि बीमित राशि से किसी भी दशा में अधिक नहीं हो सकती है। क्षतिपूर्ति प्राप्त कर लेने पर बीमादार के तीसरे पक्षकार के विरूद्ध अधिकार खत्म हो जाता है। बीमापत्र की वास्तविक हानि प्रमाणित करनी होती है।

<u>क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त</u>

क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध केवल क्षतिपूर्ति के लिए है लाभ कमाने के लिए नहीं। इसको समझने के लिए निम्नांकित दो बातों पर विचार करना आवश्यक है;

- <u>प्रीमियम का आधार</u> :– बीमा के प्रस्तावित विषय में क्षति की सम्भावित दर निकालने पर ही बीमा कम्पनियां प्रीमियम की दर तय करती हैं। इस प्रकार लाभ की कोई सम्भावना, बीमादाता के लिए नही रहती है।
- <u>दावे की मान्य रकम</u> :– जीवन बीमा के अतिरिक्त वास्तविक क्षति को ही दावे के रूप में मायन्यता है। जितनी वास्तविक क्षति हुई हो वह भी बिमित रकम के अन्दर अर्थात बीमा अनुबन्ध द्वारा बीमादार को भी कोई लाभ होने की गुंजाइश नहीं रहती है।

4. **प्रत्यासन का सिद्धान्त (The principle of Subrogation)**

प्रत्यासन जैसे कि नाम का सामान्य अर्थ है दूसरे का आसन ग्रहण करना। बीमा व्यवसाय में इस सिद्धान्त के अनुसार बीमादाता क्षतिपूर्ति करने के पश्चात बीमादार का स्थान ग्रहण कर लेता है। सरल शब्दों में यदि बीमित नुकसान के लिए बीमादार को तीसरे पक्ष से मुआवजा/हरजाना (Compensation) प्राप्त करने का अधिकार हो तो इस सिद्धान्त के आधार पर अब यह अधिकार बीमादाता को प्राप्त हो जाता है।

न्यायाधीश ब्लेकवर्न के अनुसार ''यदी बीमादार को अपनी ओर से पूर्ण भुगतान करने के पश्चात ऐसी कोई वस्तु या रकम प्राप्त होती है जिससे की क्षति की राशि कम हो सकती है तो समता के आधार पर जिस व्यक्ति/सस्था (बीमा

कम्पनी) ने पहले पूर्ण हानि का भुगतान किया है उसको अधिकार है कि वह क्षतिपूर्ति की अधिक भुगतान की गयी राशि पुनः प्राप्त कर सके''।

डब्ल्यू. ए. डिन्सडेल के शब्दों में– '' प्रत्यासन से आशय बीमा कम्पनी को बीमादार के तृतीय पक्ष के विरूद्ध समस्त हितों का प्राप्त होना, यदि बीमादार की संतोषप्रद रूप से पूर्ण क्षतिपूर्ति हो जाय।''

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण– माना कि आपने अपनी कार का बीमा करवाया और इस बीच एक दिन एक ट्रक ने गलत दिशा से आकर आपकी कार को टक्कर मारी जिसमें आपकी कार क्षतिग्रस्त हो गयी। कार की पूर्ण क्षतिपूर्ति का भुगतान आपको बीमा कम्पनी द्वारा कर दिया गया। इस परिस्थिति में उक्त सिद्धान्त के अनुसार आप तीसरे पक्षकार (ट्रक मालिक) से क्षतिपूर्ति का पैसा नहीं ले सकते क्योंकि बीमा कम्पनी द्वारा आपकी क्षतिपूर्ति करते ही यह (तीसरे पक्ष के विरूद्ध) अधिकार अब बीमा कम्पनी को प्राप्त हो गया। अब बीमा कम्पनी तीसरे पक्षकार पर मुकदमा कर सकती है।

श्री एक्स अपनी कार में कार्यालय जाने के रास्ते जा रहे थे जब इसे लॉरी द्वारा पीछे से मारा गया था, और लॉरी ड्राइवर नशे में था। यहां एक्स बीमा कम्पनी से मुआवजे का दावा कर सकता है। बीमाकर्ता बदले में लॉरी मालिक वाई पर मुकदमा कर सकता है।

<u>प्रत्यासन के सिद्धान्त का महात्व</u> :–

उपरोक्त सिद्धान्त निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कार्य करता हैः

1. यह बीमित व्यक्ति को क्षति से लाभ उठाने से रोकता है, यानी, उसी नुकसान के लिए दो बार मुआवजा प्राप्त करना।
2. यह कानून के नियम को लागू करता है कि दोषी कानून के मुताबिक नुकसान के लिए भुगतान किया जाता है।
3. यह बीमाकर्ता को हानि के लिए भुगतान की गई राशि को आंशिक रूप से या पूरी तरह से ठीक करने में मदद करता है।
4. यह बीमा दरों को कम करने में मदद करता है। संबंधित तीसरे पक्ष की प्रतिपूर्ति के साथ, बीमा कम्पनी के नुकसान को काफी हद तक घटाया जाता है, जिसका लाभ पॉलिसीधारक को प्रीमियम में कमी के जरिए दिया जाता है। जब भी बीमा कम्पनी बीमाधारक को पूर्ण मूल्य के लिए क्षतिपूर्ति करती है बीमाकर्ता की क्षतिपूर्ति पूर्ण रूप से क्षतिग्रस्त परिसंपत्ति का अधिग्रहण करने के लिए क्षतिग्रस्त परिसंपत्ति का कब्जा लेता है।

<u>प्रत्यासन सिद्धान्त की सीमाये :–</u>

1. यह सिद्धान्त जीवन बीमा पॉलिसियों पर लागू नहीं है, इसलिए बीमाकर्ता को मृत्यु के लिए जिम्मेदार तीसरे पक्ष के खिलाफ कार्रवाई का कोई अधिकार नहीं है।
2. अधीनता का उपयोग नहीं किया जा सकता है जहां आश्वासनकर्ता क्षतिग्रस्त पार्टी के खिलाफ कार्रवाई करने की स्थिति में नहीं है।

<u>प्रत्यासन सिद्धान्त की विशेषतायें</u> :– प्रत्यासन सिद्धान्त की निम्नलिखित महत्वपूर्ण विशेषतायें है;

- <u>क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त का सहायक सिद्धान्त</u> :– सम्पत्ति तथा माल में होने वाली वास्तविक क्षति की ही बीमा प्रसंविदा की सीमा के अन्दर क्षति पूर्ति

की जाती है। जबकि प्रत्यासन का सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि यदि क्षतिग्रस्त सम्पत्ति का कोई मूल्य बचा है या किसी तीसरे पक्षकार के विरूद्ध कोई अधिकार उत्पन्न हुआ है तो बीमाकर्ता बची हुई सम्पत्ति तथा तीसरे पक्षकार के विरूद्ध उत्पन्न अधिकार का प्रत्यासन कर सकता है।

- <u>भुगतान की राशि तक ही प्रत्यासन</u> :– क्षतिपूर्ति के बाद बीमाकर्ता क्षतिग्रस्त सम्पत्ति के सभी अधिकारों, दावों, एवं प्रतिभूतियों का प्रत्यासन कर सकता है परन्तु वह केवल भुगतान की गयी क्षतिपूर्ति की रकम तक ही लाभ प्राप्त कर सकता है इससे अधिक राशि का नही। बीमाकर्ता यदि दोषी तीसरे पक्षकार से यदि क्षतिपूर्ति की राशि से अधिक राशि वसूल करता है तो इस अधिक्य को बीमित को सोंपना पडेगा लेकिन बीमाकर्ता बीमित से वह सब खर्चे वसूलने का अधिकार रखता है जो उसने तीसरे पक्षकार से इस आधिक्य वसूली में खर्चे किये हों।
- <u>व्यक्तिगत बीमा</u> :– व्यक्तिगत बीमा पर क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त लागू नहीं होता है इसलिए यह सिद्धान्त भी व्यक्तिगत बीमा को अपनी सीमा से बाहर रखता है। अर्थात बीमाकर्ताओं को तीसरे पक्षकार के विरूद्ध क्षतियों के संदर्भ में कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है।
- <u>प्रत्यासन प्रतिस्थापन है</u> :– जैसा कि पहले भी वर्णन किया जा चुका है कि सम्पत्ति की क्षति (वास्तविक) का भुगतान करने के पश्चात बीमाकर्ता बीमित विषय वस्तु/सम्पत्ति के प्रति सभी अधिकारों का अधिकारी बन जाता है। वह अन्य व्यक्तियों के स्थान पर प्रतिस्थापित हो जाता है।

5. **अभिदाय का सिद्धान्त (The Principle of Contribution)**

सभी बीमाकताओं द्वारा बीमित व्यक्ति को प्रदान किए गए कुल मुआवजे या क्षतिपूर्ति की राशि हानि की मात्रा से अधिक नहीं होनी चाहिए। कभी–कभी जब संम्पत्ति का मूल्य बहुत अधिक होता है तो इसमें शामिल जोखिम की मात्रा अधिक होती है और कम्पनी द्वारा बीमा किए जाने पर वह विशेष सम्पत्ति कुल जोखिम का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनती है। यह बदले में बीमा कंपनी के जोखिम को बढाता है। आमतौर पर बीमा कम्पनियां विविधीकरण लाभों के लिए कम मूल्य की नीतियों की एक बड़ी संख्या पर ध्यान केन्द्रीत करने का प्रयास करती हैं। विविधीकरण बीमा कंपनी के समग्र जोखिम स्तर को कम करने में कार्य करता है। उच्च मूल्य सम्पत्ति बीमा कम्पनियों से उत्पन्न होने वाले व्यापार से बचने के बजाय आंशिक रूप से उच्च मूल्य सम्पत्तियों को अडरराइट करने का अभ्यास। इस प्रकार एक एकल बीमाकर्ता संपत्ति के कुल मूल्य का एक हिस्सा लेता है और सम्पत्ति दो या दो से अधिक बीमा कंपनियों के समूह द्वारा बीमा की जाती है। इस तरह के अनुबन्धों से संबंधित दावों के निपटारे के मामले में विशेष रूप से इस अभ्यास में और प्रभाव पड़ते हैं। सवाल यह है कि प्रत्येक बीमाकर्ता द्वारा कितना मुआवजा पैदा किया जाना है। ऐसी जटिलताओं को हल करने के लिए योगदान का सिद्धान्त लागू किया गया है। बीमाधारक के पास किसी भी बीमाकर्ता से प्राथमिकता के आधार पर पुनर्प्राप्त करने का विकल्प होता है। पहले बीमाकर्ता से हानि के हिस्से को पुनर्प्राप्त करने के बाद बीमित व्यक्ति योगदान के अनुसार अन्य बीमा कम्पनियों से सम्पर्क कर सकता है। यदि एक बीमाकर्ता बीमित व्यक्ति को

बीमाकृत क्षतिपूर्ति करता है तो संबंधित बीमा कंपनी अन्य कंपनियों से मुआवजे के हिस्से का दावा कर सकती है।

अंशदान या अभिदाम की समस्या प्रमुख रूप से उस समय उत्पन्न होती है जब किसी सम्पत्ति का दोहरा बीमा या पुनर्बीमा कराया गया हो। यह सिद्धान्त भी क्षतिपूर्ति बीमा पालिसियों में ही लागू होता है अर्थात जीवन बीमा में यह सिद्धान्त लागू नही होता है। इस सिद्धान्त का आशय यह है कि यदि किसी व्यक्ति या सस्था ने अपनी सम्पत्ति यदि एक से अधिक बीमादाताओं से बीमित करायी है और उस सम्पत्ति को क्षति पहुचाती है तो क्षतिपूर्ति का दायित्व उन सभी बीमाकर्ताओं पर उनके द्वारा जारी किये गये बीमापत्रों की धनराशि के अनुपात में होना चाहिए।

$$\text{अंशदान} = \frac{\text{विशिष्ट बीमाकर्ता द्वारा बीमित राशि}}{\text{कुल बीमा राशि}} \times \text{हानि की राशि}$$

उदाहरण द्वार स्पष्टीकरण – मदन ने अपनी सम्पत्ति का अग्निबीमा अ, ब, स तीन कम्पनियों से क्रमशः 40,000, 60,000 80,000 रुपये में करवाया। मदन को इस बीमा अवधि में कुल 1,00,000 की क्षति हुई, इस स्थिति में अंशदान के सिद्धान्त के अनुसार तीनों कम्पनियां क्रमशः भुगतान करेंगी

अ कम्पनी का दायित्व – $\frac{40000}{180000} \times 100000 = 22{,}222$ रूपये

ब कम्पनी का दायित्व – $\frac{60000}{180000} \times 100000 = 33{,}333$ रूपये

स कम्पनी का दायित्व – $\frac{80000}{180000} \times 100000 = 44{,}445$ रूपये

अभिदाम सिद्धान्त का प्रयोग – इस सिद्धान्त के लागू होने के लिए निम्नांकित शर्ते पूर्ण होनी चाहिए।

- बीमा कराने वाला व्यक्ति एक ही होना चाहिए।
- सभी बीमापत्रों की समयावधि एक होनी चाहिए।
- हानि घटने तक सभी बीमा पालिसियॉ चालू हालत में होना चाहिए।
- सभी बीमा पत्रों में बीमाधारक का समान रूप से बीमा योग्य हित हो।
- सभी बीमापत्रों की विषय सामाग्री एक तरह की होनी चाहिए।

6. **आसन्न कारण का सिद्धान्त (The Principle of Proximate cause)**

आसन्न कारण से आशय ऐसे प्रभावपूर्ण एवं कार्यशील कारण से है जो उन घटनाओं को गति देता है जो बिना हस्तक्षेप के दक्षतापूर्ण कार्य करते हुऐ परिणाम उत्पन्न करता है। मूल रूप से यह सिद्धान्त इस तथ्य पर केन्द्रित है कि किसी क्षति के घटित होने में निकटतम कारण तथा दूरस्थ कारण हो सकते हैं लेकिन बीमाकर्ता के दायित्व के निर्धारण में क्षति के निकटतम कारणों पर ध्यान दिया जाना चाहिए न कि दूरस्थ कारणों पर।

यह नवीनतम नहीं है, लेकिन प्रत्यक्ष, प्रभावशाली, ऑपरेटिव और कुशल कारण है जिसे निकटतम माना जाना चाहिए।

जब बीमा पॉलिसी खरीदी जाती है तो इसे कुछ जोखिम के संबंध में जारी किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप पॉलिसीधारक को नुकसान हो सकता है।

कोई नीति सभी प्रकार के जोखिमों को कवर नहीं करती है। बीमा कंपनी केवल बीमाकृत खतरों के खिलाफ क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी है।

''निकटतम कारण'' शब्द का शाब्दिक अर्थ निकटतम कारण या प्रत्यक्ष कारण है। बीमा प्रवृत्ति में यह दुर्घटना के तत्काल कारण से संबंधित है, जिसके परिणामस्वरूप नुकसान हुआ।

सामान्य बीमा में वाहन बीमा, संपत्ति बीमा, अग्नि बीमा, चोरी बीमा आदि पर कई नीतियां होती है। प्रत्येक पॉलिसी में उल्लिखित जोखिमों से सुरक्षा प्रदान करती है। अगर किसी व्यक्ति ने अपने घर के लिए अग्नि बीमा खरीदा है तो सुरक्षा आग से होने वाली हानि से होगी, जो पॉलिसी में उल्लिखित स्त्रोतों से हो सकती है। यदि पॉलिसी में उल्लिखित के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्रोत से आग लगती है तो बीमाकर्ता बीमित व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी नहीं है।

अनुबंध में प्रवेश के समय निकटतम कारण से संबंधित सभी विवरणों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए। कभी–कभी पॉलिसी द्वारा कवर न किए गए कारणों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए और हालांकि उन कारणों की पूरी श्रृंखला का उल्लेख करना असंभव है, जिन्हें आमतौर पर टालना है, उन्हें आम तौर पर निहितार्थ माना जाता है। निकटतम कारण का निर्धारण जहां दुर्घटना एक ही घटना के रूप में होती है, निकटतम कारण का निर्धारण सरल है और उस विशेष घटना को नुकसान के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। यदि नुकसान एक घटना के साथ उत्तराधिकार में घटनाओं की एक श्रृंखला के रूप में होता है, तो नुकसान के सटीक कारण को निर्धारित करना मुश्किल हो सकता है। ऐसी स्थिति में पार्टियों को सावधानीपूर्वक जांच और नुकसान के सही कारण का पता लगाना होगा, जिस सीमा तक निकटता के कारण नुकसान हुआ है और इसके आधार पर मुआवजे की राशि का भुगतान किया गया है। ऐसा हो सकता है कि वास्तविक संकट, जो बदले में नुकसान का कारण बनता है, एक और संकट के कारण होता है।

7. क्षति के अल्पीकरण का सिद्धान्त (**Principle of mitigation of Loss**)

यह सिद्धान्त अग्नि बीमा तथा समुद्री बीमा पर लागू होता है क्योकि यह बीमा प्रसंविदा क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त पर कार्य करते है। इस (क्षति के अल्पीकरण) सिद्धान्त का सार है कि बीमित व्यक्ति विषय वस्तु का बीमा कराने के पश्चात उसको लापरवाही के साथ व्यवहार नहीं करेगा। दूसरे शब्दों में बीमित व्यक्ति द्वारा विषय वस्तु का बीमा कराने के पश्चात वह विषय वस्तु की सुरक्षा के लिए हर क्षण, हर पल जागरूक रहे तथा घटना घटित होने की दशा में सारे सुरक्षा उपाय अपनाये जैसे उस व्यक्ति द्वारा उस विषय वस्तु का बीमा नही कराये जाने पर किया जाता। अर्थात बीमा कराने वाला व्यक्ति बीमित सम्पत्ति एवं माल की हानि को कम से कम करने हेतु हर सम्भव प्रयास करेगा।

8. आश्वासनों का सिद्धान्त (**Principle of Warranties**)

बीमा प्रसंविदा के दौरान सभी शर्तो और प्रतिज्ञाओं का बीमित व्यक्ति द्वारा पालन किया जाना चाहिए, इस पर इस बात का कोई फर्क नही पडता है कि वह शर्त या प्रतिज्ञा जोखिम के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है या नहीं है। आश्वासन बीमा प्रसंविदा का एक अभिन्न अंग है जिसका पालन बीमित व्यक्ति द्वारा आवश्यक रूप

से किया जाना चाहिए। यह प्रसंविदा तभी जारी रहता है जब आश्वासन पूरे किये जा रहे हों।

भारतीय समुद्री बीमा अधिनियम 1963 की धारा 35 (1) के अनुसार ''वारन्टी या आश्वासन एक प्रतिज्ञाकृत आश्वासन है। जिसके अन्तर्गत यह कहा जाता है कि वारन्टी बीमादार द्वारा दिया गया एक ऐसा वचन है जिसमें कि वह किसी कार्य को करने या न करने या कोई पूरी करने की जवाबदारी लेता है या वह किसी तथ्य की विद्यमानता या अविद्यमानता पर किसी वचन की पूर्ति के लिए बद्ध होता है।''

11.4 सामान्य बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण (Natianalization of General Insurance Business)

नई दिल्ली में हेड ऑफिस के साथ कंपनी, कलकत्ता में हेड ऑफिस के साथ नेशनल इंश्योरेंस कंपनी और बॉम्बे में हेड ऑफिस के साथ न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी। भारतीय बीमा कंपनियों और विदेशी बीमा कम्पनियों दोनों के सभी शेयरों का स्वामित्व 11.19.73 से केन्द्र सरकार में निहित है। निजी क्षेत्र के सभी कर्मियों की सेवाओं को योग्यता, वरिष्ठता, स्थिति और स्थान जैसे कारकों के आधार पर होल्डिंग कंपनी और सहायक कंपनियों को भी स्थानांतरित कर दिया गया।

1967 में सामान्य बीमे के राष्ट्रीयकरण की मॉग उठाई गयी।

इस बीमा व्यवसाय में संलग्न भारतीय कम्पनियों के पास कुल उपलब्ध निधि का लगभग 60 करोड़ रूपया ही था जिसमें से 10 करोड़ रूपये सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोजित थी। इसलिए इस समय इस व्यवसाय का राष्ट्रीकरण समझदारी पूर्ण निर्णय नहीं था। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुऐ सरकार ने सामान्य बीमा व्यवसाय पर नियंत्रण रखने के लिए भारतीय बीमा अधिनियम, 1938 में कुछ संशोधन कर बीमा नियंत्रक के अधिकारों में व्यापक रूप से वृद्धि की जिससे सरकार द्वारा इस बीमा व्यवसाय के सामाजिक एवं आर्थिक नियंत्रण की व्यवस्था की गयी। समाजवादी विचारक इतने से खुश नहीं थे। इस बीच 1969 में सरकार ने 14 बैंकों (व्यापारिक बडे बैकों) का राष्ट्रीकरण कर दिया। फलस्वरूप तत्कालीन सरकार के समझ निम्नांकित कारणों से सामान्य बीमा व्यवसाय के राष्ट्रीयकरण के लिए फिर जोर शोर से माग उठने लगी।

- सामान्य बीमा व्यवसाय में देश में कार्यरत अधिकांश देशी तथा विदेशी कम्पनियॉ आम जनता के हित की बजाय अपने स्वार्थ के लिए काम कर रही थी।
- सामान्य बीमा व्यवसाय में कार्य कर रही विदेशी कम्पनियां भारत से बडी रकम कमाकर विदेशों में भेज रही थी। अर्थात देश की आय विदेशों में जाना न्यायोचित नहीं था।

इन दबाबों को ध्यान में रखते हुऐ तथा देश में समाजवादी समाज व्यवस्था को वास्तविक रूप देने की दिशा में जीवन बीमा व्यवसाय के राष्ट्रीयकरण के लगभग 15 वर्षो के पश्चात, 31 मई 1971, को भारत के राष्ट्रपति ने सामान्य बीमे के राष्ट्रीयकरण के लिए अध्यादेश जारी किया। राष्ट्रपति के इस अध्यादेश के फलस्वरूप भारत में सामान्य बीमा व्यवसाय में संलग्न सभी 112 (67 देशी तथा 45

विदेशी) कम्पनियों का स्वामित्व एवं नियंत्रण सरकार के हाथ में आ गया। 17 जून 1971 को इस अध्यादेश को अधिनियम के रूप में परिणित किया गया। इसके बाद राष्ट्रीयकरण की सभी औपचारिकताये पूर्ण करने के पश्चात संसद ने 20 सितम्बर 1972 को सामान्य बीमा व्यवसाय (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1972 पारित किया और 1, जनवरी, 1973 से यह अधिनियम पूर्ण देश में लागू हो गया।

11.5 अधिनियम के उद्देश्य (Objectives of Act)

अधिनियम का उद्देश्य मुख्य रूप से था,

- मौजूदा सामान्य बीमा कंपनियों के शेयरों के अधिग्रहण करना।
- सामान्य बीमा कारोबार के विकास से अर्थव्यवस्था की जरूरतों को पूरा करना।
- सामान्य बीमा कारोबार के आचरण में मानकों की स्थापना के मामले में कंपनियों की सहायता, सहायता और सलाह देना।
- जहां तक संभव हो कंपनियों के बीच स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करने के लिए।
- यह सुनिश्चित करने के लए कि आर्थिक प्रणाली के संचालन के परिणामस्वरूप आम नुकसान के लिए धन की एकाग्रता न हो।
- यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई भी व्यक्ति बीमाकर्ता के साथ भारत में किसी भी संपत्ति के संबंध में बीमा नहीं लगा जिसका मुख्य पंजीकृत कार्यालय भारत के बाहर है।
- सामान्य बीमा व्यवसाय के किसी भी हिस्से को जारी रखने के लिए यदि ऐसा लगता है कि ऐसा करना वांछनीय है।
- कंपनियों को अपने अनुभव और धन के निवेश को नियंत्रित करने के मामले में सलाह देना।

11.6 सामान्य बीमा निगम का मिशन (Mission of General Insurance Corporation)

- ग्रामीण आबादी को आवश्यकता आधारित और कम लागत वाले सामान्य बीमा कवर प्रदान करना।
- किसानों के लाभ के लिए एक फसल बीमा योजना का प्रशासन करना।
- सामाजिक सुरक्षा लाभ के साथ कवर विकसित करने और पेश कर प्रतिस्पर्धा करने के लिए।
- देश भर में एक विपणन नेटवर्क विकसित करने के लिए। कम प्रीमियम क्षमता वाले क्षेत्रों सहित लागत विचारों के बावजूत संतुलित क्षेत्रीय विकास को बढ़ावा देना।
- जनता के लिए बीमा के लाभ उपलब्ध कराने के लिए।

11.7 बीमा विनियमन प्राधिकरण (आईआरए)

बीमा अधिनियम, 1938 ने बीमा कंपनियों द्वारा अधिनियम के तहत विभिनन प्रावधानों के अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए बीमा नियंत्रक की नियुक्ति की सिफारिश की। नियंत्रक विभिन्न सिद्धांतों और सामान्य बीमा योजनाओं के अभ्यास

और प्रीमियम की पर्याप्तता के नियमों और शर्तो को मंजूरी देता है। प्राधिकरण समय–समय पर निवेश, वार्षिक खातों और आवधिक वास्तविक मूल्यांकन पर वापसी की जांच भी करता है।

आईआरए में सात सदस्य हैं जिनमें से एक अध्यक्ष है और जीवन और सामान्य बीमा व्यवसाय का प्रतिनिधित्व करने वाले दो सदस्य पूर्णकालिक आधार पर नियुक्त किए जाते हैं। पूरे समय के सदस्यों को 5 साल या 62 वर्ष की उम्र तक (अध्यक्ष के लिए 65 वर्ष) तक जो भी पहले हो, पद धारण करेगा। अंशकालिक सदस्यों को 5 साल से अधिक समय तक कार्यालय नहीं दिया जाता है।

<u>प्राधिकरण की संरचना</u> :–

प्राधिकरण में निम्नलिखित सदस्य शामिल होंगे, अर्थात्:–

(ए) एक अध्यक्ष;

(बी) पांच से अधिक पूर्णकालिक सदस्यों नहीं;

(सी) चार अंशकालिक सदस्यों से अधिक नहीं;

केन्द्र सरकार द्वारा क्षमता, अखंडता और दक्षता के आधार पर नियुक्त किया जाना चाहिए जिनके पास जीवन बीमा, सामान्य बीमा, वास्तविक विज्ञान, वित्त, अर्थशास्त्र, कानून, एकाउंटेंसी, प्रशासन या किसी अन्य अनुशासन में ज्ञान या अनुभव है, जो केन्द्र सरकार के राय में प्राधिकरण के लिए उपयोगी हो।

आईआरए के महत्वपूर्ण कर्तव्यों में निम्नलिखित शामिल हैं–

- बीमा कारोबार के व्यवस्थित विकास को विनियमित, बढ़ावा देने और सुनिश्चित करने के लिए।
- प्राधिकरण की सभी शक्तियों और कार्यो का प्रयोग करने के लिए।
- दावों और अन्य नियमों और शर्तो के निपटारे के संबंध में पॉलिसीधारक के हितों की रक्षा के लिए।
- बीमा संगठन से जुडे पेशेवर निकायों को बढ़ावा देने और विनियमित करने के लिए।
- बीमा कारोबार से जुड़े कंपयिों, मध्यस्थों और अन्य संगठनों के निरीक्षण, जांच और लेखा परीक्षा के लिए।
- बीमा अधिनियम की धारा 64 (यू) के तहत गैर–टैरिफ सामान्य बीमा पॉलिसी की दरों को नियमित और नियंत्रित करने के लिए।
- बीमाकर्ताओं द्वारा खातों के रखरखाव और जमा करने के प्रारूप को निर्धाारित करने के लिए।
- धन के निवेश को विनियमित करने के लिए।
- साल्वेंसी के मार्जिन को नियंत्रित करने के लिए।
- बीमाकर्ता और मध्यस्थों के बीच विवादों का निर्णय लेने के लिए।

11.8 बीमा विनियमन और विकास प्राधिकरण (आईआरडीए)

रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के पूर्व गवर्नर श्री आर एन मल्होत्रा की अध्यक्षता में बीमा क्षेत्र के सुधारो पर समिति ने वैश्विक रूझानों के अनुरूप एक और अधिक कुशल और प्रतिस्पर्धी वित्तीय प्रणाली के निर्माण की सिफारिश की। इसने आर्थिक

क्षेत्र को समायोजित करने के लिए बीमा क्षेत्र को नियंत्रित करने के लिए संशोधन की सिफारिश की। समिति की सिफारिश के अनुपालन में सरकार ने बीमा अधिनियम, 1938 के तहत गठित बीमा नियंत्रक नामक पूर्व प्राधिकरण को बदलने के लिए 1996 में अनंतिम बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण स्थापित करने का निर्णय लिया, जो शुरू में वाणिज्य मंत्रालय के अधीन काम करता था और बाद में वित्त मंत्रालय में स्थानांतरित कर दिया। अंत में, बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण स्थापित करने का निर्णय बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण अधिनियम, 1999 के सदन की मंजूरी प्राप्त करके लागू किया गया था। भारत में, वर्तमान में बीमा क्षेत्र के उद्घाटन के बाद बीमा कम्पनियों के संचालन की निगरानी के लिए नियामक आईआरडीए है, जिसका हैदराबाद में हेड ऑसि है। विनियामक ढांचा मुख्य रूप से तीन क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करना है, जैसे–

- उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा। बीमा उद्योग की वित्तीय सुदृढ़ता सुनिश्ति करने के लिए।
- बीमा बाजार के स्वस्थ विकास में मदद करने के लिए,
- बीमा बाजार के स्वस्थ विकास में मदद करने के लिए मार्ग प्रशस्त करने के लिए जहां सरकार और निजी खिलाड़ी दोनों एक साथ खेलते हैं।

प्राधिकरण के कुछ महत्वपूर्ण कर्तव्यों, शक्तियों और कार्यो में शामिल है

- पंजीकरण के प्रमाण पत्र जारी करने के लिए, बीमा कारोबार में रूचि रखने वाले आवेदकों के लिए, और इस तरह के पंजीकरण को नवीनीकृत, संशोधित, निकालना, या रद्द करना, मध्यस्थों और एजेंटों के लिए आवश्यक योग्यता और व्यावहारिक प्रशिक्षण निर्दिष्ट करना।
- सर्वेक्षणकर्ताओं और हानि निर्धारकों के लिए आचरण संहिता निर्दिष्ट करें
- सामान्य बीमा कारोबार के संबंध में बीमाकर्ताओं द्वारा प्रदान की जाने वाली दरों, नियमों और शर्तो को नियंत्रित और विनियमित करना।
- बीमा कंपनियों द्वारा धन के निवेश को विनियमित करना।
- साल्वेंसी के मार्जिन के रखरखाव को नियंत्रित करना।
- बीमाकर्ताओं और बीमा मध्यस्था के बीच विवादों को निपटाना।
- टैरिफ सलाहकार समिति के कामकाज का पर्यवेक्षण करना।
- ग्रामीण या सामाजिक क्षेत्र में बीमाकर्ता द्वारा किए जाने वाले जीवन और सामान्य बीमा व्यवसाय का प्रतिशत निर्दिष्ट करें।

आईआरडीए ''बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण कोष'' कहने के लिए एक फंड का गठन करेगा और वहां जमा किया जाएगा–

(ए) प्राधिकरण द्वारा प्राप्त सभी सरकारी अनुदान और शुल्क;

(बी) प्राधिकरण द्वारा इस तरह के अन्य स्रोत से प्राप्त सभी रकम केंद्र सरकार द्वारा तय की जा सकती हैं;

(सी) बीमाकर्ता से प्राप्त निर्धारित आय का प्रतिशत।

<u>बैठक के लिए निधि लागू की जाएगी</u> :–

अधिकारियों और प्राधिकरण के अन्य कर्मचारियों के वेतन, भत्ते और अन्य पारिश्रमिक; अपने कार्यो के निर्वहन और इस अधिनियम के प्रयोजनों के संबंध में प्राधिकरण के अन्य खर्च।

बीमा सलाहकार समिति की स्थापना :–

बीमा सलाहकार समिति में वाणिज्य, उद्योग, परिवहन, कृषि, उपभोक्ता मंच, सर्वेक्षक, एजेंट, मध्यस्थ, सुरक्षा और हानि रोकथाम, अनुसंधान निकायों और कर्मचारियों के संगठन में लगे संगठनों जैसे –

बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 64 ए के अनुसार, भारत का बीमा संघ स्थापित किया गया था, जिसमें भारत में व्यवसाय करने वाले सभी बीमाकर्ता शामिल थे और धारा 64 सी के प्रावधनों के अनुसार, अधिनियम ने स्वतंत्र जीवन बीमा परिषद और सामान्य बीमा परिषद की स्थापना की सिफारिश की थी अब, बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण अब निम्नलिखित अस्तित्व में लाता है:

1. जीवन बीमा परिषद
2. सामान्य बीमा परिषद

1. **जीवन बीमा परिषद –संरचना** :

लाइफ इंश्योरेंस काउंसिल में 21 सदस्यों की कार्यकारी समिति होगी, जिनमें से 2 आईआरडीए से होंगे और शेष लाइसेंस प्राप्त जीवन बीमा कंपनियों से होंगे। समिति कुशल ग्राहक सेवा के लिए आचरण और प्रथाओं के मानकों की स्थापना करेगी, बीमा कंपनियों के खर्चो को नियंत्रित करने के लिए आईआरडीए को सलाह देगी और एक मंच के रूप में कार्य करें जो स्वस्थ बाजार आचरण को बनाए रखने में मदद करता है। यह एजेंट परीक्षा और प्रमाणन के लिए प्रक्रिया तैयार करेगा और प्रबंधित करेगा। जीवन बीमा परिषद को भारत में जीवन बीमा कंपनियों द्वारा वित्त पोषित किया जाता है।

उद्देश्य :–

लाइफ इंश्योरेंस काउंसिल भारत के जीवन बीमा उद्योग को एक जीवंत, भरोसेमंद और लाभप्रद सेवा में बदलने में एक महत्वपूर्ण और पूरक भूमिका निभाने की कोशिश करती है, जिससे भारत के लोगों को समृद्धि की यात्रा में मदद मिलती है।

इसका मिशन :–

- पॉलिसीधारकों को आचरण और सेवा के उच्च मानकों को बनाए रखने में बीमा कंपनियों की सहायता, सलाह और सहायता करने के लिए एक सक्रिय मंच के रूप में कार्य करने के लिए।
- खर्चो को नियंत्रित करने के मामले में पर्यवेक्षी प्राधिकरण को सलाह देना।
- नीतिगत मामलों पर सरकार और अन्य निकायों के साथ बातचीत करना।
- भारत में बीमा जागरूकता फैलाने में सक्रिय रूप से भाग लेना।
- बीमा में शिक्षा और अनुसंधान विकसित करने के लिए कदम उठाना।
- दुनिया में सर्वोत्तम प्रथाओं का लाभ भारत में लाने के लिए।

परिषद का मिशन :–

- मीडिया, मंचों और राय निर्माताओं माध्यम से उद्योग की सकारात्मक छवि के लिए प्रयास करें और उद्योग में उपभोक्ता विश्वास को बढ़ाएं।

- नैतिकता और शासन के उच्च मानकों को बनाए रखने में उद्योग की सहायता करें।
- जीवन बीमा की भूमिका और लाभ के बारे में जागरूकता को बढ़ावा देना।
- जीवन बीमा उद्योग द्वारा योगदान के लिए प्रासंगिक मामलों पर सरकार, सांसदों और नियामकों के साथ संरचित, नियमित और सक्रिय चर्चाएं आयोजित करें और उनके बीच एक प्रभावी संपर्क के रूप में कार्य करें।
- जीवन बीमा में परिचालन, आर्थिक, विधायी, नियामक और ग्राहक मुद्दों पर अनुसुंधान का संचालन, जीवन बीमा में मौजूदा विकास पर मोनोग्राफ प्रकाशित करें और इस क्षेत्र के विकास में योगदान दें।
- मृत्यु दर और मॉर्बिडिटी सूचना ब्यूरो (एमएमआईबी) स्थापित करें और सक्रिय करें।
- जीवन बीमा उद्योग के लाभ के लिए समान संगठन स्थापित करें।
- वित्तीय सेवा क्षेत्र के अन्य हिस्सों में संगठनों के साथ बातचीत के मंच के रूप में कार्य करें।
- बीमा शिक्षा, अनुसंधान, प्रशिक्षण, चर्चा मंचों और सम्मेलनों में अग्रणी भूमिका निभाएं।
- आवश्यक होने पर सदस्यों को सहायता और मार्गदर्शन प्रदान करें।
- भारतीय जीवन बीमा उद्योग औ वैश्विक बाजारों के बीच एक सक्रिय लिंक बनें।

<u>शिक्षा और जागरूकता :–</u>

- नियमित बीमा जागरूकता कार्यक्रम लॉन्च करें।
- मध्यस्थों के लिए निरंतर विकास कार्यक्रमों के संचालन की सुविधा प्रदान करें।
- उद्योग के बारे में जनता को संरचित नियमित जानकारी प्रदान करें।
- एक इंटरेक्टिव वेबसाइट/लाइफ इंश्योरेंस जर्नल/न्यूजलेटर लॉन्च करें।
- बीमा और संबंधित क्षेत्रों पर भारतीय/विजिटिंग विशेषज्ञों द्वारा प्रमुख सम्मेलनों, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं और व्याख्यान में आयोजन/भाग लेना।
- स्थानीय बीमा पेशेवरों के कौशल को विकसित और अपग्रेड करने के लिए ज्ञान–विनिमय कार्यक्रम (दोनों भारत और विदेशों में परिषदों के साथ) की सुविधा प्रदान करें।
- अनुसंधान, पेशेवर विकास पाठ्यक्रम इत्यादि को प्रोत्साहित करने के लिए भारत और विदेशों में शैक्षणिक संस्थानों के साथ समन्वय।
- भारतीय और अंतरराष्ट्रीय संस्थानों के संयोजन के साथ विकसित प्रमाणन कार्यक्रमों के माध्यम से वित्तीय विश्लेषकों और योजनाकारों के लिए बीमा बिक्री और सलाहकार के पेशे को बढ़ाएं।
- एक उपभोक्ता संबंध सेल स्थापित करें।

2. **सामान्य बीमा (जीआई) परिषद :**

उद्योग और जीआई परिषद के लिए दृष्टि

- भारत में एक टिकाऊ, लाभदायक और बढ़ती गैर–जीवन बीमा उद्योग की संरचना करना।
- एक उद्योग विश्वसनीय और समाज और अर्थव्यवस्था में योगदान के रूप में मान्यता प्राप्त है।
- एक समृद्ध उद्योग के लिए अनुकूल आर्थिक और सार्वजनिक नीति।
- एक निकाय (जीआई परिषद) सक्रिय नेतृत्व और अधिकारिक प्रदान करने के रूप में मान्यता प्राप्त है।
- भारत में गैर जीवन बीमा उद्योग के लिए सामूहिक आवाज।

<u>जीआई परिषद का मिशन</u> :–

उद्योग की सामूहिक ताकत और छवि पर असर डालने वाले मूद्दो पर नेतृत्व प्रदान करना अैर उद्योग को सामूहिक रूप से लाभ पहुंचाने के लिए, देश के भीतर सरकार, नियामक और अन्य सार्वजनिक प्राधिकरणों द्वारा किए गए निर्णयों को आकार देने और प्रभावित करने के लिए। यह एक सक्रिय, सामूहिक और गैर प्रतिस्पर्धी आधार पर हासिल किया जाएगाः

11.9 सामान्य बीमा के प्रकार (Types of General Insurance)

सामान्य बीमा प्रसंविदा में जीवन बीमा पालिसी के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के बीमा प्रसंविदा को शामिल किया जाता है। जीवन बीमा प्रसंविदा के विपरीत सामान्य बीमा प्रंसविदा का कार्यकाल आम तौर पर एक वर्ष का होता है या पूर्ण जीवन काल का नहीं होता है। अधिकांश सामान्य बीमा प्रसंविदा के उत्पाद वार्षिक अनुबन्ध होता है। यहां हम सामान्य बीमा के तीन मुख्य प्रकारों का वर्णन करेंगे। यह है;

(अ) अग्नि बीमा (ब) समुद्री बीमा (स) मोटर बीमा।

1. अग्नि बीमा (Fire Insurance)

अग्नि बीमा के अन्तर्गत अग्नि का एक विशेष अर्थ एवं महत्व है जैसा कि हम जानते है कि बीमा भविष्य के किसी सम्भावित जोखिम से निपटने या इसे कम करने का एक आर्थिक माध्यम है अतः अग्नि बीमा अनुबन्ध में बीमा कम्पनी के दायित्व को निर्धारित करने के लिए बीमादार को यह साबित करना पडता है कि बीमित विषय वस्तु/सम्पत्ति की हानि आग के कारण हुई है। यहां आग लगने का अर्थ है कि आग से ज्वाला निकलनी आवश्यक है तथा आग का आकस्मिक रूप से लगना भी आवश्यक है। अग्नि बीमा में आग से यदि लपटें नही निकलती है तो उसे अग्नि बीमा के अन्तर्गत आग लगना नहीं माना जायेगा। इसके साथ ही यदि लपटें निकल रही है तो यह अग्निकाण्ड आकस्मिक होना भी आवश्यक है अन्यथा बीमा कम्पनी क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं होगी।

भारतीय बीमा अधिनियम 1938 की धारा 2 के अनुसार, ''अग्नि बीमा, अन्य बीमा के अलावा ऐसी बीमा संविदा है जो कि अलग या अन्य ऐसे जोखिम से उत्पन्न हानि के विरूद्ध की जाती है जिसका उल्लेख अग्नि बीमा संविदा में है।''

प्रो0 के0 के0 गुप्ता के अनुसार, ''अग्नि बीमा बीमा कम्पनी और बीमा कराने वाले के बीच एक ठहराव है जिसके अनतर्गत बीमा कम्पनी समुचित

प्रीमियम के बदले बीमादार को आग से उत्पन्न होने वाली हानियों की क्षतिपूर्ति करने का उत्तरदायित्व स्वीकार करती है।''

अतः अग्नि बीमा बीमाकर्ता तथा बीमादार के बीच किया जाने वाला ऐसा प्रसंविदा है जिसमें बीमा कम्पनी बीमादार की बीमित विषय वस्तु को बीमा अवधि के दौरान अग्नि से होने वाली क्षति की पूर्ति का उत्तरदायित्व लेती है जिसके बदले में बीमादार द्वारा समुचित प्रीमियम का भुगतान किया जाता है।

अग्निबीमा और निकटता कारण का सिद्धान्त :–

बीमाकर्ता निकटता कारण सिद्धान्त के आधार पर निम्न परिस्थितियों में भी क्षतिपूर्ति हेतु दायी होगा;

- अग्नि से बचते समय सामान को उस जगह से हटाते समय हुई हानि। अग्निकाण्ड को शान्त करते समय फायर ब्रिगेड द्वारा फैकी जाने वाली पानी की तेज बौछार से उत्पन्न हानि। धनी बस्तियों में आग को फैलने से बचाने के उद्देश्य से आस पास के मकानों या इनके किसी भाग को गिराने पर। आग के कारण किसी मकान या दीवार के गिरने से हुई हानि। आस–पड़ोस के मकानों में ऊचे ताप या धुंऐ से हुई हानि।

अतः अग्नि बीमा प्रसंविदा में बीमाकर्ता को उन सभी जोखिमों के लिए उत्तदायी ठहराया जाता है जो बीमाकृत तथा निकटतम कारण सिद्धान्त के अन्तर्गत उत्पन्न होती हैं।

अग्निबीमा का क्षेत्र (Scope of Fire Insurance) :–

अग्नि बीमा कम्पनियां आग लगने के कारण बीमित विषयवस्तु को हुई क्षति की पूर्ति करने का दायित्व ग्रहण करती हैं इसलिए अग्निबीमा के अन्तर्गत महत्वपूर्ण प्रश्न इसके क्षेत्र का है। निम्नलिखित तीन प्रश्नों के उत्तर से इसका उत्तर मिलता है:

- आग लगाना किसे कहेगे? कौन सी क्षति अग्नि से हुई क्षति मानी जायेगी? कौन–कौन से जोखिम अग्निबीमा के अन्तर्गत शामिल नहीं किये जायेगे?

अग्निबीमा के क्षेत्र को समझने के लिए इसे दो भागों में समझा जा सकता है (अ) साधारण क्षेत्र (ब) विशेष क्षेत्र।

(अ) साधारण क्षेत्र :–

वर्तमान में अग्निबीमा का साधारण क्षेत्र ज्यादा महत्व नहीं रखता है क्योकि साधारण क्षेत्र के अन्तर्गत बहुत से जोखिम बीमा कवर में शामिल नहीं हो पाते हैं। अग्नि बीमा के साधारण क्षेत्र में शामिल होता है;

- विद्युत के कारण लगी आग। विस्फोट के कारण लगी आग से हानि। केवल घरेलू प्रयोग के लिए ली गयी गैस के विस्फोट से हानि। बिजली ताप से हुई विस्फोट से हानि इत्यादि। अग्निबीमा के साधारण क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नांकित हानियों को शामिल नहीं किया जाता है;
- दंगाया उपद्रव, भूकम्प, विस्फोट, तूफन, ऑधी, बाढ, स्वयं प्रज्ज्वलन, भूस्खलन, दुर्घटना के पश्चात तेल का रिसना। आतंकवाद, राजद्रोह, भूमिगत आग, दावानल, छिडकाव का रिसना।

(ब) अग्नि बीमा का विशेष क्षेत्र :–

इस विशेष क्षेत्र का व्यापक परिभाषा है जिसमें साधारण क्षेत्र की सभी हानियों को सम्मिलित करने के साथ–साथ उन कारणों को भी सम्मिलित किया जाता है जो साधारण क्षेत्र से बाहर रखी जाती हैं। अग्निबीमा के इस क्षेत्र के अन्तर्गत बीमा कम्पनी द्वारा अग्नि से उत्पन्न अप्रत्यक्ष हानियों का भी बीमा किया जाता है। ऐसी अप्रत्यक्ष हानियां अप्रसांगिक हानियां भी कहलाती हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि अग्निबीमा के साधारण क्षेत्र के अन्तर्गत कुछ प्रत्यक्ष जोखिमों का बीमा कवर किया जाता है जबकि इसके विशेष क्षेत्र के अन्तर्गत सभी प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष जोखिमों का बीमा कवर किया जाता है।

2. **सामुद्रिक बीमा (Marine Insurance)**

समुद्री बीमा अनुबन्ध क्षतिपूर्ति का एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके अनुसार बीमाकर्ता एक निश्चित प्रीमियम के बदले बीमित का पॉलिसी में स्पष्ट कारणों से हुई हानियों की पूर्व निश्चित ढंग से तथा एक निश्चित सीमा तक पूर्ति करने का दायित्व स्वीकारता है।

बीमा अधिनियम की धारा 18 के अनुसार, ''किसी भी प्रकार के जहाजों जिनमें माल, किराया तथा अन्य हित सम्मिलित होते है और जिनका वैधानिक रूप से बीमा कराया जा सकता है के बीमा अनुबन्ध करने को सामुद्रिक बीमा व्यवसाय के इस प्रकार में बीमाकर्ता एक निश्चित धनराशि बीमादार से प्राप्त करता है तथा इसके बदले में एक निश्चित रीति से एक निश्चित अधिकतम सीमा तक बीमित विषयवस्तु को प्रसंविदा में स्पष्ट कारणों से होने वाली हानि की पूर्ति करता है।

समुद्री बीमा अधिनियम 1963 की धारा 3 के अनुसार, ''समुद्री बीमा एक ऐसा बीमा प्रसंविदा है जिसके अन्तर्गत बीमादाता संविदा में वर्णित विधि एवं सीमा तक बीमादार की सामुद्रिक हानियों की पूर्ति का दायित्व ग्रहण करता है।''

प्रो0 आर्नोल्ड के अनुसार, ''समुद्री बीमा अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके द्वारा एक पक्षकार निश्चित प्रफिल के बदले दूसरे पक्षकार की उन विशिष्ट संकटों एवं सामुद्रिक जोखिमों से होने वाली हानि की क्षतिपूति का दायित्व लेता है जो एक निश्चित मात्रा अथवा निश्चित अवधि के भीतर सामुद्रिक उपक्रम में किसी व्यापारी जहाज तथा अन्य हितों की हो सकती हों।''

<u>समुद्री बीमा संविदा के आवश्यक तत्व</u> :–

समुद्री बीमा संविदा के आवश्यक तत्वों को दो भागों में आसानी से समझा जा सकता है;

(अ) भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 के आवश्यक तत्व।

(ब) समुद्री बीमा अधिनियम 1963 के आवश्यक तत्व।

<u>(अ) भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 के आवश्यक तत्व</u> :–

अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 10 के अनुसार किसी वैध अनुबन्ध में जो आवश्यक तत्व/लक्षण होने आवश्यक है वे सभी आवश्यक लक्षण समुद्री बीमा प्रसंविदा भी होना आवश्यक है जैसे प्रस्ताव स्वीकृति, स्वतंत्र सहमति, न्यायोचित प्रतिफल, अनुबन्ध करने की क्षमता, वैधानिक उद्देश्य आदि।

समुद्री बीमा अनुबन्ध में एक पक्षकार द्वारा प्रस्ताव रख दूसरे पक्षकार द्वारा इसकी स्वीकृति होनी आवश्यक है। इस प्रस्ताव की स्वीकृति पक्षकार द्वारा स्वतंत्र रूप से दी जाने चाहिए किसी के दबाव या किसी अन्य बाध्यता की बजह से

नहीं। अनुबन्ध करने के लिए न्यायोचित प्रतिफल दोनों पक्षकारों के लिए होना आवश्यक है। समुद्री बीमा अनुबन्ध कर रहे विभिन्न पक्षकार अनुबन्ध अधिनियम 1872 के अनुसार अनुबन्ध करने की क्षमता रखते हों तथा यह अनुबन्ध एक वैधानिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जा रहा हो।

(ब) समुद्री बीमा अधिनियम 1963 के विशेष तत्व :–

निम्न विशिष्ट आवश्यक तत्वों का समुद्री बीमा प्रसंविदा में उपस्थित होना आवश्यक है;

- बीमायोग्य हित। परम सदविश्वास। क्षतिपूर्ति सिद्धान्त। प्रत्यासन का सिद्धान्त। समाश्वासन का सिद्धान्त। आसन्न कारण का सिद्धान्त।

समुद्री बीमा का क्षेत्र (Scope of Marine Insurance) :–

समुद्री बीमा का क्षेत्र विस्तृत होने के कारण इसको समझने के उद्देश्य से दो प्रश्नों के उत्तर के रूप में आसानी होगी।

(अ) समुद्री बीमा की विषय वस्तु क्या है? (ब) समुद्री बीमा में किन जोखिमों को सम्मिलित किया जाता है से सम्बन्धित परिस्थितियों एवं अन्य बीमा कम्पनियों की प्रीमियम दरों पर विचार कर प्रीमियम की दर का निर्धारण करती है, तथा समय–समय पर अनुभव तथा आवश्यकतानुसार इसमें सुधार करती रहती है। समुद्री बीमा में प्रीमियम की दर का निर्धारण करने में निम्नांकित बिन्दुओं पर गहन विचार किया जाता है;

- माल सम्बन्ध विशेषतायें :– प्रीमीयम निर्धारण से पहले माल की प्रकृति, प्रकार, इसमें नयी गंध आदि का ध्यान देना पड़ता है इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि माल को निर्माण कैसे हुआ है। माल क्षयशील है या नहीं, माल में स्वाभाविक दुर्गुण है या नहीं, माल को उतारने व चढ़ाने में किसी विशेष सावधानी की आवश्यकता है या नहीं, आदि को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाता है।
- यात्रा की भौगोलिक दशायें :– समुद्री बीमा कम्पनियां जोखिमों का सम्भावित आकलन यात्रा की भौगोलिक दशाओं को आधार मानकार भी गणना करती हैं। कुछ जल मार्ग सामान्यतः सुरक्षित होते है परन्तु अन्य जलमार्ग सुरक्षित नहीं होते हैं ऐसे में सामान्य तथा असामान्य जलमार्गो द्वारा भी प्रीमियम निर्धारण पर प्रभाव पड़ता है। घना कुहरा, चट्टान, गरम जल धाराये, वर्फीले पहाड इत्यादी कुछ जल मार्गो में व्यवधान के साथ–साथ जोखिम बढ़ाने का कार्य करते है।
- जहाज सम्बन्धी विशेषताये :– जहाज समुद्री यात्रा का अभिन्न अंग होता है तथा प्रीमियम का निर्धारण जहाज की बनावट, सुरक्षा राष्ट्रीयता, टिकाउपन, माल रखने की क्षमता, व्यापारिक ख्याति के आधार पर भी किया जाता है।
- माल की पैकिंग का ढंग :– माल का खराब या नष्ट होना माल की पैकिंग पर भी निर्भर करता है इसलिए बीमा कम्पनिया प्रीमियम के निर्धारण से पहले माल की पैकिंग का भी गहन परीक्षण करती हैं। सामान्यतः अच्छी पैकिंग माल पर जोखिम की सम्भावनायें कम होती हैं।

- <u>बीमापत्र पर उपलब्ध सुविधायें</u> :– बीमादार बीमापत्र पर अपलब्ध सुविधाओं में से कितनी सुविधाये लेना चाहता है इस बात पर भी बीमा प्रीमियम निर्धारण होता है यदि अधिक सुविधाये प्रदान की जायेगी तो प्रीमियम अधिक अन्यथा कम हो सकता है।
- <u>बीमित विषय का मूल्य, विषय की मात्रा तथा यात्रा की दूरी</u> :– ये तीनों मूल्य, मात्रा तथा यात्रा की दूरी ऐसी परम्परागत आधार है जिसके माध्यम से प्रीमियम को निर्धारण होता है। प्रीमियम निर्धारण के समय बीमा कम्पनियॉ इन तथ्यों का आकलन करती हैं।
- **जहाज चालकों की योग्यता एवं अनुभव** :– जहाज का चालक कौन है, उसका चरित्र कैसा है, उसकी चालक सम्बन्धी योग्यता क्या है तथा इस कार्य में उसका अनुभव कितना है, प्रीमियम निर्धारण पर प्रभाव डालता है।

3. **मोटर बीमा (Motor Insurance)**

मोटर दुर्घटना बीमा वह बीमा है ''जिसके आधीन बीमाकर्ता बीमित के वाहन के दुर्घटनाग्रस्त होने पर बीमा प्रसंविदा शर्तो के अनुसार बीमित वाहन, तृतीय पक्षकार तथा स्वंय की दुर्घटना से उत्पन्न क्षति की पूर्ति करने का वचन देता है तथा क्षति होने पर इसकी पूर्ति करता है।'' इसलिए वाहन स्वामी द्वारा अनिवार्य रूप से अपने वाहन का मोटर बीमा कराना चाहिए। मोटरस्वामी समस्त जोखिमों के लिए बीमा करा सकता है या उनमें से चयनित जोखिमों के लिए वह स्वामी की इच्छा पर निर्भर करता है। कुछ जोखिम ऐसे होते है जिनका बीमा मोटर स्वामी की इच्छा पर निर्भर करता है। हमारे देश में मोटर वाहन अधिनियम 1988 के अनुसार ऐसे वाहन जो सार्वजनिक स्थानों पर चलाये जाते हैं उनके लिए वाहन बीमा कराना अनिवार्य है। मोटर बीमा मुख्य रूप से तीन भागों से मिलकर उत्पन्न होता है; सम्पत्ति बीमा व्यक्तिगत दर्घटना बीमा, दायित्व बीमा।

सम्पत्ति बीमा के अन्तर्गत सम्पत्ति को होने वाली क्षति की पूर्ति बीमाकर्ता द्वारा की जाती है। व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा के अन्दर मोटर मालिक, पत्नी व परिवार के सदस्यों की दुर्घटना के परिणाम स्वरूप होने वाली क्षति की पूर्ति होती है। दुर्घटना के कारण तीसरे पक्षकार के पक्ष में मोटर मालिक के दायित्व की पूर्ति के लिए जो बीमा किया जाता है उसे दायित्व बीमा कहा जाता है।

<u>बीमित गाड़ियों का वर्गीकरण</u> :–

निजी गाडिया, व्यापारिक गाडियां, मोटरसाइकिल।

<u>निजी गाडिया</u> :– वह गाड़ियां जिनका प्रयोग गाडी के स्वामी द्वारा स्वयं या परिवार के या निजी कार्यो के लिए किया जाता है यह गाडियां किराये पर उपलब्ध नहीं होती हैं।

<u>(अ) समुद्री बीमा की विषय वस्तु</u> :– अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में समुद्री बीमा का निरन्तर विस्तार हो रहा है इस कारण समुद्री बीमा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो चुका है। समुद्री बीमा की विषय वस्तु को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है;

- माल बीमा। जहाज बीमा। भाड़ा बीमा। दायित्व बीमा।
- <u>माल बीमा (Cargo Insurance)</u> :– माल बीमा समुद्री बीमा की अत्यन्त व्यापक विषय वस्तु है। इस व्यापार की विषय वस्तु को समुद्री मार्ग में

अनेक प्रकार के सामुद्रिक जोखिमों का सामना करना पड़ता है जिनसे कभी–कभी विषय वस्तु (माल) को क्षति भी हो सकती है। अतः इस क्षति से बचने के लिए माल का बीमा करवा लिया जाता है। माल का बीमा प्रंसविदा जहाज में माल के चढाने से प्रारम्भ होता है तथा गन्तब्य स्थान पर उतारने तक जारी रहता है। समुद्री मार्गो से माल को ले जाते समय जिन जोखिमों से जहाजी कम्पनी उत्तरदायित्व ग्रहण करती है उनका उल्लेख जहाजी बिल्टी में किया जाता है तथा इन स्पष्ट किये गये जोखिमों से हानि होने पर जहाजी कम्पनी क्षतिपर्ति करती है

- <u>जहाज का बीमा (**Hull Insurance**)</u> :– परिवहन के हर प्रकार को विभिन्न प्रकार के जोखिमों का सामना करना पड़ता है। इसी तरह समुद्र से गुजरते हुऐ जहाज को भी अनेक जोखिमों का सामना करना पडता है जिनसे जहाज को हानि पहुॅच सकती है इन जोखिमों के विभिन्न कारण हो सकते है जैसे जहाज का चट्टान में टक्कर हो जाना या दैवीय आपदा द्वारा जहाज को हानि होना। इन सब कारणों से जहाज को नुकसान पहुचता है तथा इसके स्वामी को बड़ी वित्तीय क्षति पहुच सकती है इसलिए जहाज को सामुद्रिक जोखिमों से बचाते हुए इसके मालिक की वित्तीय क्षति की पूर्ति करने के लिए जहाज का बीमा कराया जाता है। इसे फ्लीट इंश्योरेंस भी कहा जाता है।
- <u>भाड़ा या किराये का बीमा (**Freight Insurance**)</u> :– जहाज के भाडे या किराये का भी बीमा किया जाता है। समुद्री यात्रा में भाडा दो प्रकार से चुकाया जाता है एक भाडा प्रारम्भ में ही पेशगी के रूप में चुका दिया जाता है। दूसरा–नियत स्थान पर जहाज के पहुचने के पश्चात चुकाया जाता है। दोनों ही दशाओं में अलग–अलग तरह से भाडे का बीमा तथा बीमादार तय होता है। यदि माल भेजने वाले ने भाडा अग्रिम चुका दिया हो तो इस स्थिति में माल के साथ जोड दिया जाता है और नुकसान होने की स्थिति में माल के मूल्य के साथ–साथ चुकाया गया भाडा भी प्राप्त हो जाता है। यदि भाडा जहाज के गनतव्य स्थान पर पहुचने के पश्चात चुकाया जाना है, तब हजाज कम्पनी की भाडे की हानि हो सकती है। इन हानियों की पूर्ति के लिए भाडे का बीमा कराया जाता है।
- <u>दायित्व बीमा (**Leability Insurance**)</u> :– माल, जहाज एवं भाडा के अतिरिक्त समुद्री मार्ग में अनेक प्रकार के दायित्व उत्पन्न हो जाने के कारण भी हानि होती है। यदि यात्रा में जहाज दूसरे जहाज से टकरा जाये और दूसरा जहाज क्षतिग्रस्त हो जाये तो इसको पूरा करने का दायित्व जहाज के स्वामी पर होता है। इसलिए तृतीय पक्ष के प्रति उत्पन्न दायित्वों का भी सामुद्रिक बीमा कराया जा सकता है। इसके फलस्वरूप समुद्री मार्ग में यदि कोई दायित्व तृतीय पक्ष के प्रति उत्पन्न होने से जहाज के स्वामी को हानि होती है तो बीमाकर्ता कम्पनी इस हानि की पूर्ति की उत्तरदायी होगी।

(ब) <u>समुद्री बीमा के अन्तर्गत सम्मिलित जोखिम</u> :–

समुद्री जोखिमों/संकटों से आशय ऐसे संकटों से है जो समुद्री सफर के दौरान, समुद्री जोखिम, चोर–डाकू, अग्नि, जब्त करना, बन्दी बनाना, इत्यादि इसी तरह की बाधाओं से है। समुद्री बीमा कम्पनियां उन्ही जोखिमों के लिए उत्तरदायी होती हैं जिनका बीमित जोखिम से निकटतम सम्बन्ध हों।

समुद्री बीमा के संकटः–

प्रकृति जनित संकट – सागर के संकट, अग्नि ,द्वारा उत्पन्न संकट।

मानव जनित संकट – हजाज के व्यक्तियों द्वारा –शत्रु, दस्यु, युद्ध का जोखिम।

अन्य संकट – युद्ध, आन्तरिक परिवहन सम्बन्धी, अन्य जोखिम।

समुद्री बीमा में प्रीमियम का निर्धारण (Determination of Premium in marine Insurance)

समुद्री बीमा में प्रीमियम का निर्धारण विभिन्न कारणों से जीवन बीमा की तरह सरल तथा संक्षिप्त नहीं है इसके जटिल होने के मुख्य कारण है जोखिम की अधिकता तथा बीमित विषयों की विविधता इसके साथ ही समुद्री बीमा में प्रीमियम निर्धारण के लिए कोई निश्चित सिद्धानत नहीं है। इस बीमा में कम्पनी जोखिम।

व्यापारिक गाडियॅा :–

यह गाडिया मोटर व्यापार या परिवहन व्यापार या परिवहन से लाभ कमाने के उद्देश्य से किराये पर उपलब्ध करायी जाती है। निजी तथा व्यापारिक गाडियों की पहचान इनके रजिस्ट्रेशन तथा प्रथम दृष्टिया इनकी नम्बर प्लेट से भी की जा सकती है।

मोटर साइकिल :– इस वर्ग के अन्तर्गत तेल से चलने वाले सभी दोपहिया वाहन सम्मिलित होते हैं। इसके साथ ही आटो को भी सार्वजनिक मोटरसाइकिल के रूप में इसमें शामिल किया जाता है।

11.10 सामान्य बीमा निगम के कार्य (Functions of General Insurance Corporation)

सामान्य बीमा निगम अपनी सहायक कम्पनियों के कार्यो का निर्देशन, समन्वय एवं नियंत्रण करता है। इसके साथ ही देश में तथा विदेशी में भी बीमित के हितों की रक्षा के लिए कार्य करता है। अध्ययन की दृष्टि से सामान्य बीमा निगम के कार्यो निम्न तीन भागों में विभाजित किया गया है।

(अ) सहायक कम्पनियों के प्रति कार्य (ब) बीमाधारियों के प्रति कार्य (स) सरकार के प्रति कार्य करता है;

1. सहायक कम्पनियों के प्रति कार्य :–

निगम अपनी सहायक कम्पनियों के लिए निम्न कार्य करता है;

- पुनर्बीमा की सुविधा प्रदान करनाः– निगम अपनी सहायक कम्पनियों को सुरक्षा प्रदान करने को दृष्टि से उनके द्वारा किये गये कुल व्यवसाय के 20 प्रतिशत तक पुनर्बीमा कर सकता है इससे सहायक कम्पनियों के जोखिम को कम करने में मदद मिलती है।
- परामर्श एवं विशेषज्ञ सेवायें उपलब्ध करानाः– सहायक कम्पनियों के प्रबन्ध संचालन कोष प्रबन्धन तथा स्वास्थ्य प्रतिस्पर्धा बनाये रखने में परामर्श/सलाहकार का कार्य करता है। जहां विशेषक्ष सेवाओं की आवश्यकता होती है वह निगम अपने अधिकारियों की प्रतिनियुक्ति भी

करता है। निगम कोशिश करता है कि बीमादारों को बीमा की उच्चकोटि की सुविधायें एवं सुविधाये उपलब्ध हो सकें।

- <u>नियम–नीतियों की जानकारी उपलब्ध कराना</u> :– निगम द्वारा सहायक कम्पनियों को समय–समय पर सरकारी नियमों एवं नीतियों की जानकारी उपलब्ध कराता है तथा इन, नियमों एवं नीतियों के क्रियान्वयन के लिए जरूरी दिशा निर्देश देने के साथ नियत्रण भी रखता है।
- <u>निरीक्षण एवं नियत्रण</u> :– निगम द्वारा निरीक्षण अधिकारियों का कार्य है कि वह समय–समय पर सहायक कम्पनियों के विभिन्न विभागों के कार्यो का निरीक्षण करें तथा निगम दूसरी और कम्पनियों के प्रबन्ध संचालन में मार्गदर्शन के द्वारा नियत्रण कायम रखता है।

<u>2. बीमाधारियों के प्रति कार्य</u> :–

सामान्य बीमा निगम द्वारा कम प्रत्यक्ष कार्य किया जाता है परन्तु इसके बावजूत भी निगम द्वारा उड्डयन बीमा, फसल बीमा तथा पुनर्बीमा का कार्य किया जाता है। अपने बीमाधारियों के लिए निगम निम्न कार्य करता है;

- निगम द्वारा बीमाधारियों को जोखिम के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करने का कार्य किया जाता है।
- निगम बीमाधारियों तथा सहायक कम्पनियों के लिए आवश्यकतानुसार परामर्श सेवायें प्रदान करता है।
- बीमाधारियों को क्षति होने पर उनके दावों का तत्काल निपटारा कर क्षतिपूति का कार्य करता है।
- बीमा कम्पनियों के मध्य होने पर उनके दावों का तत्काल निपटारा कर क्षतिपूर्ति का कार्य करता है।
- बीमा कम्पनियों के मध्य किसी दावे के भुगतान को लेकर यदि मतभेद है तो निगम पहलकर इसमें समझौता करा कर बीमाधारियों को न्याय दिलाता है।

<u>3. सरकार के प्रति कार्य</u> –

सामान्य बीमा निगम सरकार के प्रति निम्न कार्य करता है;

- निगम अत्यधिक जोखिम (एअर इण्डिया, इण्डियन एबरलाइन्स) का कार्य करने वाली कम्पनियों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान करता है।
- निगम द्वारा देश व विदेश में अर्जित आय द्वारा राजस्व में वृद्धि होती है जिसका उपयोग सरकार की विभिन्न विकास योजनाओं के संचालन में होता है।
- निगम द्वारा सरकार को समय–समय पर जरूरी परामर्श दिया जाता है जिससे सरकार को बीमा व्यवसाय से सम्बन्धित नियम तथा नीतियां बनाने में आसानी होती है।
- निगम द्वारा सामान्य बीमा से सम्बन्धित सरकारी आदेशों के पालन करवाया जाता है।

11.11 साराश

सामान्य बीमा निगम अपनी सहायक कम्पनियों के कार्यो का निर्देशन, समन्वय एवं नियंत्रण करता है। इसके साथ ही देश में तथा विदेशी में भी बीमित के हितों की रक्षा के लिए कार्य करता है। अध्ययन की दृष्टि से सामान्य बीमा निगम के कार्यो निम्न तीन भागों में विभाजित किया गया है।
(अ) सहायक कम्पनियों के प्रति कार्य (ब) बीमाधारियों के प्रति कार्य (स) सरकार के प्रति कार्य करता है;

एक व्यवसाय के रूप में, बीमा मुख्य रूप से प्रीमियम से अपनी लागत और व्यय को पूरा करने का प्रयास करता है और अपनी स्थिरता के लिए लाभ का उचित मार्जिन भी बनाता है। एक व्यापार संगठन के रूप में, यह जीवन और गैर–जीवन बीमा कंपनियों, एजेंसियों, ब्रोकरेज फर्मो में लाखों लोगों को रोजगार प्रदान करता है। विभिन्न परिचालन इन कंपनियों में विपणन, अंडरराइटिंग, दावा हैंडलिंग, रेटमेकिंग और सूचना प्रसंस्करण शामिल हैं। एक व्यापारिक चिंता के रूप में, इसे नियामकों, बीमाधारकों और अन्य वित्तीय स्थिरता से सम्बन्धित के अन्य लोगों को भी संतुष्ट करने की आवश्यकता है। इसलिए, उपभोक्ताओं की सुरक्षा के लिए, नियामक दरें, नीति रूपों, साल्वेंसी मार्जिन की निगरानी करना, और जांच करना अतिआवश्यक हो जाता है।

11.12 शब्दावली

परम सदविश्वास का सिद्धान्त : बीमा का यह सिद्धान्त ''उबेर्रिमा फड्स'' के सिद्धान्त से उत्पन्न होता है जो वैध बीमा अनुबंध के लिए आवश्यक है। इसका आशय है कि बीमा के अनुबंध में, संबंधित अनुबंध पक्षों को एक–दूसरे की ईमानदारी पर भरोसा करना चाहिए।
बीमा योग्य हित : बीमा योग्य हित का आशय है ''बीमा करने का अधिकार''।
क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त : 'क्षतिपूर्ति' का शब्दकोश अर्थ 'क्षति या हानि या कानूनी जिम्मेदारी के खिलाफ सुरक्षा' है। क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध केवल क्षतिपूर्ति के लिए है लाभ कमाने के लिए नहीं।
प्रत्यासन का सिद्धान्त : बीमा व्यवसाय में इस सिद्धान्त के अनुसार बीमादाता क्षतिपूर्ति करने के पश्चात बीमादार का स्थान ग्रहण कर लेता है। सरल शब्दों में यदि बीमित नुकसान के लिए बीमादार को तीसरे पक्ष से मुआवजा/हरजाना (Compensation) प्राप्त करने का अधिकार हो तो इस सिद्धान्त के आधार पर अब यह अधिकार बीमादाता को प्राप्त हो जाता है।

11.13 बोध प्रश्न

1. .... का उद्देश्य किसी व्यक्ति के संपत्ति या जीवन के आर्थिक मूल्य की रक्षा करना है।
2. अनुबंध बीमा कंपनी और ....व्यक्ति के बीच है।
3. बीमा पॉलिसियों के माध्यम से, बीमित व्यक्ति बीमा कंपनी को घाटे की .... को स्थानांतरित करता है।
4. क्षतिपूर्ति का अनुबन्ध केवल ....के लिए है लाभ कमाने के लिए नहीं।

5. .... कारण से आशय ऐसे प्रभावपूर्ण एवं कार्यशील कारण से है जो उन घटनाओं को गति देता है जो बिना हस्तक्षेप के दक्षतापूर्ण कार्य करते हुऐ परिणाम उत्पन्न करता है।

11.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. बीमा, 2. बीमित, 3. लागत, 4. क्षतिपूर्ति, 5. आसन्न

11.15 स्वपरख प्रश्न

1. सामान्य बीमा से आप क्या समझते है? सामान्य बीमा तथा जीवन बीमा में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. बीमा अनुबन्ध की विभिनन आवश्यकताओं का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।
3. बीमा सिद्धान्तों से आप क्या समझते है? परमसदभाव सिद्धान्त एवं बीमायोग्य हित सिद्धान्त को समझाइये।
4. बीमा के प्रत्यासन सिद्धान्त एवं अभियाम सिद्धान्त की विस्तारपूर्वक व्याख्या करें।
5. क्षति के अल्पीकरण का सिद्धान्त क्या है? उदाहरण सहित समझाइये।
6. सामान्य बीमा व्यवसास के राष्ट्रीयकरण पर प्रकाश डालिए। अधिनियम के उद्देश्य एवं मिशन का वर्णन करें।
7. जीवन बीमा परिषद तथा सामान्य बीमा परिषद से आप क्या समझते है।
8. अग्निबीमा से आप क्या समझते है? अग्नि बीमा के क्षेत्र पर प्रकाश डालिए।
9. सामुद्रिक बीमा का अर्थ बताइये। सामुद्रिक बीमा में बीमा प्रीमियम का निर्धारण करना कठिन क्यों होता है? प्रीमियम का निधारण किन–किन बातों पर निर्भर करता है?
10. सामान्य बीमा निगम के कार्यो की व्याख्या कीजिए।

11.16 सन्दर्भ पुस्तकें

- डॉ0 टी0टी0 सेठी (2015) ''मुद्रा बैकिंग एवं लोक वित्त'', लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्षियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेषन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।
- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- बिश्नोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्ष्यिल इंस्टीट्यूषन्स
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिषिंग हाउस मुबई।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निषा, इंडियन फाइनैन्षियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- डॉ0 राधाकृष्ण विश्नोई (2007), ''बीमा के सिद्धान्त'', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- www.Policy Bazar.com
- www General Insurance.com

इकाई–12 जीवन बीमा निगम (LIFE INSURANCE CORPORATION)

इकाई की रुपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 भारतीय जीवन बीमा निगम
12.3 जीवन बीमा निगम के उद्देश्य
12.4 जीवन बीमा निगम का प्रबन्ध
12.5 भारतीय जीवन बीमा निगम का केन्द्रीय कार्यालय विकास विभाग
12.6 निगम की विभिन्न समितियॉ
12.7 जीवन बीमा निगम के कार्य
12.8 क्षेत्रीय कार्यालयों का संगठन एवं प्रबन्ध
12.9 क्षेत्रीय समितियॉ
12.10 क्षेत्रीय कार्यालय के विभाग
12.11 मण्डलीय कार्यालयों का संगठन एवं प्रबन्ध
12.12 मण्डल कार्यालय का विभागीय संगठन
12.13 जीवन बीमा के क्षेत्र में कार्य करने वाली विभिनन कम्पनियां
12.14 सारांश
12.15 शब्दावली
12.16 बोध प्रश्न
12.17 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.18 स्वपरख प्रश्न
12.19 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- जीवन बीमा निगम की स्थापना तथा उद्देश्यों का वर्णन कर सकें ।
- जीवन बीमा निगम के विभिनन कार्यालयों से अवगत हो सके।
- जीवन बीमा निगम के प्रबन्ध के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी कर सके।
- जीवन बीमा निगम के विभिन्न कार्यो का वर्णन कर सकें ।
- निगम के शाखा कार्यालयों के प्रबन्ध तथा निगम की विभिन्न समितियों की जानकारी कर सके।

12.1 प्रस्तावना

245 निजी बीमा कम्पनियॉ जीवन बीमा निगम के राष्ट्रीयकरण से पूर्व भारत में बीमा व्यवसाय करती थी। जिसका मूल प्रभाव था कि इस व्यवसाय से प्राप्त लाभ निजी हाथों में ही रहता था जिस कारण देश के विकास तथा आम जनता के उत्थान के लिए इस लाभ का पूर्ण उपयोग सरकार द्वारा नहीं किया जा सकता था। इसलिए इन निजी कम्पनियों द्वारा कमाये जा रहे बीमा व्यवसाय के इस लाभ को देश विकास तथा आम जनता के हित में प्रयोग करने के उद्देश्य से सरकार ने 19, जनवरी 1956 को निजी स्वरूप की इन 245 छोटी बड़ी कम्पनियों

के बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण किया जिसके माध्यम से उस समय कार्य कर रही इन कम्पनियों का सरकार द्वारा अधिग्रहण कर लिया गया।

12.2 भारतीय जीवन बीमा निगम

भारतीय जीवन बीमा निगम 1956 को अस्तित्व में आया निमग का केन्द्रीय कार्यालय मुम्बई में स्थित है। बुम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, चैन्नई, हैदराबाद, कानपुर तथा भोपाल में निगम के सात (07) क्षेत्रीय कार्यालय उपस्थित है। समस्त भारत में जीवन बीमा निगम के 100 मण्डल कार्यालय है जिनके आधीन कुल 2034 शाखा कार्यालय जीवन बीमा व्यवसाय से सम्बन्धित कार्य का निष्पादन कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त विदेशों में भी जीवन बीमा निगम के शाखा कार्यालय कार्यरत हैं। बीमा व्यवसाय के सफल संचालन के साथ–साथ इस व्यवसाय का देश में योगदान तथा आम जनता को सीधे तौर पर लाभ पहुचानें के विशेष उद्देश्य से 1, सितम्बर, 1956 को जीवन बीमा निगम की स्थापना संसदीय अधिनियम के द्वारा की गयी जिसे महामहिम राष्ट्रपति ने 18, जून, 1956 को स्वीकृति प्रदान की। यह अधिनियम 1, जुलाई 1956 से लागू किया गया तथा 1, सितम्बर, 1956 से निगम ने अपना कार्य प्रारम्भ किया। इस तिथि से ही जीवन बीमा निगम को बीमा व्यवसाय में एकाधिकार प्राप्त है।

12.3 जीवन बीमा निगम के उद्देश्य

निम्नांकित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जीवन बीमा निगम की स्थापना की गयी;

- आम आदमी में छोटी–छोटी बचत प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करना।
- आम जनता की छोटी–छोटी बचतों को एक बड़ी धनराशि के रूप में सरकार के योजनाबद्ध कार्यक्रमों में विनिवेश करना।
- दूरस्थ ग्रामीणों तथा कमजोर व पिछड़े वर्ग तक अपनी सेवायें प्रदान करना।
- सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप से बीमित व्यक्तियों को ट्रस्टी के रूप में सेवायें देना।
- बीमित के जीवन के लिए यथासम्भव सुरक्षा तथा संरक्षण (मौद्रिक रूप में) प्रदान करना।
- जीवन बीमा निगम के कर्मचारियों तथा अभिकर्ताओं के कल्याण के लिए कार्य करना।
- जीवन बीमा का तीव्र गति से प्रचार तथा प्रसार करना।
- जीवन बीमा व्यवसाय का कुशलतापूर्वक संचालन तथा नियंत्रण करना।

12.4 जीवन बीमा निगम का प्रबन्ध

जीवन बीमा निगम का प्रबन्ध भारतीय बीमा निगम अधिनियम के अनुसार केन्द्रीय सरकार के निर्देशों के आधीन किया जाता है जिसके अनुसार केन्द्र सरकार अधिकतम 16 सदस्यों की नियुक्ति निदेशक मण्डल के लिए कर सकती है। इन 16 सदस्यों में से ही एक सदस्य का मनोनयन अध्यक्ष के रूप में होता है। सरकार इसकी पक्षधर रहती है कि जिस व्यक्ति का चयन हो वह योग्य, ईमानदार,

अनुभवी, कर्तव्यनिष्ठ तथा प्रबन्धकीय क्षमता रखते हों तथा लगभग समस्त देश का प्रतिनिधित्व करते हों।

1 **जीवन बीमा निगम की संगठनात्मक संरचना**

केन्द्रीय कार्यालय (मुम्बई) → क्षेत्रीय कार्यालय (07) → मण्डलीय कार्यालय (100) → शाखा कार्यालय (2034) → उपशाखा कार्यालय।

भारतीय जीवन बीमा निगम का प्रधान कार्यालय (केन्द्रीय कार्यालय) मुम्बई में स्थित है। इसके अतिरिक्त सात (07) क्षेत्रीय कार्यालय देश के विभिन्न शहरों में स्थापित है जो अपनी–अपनी भौगोलिक सीमा के अन्तर्गत कार्य करते हैं। प्रत्येक क्षेत्रीय कार्यालय की परिधि में अनेक मण्डल कार्यालय तथा प्रत्येक मण्डल कार्यालय के आधीन अनेक शाखा तथा उपशाखा कार्यालय स्थापित कर बीमा व्यवसाय आम आदमी तक आसानी से पहुच रहा है। वर्तमान में शाखा कार्यालयों की कुल संख्या 2034 है। इसके अतिरिक्त विदेशों में फिजी, म्यनमार, लन्दन, मारीशस, कीनिया, श्रीलंका में भी भारतीय जीवन बीमा निगम के शाखा कार्यालय कार्यरत हैं।

12.4.1 प्रबन्ध प्रशासन

निदेशक मण्डल → अध्यक्ष → प्रबन्ध निदेशक → कार्यकारी निदेशक → क्षेत्रीय मैनेजर → मण्डलीय मैनेजर → शाखा मैनेजर → उपशाखा मैनेजर → विकास अधिकारी → कार्यालय पर्यवेक्षक व कर्मचारी → बीमा अभिकर्ता।

12.5 भारतीय जीवन बीमा निगम का केन्द्रीय कार्यालय विकास विभाग

निगम का सर्वोच्च कार्यालय होने के कारण इसके द्वारा ही संगठन व्यवसाय प्रबन्ध आदिर से सम्बधित सभी नीतियों का निर्धारण किया जाता है। जीवन बीमा निगम का प्रधान कार्यालय मुम्बई में स्थित है इसके मुम्बई में स्थित होने के पीछे कुछ मुख्य कारणों मे; राष्ट्रीयकरण के समय अधिकांश कम्पनियों के कार्यालय मुम्बई में होना, शेयर मार्केट का वहां होना तथा भारतीय रिजर्व बैंक का प्रधान कार्यालय मुम्बई में होना था। जीवन बीमा निगम का संचालन व प्रबन्ध 16 सदस्यों वाली संचालक मण्डल द्वारा किया जाता है इन सभी सदस्यों का चयन केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता है जिसका संक्षिप्त उल्लेख ऊपर किया गया है। प्रबन्ध कार्य हेतु निगम द्वारा विभिन्नि समितियों का गठन किया जाता है। इन समितियों के माध्यम से जीवन बीमा व्यवसाय तथा निगम के कार्यो का बेहतर संचालन तथा निर्देशन होता है। भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा केन्द्रीय कार्यालय के विभिन्न कार्यो के सफल निष्पादन के लिए विभिन्न विभाग अलग–अलग कार्य करते है जैसे;

- <u>विकास विभाग</u> :–

विभिन्न स्थानों पर शाखा कार्यालय खोलने हेतु जॉच करना, विभिन्न विकास सम्भावनाओं का पता लगाना, बीमा व्यवसाय के विकास एवं प्रसार के लिए योजनायें बनाना, विभिन्न विकास अधिकारियों का आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण प्रदान करना, रिफ्रेशर कोर्स सम्बन्धी योजनायें बनाना, निचले स्तर

के कार्यालयों का निर्देशन तथा सलाह प्रदान करना इस विभाग के मुख्य एवं आवश्यक कार्यो में सम्मिलित है।

- <u>लेखा विभाग</u> :–

लेखा विभाग जीवन बीमा निगम का एक मुख्य विभाग है जिसके द्वारा प्रतिवर्ष विभिन्न गतिविधियों के लेखे तैयार कर केन्द्र सरकार को प्रेषित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस विभाग द्वारा कर सम्बन्धी कार्यो, लेखाकर्म की विभिन्न पद्धतियों का निर्धारण, मूल्यॉकन तथा अंकेक्षण के कार्यो का निष्पादन भी किया जाता है।

- <u>जीवनांकिकी विभाग</u> :–

इस विभाग का मुख्य कार्य जोखिमक ा आकलन तथा निर्धारण करना है जिसके माध्यम से जीवन बीमा पालिसी के एवज में भुगतान कर पाना सम्भव होता है इसके अतिरिक्त विभिन्न आकड़ों के विश्लेषण के लिए कम्प्यूटरों का प्रयोग कर कार्यो को व्यवस्थित एवं सही ढंग से निरूपित करना है।

- <u>लेखा परीक्षण एवं निरीक्षण विभाग</u> :–

आन्तरिक अंकेक्षण तथा वाहय अंकेक्षण का कार्य निष्पादित करने तथा इससे सम्बन्धित योजना तथा नियमों का निर्धारण इस विभाग का मुख्य कार्य है। आन्तरिक अंकेक्षण हेतु अपनायी जाने वाली रीतियों तथा नीतियों का निर्धारण करना तथा इनका क्रियान्वयन करना। करवाना इसके कार्यो में सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त इस विभाग द्वारा अंकेक्षण करवाकर क्रियान्वयन विभाग/समिति को अंकेक्षण प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाता है।

- <u>प्रचार एवं जनसम्पर्क विभाग</u> :–

जैसे कि इस विभाग के नाम से ही ज्ञात होता है कि यह विभाग मुख्य रूप से भारतीय जीवन बीमा निगम की नई पुरानी गतिविधियों तथा योजनाओं, स्कीमों को जन–जन तक पहुचाने हेतु प्रचार एवं प्रसार का कार्य करता है। अध्यक्ष द्वारा अपने भाषण में ''कार्य परिणाम'' को प्रसारित करना इस विभाग द्वारा प्राथमिकता पर किया जाता है। निगम द्वारा रेडियों, टेलीविजन, समाचार पत्रों तथा विभिन्न प्रत्रिकाओं आदि के माध्यम से प्रचार तथा प्रसार किया जाता है। भारतीय जीवन बीमा निगम के प्रसार प्रयासों ने राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय स्तर पर भी मान्यता प्राप्त की है।

- <u>एकीकरण एवं शिकायत विभाग</u> :–

बेहतर परिणाम प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि किसी प्रक्रिया/संगठन के विभिन्न कदमों/विभागों में बेहतर समन्वय होना आवश्यक है। इस विभाग द्वारा भारतीय जीवन बीमा निगम के विभिन्न विभागों के क्रिया कलापों में बेहतर समन्वय स्थापित किया जाता है। इस विभाग द्वारा अपने निचले स्तर से प्राप्त विभिन्न शिकायतों के समाधान का कार्य भी किया जाता है एवं शिकायत के सभी पक्षों के मध्य सौहार्दपूर्ण वातावरण तैयार करने का लगातार प्रयास किया जाता है।

- <u>संगठन एवं पद्धति विभाग</u> :–

भारतीय जीवन बीमा निगम के विभिन्न विभागों द्वारा अपनायी जाने वाली विभिन्न पद्धतियों, कार्यविधियों तथा विधाओं का अवलोकन, परीक्षण, मूल्यांकन एवं

निर्धारण करना इस विभाग का प्रमुख कार्य है। इसके साथ ही यह विभाग विभिन्न प्रकार के शोध, परीक्षण तथा अन्वेषणों द्वारा इन पद्धतियों, कार्यविधियों तथा विधाओं को सरल, उपयोगी तथा मितव्ययी बनाने के प्रयासों के साथ–साथ नये प्रक्रियाओं को अपनाने हेतु प्रोत्साहित करता है।

- पालिसी धारकों हेतु सेवा विभाग :–

इस विभाग का कार्य बीमाधारकों को अधिकाधिक सुविधायें तथा सुरक्षा प्रदान करना है इसके आधीन बीमाधारकों की विभिन्न शिकायतों का निराकरण तथा दावों का समयानुसार भुगतान कर न्याय दिलाने का कार्य भी इस विभाग द्वारा किया जाता है।

- सेविवर्गीय विभाग :–

इस विभाग द्वारा भारतीय जीवन बीमा निगम के मानवीय पक्ष का ध्यान रखना है अर्थात भारतीय जीवन बीमा निगम में कार्यरत सभी कर्मचारियों एवं अधिकारियों के वेतन, नियुक्ति, पदोन्नित, प्रशिक्षण आदि के लिए विभिन्न कार्य सम्पन्न किय जाते हैं ताकि कार्मिकों के हितों की रक्षा की जा सके।

- निरीक्षण विभाग :–

निगम के सभी कार्यालयों का निरीक्षण कराने की योजना/प्रविधियां तैयार कर निरीक्षण कराना निरीक्षण विभाग का कार्य है।

- विनियोग विभाग :–

बीमा व्यवसाय के दृष्टिगत बहद महत्वपूर्ण विभाग क्योंकि विनियोग विभाग जीवन बीमा की निधियों के विनियोग से सम्बन्धित सभी कार्य करता है। भारतीय जीवन बीमा निगम के उद्देश्यों के उत्तरोत्तर निगम के पास प्रतिवर्ष एक बड़ी मात्रा में निधियॉ जमा होती है तथा पूर्व के जमा कोषों में निरन्तर वृद्धि होती जाती है। इस विभाग द्वारा प्रमुख तौर पर विनियोग कहॉ तथा किस प्रकार किये जायेंगे से सम्बन्धित नीतियों तथा योजनाओं का निर्धारण किया जाता है निर्धारण के समय अधिकाधिक आय, सुरक्षा तथा तरलता का विशेष ध्यान अवश्य रखा जाता है।

- भवन विभाग :–

इस विभाग द्वारा निगम के केन्द्रीय कार्यालय, विभिन्न विभागों के भवनों तथा आवासीय कालोनी से सम्बन्धित योजनाओं तथा नीतियों के निर्धारण के साथ–साथ इनके निर्माण सम्बन्धी बजट, व्यय प्रस्तुत करने तथा इनके क्रियान्वयन का प्रमुख कार्य किया जाता है।

- विदेशी विभाग :–

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि भारतीय जीवन बीमा निगम के कार्यालय विदेशों में भी स्थापित है जिसका उद्देश्य बीमा व्यवसाय में उत्तरोत्तर वृद्धि करना है इसलिए विदेशों में स्थित निगम के कार्यालयों के निर्देशन, मार्गदर्शन तथा नियंत्रण का प्रमुख कार्य इस विभाग द्वारा किया जाता है।

- कानूनी एवं बन्धक विभाग :–

जीवन बीमा निगम को विभिन्न बन्धक ऋण देने की रीति–नीति बनाने एवं इसकों अपनाने सम्बन्धी सलाह एवं मार्गदर्शन का कार्य इस विभाग द्वारा किया जाता है।

12.6 निगम की विभिन्न समितियॉ

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि भारतीय जीवन निगम के विभिन्न विभागों द्वारा विभिन्न क्रिया क्लापों का निष्पादन किया जाता है इन क्रिया कलापों को सुचारू रूप से चलाने एवं नियंत्रित करने के लिए विभिन्न समितियॉ बनायी जाती हैं। निगम की विभिन्न समितियां निम्न प्रकार हैः

निगम की समितियॉ–

1. कार्यकारी समिति कानूनी सलाहकार समिति, बजट सलाहकार समिति, विकास
2. विनियोग समिति सलाहकार समिति, बीमाधारी सेवा सलाहकार समिति, सेवावर्गीय
3. अन्य सलाहकार समितियॉ सलाहकार समिति, भवन सलाहकार समिति।

1. <u>कार्यकारी समिति</u> :–

भारतीय जीवन बीमा निगम की विभिन्न स्थापित समतियों में से कार्यकारी समिति को अधिक महत्वपूर्ण इसलिए समझा जाता है क्योकि निगम के व्यवसाय एवं अन्य महत्वपूर्ण कार्यो के संचालन एवं निरीक्षण का दायित्व मुख्य रूप से इस समिति का होता है। एक अध्यक्ष दो प्रबन्ध संचालक तथा निगम द्वारा मनोनीत दो अन्य सदस्यों को मिलाकर इस समिति में आधिकाधिक पॉच सदस्य होते है। यह निगम सर्वोच्च समिति होती है।

2. <u>विनियोग समिति</u> :–

निगम की निधियों के विनियोग से सम्बन्धित विषयों पर विशेषज्ञ सलाह देना इस समिति का प्रमुख कार्य है। इस विशेष कार्य को समझते हुऐ यह कहा जा सकता हे किइस समिति की विशेषज्ञता तथा कार्यकुशलता पर निगम की सफलता निर्भर करती है। इस समिति में आठ सदस्य हो सकते है जिसमें से तीन सदस्य निगम द्वारा मनोनीत होने चाहिए तथा अन्य सदस्यों को वित्तीय मामलों में विशेषतः विनियोग सम्बन्धी मामलों का विशेष ज्ञान तथा अनुभव होना आवश्यक है।

3. <u>अन्य सलाहकारी समितियॉ</u> :–

उपरोक्त प्रमुख समितियों के अतिरिक्त निगम के सभी कार्यो में सम्न्वय तथा सुचारू रूप से चलाने के लिए समय–समय पर अन्य सलाहकार समितियों का गठन किया जाता है ये समितियॉ निम्न है,;

(i) <u>कानूनी सलाहकार समिति</u> :– इस समिति में प्रमुखतः छः सदस्य होते हैं तथा विभिनन कानूनी तथा न्याय प्रणाली से सम्बन्धित विषयों पर सलाह लेने के लिए इस समिति का गठन किया जाता है।

(ii) <u>बजट सलाहकार समिति</u> :– भारतीय जीवन बीमा निगम का बडे पैमाने (देश–विदेश) पर कार्य होने के कारण इस निगम का बजट बनाने हेतु भी

विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है अतः बजट निर्माण में इस छः सदस्य वाली समिति से सलाह तथा परामर्श लिया जाता है।

(iii) <u>विकास सलाहकार समिति</u> :— जीवन बीमा निगम द्वारा अपने तथा देश के विभिन्न क्षेत्रों में विकास के लिए समय—समय पर विभिन्न कार्य किये जाते हैं इन विकास कार्यो के लिए पॉच सदस्यों की यह समिति निगम का मार्गदर्शन करती है।

(iv) <u>बीमाधारी सेवा परामर्शवादी समिति</u> :— बीमाधारकों को बेहतर सुविधायें प्रदान करने तथा बीमाधारकों की शिकायतों के निराकरण तथा निस्तारण हेतु आवश्यक परामश्र देने का प्रमुख कार्य आठ सदस्यों वाली इस समिति द्वारा किया जाता है।

(v) <u>सेविवर्गीय सलाहकार समिति</u> :— जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता हे कि यह समिति निगम के कर्मचारियों से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर अपनी विशेषज्ञता सलाह प्रदान करने के लिए बनायी जाती है। कर्मचारियों के भर्ती, प्रशिक्षण, वेतनमान, कल्याण सुविधायें, पदोन्नति और सम्बन्धित अन्य विषयों के निस्तारण में इस आठ सदस्य वाली समिति को सलाह तथा मार्गदर्शन आवश्यक है।

(vi) <u>भवन सलाहकार समिति :—</u> इस समिति में सामान्यतः दस सदस्य होते हैं तथा इस समिति का कार्य निगम को भवन निर्माण के सम्बन्ध में उचित सलाह प्रदान करना है। इनद स सदस्यों में से ही एक सदस्य इस समिति का अध्यक्ष मनोनीत होता है।

12.7 जीवन बीमा निगम के कार्य

जीवन बीमा निगम की स्थापना बीमा व्यवसाय के व्याापक प्रचार तथा प्रसार के अतिरिक्त कुछ अन्य उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की गयी थी जिसका सार देश के विकास के साथ—साथ आम व्यक्ति के विकास को भी प्रमुखता देना था। जीवन बीमा निगम मूलतः एक व्यवसायिक संस्थान है जिसके द्वारा बीमा व्यवसाय भारत के साथ—साथ विदेशों में भी चलाया जा रहा है। पिछले वर्षो में जीवन बीमा निगम ने उत्साहवर्धक उन्नति की है जिसमें बीमा व्यवसाय को अत्यनत सरल बनाना शामिल है। इस सरलता के साथ निगम ने ग्रामीण क्षेत्रो में बीमा व्यवसाय प्रारम्भ कर दिया है। जीवन बीमा व्यवसाय के अन्तर्गत पूँजी शोधन व्यवसाय, पुनवर्बीमा व्यवसाय, निश्चित वार्षिकी व्यवसाय भी शामिल हैं। भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा निम्नलिखित प्रमुख कार्य किये जाते है।

1. **पूर्व व्यवसाय करना**

   यदि राष्ट्रीयकरण के समय कोई कम्पनी जीवन बीमा व्यवसाय के साथ—साथ कोई अन्य व्यवसाय कर रही हो तथा राष्ट्रीयकरण के परिणामस्वरूप वह व्यवसाय भी जीवन बीमा व्यवसाय के साथ निगम द्वारा अधिगृहीत किया गया हो तो उस अन्य व्यवसाय को भी स्वयं या अपने किसी आश्रित के माध्यम से चलाना।

2. **कोषो—निधियों का विनियोजन तथा इससे सम्बन्धिति अन्य कार्य**

   जीवन बीमा निगम के पास प्रतिवर्ष अधिक मात्रा में निधियॉ एकत्रित होती हैं तथा दावों के तहत भुगतान भी करने होते हैं इसलिए प्रतिवर्ष उपलब्ध निधियों एवं कोषों का विनियोजन तथ आवश्यकतानुसार भुगतान करने में सरलता को ध्यान में रखते हुए विभिन्न कार्य किये जाते है। विनियोजन

के समय अधिकाधिक लाभ एवं तरलता में सामन्जस्य बनाना अत्यन्त आवश्यक होता है।

1. <u>सम्पत्ति का क्रय विक्रय करना</u> :– अपने व्यवसाय से सम्बन्धित किसी सम्पत्ति को खरीदना तथा बेचना भी निगम द्वारा किया जाता है।
2. <u>ऋण का लेन–देन</u> :– किसी चल–अचल सम्पत्ति या किसी अन्य प्रतिभूति की जमानत पर ऋण तथा अग्रिम देना तथा आवश्यकता पड़ने पर रूपयों का प्रबन्ध करना तथा ऋण लेना भी निगम के कार्यो में सम्मिलित है।
3. <u>निगम के व्यवसाय को लाभ पहुचाने वाले अन्य व्यवसाय करना</u> :– जीवन बीमा निगम के बीमा व्यवसाय को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लाभ पहुचाने वाला व्यवसाय निगम द्वारा किया जा सकता है यदि वह ऐसा करने में सक्षम महसूस करता हो।
4. <u>अधिकार तथा हित सम्बन्धी कार्य करना</u> :– ऐसे समसत कार्य निगम द्वारा किये जा सकते हैं जो भारतीय जीवन बीमा निगम के किसी अधिकार को पूर्ण करने में सहायक हों अथवा जो कार्य निगम के हित में हों।

12.8 क्षेत्रीय कार्यालयों का संगठन एवं प्रबन्ध

भारत वर्ष में जीवन बीमा निगम के सात क्षेत्रीय कार्यालय कार्यरत है जो क्रमसः दिल्ली, मुम्बई, चैन्नई, कोलकत्ता, भोपाल, हैदराबाद तथा कानपुर में स्थित हैं। यह क्षेत्रीय कार्यालय अपने क्षेत्र के अधीनस्थ कार्यालयों का निर्देशन तथा नियंत्रण करते हैं। क्षेत्रीय प्रबन्धक के नाम से क्षेत्रीय कार्यालय का प्रमुख अधिकारी जाना जाता है यह व्यक्ति (क्षेत्रीय प्रबन्धक) अपने पूरे क्षेत्र के अन्य कार्यालयों के कार्यो की देखभाल करता है। यह अधिकारी वह सभी कार्य करता है जो जीवन बीमा निगम द्वारा उसे सौंपे जाते हैं। अपने अधीनस्थ समस्त कार्यालयों के खातों का सामूहिक निरीक्षण भी इस अधिकारी द्वारा किया जाता है। डिविजन कार्यालयों को लेखा सम्बन्धी जानकारी तथा कर्मचारी वर्ग से सम्बन्धित मामलों में सलाह देता है और सभी संदिग्ध दावों की छानबीन करता है। इस अधिकारी द्वारा अपने क्षेत्र के बीमा सम्बन्धी कार्यो का समेकित विवरण तैयार कराया जाता है तथा समय–समय पर मण्डल कार्यालयों को उनकी आवश्यकतानुसार सलाह तथा निर्देशन किया जाता है। एक क्षेत्रीय कार्यालय के अन्तर्गत उस क्षेत्र के राज्य आते हैं।

निम्न प्रारूप से यह अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

क्र0सं0	क्षेत्र का नाम	मुख्यालय	क्षेत्राधिकार की
01	उत्तर क्षेत्र	दिल्ली	दिल्ली, हरियाणा, हिमांचल प्रदेश, पंजाब, जम्मू कश्मीर, चंढ़ीगढ, राजस्थानं
02	उत्तर मध्य क्षेत्र	कानपुर	उत्तर प्रदेश।

03	मध्य क्षेत्र	भोपाल	मध्य प्रदेश।
04	पूर्व क्षेत्र	कोलकत्ता	अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालेण्ड, सिक्किम, त्रिपुरा, आसाम, प0 बंगाल, उडीसा, बिहार
05	दक्षिण क्षेत्र	चेन्नई	तमिलनाडु, पांडिचेरी, केरल।
06	दक्षिण मध्य क्षेत्र	हैदराबाद	आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक
07	पश्चिम क्षेत्र	मुम्बई	महाराष्ट, गुजरात, गोवा, दमन।

12.9 क्षेत्रीय समितियॉ

प्रत्येक क्षेत्रीय कार्यालय के आधीन कौन–कौन से तथा कितने राज्यों का बीमा व्यवसाय के कार्य की देखरेख की जिम्मेदारी होती है यह उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक क्षेत्रीय कार्यालय का मुख्य अधिकारी क्षेत्रीय अधिकारी कहलाता है, तथा अपने क्षेत्र के बीमा व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न कार्यो को विधिवत चलाने के लिए प्रत्येक क्षेत्रीय कार्यालय में दो समितियॉ गणित की जाती है।

1. **क्षेत्रीय परामर्शदाता बोर्ड**

इस समिति के नाम से इस समिति का महत्व ज्ञात होता है क्षेत्र के प्रत्येक क्षेत्र में यह समिति सलाहकार की भूमिका का कार्य करती है इसलिए इस मिति के सदस्यों की संख्या तथा सदस्यों की नियुक्ति या चयन केन्द्रीय कार्यालय द्वारा की जाती है। सदस्यों की संख्या जीवन बीमा निगम की इच्छा पर निर्भर करती है। इस बोर्ड का मुख्य कार्य अपने क्षेत्र में बीमा व्यवसाय की तेज गति से वृद्धि करना तथा बेहतर कार्य संचालन हेतु क्षेत्रीय प्रबन्धक को आवश्यकतानुसार सुझाव प्रदान करना है।

2. **कर्मचारियों एवं अभिकर्ताओं हेतु समिति**

यह समिति विशेषतः कर्मचारियों तथा अभिकर्ताओं के कल्याण हेतु क्षेत्रीय प्रबन्धकों को सुझाव तथा सलाह देने के लिए बनायी जाती है। इस समिति के कुल सदस्यों के आधे सदस्य निगम का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा शेष आधे सदस्य कर्मचारियों तथा अभिकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं

12.10 क्षेत्रीय कार्यालय के विभाग

सेविवर्गीय विभाग, सम्पत्ति एवं संस्थापन विभाग, जीवनांकिकी विभाग, इंजीनियरिंग विभाग, विकास विभाग, लेखा विभाग, विपणन विभाग, कानून तथा बन्धक विभाग।

इनमें से अधिकांश विभागों का वर्णन केन्द्रीय कार्यालय के संदर्भ में पूर्व में किया जा चुका है तथा जिनका वर्णन नहीं किया गया है उनको निम्नवत समझाया गया है;

1. **सम्पत्ति एवं संस्थापन विभाग**

यह विभाग विभिन्न सामग्रियों एवं सम्पत्तियों के खरीद तथा सामाग्रियों के वितरण का प्रमुख कार्य करता है इसमें प्रमुखतः फर्नीचर की खरीद, सम्पत्ति का क्रय– विक्रय, सम्पत्ति को किराये पर देना, उसकी सुरक्षा, पोशाक खरीद तथा

वितरण, स्टेशनरी खरीद तथा वितरण तथा अतिथि भवनों का रख रखाव आदि कार्य सम्मिलित हैं।

2. **इंजीनियरिंग विभाग**

इंजीनियरिंग विभाग का कार्य निर्माण कार्यों के लिए टेण्डर आमंत्रित करना, कार्यकरना, भुगतान सस्तुत करना तथा मरम्मत आदि कार्य सम्मिलित होते हैं।

3. **विपणन विभाग**

नये व्यवसाय के लिए योजनायें बनाना, व्यवसाय प्रस्ताव की समीक्षा करना, विपणन नीति का निर्धारण करना एवं सुधार हेतु आवश्यक कदम उठाना इस विभाग के प्रमुख कार्यो में सम्मिलित हैं।

12.11 मण्डलीय कार्यालयों का संगठन एवं प्रबन्ध

निगम के मण्डलीय कार्यालय भारतवर्ष के अतिरिक्त विदेशों में भी कार्यरत हैं वर्तमान में भारतवर्ष में 100 मण्डलीय कार्यालय कार्य कर रहें हैं। मण्डलीय कार्यालयों के कार्यो में निम्नलिखित गतिविधियां शामिल की जाती है। संगठन का विकास करना, नये व्यापार के लिए कार्य करना, नये व्यापार हेतु योजनाओं को बनाना, बीमाधारकों की सेवा करना तथा नये व्यापार का अभिगोपन करना। मण्डलीय कार्यालय का प्रमुख अधिकारी डिविजनल मैनेजर के नाम से जाना जाता है। मण्डलीय कार्यालय अपने मण्डल के आधीन अन्य शाखाओं के क्रिया–कलापों पर नियंत्रण के साथ–साथ इनका मार्गदर्शन तथा देखरेख करता है। प्रत्येक मण्डलीय कार्यालय में पांच विभाग अपने–अपने अलग विभागों के कार्यो के निष्पादन के लिए गणित किये जाते हैं। निकट भूत में मण्डल कार्यालयों तथा शाखा कार्यालयों का पुनर्गणन होने के कारण मण्डल कार्यालयों के कार्य में कटौती करते हुए बहुत से मण्डल कार्यालयों के कार्य शाखा कार्यालयों को सौप दिये गये। भारत में मण्डल कार्यालयों की स्थिति निम्नवत हैः

क्र0 सं0	क्षेत्र	मण्डल कार्यालय की संख्या	मण्डल कार्यालयों के स्थान
01	उत्तर क्षेत्र	14	दिल्ल I, दिल्ली II, दिल्ली III, करनाल, चढ़ीगढ, जालन्धर, लुधियाना, अमृतसर, शिमला, श्रीनगर, जोधपुर, जयपुर, वीकानेर, अजमेर।
02	उत्तर मध्य क्षेत्र	11	इलाहाबाद, आगरा, अलीगढ़, बरेली, गोरखपुर, हल्द्वानी, देहरादून, लखनऊ, कानपुर, वाराणसी, मेरठ
03	मध्य क्षेत्र	7	इन्दौर, ग्वालियर, भोपाल, जबलपुर, रायपुर, शाहदोल, सतना।
04	पूर्व क्षेत्र	17	कोलकत्ता उपनगर, कोलकत्ता महानगर, हावडा, भागलपुर, हाजीबाग, आसनसोल, बहरामपुर, जमशेदपुर, मुज्फ्फरपुर, पटना, जोरहाट, सिलचर, जपाईगुडी, सम्बलपुर

			कटक, बोगईगॉव, गुवाहाटी।
05	दक्षिण क्षेत्र	11	चेन्नई, कोयम्वटूर, कोटायम, एनीकुलम, सेलम, कोजीकोडे, तंजाबुर, मदुर।, तिरूअनन्तपुरम,तिरून्वेली, वेलोर।
06	दक्षिण मध्य क्षेत्र	14	हैदराबाद, सिकन्दराबाद, कुडप्पा, राजमुंद्री, विशाखापट्टनम, वारागल, धाखाड, मुसुलीपट्टनम, नेलोर, उदूपी,
07	पश्चिम क्षेत्र	19	रायचूर, मैसूर, वैगलूर I, बैंगलूर II।
कुल		93	

मुम्बई I, मुम्बई II, मुम्बई III, मुम्बई IV, नासिक, ठाणे, पुणे, अमरावती, औरगांबाद, नागपुर, सतारा, कोल्हापुर, गॉधीनगर, राजकोट, भावनगर, बडोदरा, सूरत, गोवा।

मण्डल कार्यालय में विशेष परिस्थितियों में मण्उल सदस्यों की सभा अध्यक्ष द्वारा कभी भी बुलाई जा सकती है परन्तु सामान्य परिस्थितियों में मण्डल सदस्यों की सभा माह में एक बार बुलाने का प्रावधान है।

12.12 मण्डल कार्यालय का विभागीय संगठन

मण्डल कार्यालय के विभिन्न विभागों का सक्षिप्त वर्णन निम्नवत है–

1. **योजना विभाग**

जैसा कि इसके नाम से ही ज्ञात होता है कि इस विभाग का प्रमुख कार्य मण्डल तथा शाखा कार्यालयों के लिए विभिन्न प्रकार की योजनायें बनाकर उन्हें क्रियान्वित करता, प्राप्त परिणामों की भूतकालीन परिणामों से तुलना करना,, विभिन्न विभागों के कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना इत्यादि शामिल है। इसके अतिरिक्त यह विभाग योजना से सम्बन्धित आकड़ों को एकत्रित कर इसकी छानबीन के पश्चात अपनी रिपोर्ट मण्डल प्रबन्धक को देते हैं।

2. **बीमाधारी सेवा विभाग**

इस विभाग का प्रमुख कार्य बीमा धारकों को विभिन्न सुविधायें प्रदान करना है। इन सुविधाओं में इस विभाग द्वारा किये जाने वाले प्रमुख कार्य हैं बीमाधारकोंकी बोनस की दरों, नई बीमा योजनाओं तथा अन्य विभिन्न सुविधाओं से परिचित कराना। इसके अतिरिक्त अनके दावोंका समयानुसार भुगतान करना, उनकी शिकायतों का समाधान करना, सेवा विभागों का निरीक्षण करना, अपने विभाग के कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना है।

3. **कार्यालय सेवा विभाग**

यह विभाग मण्डल कार्यालय के सभी विभागों को अपनी सेवायें प्रदान करता है। सभी विभागों के लिए स्टेशनरी उपलब्ध कराना, फर्नीचर उपलब्ध कराना। कर्मचारियों के प्रशिक्षण में सहायता करना, उपकरणों की व्यवस्था करना, पत्रों को आगमन एवं भेजने की व्यवस्थ करना इत्यादि कार्य इस विभाग द्वारा भी सम्पन्न किये जाते हैं।

4. **दावा विभाग**

बीमा दावे सामान्यतः दो परिस्थितियों में उत्पन्न होते हैं एक किसी भी बीमा पालिसी की परिपक्वता पर या बीमित व्यक्ति की मृत्यु पर। इस विभाग द्वारा

बीमा पालिसी पर उत्पन्न दावे को यथासमय निपटारा करने का है दावा चाहे बीमित व्यक्ति की मृत्यु से या बीमा पालिसी की परिपक्वता से या अन्य किसी भी कारण से उत्पन्न हुआ हों। ऐसे दावे जिनका भुगतान शाखा कार्यालयों की सीमा से बाहर का है के भुगतान सम्बन्धी निर्णय लेने का कार्य भी इस विभाग द्वारा किया जाता है।

5. **विधि और बन्धक विभाग**

बन्धक पर जो ऋण दिये गये हैं उनकी वसूली का कार्य इस विभाग के द्वारा किया जाता है, इसके अतिरिक्त आवास हेतु ऋण प्रदान करने वाली योजनायें बनाकर ऋण प्रदान करता है तथा भारतीय जीवन बीमा निगम के विरूद्ध किये गये मुकदमों के लिए केस लडता है।

6. **सेविवर्गीय एवं औधोगिक सम्बन्ध विभाग**

इस विभाग का सीधा सम्बन्ध कर्मचारियों तथा कर्मचारियों तथा विभिन्न उद्योगों के मध्य होने वाले सम्बन्धों से है। कर्मचारियों की विज्ञप्ति, कर्मचारियों की भर्ती, नियुक्ति, कर्मचारियों की शिकायतों का निवारण, कर्मचारियों के प्रशिक्षण योजनायें तथा इनका क्रियान्वयन, उनके यात्रा तथा चिकित्सा बिलों की स्वीकृति, अच्छे एवं मधुर सम्बन्ध बनाने हेतु कल्याणकारी योजनाओं का निर्माण, तथा इनका क्रियान्वयन, इत्यादि इस विभाग के प्रमुख कार्य हैं।

7. **लेखा विभाग**

लेखा कर्म सम्बन्धी सभी कार्यो की देखरेख इस विभाग की जिम्मेदारी है इसमें शाखा कार्यालयों के लिए लेखाकर्म की विभिन्न पद्धतियों एवं प्रक्रियाओं का निर्धारण करना और इनको सही तरीके से क्रियान्वित कराना, सभी शाखा कार्यालयों पर वित्तीय नियंत्रण रखना, शाखा कार्यालयों से प्राप्त प्रतिवेदनों तथा वार्षिक खातों को एकीकृत कर प्रधान कार्यालय को अगले आवश्यक कार्यवाही हेतु भेजना, इसके अलावा उनके तलपट व बैलेंस सीट तैयार करना शामिल है।

8. **नव व्यवसाय विभाग**

मण्डल कार्यालय के विभिन्न विभागों में इस विभाग के कार्यो का महत्वपूर्ण समझा जाता है यह विभाग नये बीमा व्यवसाय के सम्बन्ध में विभिनन महत्वपूर्ण कार्य करता है। इन कार्यो में महत्वपूर्ण हैं चिकित्सकों की नियुक्ति करना, जोखिम स्वीकृति के बारे में जानकारी प्राप्त कर शाखाओं को इसकी पूर्ण जानकारी प्रदान करना, अभिगोपन व्यय को कम करना, शाखा कार्यालयों द्वारा किये जा रहे नवीन व्यवसाय की जॉच करना है।

9. **समंक संसाधन विभाग**

समकों का एकत्रीकरण कर इनका उद्देश्यात्मक विश्लेषणात्मक अध्ययन करना इस विभाग का मुख्य कार्य है। इन आकड़ों की विश्लेषणात्मक रिपोर्ट इस विभाग द्वारा योजना विभाग को आवश्यकतानुसार उपलब्ध करायी जाती है जिसका योजनाओं के निर्माण तथा नये व्यवसाय के सन्दर्भ में काफी महत्व होता है। बीमा पत्रों का मूद्रण, कर्मचारियों के वेतन, विपत्र साख्यिकीय प्रतिवेदनों को एकत्रित करना तथा अन्य विभागों को सहयोग करते हुऐ प्रधान कार्यालय के दिशा निर्देशों का पालन करना इस विभाग के मुख्य कार्यो में निहित है। दीर्घकालीन योजनाओं के निर्माण के लिए इस विभाग द्वारा प्रदत्त आकड़े काफी योगदान देते हैं।

10. विक्रय विभाग

इस विभाग द्वारा जिन कार्यो का निष्पादन किया जाता है उनमें सभी शाखा कार्यालयों की प्रगति की जानकारी लेना तथा उसका आकलन करना, बीमा अभिकर्ताओं, बीमा पत्र धारियों तथा लोक प्रतिनिधियों से सम्पर्क कर सुझाव लेना, नये व्यवसाय में वृद्धि करना, विकास अधिकारियों तथा अभिकर्ताओं को अधिक बिक्री हेतु प्रोत्साहित एवं अभिप्रेरित करना इसमें शामिल है। यह विभाग नयी शाखाओं के खोलने की सम्भावनाओं का आकलन कर, नयी शाखा खोलने तथा अन्य शाखाओं का निरीक्षण करने का भी मुख्य कार्य करता है।

12.13 जीवन बीमा के क्षेत्र में कार्य करने वाली विभिनन कम्पनियां

भारतीय बीमा क्षेत्र को मूलतः दो भागों में बाटा गया है प्रथम भाग है जीवन बीमा तथा दूसरा भाग है गैर जीवन बीमा। गैर जीवन बीमा सामान्य जीवन बीमा के नाम से अधिक जाना जाता है। जीवन बीमा तथा गैर जीवन बीमा दोनों को भारत के 'बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण' द्वारा नियंत्रित तथा शासित किया जाता है। भारत में बीमा क्षेत्र में कुल 57 बीमा कम्पनिया शामिल हैं। जिनमें से 24 कम्पनिया जीवन बीमा प्रदाता है शेष 33 कम्पनियां गैर जीवन बीमा का व्यवसाय करती हैं। जीवन बीमा व्यवसाय व्यक्तियों के जीवन को कवरेज प्रदान करता है जबकि गैर जीवन बीमा व्यवसाय में व्यक्ति के जीवन के अतिरिक्त व्यक्ति की आवश्यकतानुसार विभिन्न वस्तुओं का कवरेज प्रदान किया जाता है।

S.No.	Name of Companies
1	Aegon Life Insurance Company Limited
2	Aviva Life Insurance Company Limited
3	Bajaj Alianz Life Insurance Company Limited
4	Bharti AxaLife Insurance Company Limited
5	Birla Sun Life Insurance Company Limited
6	Canera HSBC Oriental Bank of CommerceLife Insurance Company Limited
7	DHFL Pramerica Life Insurance Company Limited
8	Edelweises TokioLife Insurance Company Limited
9	Exide Life Insurance Company Limited
10	Future Generali India Life Insurance Company Limited
11	HDFC Standard Life Insurance Company Limited
12	ICICI Prudential Life Insurance Company Limited
13	IDBI Federal Life Insurance Company Limited
14	India First Life Insurance Company Limited
15	Kotak Mahindra Old Mutual Life Insurance Company Limited
16	Life Insurance Corporation of india
17	Max Life Insurance Company Limited
18	PNB Metlife India Insurance Company Limited
19	Reliance Life Insurance Company Limited

20	Sahara India Life Insurance Company Limited
21	SBI Life Insurance Company Limited
22	Shriram Life Insurance Company Limited
23	Star Union Dia- Ichi Life Insurance Company Limited
24	Tata AIA Life Insurance Company Limited

12.14 सारांश

भारतीय जीवन बीमा निगम 1956 को अस्तित्व में आया निमग का केन्द्रीय कार्यालय मुम्बई में स्थित है। बुम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, चैन्नई, हैदराबाद, कानपुर तथा भोपाल में निगम के सात (07) क्षेत्रीय कार्यालय उपस्थित है। समस्त भारत में जीवन बीमा निगम के 100 मण्डल कार्यालय है जिनके आधीन कुल 2034 शाखा कार्यालय जीवन बीमा व्यवसाय से सम्बन्धित कार्य का निष्पादन कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त विदेशों में भी जीवन बीमा निगम के शाखा कार्यालय कार्यरत हैं। बीमा व्यवसाय के सफल संचालन के साथ–साथ इस व्यवसाय का देश में योगदान तथा आम जनता को सीधे तौर पर लाभ पहुचानें के विशेष उद्देश्य से 1, सितम्बर, 1956 को जीवन बीमा निगम की स्थापना संसदीय अधिनियम के द्वारा की गयी जिसे महामहिम राष्ट्रपति ने 18, जून, 1956 को स्वीकृति प्रदान की। यह अधिनियम 1, जुलाई 1956 से लागू किया गया तथा 1, सितम्बर, 1956 से निगम ने अपना कार्य प्रारम्भ किया। इस तिथि से ही जीवन बीमा निगम को बीमा व्यवसाय में एकाधिकार प्राप्त है।

245 निजी बीमा कम्पनियॉ जीवन बीमा निगम के राष्ट्रीयकरण से पूर्व भारत में बीमा व्यवसाय करती थी। जिसका मूल प्रभाव था कि इस व्यवसाय से प्राप्त लाभ निजी हाथों में ही रहता था जिस कारण देश के विकास तथा आम जनता के उत्थान के लिए इस लाभ का पूर्ण उपयोग सरकार द्वारा नहीं किया जा सकता था। इसलिए इन निजी कम्पनियों द्वारा कमाये जा रहे बीमा व्यवसाय के इस लाभ को देश विकास तथा आम जनता के हित में प्रयोग करने के उद्देश्य से सरकार ने 19, जनवरी 1956 को निजी स्वरूप की इन 245 छोटी बड़ी कम्पनियों के बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण किया जिसके माध्यम से उस समय कार्य कर रही इन कम्पनियों का सरकार द्वारा अधिग्रहण कर लिया गया।

जीवन बीमा निगम का प्रबन्ध भारतीय बीमा निगम अधिनियम के अनुसार केन्द्रीय सरकार के निर्देशों के आधीन किया जाता है जिसके अनुसार केन्द्र सरकार अधिकतम 16 सदस्यों की नियुक्ति निदेशक मण्डल के लिए कर सकती है। इन 16 सदस्यों में से ही एक सदस्य का मनोनयन अध्यक्ष के रूप में होता है। सरकार इसकी पक्षधर रहती है कि जिस व्यक्ति का चयन हो वह योग्य, ईमानदार, अनुभवी, कर्तव्यनिष्ठ तथा प्रबन्धकीय क्षमता रखते हों तथा लगभग समस्त देश का प्रतिनिधित्व करते हों।

भारतीय जीवन बीमा निगम का प्रधान कार्यालय (केन्द्रीय कार्यालय) मुम्बई में स्थित है। इसके अतिरिक्त सात (07) क्षेत्रीय कार्यालय देश के विभिन्न शहरों में स्थापित है जो अपनी–अपनी भौगोलिक सीमा के अन्तर्गत कार्य करते हैं। प्रत्येक क्षेत्रीय कार्यालय की परिधि में अनेक मण्डल कार्यालय तथा प्रत्येक मण्डल कार्यालय के आधीन अनेक शाखा तथा उपशाखा कार्यालय स्थापित कर बीमा

व्यवसाय आम आदमी तक आसानी से पहुच रहा है। वर्तमान में शाखा कार्यालयों की कुल संख्या 2034 है। इसके अतिरिक्त विदेशों में फिजी, म्यनमार, लन्दन, मारीशस, कीनिया, श्रीलंका में भी भारतीय जीवन बीमा निगम के शाखा कार्यालय कार्यरत हैं।

12.15 शब्दावली

जीवन बीमा निगम का प्रबन्धः जीवन बीमा निगम का प्रबन्ध भारतीय बीमा निगम अधिनियम के अनुसार केन्द्रीय सरकार के निर्देशों के आधीन किया जाता है जिसके अनुसार केन्द्र सरकार अधिकतम 16 सदस्यों की नियुक्ति निदेशक मण्डल के लिए कर सकती है।

लेखा विभाग :लेखा विभाग जीवन बीमा निगम का एक मुख्य विभाग है जिसके द्वारा प्रतिवर्ष विभिन्न गतिविधियों के लेखे तैयार कर केन्द्र सरकार को प्रेषित किये जाते हैं।

निरीक्षण विभाग : निगम के सभी कार्यालयों का निरीक्षण कराने की योजना/प्रविधियां तैयार कर निरीक्षण कराना निरीक्षण विभाग का कार्य है।

विनियोग विभाग :बीमा व्यवसाय के दृष्टिगत बहद महत्वपूर्ण विभाग क्योंकि विनियोग विभाग जीवन बीमा की निधियों के विनियोग से सम्बन्धित सभी कार्य करता है।

कानूनी एवं बन्धक विभागः जीवन बीमा निगम को विभिन्न बन्धक ऋण देने की रीति–नीति बनाने एवं इसकों अपनाने सम्बन्धी सलाह एवं मार्गदर्शन का कार्य इस विभाग द्वारा किया जाता है।

12.16 बोध प्रश्न

1. जीवन बीमा का उददेशय है–
   (अ)मानव जीवन का बीमा करना (ब)मोटर वाहन का बीमा करना
   (स)उपरोक्त दोनो (द) उपरोक्त मे से कोई नही
2. जीवन बीमा निगम कब अस्तित्व मे आया।
   (अ)1946 (ब)1956
   (स)1996 (द)1998
3. जीवन बीमा निगम द्वारा प्रबन्ध के उददेशय सें भारत वर्ष को कितने क्षेत्रो मे विभाजित किया गया है।
   (अ)09 (ब)10
   (स)07 (द)03
4. भारतीय जीवन बीमा निगम के मण्डल कार्यालयो की कुल संख्या है।
   (अ)93 (ब)103
   (स)54 (द)17
5. भारतीय जीवन बीमा निगम है।
   (अ)सरकारी संस्थान (ब)गैर सरकारी संस्थान

12.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर (1)अ (2)ब (3)स (4)अ (5) अ

12.18 स्वपरख प्रश्न

1. जीवन बीमा से आप क्या समझते है ? भारतीय जीवन बीमा निगम के उद्देंश्यो का वर्णन कीजिए।

2. भारतीय जीवन बीमा निगम के प्रबन्ध से सम्बन्धित निगम की संगठनात्मक संरचना का वर्णन कीजिए।
3. जीवन बीमा निगम के कार्यो को विस्तापूर्वक समझाइए।
4. क्षेत्रीय कार्यालयो के संगठन एंव प्रबन्ध की व्याख्या कीजिए।
5. क्षेत्रीय कार्यालयो के विभिन्न विभागो का वर्णन कीजिए।
6. मण्डल कार्यालय के विभागीय संगठन को विस्तारपूर्वक समाझाइए।
7. जीवन बीमा क्षेत्र मे कार्यरत विभिन्न कम्पनियो को संक्षेप मे समझाइये।
8. जीवन बीमा निगम की विभिन्न समितियों पर प्रकाश डालिए।

12.19 सन्दर्भ पुस्तकें

- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्षियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेषन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।
- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- बिश्नोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्ष्यिल इंस्टीट्यूषन्स
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिषिंग हाउस मुबई।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निषा, इंडियन फाइनैन्षियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- डॉ0 राधाकृष्ण विश्नोई (2007), ''बीमा के सिद्धान्त'', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- www.Policy Bazar.com
- www General Insurance.com
- डॉ0 टी0टी0 सेठी (2015) ''मुद्रा बैकिंग एवं लोक वित्त'', लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

इकाई–13 जोखिम तथा बीमा के मूल तत्व (FUNDAMENTALS OF RISK AND INSURANCE)

इकाई की रुपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 जोखिम
13.3 जोखिम का वर्गीकरण
13.4 जोखिम समाधान की विधियाँ
13.5 बीमा से आशय एवं परिभाषा
13.6 इन्श्योरेन्स तथा एश्योरेन्स में अन्तर
13.7 बीमा अनुबन्ध तथा समान्य अनुबन्ध में अन्तर
13.8 बीमा तथा जुए में अन्तर
13.9 बीमा का वर्गीकरण
13.10 बीमा व्यवसाय का लाभ एवं महत्व
13.11 बीमा का क्षेत्र तथा सीमायें
13.12 बीमा के कार्य
13.13 दोहरा बीमा तथा पुनर्बीमा
13.14 पुनर्बीमा के लाभ
13.15 सारांश
13.16 शब्दावली
13.17 बोध प्रश्न
13.18 बोध प्रश्नों के उत्तर
13.19 स्वपरख प्रश्न
13.20 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- जोखिम, जोखिम वर्गीकरण तथा जोखिम समाधान की विधियों का अध्ययन कर सके।
- बीमा का उदय, आवश्यकता तथा परिभाषा का वर्णन कर सके।
- बीमा तथा जुआ, बीमा अनुबन्ध तथा सामान्य अनुबन्ध, इंश्योरेन्स तथा एश्योरेन्स में अन्तर स्पष्ट कर सके। ।
- बीमा का क्षेत्र तथा सीमाओं पर प्रकाश डाल कर सके।
- बीमा व्यवस्था के लाभ तथा महत्व को स्पष्ट कर सके।
- बीमा के कार्यों तथा इसके प्रकारों का विस्तृत वर्णन कर सके।

13.1 प्रस्तावना

जोखिम मनुष्य के सम्मुख हमेशा से रहा है या कहें कि जोखिम जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। जोखिम से सुरक्षा प्राम्त करने के लिये या जोखिम की क्षतिपूर्ति (कुछ संदर्भों में) के लिए ही बीमा की आवश्यकता होती है। मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ मानव ने इस जोखिमों से बचने के लिए नाना प्रकार के उपायों का समय–समय पर सहारा लिया है और विभिन्न प्रकार के सुरक्षा साधनों

को विकसित भी किया है। विनाशकारी शक्तियाँ संसार में बनी रहती हैं, जिससे मनुष्य के जीवन और सम्पदा की हानि या क्षति होने की सम्भावनायें सदैव बनी रहती हैं। सुरक्षा चाहत की इसी विकास मात्रा ने बीमा प्रणाली का आविष्कार किया है। बीमा जोखिम के दुष्परिणामों से सुरक्षा प्रदान करने की एक व्यवस्था है। यदि जोखिम नहीं होगा, तो बीमा की आवश्यकता महसूस नहीं की जायेगी। अतः बीमा को समझने से पहले यह समझना आवश्यक है कि जोखिम क्या है?

13.2 जोखिम (RISK)

'जोखिम' (Risk) का आशय किसी प्रतिकूल घटना द्वारा हानि या नुकसान होने की सम्भावना तथा तत्सम्बन्धी अनिश्चितता से है हानि की अनिश्चितता (Uncertainity of Loss) जोखिम का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है। यदि किसी भी घटना के होने या न होने की निश्चितता हो तो उसे जोखिम नहीं कहा जा सकता है। किसी भी घटना के होने या न होने के अनिश्चित होने पर ही जोखिम का उदय होता है। जोखिम हानि की अनिश्चितता के कारण ही उत्पन्न होता है। यदि यह अनिश्चितता न हो तो जोखिम भी नहीं होगा। किसी घटना के घटित होने से हमें हानि पहुँचेगी या नहीं, कितनी हानि पहुँचेगी तथा कब पहुँचेगी ऐसी समस्त अनिश्चितताओं को ही बीमा की भाषा में 'जोखिम' कहा जाता है। मानवीय सभ्यता का इतिहास इस बात को प्रमाणित करता है कि समयानुसार व्यक्तियों, समुदायों तथा विभिन्न देशों ने सुरक्षा हेतु अनेक साधनों की खोज की है। उनमें से एक 'बीमा' भी जोखिम के दुष्प्रभावों को कम करने में सहायक होता है। प्रत्येक जोखिम में किसी न किसी प्रकार की हानि निहित है ऐसी हानियों के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिए ही बीमा की आवश्यकता होती है।

कुछ विद्वानों ने जोखिम को निम्न प्रकार परिभाषित किया है :

- फ्रेंक एच. नाइट (Frank H. Knight) के अनुसार "जोखिम गणना योग्य अनिश्चितता है।"
- बून तथा कुर्ज (Boon and Kurz) के शब्दों में "हानि या क्षति की सम्भावना को ही जोखिम कहते हैं।"
- डेनेबर्ग (Deneberg) के अनुसार "किसी हानि, क्षति, चोट या विनाश की सम्भावना ही जोखिम है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि घटनाओं की अनिश्चितता न हो तो जोखिम भी नहीं होगा।

13.3 जोखिम का वर्गीकरण (CLASSIFICATION OF RISK)

ए. एच. मोब्रे (A. H. Mowbray) के अनुसार जोखिम को निम्न दो वर्गों मे विभाजित किया जाता है :

1. परिकल्पी जोखिम (Speculative Risk)
2. शुद्ध जोखिम (Pure Risk)

1. परिकल्पी जोखिम (Speculative Risk) :-

यदि किसी जोखिम में लाभ तथा हानि दोनों के होने की सम्भावना हो तो उसे परिकल्पी जोखिम कहते हैं। जैसे बाजार भाव के तेजी या मन्दी से होने वाला जोखिम परिकल्पी जोखिम कहलायेगा, क्योंकि यदि बाजार भाव में तेजी

आयाी तो लाभ और मन्दी आयी तो हानि होने की सम्भावना है। परिकल्पी जोखिम के इसी लक्षण के कारण इस जोखिम को बीमा के क्षेत्र से परे रखा जाता है।

2. **शुद्ध जोखिम (Pure Risk) :–**

शुद्ध जोखिम उस जोखिम को कहा जाता है जिसमें केवल हानि होने की सम्भावना होती है लाभ होने की नहीं। जैसे अग्नि का जोखिम, दुर्घटना का जोखिम, चोरी का जोखिम आदि शुद्ध जोखिम को पुनः तीन भागों में बाँटा जा सकता है :

(अ) व्यक्ति सम्बन्धी जोखिम

(ब) सम्पत्ति सम्बन्धी जोखिम

(स) दायित्व सम्बन्धी जोखिम

(अ) **व्यक्ति सम्बन्धी जोखिम :–**

व्यक्ति सम्बन्धी जोखिम व्यक्ति की जिन्दगी से सम्बन्धित है। इसमें व्यक्ति की जान का जोखिम होता है जो मृत्यु या समकक्ष कारणों से उत्पन्न होता है।

(ब) **सम्पत्ति सम्बन्धी जोखिम :–**

इस जोखिम में सम्पत्ति के नष्ट होने या खो जाने, हानि होने की सम्भावना।

(स) **दायित्व सम्बन्धी जोखिम :–**

विशिष्ट घटनाओं के घटित होने पर जब अन्य च्यक्तियों के प्रति आर्थिक दायित्व उत्पन्न होता है, जिसके कारण हानि होने की सम्भावना रहती है।

13.4 जोखिम समाधान की विधियाँ (METHODS OF HANDLING RISK)

मनुष्य ने अपनी सभ्यता के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के जोखिमों से होने वाली हानियों से बचने के लिए समय–समय पर अनेक उपायों को इसके समाधान के लिए प्रयोग किया है। इन्हीं उपायों में से बीमा सिर्फ एक उपाय है।जोखिम की समस्या के समाधान के अनेक तरीके हैं, जिसमें से निम्नांकित पाँच का वर्णन यहाँ किया गया है :–

1. जोखिम का परिवर्जन (Avoidance of Risk)
2. जोखिम का निवारण (Prevention of Risk)
3. जोखिम का ग्रहण (Consumption of Risk)
4. जोखिम का अन्तरण (Transfer of Risk)
5. जोखिम का बीमा (Insurance of Risk)

1. **जोखिम का परिवर्जन (Avoidance of Risk) :–**

जोखिम के समाधान के इस तरीके में जोखिम से दूर रहा जाता है। जोखिम नहीं, हानि नहीं (No Risk No Loss) के सिद्धान्त को मानने वालों के लिए यह तरीका परिकल्पी (Speculative) जोखिमों से मुक्ति दिला सकता है, परन्तु शुद्ध जोखिम के समाधान में सिर्फ कुछ हद तक ही यह उपयोगी हो सकता है। जोखिम समाधान कि इस विधि का सीमित उपयोग ही सम्भव है। उदाहरण के लिए दीपावली में पटाके बनाने वाली फैक्ट्रियों को बस्तियों से दूर बनाया जाता है क्योंकि इनमें आग लगने का खतरा अधिक होता है।

2. **जोखिम का निवारण (Prevention of Risk)**

यह तरीका जोखिम की समस्या के समाधान का बहुत प्राचीन तरीका है। किन्तु इनसे जोखिम की समस्या का पूर्ण हल नहीं निकाला जा सकता है। ऐसे निवारक उपायों द्वारा हम जोखिम के ज्ञात कारणों से होने वाली हानि को एक सीमा तक नियंत्रित कर सकते हैं। लेकिन हानि के बहुत से अज्ञात तथा अप्रत्याशि कारणों का समाधान इससे सम्भव नहीं होता है।

जोखिम की अनिश्चितता का सामना करने के लिए पहले से ही उन उपाायों को सम्मिलित कर लिया जाता है, जिनसे जोखिम की सम्भावना खत्म या कम हो जाती है। इसके उदाहरण हैं, अग्निकांड के जोखिमों को घटाने के लिए भवन निर्माण में फायर प्रूफ सामग्री का प्रयोग करना, आग बुझाने के लिए फायर हाइड्रेंट का इस्तेमाल करना, चोरी के जोखिमों को नियंत्रित करने के लिए लॉकर सुविधा का इस्तेमाल, मजबूत ताले, चौकीदार, अन्य यांत्रिक उपकरणों का प्रयोग, भूकम्प वाले क्षेत्रों में भवन निर्माण के समय भूकम्परोधी तरीकों का प्रयोग करना ये सब जोखिम निवारण (Prevention of Risk) के उदाहरण हैं।

3. **जोखिम का ग्रहण (Consumption of Risk) :**

मूलतः देखा जाय तो यह जोखिम के समाधान का तरीका नहीं है। किसी भी तरीके के न होने पर भी जोखिम द्वारा हानि होगी तथा उसे सहन करना पड़ेगा। फर्क सिर्फ इतना है कि यदि हमारे दिमाग में इस तरीके का ज्ञान पहले से ही है तो हम इससे निपटने के लिए साधन एकत्र कर सकते हैं।

जोखिम की समस्या का एक आसान सा समाधान है कि जोखिम से हुई हानि को सहन/वहन कर लेना। इसको जाखिम ग्रहण तथा जोखिम प्रतिधारण (Retention of Risk) भी कहा जाता है। इस तरीके को अपनाने में हमें जोखिम से हुई हानियों की भरपाई के लिए प्रयाप्त मात्रा में वित्तीय साधनों को जुटाना पड़ेगा। प्रायः लोग कतिपय विशिष्ठ जोखिमों को वहन करने के लिए एक पृथक निधि (Fund) निर्मित करते हैं, ताकि हानि होने पर उस निधि से उसकी पूर्ति की जा सके। पृथक निधि या आरक्षित (Reserve) बनाकर व्यवसायिक क्षेत्र में जोखिम को स्वयं सहन करने की एक प्रचलित नीति है। किन्तु इस रीती से असाधारण जोखिमों की समस्या का समाधान नहीं हो सकता। हानि सहन/वहन करने के लिए जो निधि निर्मित की गयी हो उससे अधिक हानि होने पर जोखिम से वांछित सुरक्षा नहीं मिल सकती है।

4. **जोखिम का अन्तरण (Transfer of Risk) :–**

ऐसे उपायों द्वारा जोखिमों का तटस्थीकरण (Neutralization of Risk) किया जाता है। जोखिम अन्तरण भी जोखिम के समाधान का ऐसा उपाय है जिससे परिकल्पी जोखिमों से होने वाली हानि की सुरक्षा की व्यवस्था तो की जा सकती है परन्तु शुद्ध जोखिमों के समाधान के लिए यह उपाय भी सीमित महत्व के ही होते हैं। जोखिम से होने वाली हानियों से बचने का एक तरीका यह भी है कि इस जोखिम अथवा हानि को किसी और व्यक्ति को अन्तरित कर दिया जाय। अनेक व्यवसायिक जोखिमों के समाधान के लिए यह रीति प्रचलित है। कई ठेकेदार अपने जोखिम का एक भाग किसी अन्य ठेकेदार को अन्तरित कर देते है। स्टॉक एक्सचेंज तथा अन्य संगठित बाजारों हैजिंग (Hedging) द्वारा जोखिम अन्तरित की जाती है।

5. जोखिम का बीमा (**Insurance of Risk**) :–

उपरोक्त विधियों द्वारा सभी प्रकार के जोखिमों का समाधान नहीं किया जा सकता है। बीमा का जन्म ही जोखिमों से होने वाली हानि को सहन करने के लिए किया गया। अतः बीमा के अनिश्चितताओं को समाप्त कर मनुष्य को सुरक्षा के साथ–साथ निर्भयता प्रदान की है। बीमा द्वारा कुछ प्रीमियम देकर ही मनुष्य अपने जोखिम का हस्तान्तरण बीमा कम्पनियों को कर देता है और बीमा के द्वार विभिन्न आकस्मिक जोखिमों से बचा जा सकता है। जो जोखिम अधिक मूल्य वाले तथा असाधारण हों कि उनको स्वयं वहन करना तथा अन्तरित करना सम्भव नहीं हो, उन जोखिमों का समाधान इनका बीमा करा कर किया जा सकता है।

13.5 बीमा से आशय एवं परिभाषा (MEANING & DEFINITION OF INSURANCE)

प्रतिदिन अखआरों में पढ़ने को मिलता है कि अमुख व्यक्ति की हृदय गति रुक जाने से या मोटर दुर्घटना में मृत्यु हो गयी। यदि किसी परिवार का एक मात्र सदस्य जो रोटी कमाता था की अचानक मृत्यु हो जाती है, तो परिवार पर क्या गुजरती है। आय का साधन बन्द हो जाने से परिवार की सभी क्रियाकलापों पर प्रभाव पड़ता है। कौन जानता है कि कब किसकी मृत्यु हो जाय? कब किसके घर या व्यवसाय में आग से नुकसान हो जाय? कब किसकी व्यवसायिक कनसाइनमेन्ट ले जा रहा जहाज पानी में डूब जाये? इन सब प्रश्नों को इसलिए लिखा गया है क्योंकि इनके उत्तर अनिश्चित हैं। जब तक घटना घट नहीं जाती तब तक इन प्रश्नों के जवाब नहीं मिल सकते। कल क्या होने वाला है या कहें भविषय में क्या होने वाला है,यह अनिश्चित है। इसी प्रकार मकान, दुकान, व्यवसाय, जहाज, रेल आदि के दुर्घटनाग्रस्त होने से लाखों रुपयों की हानि होने के साथ–साथ व्यवसायिक क्षेत्र में अनेक परेशानियां आ जाती हैं। कभी–कभी तो व्यवसाय हमेशा के लिए खत्म हो जाता है।

बीमा एक ऐसा उपाय या साधन है जिससे बीमा कराने वाले को आकस्मिक तथा भारी जोखिमों से सुरक्षा प्रदान करता है। बीमा प्रत्येक प्रकार के जोखिमों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने का एक बेहतरीन साधन है। जोखिम का अर्थ हानि की सम्भावना से है तथा बीमा इस हानि की सम्भावना से मनुष्य को सुरक्षा प्रदान करता है। आकस्मिक दुर्घटनायें संकटों या कठिनाइयों की एक लम्बी श्रृंखला को जन्म देती है। इन विभिन्न कारणों से होने वाली दुर्घटनाओं को तो नहीं रोका जा सकता है परन्तु इनसे होने वाली आर्थिक क्षति की पूर्ति अवश्य की जा सकती है और इस क्षतिपूर्ति का नाम है बीमा।

बीमा का क्षेत्र विस्तृत होने के कारण इसकी कोई एक सर्वमान्य एवं निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकी है। विभिन्न व्यक्तियों ने बीमा शब्द को भिन्न–भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। अध्ययन में सुविधा को देखते हुए बीमा की परिभाषाओं को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1. कार्यात्मक परिभाषायें (Functional Definitions)
2. वैधानिक परिभाषायें (Legal Definitions)

1. **कार्यात्मक परिभाषायें (Functional Definitions)**:–

निम्नांकित परिभाषाओं को कार्यात्मक परिभाषा में सम्मिलित किया जाता है।

1. सर विलियम बेवरिज के शब्दों में "बीमा जोखिमों के सामूहिक वहन को कहते हैं।"

   "The collective bearing of risks is insurance."

2. टॉमस के अनुसार "बीमा एक प्रावधान है जो एक बुद्धिमान व्यक्ति आकस्मिक अथवा अवश्यमभावी घटनाओं, हानि अथवा दुर्भाग्य के विरुद्ध करता है। यह जोखिम फैलाने की एक स्वरुप है।"

   "A provision which a prudent men makes against fortuitous or inevitable contingencies, loss or misfortune. It isa form of spreading risk."

3. घोष तथा अग्रवाल के अनुसार "बीमा किसी जोखिम को जो कि ऐसे व्यक्तियों के समूह पर जो कि खुद उस समूह में पड़े हुऐ हैं, फैलाने का सही ढंग है।"

   "Insurance is a co-operative form of distributing a certain resk over a group of persons, who are exposed to it."

4. डिन्सडेल के शब्दों में "बीमा एक साधन है जिसके द्वारा कुछ की हानियाँ बहुतों में बाँटी जाती हैं।"

   "Insurance is an instrument of distributing the oss of few among many."

2. **वैधानिक परिभाषायें (Legal Definitions):-**

1. न्यायाधीश टिण्डाल के अनुसार "बीमा एक प्रसंविदा है जिसमें बीमादार बीमादाता को एक निश्चित धनराशि एक निश्चित घटना के घटित होने पर जोखिम उठाने के प्रतिफल में देता है।"

   "Insurance is a contract in which a sum of money is paid to the assured in consideration of insurance incurring the risk of paying a large sum upon a given contingency."

1. ई0 डब्ल्यू0 पेटरसर के अनुसार "बीमा दो प्रश्नों के बीच तय की गई एक संविदा है जिसके अन्तर्गत एक पक्ष निश्चित प्रतिफल के बदले में दूसरे पक्ष के विशिष्ठ जोखिमों को ग्रहण करता है और उसे भविष्य में किसी उल्लिखित घटना के घटित होने पर एक निश्चित रकम देने या क्षतिपूर्ति करने का वचन देता है।"

   "Insurance is a contract by which one party for a compensation called the premium, assumes particular risks of other party and promises to pay him or his nominee a certain or ascertainable sum of money on a specific contingency."

2. न्यायाधीश चेनल के अनुसार "बीमा वह अनुबन्ध है जिसका एक पक्षकार जिसे बीमाकर्ता (Insurer) कहते हैं। एक निर्धारित प्रतिफल जिसे प्रीमियम कहते हैं, के बदले किसी दूसरे पक्षकार जिसे बीमित (Insured) कहते हैं, को किसी विशेष घटना के घटित होने पर एक निश्चित धनराशि या उसके बराबर राशि चुकाने का वचन देता है।"

   "Insurance is a contract whereby one person called the insurer undertakes in return for the agreed consideration called premium

to pay to another person called insured a sum of money or its equivalent on specified event."

13.6 इन्श्योरेन्स तथा एश्योरेन्स में अन्तर (DIFFERENCE BETWEEN INSURANCE & ASSURANCE)

सामान्य बोलचाल में तथा आम व्यक्ति के लिए इन्श्योरेन्स तथा एश्योरेन्स शब्द का एक ही अर्थ हो सकता है लेकिन बीमा के क्षेत्र में दोनों शब्दों को अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया गया है। इन्श्योरेन्स शब्द का प्रयोग उन बीमा ठहरावों के लिए किया जाता है जिनमें बीमाकर्ता बीमित व्यक्ति को बीमा ठहरावों में उल्लिखित जोखिमों के कारण हानि होने पर क्षतिपूर्ति करने का उत्तरदायी होता है और यदि उस निर्धारित अवधि में उल्लिखित जोखिमों से कोई हानि नहीं होती है तो बीमाकर्त्ता बीमित को किसी प्रकार का भुगतान नहीं करता है।

एश्योरेन्स का अर्थ है आश्वासन। एश्योरेन्स बीमाकर्ता द्वारा बीमित को दिया गया एक आश्वासन है जिसके आधीन किसी निश्चित घटना के घटित होने या निश्चित समयावधि पूर्ण होने पर एक निश्चित धनराशि बीमित को स्वयं या उसके उत्तराधिकारी को दी जाती है। धनराशि निश्चित तौर पर देने का आश्वासन महत्वपूर्ण होता है जो जोखिम से होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति करता है। यह आश्वासन केवल जीवन बीमा में ही दिया जाता है।

इन दोनों शब्दों का अन्तर निम्नवत स्पष्ट है :

क्र. सं.	अन्तर का आधार	इन्श्योरेन्स (Insurance)	एश्योरेन्स (Assurance)
1.	अर्थ	इसका अर्थ आश्वासन है तथा बीमा की प्रकृति को प्रकट करता है।	यह शब्द बीमा के सिद्धान्त को इंगित करता है।
2.	क्षतिपूर्ति	इस शब्द में क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त लागू होता है।	इसमें क्षतिपूर्ति सिद्धान्त लागू नहीं होता है।
3.	प्रयोग	इसका प्रयोग जीवन बीमा के अतिरिक्त सभी प्रकार के बीमा ठहरावों में किया जाता है।	इसका उपयोग केवल जीवन बीमा में ही किया जाता है।
4.	जोखिम	इस शब्द से जोखिम की सम्भावना ही प्रकट होती है परन्तु निश्चितता प्रकट नहीं होती है।	यह शब्द जोखिम की निश्चितता को प्रकट करता है।
5.	बीमा राशि की मात्रा	इसमें बीमित राशि में से उतनी ही राशि का भुगतान किया जाता है जो क्षति हुई हों।	इसमें जितनी राशि का बीमा कराया गया है वह सम्पूर्ण राशि प्राप्त होती है।
6.	भुगतान प्रप्ति	इसमें घटना के घटित होने पर ही क्षतिपूर्ति या बीमित राशि, जो कम हो, का भुगतान प्राप्त होता है।	इसमें घटना घटित होने या समयावधि पूरी होने पर बीमित राशि का भुगतान प्राप्त होता है।
7.	घटना	इसमें जोखिम की घटना का घटित होना आवश्यक नहीं है।	इसमें किसी एक घटना (मृत्यु / समयावधि पूर्ण होना) का घटित होना निश्चित है।
8.	विनियोग तत्व	इसमें विनियोग तत्व का पूर्णतः अभाव रहता है। अर्थात निश्चित अवधि पूर्ण होने पर कुछ भी नहीं मिलता है।	इसमें विनियोग तत्व निहित रहता है अर्थात समयावधि पूर्ण होने पर राशि वापस मिल जाती है।

13.7 बीमा अनुबन्ध तथा सामान्य अनुबन्ध में अन्तर (DIFFERENCE INSURANCE CONTRACT & GENERAL CONTRACT)

क्र. सं.	अन्तर का आधार	बीमा अनुबन्ध (Insurance Contract)	सामान्य अनुबन्ध (General Contract)
1.	उद्देश्य	सभी बीमा अनुबन्धों का उद्देश्य बीमित को सम्भावी हानियों से सुरक्षा प्रदान करना होता है न कि लाभ प्राप्त करवाना।	सामान्य अनुबन्धों का उद्देश्य लाभ प्राप्त करना हो सकता/होता है।
2.	क्रेता सावधानी नियम	बीमा अनुबन्धों में क्रेता सावधानी (Buyer Caution) का नियम लागू नहीं होता है बल्कि इनमें 'पूर्ण सदभावना' का नियम लागू होता है।	सभी सामान्य अनुबन्धों में 'क्रेता सावधानी' का नियम लागू होता है। पक्षकार बिना पूछे दूसरे पक्षकार को कुछ बताने के लिए बाध्य नहीं होता है।
3.	मौन का अर्थ	बीमा अनुबन्धों में स्वतः तथ्यों को प्रकट न करना मौन द्वारा कपट की श्रेणी में आता है।	इसमें सभी बातों की स्वतः प्रकट न करना मौन द्वारा कपट नहीं माना जाता है।
4.	निष्पादन	सभी बीमा अनुबन्धों में बीमित अपने बचत का निषपादन कर चुका होता है। जबकि बीमाकर्ता की घटना के घटित होने या समय पूर्ण होने पर अपने वचन का निष्पादन करना होता है।	सभी सामान्य अनुबन्ध एक पक्षीय नहीं होते हैं। यं कभी–कभी एक पक्षीय तथा कभी–कभी द्विपक्षीय होते हैं।
5.	सदविश्वास सिद्धान्त	सभी बीमा अनुबन्धों में सद्भावना का सिद्धान्त लागू होता है।	साधारण अनुबन्धों में सद्भावना का सिद्धान्त लागू नहीं होता है।
6.	आश्वासन भंग	बीमा अनुबन्धकों में आश्वासन भंग होने की दशा में अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।	सामान्य अनुबन्धों में आश्वासन भंग होने पर क्षतिपूर्ति होती है, अनुबन्ध समाप्त नहीं होता है।
7.	संयोगिक अनुबन्ध	बीमा अनुबन्ध संयोगिक अनुबन्ध है जिसका निष्पादन किसी घटना के घटित होने या न होने पर निर्भिर करता है।	सभी सामान्य अनुबन्ध संयोगिक अनुबन्ध नहीं होतें हैं।
8.	बीमा योग्य हित	बीमित के लिए यह आवश्यक है कि बीमा अनुबन्ध की विषय वस्तु में उसका बीमा योग्य हित हो।	सामान्य अनुबन्धों में बीमा योग्य हित का सिद्धान्त लागू नहीं होता है।

13.8 बीमा तथा जुए में अन्तर (DISTINCTION BETWEEN INSURANCE AND GAMBLING)

रीगल, मिलर तथा विलियम्स (Riegal, Miller and Williams) ने लिखा है कि "बीमा जुए से एकदम विपरीत है। जुए में दो या अधिक व्यक्ति मनोरंजन या लाभ के लिए जानबूझकर कुछ जोखिम उत्पन्न कर लेते हैं, जबकि बीमा किसी विद्यमान जोख्मि से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए करवाया जाता है।"

समाज का एक समुदाय (तबका) बीमा तथा जुए में फर्क नहीं कर सकता है क्योंकि उसे दोनों शब्दों की स्पष्ट जानकारी नहीं होती है। कभी–कभी यह भी सुनने को मिलता है कि बीमा तो एक प्रकार का जुआ है। यह भ्रम समाज में इसलिए है क्योंकि दोनों में ही किसी निश्चित घटना के घटित होने पर भुगतान करने कावचन दिया जाता है तथा अनुबन्ध का एक पक्ष अपना वचन निभा चुका होता है तथा दूसरे पक्ष का वचन निर्वहन किसी घटना विशेष के घटित होने पर निर्भर करती है। साथ ही दोनों में इन घटनाओं का घटित होना अनिश्चित होता है। इतनी समानताओं के बावजूद इन दोनों में महत्वपूर्ण अन्तर विद्यमान है। इस अन्तर को निम्नवत स्पष्ट किया गया है :

क्र. सं.	अन्तर का आधार	बीमा (Insurance)	जुआ (Gambling)
1.	उद्देश्य	बीमा सम्भावित जोखिम या क्षति को कम करने तथा भारी हानि से बचने के लिए किया जाता है।	जुआ लाभ प्राप्त करने या मनोरंजन के लिए खेला जाता है।
2.	अर्थ	बीमा जोखिम से होने वाली हानियों से बचाव का ऐसा उपाय है जिसके अन्तर्गत कुछ व्यक्तियों की हानियों को अनेकों में फैलाया जाता है।	जुआ एक ऐसा व्यवहार है जिसमें दो पक्षकार भावी अनिश्चितता घटना पर विपरीत मत रखते हुए ठहराव करते हैं कि घटना के घटित होने पर एक पक्ष दूसरे पक्ष को एक निश्चित राशि देगा।
3.	जोखिम की विद्यमानता	जोखिम के पहले से ही विद्यमान होने के कारण इससे बचने या सुरक्षा के लिए बीमा कराया जाता है।	जुए से जोखिम का जन्म होता है।
4.	क्षेत्र	केवल शुद्ध जोखिमों (Pure Risk) का ही बीमा कराया जाता है इसलिए इसका क्षेत्र सीमित है।	जुए का क्षेत्र विस्तृत है यह पक्षकारों की विपरीत सोच से कहीं भी खेला जा सकता है।
5.	सिद्धान्त	बीमा के अनुबन्ध में सहकारिता का सिद्धान्त, परम विश्वास का सिद्धान्त तथा क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त आवश्यक है।	जुए में केवल लाभ–हानि (जीतने तथा हारने) के अतिरिक्त कोई और सिद्धान्त लागू नहीं होता है।
6.	वैधानिकता	बीमा अनुबन्ध वैध होते हैं।	जुए के अनुबन्ध व्यर्थ और अवैध घोषित है।
7.	सामाजिक प्रतिष्ठता	बीमा कराने वाले व्यक्तियों को आर्थिक रुप से सुदृढ समझा जाता है। अतः यह सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है।	जुआ खेलने वालों को सामाजिक रुप से हीन समझा जाता है।
8.	देश में आर्थिक योगदान	बीमा से देश को अनेक प्रकार का योगदान मिलता है, बचत तथा विनियोग को बढ़ावा मिलता है।	जुआ निष्क्रियता को बढ़ावा देता है। इससे देश की प्रगति में बाधा उत्पन्न होती है।

13.9 बीमा का वर्गीकरण (Classification of Insurance)

विभिन्न प्रकार के बीमा को अनेक दृष्टिकोणों से वर्गीकृत किया जा सकता है। यहाँ निम्न वर्णित दो दृष्टिकोणों से बीमा का वर्गीकरण किया गया है :

1. **बीमा व्यवसाय के अनुसार वर्गीकरण (Classification According to Insurance Business)**
2. **संवृत जोखिमों के अनुसार वर्गीकरण (Classification According to Risk Coverd)**

1 बीमा व्यवसाय के अनुसार वर्गीकरण

मुख्य रुप से बीमा व्यवसाय द्वारा पाँच तरह से व्यापार किया जाता है जीवन बीमा, सामाजिक बीमा, समुद्री बीमा, अग्नि बीमा तथा विविध बीमा। वर्गीकरण तथा क्रियाकलापों में एकरुपता की वजह से या भिन्नता के कारण जीवन बीमा को अलग वर्ग में रखा जाता है। इसी प्रकार, सामाजिक बीमा भी पृथक वर्ग में रखा जाता है। अन्य तीन बीमा (अग्नि बीमा, समुद्री बीमा तथा विविध बीमा) को एक पृथक वर्ग में रखा गया है जिसे साधारण बीमा (General Insurance) के नाम से जाना गया है। इस प्रकार बीमा व्यवसाय के आधार पर बीमा को तीन मुख्य भागों में वगीकृत किया गया है :–

1. जीवन बीमा
2. साधारण बीमा
3. सामाजिक बीमा

इन वर्गीकरणों को बेहतर तरीके से रेखाचित्र द्वारा आगे समझाया गया है।

कारोबार के अनुसार बीमा का वर्गीकरण
(Classification on The Basis of Business)

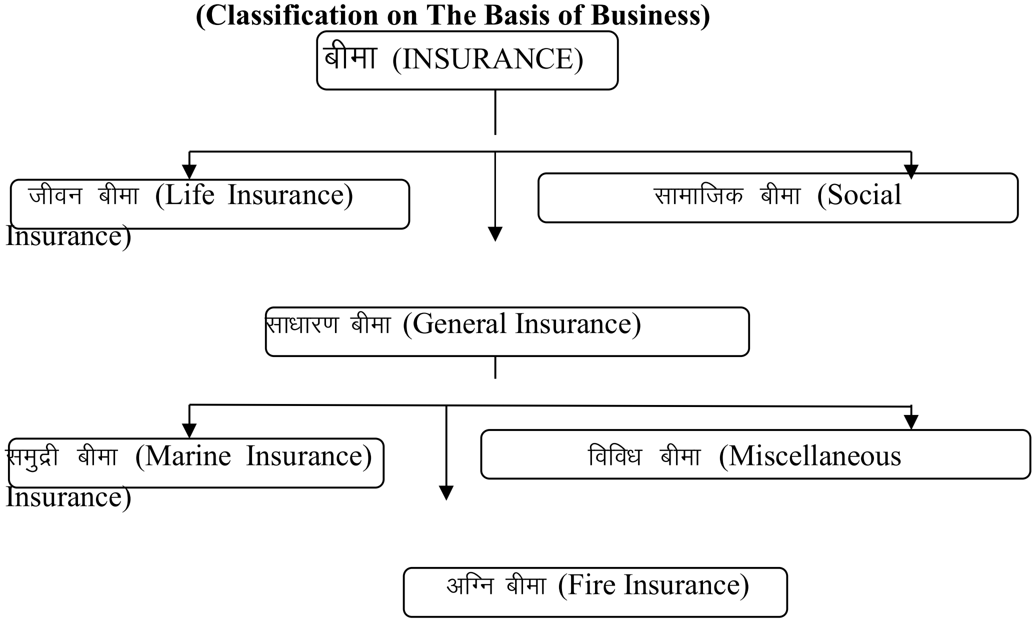

1. जीवन बीमा व्यवयाय **(Life Insurance Business)**

जीवन बीमा व्यवसाय, बीमा ब्यवसाय के अन्य वर्गों से भिन्न है। जैसा हम पहले यह पढ़ चुके हैं कि बीमा व्यवसाय की उत्पत्ति भविष्य में होने वाले जोखिमों के घटने से हानियों की सुरक्षा प्रदान करने के लिए की गयी या क्षतिपूर्ति के लिए की गयी। परन्तु इस बीमा व्यवसाय में क्षतिपूर्ति का नियम लागू नहीं होता है, क्योंकि किसी मनुष्य के जीवन का वित्तीय सूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। भारतीय जीवन बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 2 के अनुसार "जीवन बीमा कारोबार" का आशय है मानव जीवन के प्रति बीमा संविदायें करना। इन संविदाओं के बीमादाता द्वारा बीमादार को यह आश्वासन दिया जाता है कि उसकी मृत्यु होने पर या एक निश्चित अवधि व्यतीत कर लेने पर बीमित धनराशि दे दी जायेगी। अर्थात जीवन बीमा व्यवसाय में बीमित की मृत्यु होने अथवा न होने, दोनों दशाओं में बीमित धनराशि प्राप्त होती है तथा बीमित व्यक्ति की मृत्यु पर उस हानि की क्षतिपूर्ति नहीं की जा सकती है।

2. साधारण बीमा व्यवसाय (General Insurance Business) :-

भारतीय बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 2 के अनुसार "साधारण बीमा व्यवसाय" का आशय अग्नि बीमा, समुद्री बीमा तथा विविध बीमा कारोबार से है, चाहे इनमें से कोई एक कारोबार किया जाय या सभी कारोबार संयुक्त रुप से किये जायें। जीवन बीमा एवं व्यक्तिदुर्घटना बीमा प्रसंविदाओं के अतिरिक्त शेष सभी बीमा संविदायें क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त पर कार्य करती हैं। क्षतिपूर्ति सिद्धान्त का अर्थ है कि बीमित व्यक्ति को भविष्य की सम्भावित जोखिमों से जो हानि पहुँचेगी उसकी क्षतिपूर्ति बीमा कम्पनी द्वारा की जायेगी। इसी को साधारण शब्दों में समझे तो क्षतिपूर्ति सिद्धान्त का उद्‌देश्य बीमित व्यक्ति को हानि होने के बाद उसी वित्तीय दशा या स्थिति में रख देना, जिस दशा में वह बीमित घटना के घटित होने से तुरन्त पहले था। इस तरह के संविदाओं में बीमा कम्पनियाँ किसी निश्चित दुर्घटना या जोखिम से होने वाली वास्तविक हानी की क्षतिपूर्ति करने का आश्वासन देती है। हानि की दशा में बीमित जोखिम को जोखिम को वास्तविक दुर्घटना से वास्तविक हानि या बीमित राशि जो भी कम हो बीमा कम्पनी द्वारा क्षतिपूर्ति के रुप में चुकाया जाता है।

3. सामाजिक बीमा कारोबार (Social Insrance Business) :–

समाज के साधनहीन तथा असहाय वर्गों के हितों में बीमा व्यवसाय द्वारा जो कार्य किया जाता है उसे सामाजिक बीमा का नाम दिया जाता है। इस प्रकार के बीमा व्यवसाय द्वारा समाज के असहाय वर्ग के लिए विभिन्न प्रकार के सहयोगी तथा सहायक कार्य कर समाज में स्थिरता तथा समानता का भाव उत्पन्न करने की कोशिश की जाती है। इन कार्यों में बीमा कम्पनियों द्वारा वृद्धावस्था में पेंशन, बेरोजगारी के भत्ते, दुर्घटना, बीमारी तथा आर्थिक असमर्थता होने पर आर्थिक सहायता तथा समुचित उपचार की व्यवस्था की जाती है। सामाजिक बीमा, सामाजिक सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है इसलिए इसे सरकार के मार्गदर्शन तथा तत्वाधान में संचालित किया जाता है।

2. संवृत जोखिम के अनुसार बीमा का वर्गीकरण (Classification according to risk covered)

बीमा का वर्गीकरण एक अन्य आधार पर भी किया जाता है कि बीमा का मूल विषय क्या है। अर्थात किस प्रकार के जोखिमों का बीमा कराया जा रहा है। बीमित विषय के मुख्य रुप से चार विषय हो सकते हैं जो निम्न प्रकार हैं :

1. वैयक्तिक बीमा
2. सम्पत्ति बीमा
3. दायित्व बीमा

4. गारन्टी बीमा

उक्त वर्गीकरणों को निम्नवत बेहतर तरीके से समझाया जा सकता है।

संवृत जोखिम के अनुसार वर्गीकरण

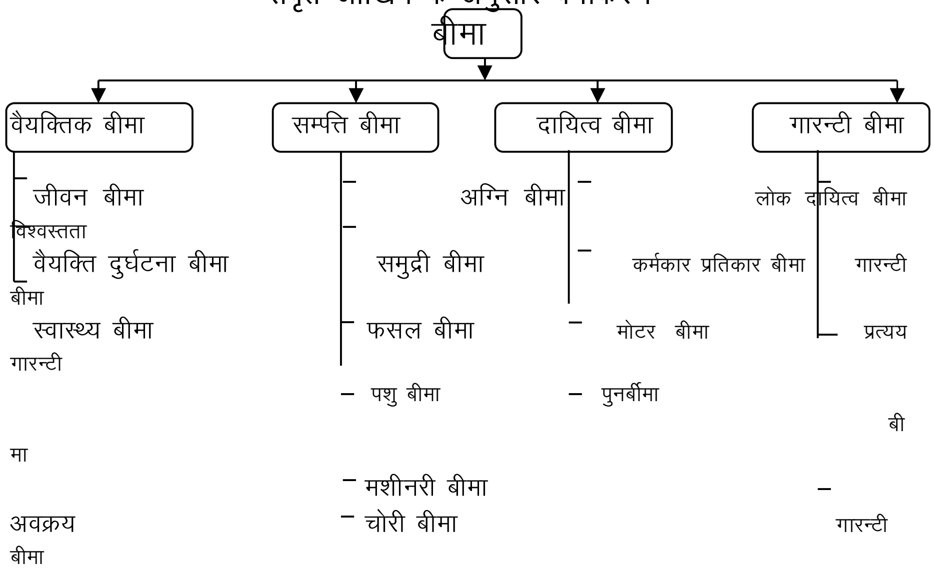

वैयक्तिक बीमा (Personal Insurance)

यह बीमा व्यक्ति से सम्बन्धित है, इसे जीवन सम्बन्धी बीमा भी कहा जाता है। इस वर्ग में जीवन बीमा, वैयक्तिक दुर्घटना बीमा तथा स्वास्थय बीमा को सम्मिलित किया जाता है। जीवन बीमा में बीमित व्यक्ति की मृत्यु या एक निश्चित अवधि के पूर्ण होने पर तथा स्वास्थय बीमा में किसी (बीमित) व्यक्ति के अस्वस्थता के कारण उत्पन्न दायित्व का निर्वहन बीमा कम्पनियों द्वारा किया जाता है।

सम्पत्ति बीमा (Property Insurance)

मानव सम्पत्ति के किसी विशिष्ट (बीमित) भावी सम्भावित जोखिम से हानि होने पर जब हानि की क्षतिपूर्ति, बीमा कम्पनी द्वारा किया जाता है तो यह सम्पत्ति बीमा कहलाता है। इस वर्ग में अग्नि बीमा, समुद्री बीमा, फसल बीमा, पशु बीमा, मशीनरी बीमा तथा चोरी बीमा को मुख्य रुप से सम्मिलित किया जाता है। इस वर्ग में बीमा कम्पनी द्वारा व्यक्ति को आश्वासन दिया जाता है कि यदि भविष्य में व्यक्ति को किसी विशेष प्रकार (बीमित) के जोखिम से हानि होती है तो बीमा प्रीमियम चुकाये जाने के प्रतिफल स्वरुप वह उस हानि की क्षतिपूर्ति करेगी।

दायित्व बीमा (Liability Insurance)

इस वर्ग के अन्तर्गत वह सभी प्रकार की बीमायें आती हैं, जिनके अन्तर्गत बीमा कम्पनी बीमादारों को उनके दायित्वों के कारण हुई हानि की क्षतिपूर्ति करती है। ऐसी बीमाओं के उदाहरण हैं कर्मकारी प्रतिकर बीमा (Workman's compensation insurance), लोक दायित्व बीमा (Public liability insurance), तृतीय पक्षकार दायित्व (Third party insurance), मोटर बीमा (Motor insurance), पुनर्वीमा (Re insurance)।

गारन्टी बीमा (Guarantee Insurance)

बीमा के इस वर्ग में बीमा कम्पनियों द्वारा बीमादार को किसी अन्य तीसरे पक्षकार के बारे में इमानदारी या विश्वसनीयता की गारन्टी देनी होती है, जिससे

इन दोनों पक्षकारों के मध्य समझौता हो सके या अनुबन्ध हो सके। इसके साथ ही यदि उस पक्षकार द्वारा (जिसकी गारन्टी बीमा कम्पनी ने दी है) बेईमान, धोखाधड़ी, अविश्वास तथा वचन भंग किया जाता है और इन सबके कारण बीमादार को किसी प्रकार की हानि होती है, तो उस हानि की क्षतिपूर्ति बीमा कम्पनी द्वारा किया जायेगा। विश्वसतता गारन्टी बीमा (Fidelity Guarantee Insurance), प्रत्यय गारन्टी बीमा (Credit Guarantee Insurance), अवक्रय गारन्टी बीमा (Hire-Purchase Gurantee Insurance) आदि प्रकार के बीमा को इस वर्ग में सम्मिलित किया जाता है।

13.10 बीमा व्यवसाय का लाभ एवं महत्व (ADVANTAGE & IMPORTANCE OF INSURANCE POLICIES)

समाज के लिए बीमा वर्तमान युग की बहुत बड़ी देन है। वर्तमान समय में बीमा का महत्व इतना अधिक बढ़ गया है कि यह कहना अनुचित नहीं होगा कि बीमा द्वारा सम्पूर्ण मानव समाज, देश तथा राष्ट्र का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष हित होता है। मिर्ज़ा इस्माइल के शब्दों में "बीमा के अन्तर्गत दया के समान गुण होते हैं। एसके प्राप्तकर्ता तथा प्रदायक दोनों ही सौभाग्य के अधिकारी होते हैं। बीमा जत्म से लेकर मृत्यु परयन्त आपकी रक्षा करता है।" बीमा के विभिन्न लाभों को अग्रांकित शीषर्कों के अन्तर्गत विस्तार से समझाया गया है।

1 व्यापारी तथा उद्योगपतियों को लाभ (Advantages of Insurance to Business)

(1) ऋण प्राप्ति में सुविधा
(2) साझेदारी व्यवसाय
(3) व्यवसायिक जोखिमों के विरुद्ध सुरक्षा
(4) मितवययता एवं बचत का साधन
(5) व्यवसायिक साख मे वृद्धि
(6) पूँजी की सुरक्षा
(7) विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन

2. समाज को बीमा के लाभ (Advantages of Insurance to Society)

(1) जीवन स्तर में वृद्धि
(2) जीवन स्तर की स्थिरता
(3) अल्प बचतों का सदुपयोग
(4) आत्मनिर्भरता
(5) औद्योगिक विकास
(6) व्यवसायिक अस्थिरता से सुरक्षा
(7) मुद्रा स्फीती में कमी
8) रोजगार में वृद्धि

3 व्यक्ति अथवा परिवार को लाभ (Advantage of Insurance to Individuals or Family)

(1) मानसिक शान्ति
(2) जीवन बीमा बचत को प्रोत्साहित करता है
(3) ऋण प्राप्त करने में सुरक्षा
(4) आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है

(5) आयकर में छूट

(6) बीमा बन्धक सम्पत्ति की सुरक्षित करता है

4. **राष्ट्र को लाभ (Advantages of Insurance to Nation)**

(अ) व्यापारी या उद्योगपतियों को लाभ :–

व्यवसाय या उद्योगों का एकमात्र उद्देश्य होता है लाभ कमाला। लाभ और जोखिम का एक सकारात्मक सम्बन्ध है। जहाँ ज्यादा जोखिम होगा वहाँ लाभ होने की सम्भावना भी अधिक होगी तथा यदि जोखिम कम है तो लाभ की सम्भावना भी कम होगी। व्यापारियों या उद्योगपतियों को अपने व्यवसाय में होने वाले जोखिमों से सम्भावित हानि की सुरक्षा चाहिए होती है और आज के युग में बीमा व्यवसाय यह सेवा प्रत्येक व्यवसायी को देता है। व्यवसायियों के लिए बीमा के लाभों का निम्नवत वर्णन प्रस्तुत है :

1. **ऋण प्राप्ति में सुविधा :–**

ऋण दाता प्रायः उन्हीं व्यवसायियों तथा व्यक्तियों को ऋण देना पसंद करते हैं जहाँ से ऋण की वसूली में व्यवधान उत्पन्न न हो। व्यवसायियों द्वारा माल तथा सम्पत्तियों का बीमा कराये जाने से इन्हें बन्धक रखकर ऋण दाता से आसानी से ऋण प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार से बीमा एक व्यवसायिक साख का आधार का कार्य करता है। अतः बीमित सम्पत्ति या माल के जमानत पर रखे जाने से व्यवसायियों को आसान तथा अधिक मात्रा में ऋण उपलब्ध हो जाता है।

2. **साझेदारी व्यवसाय को लाभ :–**

साझेदारी दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा आपसी समझौते तथा साझेदारी अधिनियम 1932 के अन्तर्गत संचालित किया जाने वाला व्यवसाय है। इस साझेदारी व्यवसाय में साझेदार के अचानक मृत्यु हो जाने पर उसकी पूँजी उसके उत्तराधिकारी को तुरन्त वापस करनी पड़ती है तथा साझे की यह पूँजी वापस कर देने से व्यवसाय की आर्थिक स्थिति कमजोर हो जाती है, जिससे व्यवसाय के लाभों पर भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। लेकिन यदि साझेदार का संयुक्त जीवन बीमा हो रहा हो तो ऐसी स्थिति से बचा जा सकता है। बीमा कम्पनी से मिलने वाले धन से वित्तीय क्षतिपूर्ति हो जाती है तथा व्यवसाय पर वित्तीय नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है। इसका एक लाभ यह भी है कि साझेदारी व्यव्साय पर वित्त की कमी का प्रभाव नहीं पड़ता, जो लाभों को बनाये रखने में भी सहायक होता है।

3. **व्यवसायिक जोखिमों के विरुद्ध सुरक्षा :–**

व्यवसाय में जितने भी प्रकार के जोखिम होते हैं लगभग उन सभी का बीमा कराया जा सकता है। व्यवसायिक जोखिमों से होने वाली हानि का बीमा कराने पर व्यवसायिक कार्यों में एक प्रकार से सुरक्षा आ जाती है। बीमा कम्पनी उन जोखिमों की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेती है तथा व्यवसायी निश्चिंत होकर अपने अन्य कार्यों में संलग्न रहता है तथा आर्थिक लाभ कमाने का प्रयास करता है।

4. **मितवययता एवं बचत का साधन :–**

बीमा व्यवससाय समाज में मितव्ययता एवं बचत का एक ऐसा साधन है जिससे बचत के साथ–साथ भविष्य में होने वाली आकस्मिक जोखिमों से हानि की रक्षा की जाती है। प्रायः अपनी आय का छोटा हिस्सा निकालकर बीमा पालिसी द्वारा

एक बड़ी रकम संग्रह कर पाते हैं। मितव्ययता और वचन की आदतों से ही बीमा के लिए प्रतिमाह प्रीमियम की राशि का भुगतान किया जाता है।

5. विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन :–

विदेशी व्यापार में कई तरह के जोखिम विद्यमान रहते हैं तथा बीमा व्यवसाय के आने से इनमें से अधिकतर जोखिमों का बीमा कराया जा सकता है, जिससे व्यवसायी हानियों की चिन्ता किये बिना आयात–निर्यात व्यवसाय कर सकता है।

6. पूँजी की सुरक्षा :–

प्रत्येक व्यवसाय का जीवन पूँजी पर निर्भर होता है तथा प्रत्येक व्यवसाय में कम या ज्यादा पूँजी होती है। व्यवसाय की पूँजी व्यवसाय की सम्पत्तियों में विनियोजित होती है। आकस्मिक दुर्घटनाओं द्वारा जब व्यवसाय की सम्पत्तियों को नुकसान पहुँचाता है तो अप्रत्यक्ष रुप से व्यवसाय की पूँजी को नुकसान पहुँचाता है इस परिस्थिति में बीमा उन जोखिमों से हुई हानि की पूर्ति कर व्यवसाय को टूटने से बचाता है।

(ब) समाज को बीमा के लाभ (Advantages of Insurance to Society)

वर्तमान समय में बीमा व्यवसाय के व्यापक विास एवं विस्तार से इसके कार्य क्षेत्र में भी काफी वृद्धि हो गयी है। आज समाज का प्रत्येक वर्ग बीमा के लाभों से लाभान्वित हो रहा है। समाज को बीमा व्यवसाय से होने वाले मुख्य लाभ निम्न हैं :

1. जीवन स्तर में वृद्धि :–

बीमा व्यवसाय की व्यापकता का लाभ लेते हुए समाज में अधिकांश लोग जीवन में आने वाली बड़ी जोखिमों का बीमा करा कर सारी जिम्मेदारी बीमा व्यवसाय को अन्तरित कर देते हैं तथा अपनी आय को बढ़ाने के साथ–साथ जीवन जीने की शैली में भी सुधार करते हैं।

2. जीवन स्तर की स्थिरता :–

जीवन बीमा निगम के अन्तर्गत विभिन्न तरह की जीवन बीमा पालिसी चलायी जा रही हैं जिनका लाभ समाज का प्रत्येक वर्ग को मिल रहा है। इन लाभों के संदर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि किसी व्यक्ति की अचानक मृत्यु होने पर बीमा आश्रितों के आवश्यक प्रबन्ध करने का साधन का काम करता है तथा जीवन स्तर बनाये रखने में बड़ा सहायक होता है। जीवन बीमा, सामाजिक बीमा, स्वस्थ्य बीमा तथा दुर्घटना बीमा में आश्रितों के लिए उपयुक्त प्रबन्ध हैं।

3. अल्प–बचतों का सदुपयोग :–

बीमा कम्पनियाँ प्रीमियम के रुप में जनता तथा बीमित से छोटी–छोटी बचतों को एकत्रित करती है तथा जनता से छोटी–छोटी बचतें बीमा व्यवसाय के पास एक बड़ी राशि बन जाती है, जिसका प्रयोग यह देश की अर्थव्यवस्था में अनेक उम्पादक कार्यों के लिए करती हैं। इस प्रकार बीमा व्यवसाय द्वारा छोटी–छोटी बचतों को एक बड़ी राशि का रुप देकर उत्पादक कार्य कर समाज को अनेक लाभ प्रदान किये जाते हैं।

4. आत्मनिर्भरता :–

बीमा करा लेने के पश्चात बीमित व्यक्ति आत्मनिर्भरता का अनुभव करता है। इसका कारण है कि बीमित व्यक्ति ने अपने जीवन के तथा व्यवसाय के बड़े जोखिमों का बीमा कर हानियों की जिम्मेदारी बीमा व्यवसाय के कन्धों पर

हस्तान्तरित कर दी है। साथ ही मृत्यु होने पर उसके परिवार की आर्थिक सहायता बीमा कम्पनी करती है।

5. **औद्योगिक विकास :–**

औद्योगिक विकास में बीमा कम्पनियों का बड़ा योगदान है। उद्योगों के विकास के लिए मूल आवश्यकता पूँजी की होती है, उसके लिए बीमा कम्पनियाँ जनता से या बीमितों से छोटी–छोटी रकम प्रीमियम के रुप में एकत्र कर इनको देश के उद्योगों में विनियोजित करती हैं। इससे देश के उद्योगों को आर्थिक सहायता के लिए इधर–उधर भटकना नहीं पड़ता है और उनकी निरन्तर उन्नति और वृद्धि होती है।

6. **व्यवसायिक अस्थिरता से सुरक्षा :–**

बीमा व्यवसाय ने अपने उद्देश्य के प्रतिरुप ही समाज में व्यक्तियों के बीच सुरक्षा का प्रबन्ध करने तथा उत्तरदायित्व निभाने का भाव भी जाग्रत किया है। बीमा ने जोखिमों से सुरक्षा प्रदान कर व्यवसायिक अस्थिरता से बहुत हद तक समाज को मुक्त कर दिया है। आज समाज में यह चिन्ता नहीं होती है कि जिस व्यवसाय में उसने विनियोग किया है उसका भविष्य क्या होगा।

7. **मुद्रा स्फिति में कमी :–**

बीमा कम्पनियो द्वारा मुद्रा की पूर्ति तथा माँग में सकारात्मक भूमिका निभाई जाती है। जनता से प्रीमियम वसूल कर मुद्रा की पूर्ति को कम करके तथा इन्हीं प्रीमियमों की एकत्रित राशि को उत्पादक कार्यों में लगाकर मुद्रा की माँग में सहायता कर मुद्रा स्फीति को कम करने का प्रयास किया जाता है।

8. **रोजगार में वृद्धि :–**

बीमा दो तरह से रोजगार वृद्धि में सहायक है। एक तो बीमा स्वयं एक व्यवसाय है तथा किसी भी व्यवसाय को सफलता पूर्वक चलाने के लिए पूँजी के साथ–साथ मानव हाथों की भी आवश्यकता होती है। अतः बीमा व्यवसाय स्वयं देश में रोजगार अर्जित करता है। दूसरा बीमा व्यवसाय द्वारा अन्य व्यवसायों को सुरक्षा प्रदान की जाती है तथा बीमा व्यवसाय अपना पैसा भी अन्य व्यवसायों के क्रियाकलापों से लाभ कमाने के उद्देश्य से विनियोजित करता है, जिससे देश के अन्य व्यवसाय भी सुदृढ़ स्थिति में होते हुए विकास करते हैं तथा रोजगार का सृजन करते हैं।

(स) व्यक्ति अथवा परिवार को लाभ (Advantages of Insurance to Individuals or Family)

व्यक्ति विशेष या परिवार को मिलने वाले बीमा लाभों को निम्न प्रकार वर्णित किया गया है:

1. **बीमा मानसिक शक्ति प्रदान करता है :–**

आध्यात्मिक रुप से देखा जाय तो भविष्य में घटने वाली विभिन्न घटनाओं के जोखिमों से होने वाली हानियों को जीवन बीमा या अन्य बीमा द्वारा क्षतिपूर्ति करने का वादा कर मानव की मानसिक शान्ति प्रदान की जाती है। सुरक्षा की इच्छा के सन्तुष्ट होने पर मानसिक शान्ति तथा असन्तुष्ट होने पर मानसिक तनाव उत्पन्न होता है, जिससे प्रतिकूल प्रतिक्रिया होती है तथा व्यक्ति अपने कार्य में मन नहीं लगा सकता। हानि के विरुद्ध सुरक्षा का वादा उस हानि की चिन्ता से मुक्ति दिलाता है।

2. **बचत को प्रोत्साहन :–**

जीवन बीमा तथा अन्य बीमा में अन्तर यह है कि जीवन बीमा में सुरक्षा के साथ–साथ बचत या विनियोग का तत्व भी पाया जाता है, जबकि अन्य बीमा में केवल सुरक्षा का तत्व ही पाया जाता है। जीवन बीमा में पाये जाने वाले विनियोग या बचत तत्व के कारण व्यक्ति या परिवारों की सोच रहती है कि यदि कोई दुर्घटना नहीं हुई तो भी छोटी–छोटी प्रीमियमों के जमा करने से बीमा कम्पनियों के पास अन्त में एक अच्छी रकम जमा हो जाती है जिसे समय पूर्ण होने पर वह सम्बन्धित व्यक्ति को लौटा देते हैं। अतः बचत या विनियोग तत्व की उपस्थिति मानव जीवन में बचतों को प्रोत्साहन देता है।

3. **बीमा बन्धक सम्पत्ति को सुरक्षित करता है :–**

यदि किसी व्यवसाय या ब्यक्ति ने सम्पत्तियों को बन्धक बनाकर ऋण लिया है और किसी दुर्धटना से सम्पत्तियाँ नष्ट हो गई हों, तो ऋणदाता का ऋण वापस लेने का अधिकार खत्म हो जाता है, क्योंकि जिन सम्पत्तियों के बन्धक होने पर ऋण दिया गया था वह नष्ट हो गई है। परन्तु यदि बन्धक सम्पत्तियों का बीमा कराया गया है तो सम्पत्तियों के दुर्घटना में नष्ट होने पर भी ऋणदाता के ऋण को बीमा द्वारा क्षतिपूर्ति कर वापस किया जायेगा।

4. **बीमा आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है :–**

मानव की प्रथम इच्छा रहती है कि वह तथा उसका परिवार आर्थिक रुप से सुरक्षित हों। आर्थिक सुरक्षा की इच्छा प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों को उनके भविष्य के लिए होती है। बीमा द्वारा समाज में लगभग हर तरह के जोखिमों से होने वाली हानियों से सुरक्षा प्रदान की जाती है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति के साथ उसके परिवार से जुड़ी हुई आर्थिक समस्यायें होती हैं लेकिन इन सबका बीमा करा देने से होने वाले जोखिमों की क्षतिपूर्ति बीमा कम्पनियों द्वारा की जाती है।

5. **बीमा से आयकर में छूट प्राप्त होती है :–**

बीमा कराने पर व्यक्ति द्वारा दिया जाने वाला प्रीमियम की राशि आयकर अधिनियम की विशेष धारा, के अन्तर्गत आयकर से मुक्त है। अतः बीमा प्रीमियम से एक ओर आयकर से छूट मिलती है तथा दूसरी ओर भविष्य की सम्भावित घटना के घटित होने पर क्षतिपूर्ति।

(द) राष्ट्र को लाभ (Advantages of Insurance to Nation) :–

सरकार द्वारा बनाये गये नियम के अनुसार बीमा कम्पनियों को अपने द्वारा प्राप्त प्रीमियम का एक भाग आवश्यक रुप से सरकारी प्रतिभूनियों में विनियोजित करना होता है, जिससे सरकार को बीमा व्यवसाय से बड़ी मात्रा में धन प्राप्त होता है जिसे वह देश की अर्थव्यवस्था की बेहतरी के लिए प्रयोग करती है। इसके साथ ही बीमा कम्पनियाँ विदेशों में बीमा का कारोबार कर देश के लिए विदेशी विनिमय सफल करती हैं। किसी देश के मुद्रा बाजार के विकास में उस देश के बीमा व्यवसाय का महत्वपूर्ण योगदान है।

13.11 बीमा का क्षेत्र तथा सीमायें (SCOPE & LIMITATION OF INSURANCE)

बीमा इसी अनिश्चितता को निश्चितता में परिवर्तित कर देता है। जब बीमा का प्रयोग किया जाता है, तो बीमित व्यक्ति को पता होता है कि भविष्य में यदि किसी विशेष प्रकार के जोखिम (जिसका बीमा कराया गया हो) से हानि होती है तो उसकी क्षतिपूर्ति बीमाकर्ता द्वारा कर दिया जायेगा। भविष्य अनिश्चित है तथा

कब किसको कितनी हानि वहन करनी पड़ेगी इसे कोई नहीं जानता है। वर्तमान समय में बीमा कम्पनियों द्वारा देश की अर्थव्यवस्था में प्रत्यक्ष प्रभाव डाला जा रहा है। यह देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान निभा रहा है। बीमा आज के मानव की एक अनिवार्य आवश्यकता बल गया है। यह सत्य है कि बीमा आज की जरुरत है लेकिन आधुनिक युग में सभी प्रकार के जोखिमों का बीमा सम्भव हीं है। बीमा क्षेत्र की कुछ सीमाये निम्नांकित हैं :

1. बीमा वित्तीय मूल्य तक ही सीमित होता है।
2. बीमा याग्य हित होना आवश्यक है।
3. जोखिम महत्वपूर्ण होना चाहिए।
4. सभी जोखिमों का बीमा सम्भव नहीं है।
5. हानि की गणना करना सम्भव होना चाहिए।
6. हानि अचानक होनी चाहिए।
7. हानियाँ उचित रुप से अप्रत्याशित हों।
8. हानियाँ अत्यधिक विनाशकारी नहीं होनी चाहिए।

1. बीमा वित्तीय मूल्य तक ही सीमित होता है :–

भौतिकता आनन्द, ऐश्वर्य आदि को बीमा द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता है। बीमा अनुबन्ध द्वारा केवल किसी विशेष जोखिम से होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति वित्तीय मूल्य में की जा सकती है। इसलिए बीमा का क्षेत्र उन विशेष वस्तुओं तक सीमित है जिनके लिए वह दुर्घटना के समय क्षतिपूर्ति करना है। जीवन बीमा इस सामान्य नियम का अपवाद है क्योंकि जीवन बीमा में व्यक्ति विशेष के जीवन का बीमा किया जाता है तथा किसी भी व्यक्ति के जीवन का मूल्य नहीं आँका जा सकता है। इसके साथ ही किसी व्यक्ति की मृत्यु पर उसके परिवारजनों को जो दुःख होता है उसका भी मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। इन दुःखों को बीमा द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है, परन्तु बीमा उस परिवार को जिसका एक सदस्य (बीमित) मृत्यु को प्राप्त हुआ है, पालिसी के अनुरुप निश्चित राशि देती है जिससे उस परिवार पर वित्तीय बोझ को कम किया जा सके।

2. बीमा याग्य हित होना आवश्यक है :–

बीमा अनुबन्ध का एक महत्वपूर्ण तत्व है कि जिस वस्तु, सम्पत्ति या व्यक्ति का बीमा कराया जा रहा है उसमें बीमादार का योग्य हित होना चाहिए। अर्थात जिस व्यक्ति, वस्तु या सम्पत्ति का बीमा करवाया गया हो उसके रहने से बीमादार को लाभ तथा उसके सुरक्षित न रहने से बीमादार को हानि होना चाहिए। यदि यह हित (बीमा योग्य हित) नहीं है तो बीमा अनुबन्ध का कोई वैधानिक औचित्य नहीं होगा, अर्थात जिस वस्तु या सम्पत्ति में योग्य हित नहीं है उसका वैधानिक तौर पर बीमा नहीं किया जा सकता है।

3. जोखिम महत्वपूर्ण होना चाहिए :–

प्रायः यह देखा जा ता है कि समाज में व्यक्तियों द्वारा केवल उन्हीं जोखिमों का बीमा किया जाता है जो महत्वपूर्ण होते हैं तथा मामूली जोखिमों का बीमा नहीं कराया जाता है।यह इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि बीमा कम्पनियों के संचालन कार्यों का वहन भी अप्रत्यक्ष रुप से बीमित व्यक्ति द्वारा ही किया जाता है। बीमा कम्पनियों द्वारा इन संचालन व्ययों का वहन नहीं किया

जाता है। इसलिए यदि मामूली जोखिमों का बीमा करवाया जायेगा तो इसके संचालन व्यय का वहन भी बीमादार द्वारा ही अप्रत्यक्ष रुप से किया जायेगा तथा बीमा काफी महंगाा होगा इसलिए कुल मिलाकर देखा जाये तो इन मामूली जोखिमों का बीमा कराना वांछनीय नहीं होगा, इस प्रकार के मामूली जोखिमों को व्यक्ति द्वारा स्वयं ही वहन कर लेना चाहिए।

4. **सभी जोखिमों का बीमा सम्भव नहीं है :–**

सभी प्रकार के जोखिमों का बीमा नहीं करवाया जा सकता है। यह बीमा क्षेत्र की सबसे बड़ी सीमा है। कुछ चारित्रिक, वैधानिक, व्यापारिक तथा आस्थिक कार्य इस प्रकार के होते हैं जिनका कोई प्रतिफल नहीं होता है। अतः ऐसे जोखिमों का बीमा नहीं कराया जा सकता है।

5. **हानि की गणना करना सम्भव होना चाहिए :–**

बीमा केवल उन्हीं हानियों का सम्भव है जिसका पूर्वानुमान पूर्व की घटनाओं तथा गणितीय सिद्धान्तों के आधार पर लगाया जा सकता है। सभी प्रकार के बीमा के पीछे यही विज्ञान है तथा जहाँ यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता है वहाँ बीमा भी सम्भव नहीं है।

6. **हानि अचानक होनी चाहिए :–**

बीमित व्यक्ति द्वारा जिन जोखिमों का बीमा कराया गया हो उनसे हानि अचानक ही होनी चाहिए। बीमित के जानबूझकर किये गये कार्यों अथवा उसके भड़काने में आने से होने वाली हानि का बीमा नहीं किया जाता है। इसके विपरीत बीमित के अलावा किसी और के द्वारा जानबूझकर किये गये कार्यों द्वारा होने वाली हानियों का बीमा कराया जा सकता है। जैसे चोरी, द्वेष के कारण नुकसान करना, जानबूझकर आग लगा देना आदि।

7. **हानियाँ उचित रुप से अप्रत्याशित हों :–**

उचित रुप से अप्रत्याशित का अर्थ है कि बीमित व्यक्ति, सम्पत्ति तथा वस्तु में हानि होने की सम्भावनायें प्रबल नहीं होनी चाहिए। यदि ऐसा है तो उस व्यक्ति, सम्पत्ति या वस्तु का बीमा नहीं किया जा सकता है। जैसे जीवन बीमा के क्षेत्र में दिल की गम्भीर बीमारी वाले व्यक्ति का जीवन बीमा कर पाना बसम्भव है। इसका तात्पर्य है कि बीमित क्षेत्र में जोखिम से हानि होने की सम्भावनायें सामान्य या सामान्य से कम होनी चाहिए।

8. **हानियाँ अत्यधिक विनाशकारी नहीं होनी चाहिए :–**

हानियाँ अत्यधिक विनाशकरी नहीं होनी चाहिए का अर्थ है कि बीमा कम्पनियाँ अधिकांश जोखिमों से होने वाली हानियों का बीमा करती हैं। लेकिन यदि हानियाँ इतनी बड़ी हों कि उनकी क्षतिपूर्ति बीमा कम्पनियों के इस संदर्भ में निर्मित कोष से बहुत ज्यादा हो तो ऐसी हानियों का क्षतिपूर्ति कर पाना बीमा कम्पनियों के इस संदर्भ में निर्मित कोष से बहुत ज्यादा हो तो ऐसी हानियों का क्षतिपूर्ति कर पाना बीमा कम्पनियों के लिए सम्भव नहीं होता है। उदाहरण के लिए – युद्ध के परिणामस्वरुप राष्ट्रीय स्तर पर मौतें अथवा सम्पत्तियों की हानियाँ इतनी अधिक होती हैं कि उनका बीमा केवल सरकार द्वारा ही किया जा सकता है।

13.12 बीमा के कार्य (FUNCTIONS OF INSURANCE)

बीमा व्यवसाय के कार्यों को मुख्य रुप से तीन भागों में विभक्त करते हुऐ अनेक उपयोगों मे निम्नवत विभाजित किया गया है :

1 **प्रमुख कार्य :–**

1 निश्चितता प्रदान करना

2. सुरक्षा प्रदान करना

3. जोखिमों का वितरण

2 **सहायक या गौण कार्य :–**

1 पूँजी की व्यवस्था करना

2. व्यवयायिक कुशलता

3. हानियों की सम्भावनाओं को समाप्त करना

3 **अन्य कार्य :–**

1 विश्वास उत्पन्न करना

2. बचत को प्रोत्साहन

3. व्यापार, उद्योग तथा राष्ट्र के लिए वित्तीय स्थिरता प्रदान करना

1 **बीमा के प्रधान कार्य (Primary Functions)**

1. **निश्चितता प्रदान करना :–**

प्रतिकूल परिस्थितियों तथा घटनाओं की अनिश्चितता को खत्म या कम कर निश्चितता प्रदान करना बीमा का प्रमुख कार्य है। बीमा की मूल आवश्यकता भविष्य की अनिश्चितता की वजह से है। भविष्य में सम्भावित घटनायें घटेंगी या नहीं, घटेंगी तो कब, कितनी मात्रा में और किस प्रकार। यह सब अनिश्चित है। बीमा करा लेने से यह सब अनिश्चितताओं की चिन्ता खत्म हो जाती है, क्योंकि बीमा इन सब अनिश्चितताओं की क्षतिपूर्ति का वादा कर बीमा कराने वाले से एक पूर्व निश्चित रकम प्रीमियम के रुप में लेती है तथा वही रकम हानि की निश्चितता व्यक्त करती है।

2. **सुरक्षा प्रदान करना :–**

भविष्य में होने वाली घटनाओं की अनिश्चितता से मानव मन में असुरक्षा का भाव उत्पन्न होता है। इन घटनाओं के घटने से कब, कितनी, और कैसी हानि होगी यह सब अनिश्चित होता है परन्तु घटनाओं का बीमा हो जाने से यह असुरक्षा की चिन्ता बीमा कम्पनियों के कन्धों पर हस्तान्तरित हो जाती है। भविष्य निश्चित होने से व्यक्ति अपने आप को सुरक्षित महसूस करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बीमा का एक महत्वपूर्ण कार्य व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान करना है।

3. **जोखिमों का वितरण :–**

बीमा जोखिमों को व्यापक आधार पर वितरित करने का कार्य करता है। निश्चितता तथा सुरक्षा प्रदान करने के साथ–साथ बीमा का एक महत्वपूर्ण कार्य जोखिमों का वितरण करना भी है। बीमा कम्पनियाँ अपने जोखिमों को पूरे समूह में वितरित करती हैं। एक समूह में कुछ ही बीमित होते हैं जो दुर्घटनाग्रस्त होते हैं, जिन्हें बीमा कम्पनी द्वारा क्षतिपूर्ति करी जानी है परन्तु प्रीमियम इस समूह के सभी बीमितों द्वारा दिया जाता है। इसलिए क्षतिपूर्ति की एक निश्चित राशि को पूरे समूह में वितरित किया जाता है। बीमा कम्पनी इन जोखिमों की पूर्ति प्राप्त हुई प्रीमियमों से करती है, उनको अपने पास से कुछ नहीं देना होता है।

2. **बीमा के गौण कार्य (Secondary Functions)**

सुरक्षा की व्यवस्था द्वारा बीमा व्यवसायिक कार्यकलाप में अनेक अन्य सुविधायें, अवसर और नाम भी प्रदान करता है। इन्हें हम बीमा के गौण कार्य कहते हैं, जो निम्नलिखित हैं :

1. **पूँजी की व्यवस्था करना :–**

अर्थव्यवस्था में पूँजी का महत्व सर्वविदित है। पूँजी सुलभ कराने में बीमा संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। बीमा द्वारा पूँजी निम्नांकित तीन महत्वपूर्ण तरीकों से सुलभ या गतिशील होती है :

- बीमा सुरक्षा प्रदान करता है जिससे व्यवसायियों को भविष्य में होने वाली हानियों की पूर्ति के लिए व्यवसाय की पूँजी का एक भाग हानि सम्बन्धी निधि (Fund) बनाने में सुरक्षित नहीं रखनी पड़ती है, जिससे व्यवसाय की पूँजी का उत्पादक कार्यों में सदुपयोग किया जाता है।
- बीमा पूँजी निर्माण (Capital Formation) में महत्वपूर्ण योगदान देता है। बीमा प्रीमियम के रुप में छोटी–छोटी राशियाँ बीमितों से एकत्रित कर एक बड़ी राशि एकत्र निधि (Fund) के रुप में औद्योगिक और व्यवसायिक कार्यों के लिए उपलब्ध कराता है।
- बीमा पालिसी के आधार पर आसानी से उचित सीमा तक ऋण मिल जाता है। आधुनिक वित्तीय संस्थायें व्यापारियों को उनके भवन, माल तथा अन्य सम्पदा की प्रतिभूति (Security) पर तभी ऋण स्वीकार करते हैं जब उनका बीमा करा लिया हो। इस तरह बीमा साख प्राप्त करने में भी सहायक सिद्ध होता है।

2. **व्यवसायिक कुशलता में वृद्धि :–**

बीमा कराने से व्यवसायी को भविष्य में होने वाली अनिश्चित घटनाओं से सुरक्षा प्राप्त हो जाती है, जिससे वह अपने कारोबार में शोध तथा विकास पर अधिक समय दे सकता है तथा नये–नये प्रयोगों को अपनाने में हिचकिचाता नहीं है और व्यवसाय की अभिवृद्धि करने का प्रयास करता है। इन सब से उसकी व्यवसायिक कुशलता में वृद्धि होती है।

3. **हानियों की सम्भावनाओं को समाप्त करना :–**

बीमा कम्पनियों का लाभ इस बात पर निर्भर करता है कि बीमित कम से कम दुर्घटना ग्रस्त हों। इस प्रकार बीमा कम्पनियाँ सम्भावित घटनाओं को अथवा दूर करने के लिए नये–नये उपाय तथा तकनीक खोजते रहते हैं। इस उद्देश्य से बीमा कम्पनियों ने अपने अनुभवों और निरन्तर अनुसंधान के आधार पर अनिश्चितता को दूर करने, चिन्ता हटाने तथा हानि को कम करने के उपायों के प्रचार–प्रसार से हानि निवारण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अगर बीमादार कम्पनी द्वारा सुझाये गये उपायों को व्यवहारिक रुप में अपनाता है तो उसे प्रीमियम की राशि कम देने की सुविधा दी जाती है।

3 **अन्य कार्य (Other Work)**

उपरोक्त प्रमुख तथा गौण कार्यों के अतिरिक्त बीमा द्वारा कुछ कार्य ऐसे भी किये जाते हैं जिनको उपरोक्त वर्णित वर्गीकरणों को समामेलित नहीं किया गया है। यह कार्य प्रत्यक्ष रुप से बीमा द्वारा सम्पन्न होते हुए नहीं दिखाई देते हैं लेकिन अप्रत्यक्ष रुप से ये कार्य बीमा के सहयोग से ही सम्पन्न होते हैं। बीमा

द्वारा किये जाने वाले ऐसे कार्यों का बीमा के परोक्ष कार्य या अन्य कार्य कहा जाता है जिनका वर्णन निम्न किया गया है :

1. **विश्वास उत्पन्न करना :–**

बीमा किसी भी देश में व्यवसायिक तथा आर्थिक जोखिमों के प्रति सुरक्षा प्रदान करती है तथा व्यवसायियों तथा उद्यमियों के लिए पूँजी की व्यवस्था करता है तथा इसमें सहायता करता है। इससे देश की अर्थव्यवस्था में विश्वास उत्पन्न होता है। इन सब कार्यों द्वारा देश के उद्यमियों को देश की अर्थव्यवस्था में अधिक सकारात्मक रुप से प्रतिभाग करने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार की गतिविधियों से व्यवसायिक दक्षता में वृद्धि होती है तथा व्यवसाय एवं उद्योग धन्धों का विकास होता है।

2. **बचत का प्रोत्साहन करना :–**

मूलतः देखा जाये तो बीमा का विकास मानव जीवन में घटने वाली अनिश्चित घटनाओं के जोखिमों से सुरक्षा प्रदान के लिए किया गया। बीमा कराना मनुष्य की आवश्यकता है यदि वह भविष्य में घटने वाली नकारात्मक घटनाओं के जोखिमो से होने वाली हानियों से बचना चाहता है। इसलिए बीमा के प्रीमियम चुकाने के लिए व्यक्तियों द्वारा बचत अनिवार्य रुप से की जाती है। जिससे यह आदत धीरे–धीरे परिवारों में बचत करने की आदत को प्रोत्साहित करती है तथा सामूहिक रुप से इस प्रकार की बचतें राष्ट्र के लिए भी महत्वपूर्ण होती हैं। इस प्रकार बीमा व्यवसाय अप्रत्यक्ष रुप से समाज को बचत करने में सहायता प्रदान कर सामूहिक बचतों से राष्ट्र निर्माण में मुख्य भूमिका निभाता है।

3. **व्यापार, उद्योग तथा राष्ट्र के लिए वित्तीय स्थिरता प्रदान करना :–**

बीमा द्वारा किया जाने वाला व्यवसाय यदि सम्पूर्ण रुप से देखे तो पूरे देश में एक ऐसा आवरण तैयार करता है जिसमें प्रत्येक व्यापारी, उद्योगपति या व्यवसायी अपने आप को तथा अपने व्यवसाय को भविष्य की नकारात्मक घटनाओं के घटित होने से उत्पन्न हानियों से सुरक्षित महसूस करता है। बीमा व्यवसाय ने मानव जीवन के जाखिम, व्यवसायिक तौर पर आग, पानी तथा आपदाओं से होने वाले जोखिमों की सुरक्षा या क्षतिपूर्ति का वादा कर समाज के प्रत्येक वर्ग विशेषकर व्यापारियों तथा उद्योगपतियों को वित्तीय रुप से स्थिर तथा मजबूत बनाया है। भयंकर अग्निकांड या आपदा से आर्थिक बर्बादी होती है तथा सम्पूर्ण देश को हानि सहन करनी पड़ती है। लाभों की हानि के प्रति भी बीमा व्यवसाय द्वारा सुरक्षा प्रदान की जाती है। बीमा से उद्योगों को वित्तीय स्थिरता मिलती है जिसका समाज को प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार बीमा व्यवसाय देश में आर्थिक सन्तुलन लाने में भी सहायक होता है।

बीमा व्यवसाय के उपरोक्त वर्णित प्रमुख गौण तथा अन्य कार्यों से व्यवसायियों तथा आम समाज को अत्यन्त मूल्यवान लाभ प्राप्त होते हैं तथा इन कार्यों से देश की उन्नति तथा राष्ट्र निर्माण में सहायता मिलती है। वर्तमान समय में किसी भी देश के बीमा व्यवसाय के आँकड़े उस देश की उन्नति तथा आर्थिक स्थिरता का ज्ञान कराते हैं। बीमा द्वारा प्रदान किये जाने वाले लाभों का आकलन करे तो यह प्रतीत होता है कि आज समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए बीमा आवश्यक है।

13.13 दोहरा बीमा तथा पुनर्बीमा (DOUBLE & RE INSURANCE)

किसी भी प्रकार के बीमा व्यवसाय का मूल तत्व है बीमा अनुबन्ध। प्रत्येक बीमा अनुबन्ध के अन्तर्गत किसी न किसी विषय वस्तु का बीमा किया जाता है परन्तु कभी–कभी कुछ व्यक्ति या व्यवसाय एक बार बीमित वस्तु या सम्पत्ति का पुनः बीमा करा देती हैं। ऐसी स्थिति में जब एक बार बीमित वस्तु या सम्पत्ति का दोबारा बीमा कराया जाता है तो इसे दोहरा बीमा या पुनर्बीमा कहा जाता है।

1. दोहरा बीमा (Double Insurance)

जब एक ही वस्तु, सम्पत्ति या व्यक्ति का बीमा एक से अधिक बीमा कम्पनियों से करा लिया जाता है तो इसे दोहरा बिमा कहा जाता है। आमतौर पर यह देखा जाता है कि जीवन बीमा में एक व्यक्ति अपने जीवन की सुरक्षा से सम्बन्धित कई बीमा अनुबन्ध पत्र एक कम्पनी से ले सकता है। परन्तु यदि एक व्यक्ति अपने जीवन की सुरक्षा एक से अधिक बीमा कम्पनियों से बीमा पत्र लेकर करता है तो इसे दोहरा बीमा कहा जायेगा। जैसे मनोहरदास ने 50,000 रुपये का बीमा भारतीय बीमा कम्पनी से करवाया, 20,000 रुपये का बीमा इण्डियन इन्श्योरेन्स कम्पनी द्वारा तथा 30,000 रुपये का बीमा न्यू इण्डिया जनरल बीमा कम्पनी से करवाया है तो कहा जायेगा कि मनोहरदास ने अपने जीवन का दोहरा बीमा कराया है।

जीवन बीमा, समुद्री बीमा तथा अग्नि बीमा सभी में दोहरा बीमा कराया जा सकता है लेकिन जीवन बीमा क्षतिपूर्ति का बीमा नहीं है और न ही जीवन बीमा में वास्तविक क्षतिपूर्ति की जा सकती है। उदाहरणतः जीवन बीमा में यदि बीमित व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो उसकी जीवन की क्षति को पूरा नहीं किया जा सकता है अर्थात जीवन अमूल्य है इसलिए जीवन बीमा में एक व्यक्ति अपने जीवन का बीमा कितनी भी बिमा कम्मपनियों से करा सकता है। इसके विपरीत जीवन बीमा के अतिरिक्त समुद्री तथा अग्नि बीमा क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त पर काम करते हैं इसलिए कोई भी व्यक्ति अपनी सम्पत्ति या वस्तु का बीमा एक से अधिक बीमा कम्पनियों से करा सकता है, लेकिन बीमित जोखिम के घटित होने पर वह सिर्फ वास्तविक नुकसान या बीमित राशि दोनों में जो भी कम हो प्राप्त करने का अधिकार रखता है इसलिए जीवन बीमा के अतिरिक्त अन्य प्रकार की बीमा में दोहरा बीमा करा कर लाभ नहीं कमाया जा सकता है।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण :–

कमलनाथ ने अपने मकान का बीमा 'अ' कम्पनी से 50,000 रुपये, 'ब' कम्पनी से 70,000 रुपये तथा 'स' कम्पनी से 30,000 रुपये का करवाया। प्रथम पूर्णत्या यह पुनर्बीमा है, मकान का वास्तविक मूल्य 1,00,000 रुपये है। आग लग जाने से सम्पूर्ण मकान नष्ट हो गया। उक्त स्थिति में मकान के स्वामी कमलनाथ को अ, ब, स तीनों बीमा कम्पनियों से कुल मिलाकर अधिकतम 1,00,000 रुपये प्राप्त करने का अधिकार होगा। क्योंकि मकान का वास्तविक मूल्य 1,00,000 रुपये है। इस दशा में अ, ब तथा स बीमा कम्पनी द्वारा अनुपातिक तौर पर नुकसान की क्षतिपूर्ति की जायेगी। जैसे

$$\text{अ कम्पनी द्वारा देय राशि} = \frac{50,000}{1,50,000} \times 1,00,000 = 33,333 \text{ रुपये}$$

ब कम्पनी द्वारा देय राशि = $\frac{70,000}{1,50,000} \times 1,00,000 = 46,666$ रुपये

स कम्पनी द्वारा देय राशि = $\frac{30,000}{1,50,000} \times 1,00,000 = 20,000$ रुपये

इस प्रकार दोहरा बीमा से कुल प्राप्त धनराशि अ, ब तथा स कम्पनी से प्राप्त कुल राशि होगी जो किसी भी दशा में मकान की कीमत/मूल्य 1,00,000 रुपये से अधिक नहीं हो सकती है। इसलिए जीवन बीमा के अतिरिक्त सभी बीमा व्यवसाय क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त पर आधारित होते हैं। दुर्घटना घटने की स्थिति में अधिकतम राशि दुर्घटना से हुई कुल क्षति तक ही बीमा कम्पनियों द्वारा प्रदान की जा सकती हैं। इस प्रकार उक्त उदाहरण में बीमा से प्राप्त कुल धनराशि है :
33,334.50 + 46,666 + 20,000.50 = कुल 1,00,000 रुपये।

2. अधिबीमा (Over Insurance)

जैसा कि इसके नाम से ही प्रतीत हो रहा है जब किसी वस्तु या सम्पत्ति की भविष्य में सम्भावित जोखिमों से बचने के लिए उसकी (वस्तु या सम्पत्ति) की वास्तविक कीमत से अधिक मूल्य का बीमा, बीमा कम्पनियों से कराया जाता है तो उसे अधि बीमा कहा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी व्यवसायी के मकान का वास्तविक मूल्य 1,00,000 रुपये है और उसने इसका बीमा 1,50,000 रुपये का करवाया है तो यह अधिबीमा कहलायेगा। इसमें बीमा कुल 50,000 रुपये की अधिक रकम से किया गया है। इसी प्रकार यदि किसी व्यापारी द्वारा अपने गोदाम में रखे गये तैयार माल जिसका वास्तवि मूल्य 50,000 रुपये है, का बीमा 75,000 रुपये से कराया गया है तो यह बीमा भी 25,000 रुपये से अधिबीमा की श्रेणी में आयेगा।

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि क्षतिपूर्ति प्रसंविदा में अधिबीमा करवाने का कोई लाभ प्राप्त नहीं होता है। इसकी हानि है कि जितनी अधिक मूल्य का बीमा किया जायेगा उसके अनुसार अधिक प्रीमियम का भुगतान किया जायेगा तथा यदि घटना घटित होती है तो बीमा कम्पनी द्वारा अधिकतम क्षतिपूर्ति की रकम वास्तविक क्षतिपूर्ति ही होगी। इसलिए जीवन बीमा प्रसंविदा के अतिरिक्त अधिबीमा का लाभ किसी अन्य प्रकार के बीमा द्वारा नहीं लिया जा सकता है। एक व्यक्ति अपने जीवन का कितनी भी राशि का बीमा करवा सकता है क्योंकि जीवन का कोई निर्धारित मूल्य नहीं है। हाँ, जीवन बीमा में यदि व्यक्ति अपने अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति का जीवन बीमा करवाता है तो बीमा की रकम उसी सीमा तक होनी चाहिए। जहाँ तक उस व्यक्ति के जीवन में बीमादार का हित हो (आर्थिक हित), इस राशि से अधिक राशि का बीमा करवाने पर यह भी अधिबीमा की श्रेणी में आयेगा।

3. अल्पबीमा (Under Insurance)

अधिबीमा के विपरीत यदि बीमित विषय वस्तु का उसके वास्तविक मूल्य से कम मूल्य का बीमा किया जाता है, तो उसे अल्पबीमा कहते हैं। मूलतः अल्पबीमा या अधिबीमा का प्रयोग जीवन बीमा प्रसंविदा के अतिरिक्त अन्य प्रकार के बीमा के लिए किया जाता है। सामान्यतः जीवन बीमा में इन शब्दों का प्रयोग इसलिए नहीं किया जाता है क्योंकि किसी भी व्यक्ति के जीवन के मूल्य को

आँकलन नहीं किया जा सकता है, अर्थात जीवन अमूल्य है। इस कारण व्यक्ति अपने जीवन का बीमा किसी भी मूल्य का कर सकता है यह इस बात पर निर्भर करेगा कि वह उस मूल्य के बीमा का प्रीमियम चुका सके। समुद्री बीमा तथा अग्नि बीमा की दशा में जितनी रकम का अल्पबीमा किया गया है उस रकम के लिए बीमादार को स्वयं बीमादाता मान लिया जाता है। उदाहरणार्थ – यदि व्यापारी ने 1,00,000 रुपये के माल का समुद्री बीमा केवल 60,000 रुपये का किया है तो इस दशा में 60,000 रुपये तक की क्षति का दायित्व बीमा कम्पनी को हस्तान्तरित कर दिया गया है। बाँकी शेष राशि (1,00,000 – 60,000 = 40,000) का जोखिम स्वयं बीमादार सहन करेगा।

4. पुनर्बीमा (Re-Insurance)

बीमा कम्पनी द्वारा बीमा किये जाने पर कभी–कभी यह देखने में आता है, जब बीमा कम्पनी यह समझती है कि उसने अपनी वित्तीय क्षमता से अधिक राशि की बीमाओं को स्वीकार कर लिया है। अर्थात यदि यह दुर्घटनायें घटित हो जायें तो कम्पनी क्षतिपूर्ति में अक्षम हो सकती है। इस दशा से बचने के लिए कम्पनी शीघ्र ही अपने सम्भावित दायित्वों में से कुछ दायित्वों का किसी अन्य बीमा कम्पनी से बीमा करा लेती है, उसे पुनर्बीमा कहते हैं। किसी भी बीमा कम्पनी द्वारा किसी भी बड़े जोखिम का बीमा करने से इन्कार करने पर इसका प्रभाव उसकी ख्याति (Goodwill) तथा व्यापार (Business) पर नकारात्मक पड़ता है। अतः उसके द्वारा इन बड़े–बड़े जोखिमों को स्वीकार कर लिया जाता है, किन्तु इस पूर्ण दियित्व के सफल निर्वहन के लिए वह तुरन्त ही अपनी क्षमता से अधिक सम्भावित दायित्वों का या जोखिमों का बीमा किसी अन्य कम्पनी से करा लेती है। पुनर्बीमा दो बीमा कम्पनियों के बीच होता है।

13.14 पुनर्बीमा के लाभ (ADVANTAGES OF RE- INSURANCE)

पुनर्बिमा के प्रचलन में आने से ही बीमा व्यवसाय का यह विकसित रुप देखने को मिलता है। इसके निम्नांकित लाभ उपलब्ध हैं :

1. प्रतिस्पर्धा की समाप्ति
2. प्रीमियम दरों की स्थिरता
3. बीमा व्यवयाय में वृद्धि
4. अधिक सुरक्षा
5. लाभ में स्थिरता
6. जोखिम का समुचित वितरण
7. कोषों की अतिरिक्त सुरक्षा

13.15 सारांश

बीमा और जोखिम का सीधा तथा प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। यदि जोखिम नहीं है तो बीमा की आवश्यकता नहीं है। मूलरुप से जोखिम परिकल्पी तथा शुद्ध प्रकार का होता है। बीमा को दो तरह से परिभाषित किया जा सकता है इसमें कार्यात्मक परिभाषा तथा वैधानिक परिभाषा सम्मिलित है। आम बोल–चाल की भाषा में समरुप समझे जाने वाले इन्श्योरेन्स तथा एश्योरेन्स एक दूसरे से मूल रुप से भिन्न हैं। आज की तिथि में बीमा व्यवसाय का क्षेत्र काफी विकसित हो चुका है। इसके विभिन्न प्रकार के लाभ हैं जो साष्ट्र से प्रारम्भ होकर आम व्यक्ति में बचत की

भावना उत्पन्न करने क संदर्भ तक समझे जा सकते हैं। बीमा व्यवसाय के कार्यों को मुख्यतः तीन प्रमुख कार्य, गौण कार्य तथा अन्य कार्यों में विभाजित किया गया है। बीमा व्यवसाय का वर्गीकरण भी दो भागों में होता है, बीमा व्यवसाय के अनुसार वर्गीकरण तथा संवृत जोखिमों के अनुसार वर्गीकरण। बीमा व्यवसाय के आधार पर पुनः जीवन बीमा, साधारण बीमा तथा सामाजिक बीमा में विभक्त किया जाता है। संवृत जोखिम के आधार पर बीमा को वैयक्तिक बीमा, सम्पत्ति बीमा, दायित्व बीमा तथा गारन्टी बीमा में वर्गीकृत किया गया है। दोहरा बीमा तथा पुनर्बीमा की धारणाओं को स्पष्ट रुप से समझाया है।

13.16 शब्दावली

दोहरा बीमा (Double Insurance): जब एक ही वस्तु, सम्पत्ति या व्यक्ति का बीमा एक से अधिक बीमा कम्पनियों से करा लिया जाता है तो इसे दोहरा बीमा कहा जाता है।

अधिबीमा (Over Insurance):जब किसी वस्तु या सम्पत्ति की भविष्य में सम्भावित जोखिमों से बचने के लिए उसकी (वस्तु या सम्पत्ति) की वास्तविक कीमत से अधिक मूल्य का बीमा, बीमा कम्पनियों से कराया जाता है तो उसे अधि बीमा कहा जाता है।

अल्पबीमा (Under Insurance): अधिबीमा के विपरीत यदि बीमित विषय वस्तु का उसके वास्तविक मूल्य से कम मूल्य का बीमा किया जाता है, तो उसे अल्पबीमा कहते हैं।

पुनर्बीमा (Re-Insurance):जब बीमा कम्पनी यह समझती है कि उसने अपनी वित्तीय क्षमता से अधिक राशि की बीमाओं को स्वीकार कर लिया है। अर्थात यदि यह दुर्घटनायें घटित हो जायें तो कम्पनी क्षतिपूर्ति में अक्षम हो सकती है। इस दशा से बचने के लिए कम्पनी शीघ्र ही अपने सम्भावित दायित्वों में से कुछ दायित्वों का किसी अन्य बीमा कम्पनी से बीमा करा लेती है, उसे पुनर्बीमा कहते हैं।

जोखिम (RISK): 'जोखिम' (Risk) का आशय किसी प्रतिकूल घटना द्वारा हानि या नुकसान होने की सम्भावना तथा तत्सम्बन्धी अनिश्चितता से है।

परिकल्पी जोखिम (Speculative Risk): यदि किसी जोखिम में लाभ तथा हानि दोनों के होने की सम्भावना हो तो उसे परिकल्पी जोखिम कहते हैं।

शुद्ध जोखिम (Pure Risk): शुद्ध जोखिम उस जोखिम को कहा जाता है जिसमें केवल हानि होने की सम्भावना होती है लाभ होने की नहीं। जैसे अग्नि का जोखिम, दुर्घटना का जोखिम, चोरी का जोखिम आदि

जोखिम का निवारण (Prevention of Risk)

यह तरीका जोखिम की समस्या के समाधान का बहुत प्राचीन तरीका है। जोखिम की अनिश्चितता का सामना करने के लिए पहले से ही उन उपाायों को सम्मिलित कर लिया जाता है, जिनसे जोखिम की सम्भावना खत्म या कम हो जाती है। किन्तु इनसे जोखिम की समस्या का पूर्ण हल नहीं निकाला जा सकता है। ऐसे निवारक उपायों द्वारा हम जोखिम के ज्ञात कारणों से होने वाली हानि को एक सीमा तक नियंत्रित कर सकते हैं। लेकिन हानि के बहुत से अज्ञात तथा अप्रत्याशि कारणों का समाधान इससे सम्भव नहीं होता है।

जोखिम का ग्रहण (Consumption of Risk): जोखिम की समस्या का एक आसान सा समाधान है कि जोखिम से हुई हानि को सहन/वहन कर लेना। इसको जाखिम ग्रहण तथा जोखिम प्रतिधारण (Retention of Risk) भी कहा जाता है।

बीमा याग्य हित (Insurable Interest): बीमा अनुबन्ध का एक महत्वपूर्ण तत्व है कि जिस वस्तु, सम्पत्ति या व्यक्ति का बीमा कराया जा रहा है उसमें बीमादार का योग्य हित होना चाहिए। अर्थात जिस व्यक्ति, वस्तु या सम्पत्ति का बीमा करवाया गया हो उसके रहने से बीमादार को लाभ तथा उसके सुरक्षित न रहने से बीमादार को हानि होना चाहिए। यदि यह हित (बीमा योग्य हित) नहीं है तो बीमा अनुबन्ध का कोई वैधानिक औचित्य नहीं होगा ।

साधारण बीमा व्यवसाय (General Insurance Business) : भारतीय बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 2 के अनुसार "साधारण बीमा व्यवसाय" का आशय अग्नि बीमा, समुद्री बीमा तथा विविध बीमा कारोबार से है, चाहे इनमें से कोई एक कारोबार किया जाय या सभी कारोबार संयुक्त रुप से किये जायें।

सामाजिक बीमा कारोबार (Social Insrance Business): समाज के साधनहीन तथा असहाय वर्गों के हितों में बीमा व्यवसाय द्वारा जो कार्य किया जाता है उसे सामाजिक बीमा का नाम दिया जाता है।

13.17 बोध प्रश्न

1 हानि की अनिश्चितता जोखिम का महत्वपूर्ण लक्षण है। (सत्य/असत्य)

2 जोखिम को मुख्य रुप से दो भागो परिकल्पी जोखिम तथा शुद्व जोखिम मे विभाजित किया जा सकता है।(सत्य/असत्य)

3 जोखिम का अन्तरण (Transtor of Risk) जोखिम समाधान की एक विधि है।(सत्य/असत्य)

4 इन्श्योरेन्स तथा एश्योरेन्स एक ही है। (सत्य/असत्य)

5 सामान्य बीमा अनुबन्ध तथा जीवन बीमा अनुबन्घ मे कोई अन्तर नही है। (सत्य/असत्य)

6 बीमा अनुबन्ध मे सभी प्रकार के जोखिम का समाधान किया जाता है।(सत्य/असत्य)

7 अधिबीमा तथा पुनबीमा का आश्य एक ही है।(सत्य/असत्य)

13.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर (1)सत्य (2)सत्य (3)सत्य (4)असत्य (5) असत्य (6) असत्य (7) असत्य

13.19 स्वपरख प्रश्न

1. जोखिम से आप क्या समझते हैं ? जोखिम तथा संकट के बीच सम्बन्ध बताइये।
2. बीमा की परिभाषा की विवेचना कीजिए।
3. इन्श्योरेन्स तथा एश्योरेन्स के बीच अन्तर स्पष्ट करें।
4. वैध बीमा अनुबन्ध के आवश्यक तत्वों को उल्लेखित कीजिए।
5. बीमा तथा जुए में क्या अन्तर है ? पूर्णतया विवेचना कीजिए।
6. "बीमा एक साधन है जिससे कुछ की हानियाँ बहुतों में बाँटी जाती हैं" इस कथन की विवेचना करते हुए बीमा के कार्यों का वर्णन कीजिए।

7. दोहरा बीमा तथा पुनर्बीमा का विस्तार से वर्णन करें।

13.20 सन्दर्भ पुस्तकें

- बिश्नोई, आर0के0, बीमा के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा।
- श्रीवास्तव, आर0एम0 और निगम, दिब्या मैनेजमैन्ट ऑफ इंडियन फाइनैन्शियल इंस्टीट्यूशन्स
- विभिन्न इंटरनैट साइट्स।
- जैन, टी0आर0 इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, वी0के0 ग्लोबल पब्लिकेशन्स और खन्ना, ओ0पी0, प्राईवेट लिमिटेट, 2014–15।
- सेठी, टी0टी0 (2015), मुद्रा बैंकिंग एवं लोक वित, आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिसर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- अग्रवाल, दीपक (2010), मुद्रा बैंकिंग, लोक वित्त एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, हिमालया पब्लिशिंग हाउस मुबई।
- गुप्ता, शान्ति के0 और अग्रवाल, निशा, इंडियन फाइनैन्शियल सिस्टम्स, कल्याणी पब्लिसर्स, 2016।
- इंडियन इकोनोमी, जुलाई 2016।
- प्रतियोगिता दर्पण, जुलाई 2016।

इकाई–14 वणिज्यिक अधिकोषण (COMMERCIAL BANKING)

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 बैंक का अर्थ एंव परिभाषाऐं
14.3 बैंक की मुख्य विशेषताऐं
14.4 वाणिज्यिक बैकों के कार्य
14.5 विकासशील देशों में वाणिज्यिक बैंकों की भूमिका
14.6 वाणिज्यिक बैंकों का संगठन एवं ढांचा
14.6.1 इकाई बैंकिंग
14.6.2 शाखा बैंकिंग
14.6.3 समूह बैंकिंग
14.7 एक अच्छी सुदृढ बैकिंग प्रणाली की विशेषताऐं
14.8 बैंकों का महत्व
14.9 वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख निर्माण
14.9.1 क्या बैंक वास्तव में साख का सृजन करते है?
14.9.2 साख सृजन की सीमायें
14.10 सारांश
14.11 शब्दावली
14.12 बोध प्रश्न
14.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.14 स्वपरख प्रश्न
14.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- वाणिज्यिक बैकिंग के अर्थ तथा महत्व को समझ सकें।
- वाणिज्यिक बैकिंग के सिद्धातों को बता सकें।
- वाणिज्यिक बैकों का स्पष्ट वर्गीकरण कर सकें।
- वाणिज्यिक बैकों के कार्य को सुस्पष्ट कर सकें।
- बैकिंग प्रणाली में वर्तमान पवृतियों की जानकारी प्राप्त कर सकें।
- विकासशील देशों में वाणिज्यिक बैकों की भूमिका क्या है का बोध हो सके।
- वाणिज्यिक बैंकों द्वारा शाखा सृजन की क्रिया के बारें में जान सकें।

14.1 प्रस्तावना

कुछ विद्वानों का विचार है कि "बैंक" शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम इटली मे किया गया जहां पर बैंक ऑफ वेनिस की स्थापना की गयी। सन् 1771 में वेनिस राज्य मे युद्ध छिड़ जाने पर वहाँ आर्थिक संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई। संकट की स्थिति से निपटने के लिये राज्य द्वारा प्रत्येक नागरिक से उसकी सम्पत्ति का एक प्रतिशत अनिवार्य ऋण के रूप से मांगा गया। ऋण के रूप में पर्याप्त धनराशि एकत्र हो गई जिसे सामूहिक रूप से MONTE कहा गया। जिसका

अभिप्राय "पहाड" से है। Monte का जर्मन पर्याय Banck है, जिसका अभिप्राय कोष (Fund) है। बाद में यह शब्द इटली मे Bancco, फ्रांस में Banke तथा इंग्लैण्ड में Bank के नाम से विख्यात हो गया।

बैंक वह संस्था है जो मुद्रा मे लेन–देन करती है, जहां धन का निक्षेप, संरक्षण तथा निर्गमन होता है, जहाँ ऋण व कटौती की सुविधायें प्रदान की जाती हैं तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर धनराशि भेजने की व्यवस्था की जाती है।

14.2 बैकं का अर्थ एंव परिभाषाऐं (Meaning & Definitions of Bank's)

बैंक शब्द जर्मन भाषा का शब्द है। कुछ विद्वान बैंक शब्द का प्रादुर्भाव फ्रांसीसी शब्द बैंकी एवं इतावली शब्द बंका से मानते है।

चैम्बर्स शब्दकोश में बैंक का अर्थ ''मुद्रा जमा करने, ऋण देने एवं मुद्रा का व्यवहार करने वाली संस्था के रूप में वर्णित हैं।

अर्थशास्त्री क्राउथर के अनुसार, बैंक का कार्य अन्य व्यक्तियों से उधार लेकर दूसरे व्यक्तियों को ऋण देकर मुद्रा का सृजन करना है, (क्राउथर – एन आउटलाइन आफ मनी रिवाइज्ड इडिसन 1958)

प्रोफेसर हार्ट के अनुसार–'' बैंक एक ऐसा संगठन है, जिसके मुख्य कार्य जन सामान्य की अस्थायी तौर पर जमा निष्क्रिय मुद्रा को व्यय करने की इच्छा से अन्य लोगों को साख प्रदान करना है। (Kent - Money and Banking 4/e 1961)

भारतीय कम्पनी अधिनियम 1949 के अनुसार– जनसामान्य से उनकी मांग पर देय या चेकाया ड्राफ्ट द्वारा अथवा अन्य किसी भी मान्य तरीके से मुद्रा को उधार देने अथवा विनियोग करने के उद्देश्य से मुद्रा के जमा को स्वीकार करना बैंकिंग कार्य है।

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि बैंक के दो महत्वपूर्ण कार्य हैं–

- पहला यह कि – बैंक जनसामान्य से जमायें स्वीकार करता है।
- दूसरा यह कि बैंक उन व्यक्तियों अथवा संस्थाओं को जिन्हें ऋण की आवश्यकता होती है उन्हें अग्रिम प्रदान करता है।

उपरोक्त के अध्ययन के पश्चात सामान्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि बैंक एक एसी संस्था है जो जनसामान्य की जमायें स्वीकार करता है एंव इसके बदले में साख का सृजन कर अग्रिम ऋण प्रदान करता है।

वास्तव में बैंक वह संस्थान है जो मुद्रा एवं साख का व्यवसाय करता है। जब हम किसी व्यक्ति के बारे में यह कहते है कि व्यक्ति वस्तुओं का व्यापार करता है तो इसका आश्य यह होता कि वह व्यक्ति वस्तु विशेष के क्रय–विक्रय के कार्य में संलग्न है।

उसी प्रकार जब हम यह कहते हैं कि बैंक मुद्रा का कारोबार करता है तो इसका आशय यह कि बैंक मुद्रा का क्रय – विक्रय करता है। परन्तु यहां संदेह इस बात पर उत्पन्न होता है कि प्रायः बैंक मुद्रा में लेन देन करते हैं तो मुद्रा का क्रय विक्रय कैसे होता है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मुद्रा का क्रय तब होता है जब बैंक उधार लेता है अथवा जमायें स्वीकार करता है एंव जब बैंक मुद्रा को किसी व्यक्ति या संस्था को उधार देता है तब कहा जाता है कि बैकं मुद्रा का

विक्रय कर रहा है, मुद्रा के विक्रय की प्रक्रिया को तकनीकी भाषा में साख सृजन कहा जाता है।

मुद्रा के क्रय–विक्रय की अवस्था में मूल्य क्या है? मुद्रा के विचारणीय प्रश्न हैं ? इसका उत्तर है मुद्रा के मूल्य का भुगतान ब्याज के रूप में प्रदान किया जाता है। बैंक अपने ग्राहकों की साख का क्रय करता है एवं अपनी स्वयं की साख का विक्रय ग्राहकों को करता है।

जब बैंक अपने ग्राहकों को अग्रिम प्रदान करता है तब यह स्वयं की साख का सजृन करता है; साख का स्थानान्तरण ऋणों के माध्यम से होता है।

इस संबध में प्रो. सेयर्स का कथन यह है कि ' बैंक केवल मुद्रा के ही व्यापारी नहीं हैं अपितु ये मुद्रा के महत्वपूर्ण उत्पादक भी हैं।

अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि बैंक साख का सृजन करता है।

14.3 बैंक की मुख्य विशेषताऐं (Characteristics of Banks)

1. बैंक एक वाणिज्यिक संस्थान है जिसका मुख्य उदेश्य लाभ कमाना है।
2. बैंक मुद्रा का करोबार करता है।
3. बैंक जमा स्वीकार करता है तथा अग्रिम ऋण प्रदान करता है।
4. बैंक साख का सजृन करता है।
5. बैंक एंव विशिष्ट वित्तीय संस्थान है जो मांग जमाओं का सृजन करता है जो कि विनिमय के माध्यम के रूप में कार्य करता है।
6. बैंक मुद्रा की आपूर्ति को प्रभावित करता है।
7. बैंक देश की भुगतान प्रणाली का प्रबन्धन करता है।

14.4 वाणिज्यिक बैंक के कार्य (Functions of Commerical Bank)

वणिज्यिक बैंक विभिन्न प्रकार के कार्य करते हैं, जैसे जमा स्वीकार करना, अग्रिम ऋण देना, साख निर्माण, विदेशी व्यापार में वित्तीय सहायता प्रदान करना, ऐंजेन्सी सम्बन्धी सेवायें प्रदान करना तथा ग्राहकों को अन्य सेवायें उपलब्ध कराना। इनके कार्यों का वर्णन निम्न है–

1. **जमा स्वीकार करना** (To accept deposits) जैसा कि परिभाषाओं से स्पष्ट है कि बैंक जनता की अतिरिक्त धनराशि को जमा के रूप में प्राप्त करते हैं, यह बैंक का मुख्य कार्य है।

बैंक विभिन्न प्रकार के खातों में जमाराशि प्राप्त करतें हैं, जमाक़र्ता अपनी सुविधा एवं जमा पर प्राप्त ब्याज की अपेक्षानुसार विभिन्न खातों में जमा कर सकता है।

ये विभिन्न प्रकार के जमा खाते निम्नवत हैं –

i. बचत बैंक खाता (Saving bank account) -बचत बैंक खाते में जमा करने वाला व्यक्ति पर जमा धनराशि हफ्ते में दो बार ही आहरित कर सकता है जमा धनराशि आहरित करने के लिए निकासी फार्म एवं चेक की सुविधा बैंक द्वारा प्रदान की जाती है, इस खाते में ब्याज की दर कम होती है, यह खाता प्रायः उन व्यक्तियों के द्वारा खोला जाता है, जो अपनी छोटी–छोटी बचतों को सुरक्षित रखना चाहता है। इस प्रकार के खातों से राष्ट्र के पूंजी निर्माण/संचय में सहायता मिलती है।

ii. चालू खाता (Current Account) - चालू खाते में जमाकर्त्ता कितनी बार धनराशि जमा कर सकता है तथा निकाल सकता है। इस प्रकार के खाते सामान्यतया व्यापारियों द्वारा खोले जाते हैं। बैंक प्रायः इस खाते पर ब्याज नहीं देता है, इसका मुख्य कारण यह कि बैंक को अपने पास सदैव नकद धनराशि रखना पड़ता है।

iii. सावधि जमा खाता (Fixed Deposit Account), या निश्चित कालीन जमा खाता या मियादी जमा खाता – सावधि जमा खाते में धनराशि एक निश्चित समय के लिए जमा किया जाता है। यह अवधि कुछ निश्चित माह या वर्ष हो सकती है। जमा धनराशि निर्धारित अवधि के पहले आहरित नहीं की जा सकती है।

बैंक इस प्रकार के खाते में जमा धनराशि पर ब्याज अपेक्षाकृत अन्य खातों के ब्याज दर की तुलना में ऊंची अथवा नीची हो सकती है; परन्तु ब्याज दर की एक अधिकतम सीमा होती है। बैंक उससे अधिक ब्याज नहीं दे सकता।

iv. गैर मियादी खाता या अनिश्चितकालीन खाता (Permanent Deposit Account) अनिश्चितकालीन खाते के अन्तर्गत जमा की जाने वाली धनराशि कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर कभी भी निकाला नहीं जा सकता। बैंक इस प्रकार के खातों पर केवल ब्याज का ही भुगतान करता है। ये जमायें क्यूंकि अनिश्चितकाल के लिए होती हैं अतः ब्याज दर भी सबसे ऊंची होती है। इस प्रकार की जमायें जनता में अधिक लोकप्रिय नहीं हुई है।

v. गृह बचत खाता (Home Saving Account)- पिछले कुछ वर्षों में बैकों द्वारा इस प्रकार के खातों का प्रचलन किया गया था, यह बहुत लोकप्रिय हुआ। इस खातों में धनराशि जमा करने के लिए बैंक ग्राहक के घर पर एक गुल्लक रख देता है। समय–समय पर घर के सदस्य उस गुल्लक में अपनी छोटी–छोटी बचतें डालते रहते हैं और एक निश्चित अवधि पर ग्राहक बैंक में गुल्लक ले जातें हैं वह बैंक में खोला जाता है तथा प्राप्त राशि को ग्रहक के खाते में जमा कर दिया जाता है।

छोटी बचतों को प्रोत्साहित करने का यह अच्छा तरीका है। इस खाते में ब्याज दर बहुत कम होती है।

2. **अग्रिम ऋण देना** (Providing Advances) - बैंक के पास जो धनराशि ग्राहकों द्वारा जमा की जाती है उसे बैंक अपने पास व्यर्थ नहीं पड़ा रहेंने देता है अपितु बैंक अपने पास एक निश्चित नकद कोष रख कर उन व्यक्तियों या व्यापारियों को जिन्हे व्यापार हेतु धन की आवश्यकता होती है, उन्हे ऋण के रूप में प्रदान कर देता हैं। इस ऋण के बदले बैंक अपने उन ग्राहकों से जिन्होने ऋण लिया है; ब्याज लेता है। बैंक द्वारा प्रदान किये गये ऋणों पर ब्याज दर अधिक होती है। ऋण प्रदान करते समय बैंक ऋण लेने वाले व्यक्ति के साख की जांच करने के पश्चात ही ऋण प्रदान करता है।

बैंक द्वारा अग्रिम ऋण प्रदान करने के निम्नांकित तरीके है –:–

i. **नकद ऋण** (Cash Credit) – नकद ऋण के अन्तर्गत बैंक निश्चित प्रतिभूति के बदले ऋण देता है। सम्पूर्ण ऋण एक ही बार में नहीं दिया जाता है अपितु बैंक ऋणी के नाम एक खाता खोल देता है।
बैंक, व्यापारी के गोदाम में रखे गये माल के मूल्य के अनुसार एक निश्चित सीमा तक धनराशि निकालने का अधिकार ऋणी को देता है, ऋण लेने वाला अपनी आवश्यकतानुसार खाते में से धनराशि निकालता रहता है परन्तु बैंक द्वारा स्वीकृत ऋण की धनराशि पर ब्याज न लगाकर प्रयोग की गयी धनराशि पर ही ब्याज लगाया जाता है।

ii. **मांग ऋण** (Call Loans) – ये ऋण प्रथम श्रेणी बिलों अथवा प्रतिभूतियों के बदले दिये जाते हैं, एसे ऋण अतिअल्पावधि के नोटिस पर वापस मांगे जा सकते हैं। इन ऋणों का सामान्य समय में नवीनीकरण भी किया जा सकता है।

iii. **बैंक अधिविकर्ष** (Bank Overdraft) : बैंक एक व्यवसायी को उसके चालू खाते में शेष राशि से अधिक राशि चेक द्वारा निकालने की अनुमति प्रदान करता है। यह एक प्रकार का ऋण ही है। बैंक अधिविकर्ष की सुविधा अपने सम्मानित तथा विश्वसनीय ग्राहकों को ही देता है, ब्याज स्वीकृत अधिविकर्ष की राशि पर न लगा कर चालू खाते से निकाली गयी राशि पर लगाया जाता है।

iv. **विनिमय बिलों का भुनाना** (Discounting of Bill of Exchange) : यदि एक विनिमय विपत्र धारक को तुरन्त धनरशि की आवश्यकता होती है तो वह उनके विपत्रों को बैंक से भुना सकता है। इस कार्य हेतु बैंक ब्याज की कटौती कर बाकी बची धनराशि को धारक के खाते में जमा कर देता है। विनिमय विपत्र की अवधि पूर्ण होन पर बैंक बिल स्वीकार करने वाले के बैंकर से अपना भुगतान प्राप्त कर लेता है।

v. **साख निर्माणः** साख का निर्माण वाणिज्यिक बैंको का एक महत्वपूर्ण कार्य है वाणिज्यिक बैकों का उदेश्य भी एक व्यापारी की तरह ही लाभ कमाना है। इस उद्देश्य की प्रतिपूर्ति हेतु बैंक देनांन्दिन विनिमय हेतु कुछ नकद अपने पास आरक्षित रखता है एंव अग्रिम ऋण देता है जब बैंक अग्रिम ऋण देता है तो बैंक अपने यहां ग्राहक का खाता खोलता है तथा ग्राहक को दिये ऋण का भुगतान नकद रूप में न करके ग्राहक की आवश्यकतानुसार चेक द्वारा किया जाता है। इस प्रकार बैंक ऋण स्वीकृत करके साख का सृजन करता है।

4. **विदेशी व्यापार के लिए अर्थ प्रबन्धन** (Financing Foreign Trade) : वाणिज्यिक बैंक; विदेशी विनिमय विपत्रों को स्वीकार कर उन्हे डिस्काउन्ट करके विदेशी व्यापार का अर्थ–प्रबन्धन करता है, बैंक कभी कभी हुण्डियों तथा विनिमय विपत्रों की जमानत पर अल्पकालीन ऋण भी देता है। बैंक अन्य विदेशी विनिमय कार्यों का विनिमयन भी करता हैं एवं विदेशी मुद्रा का क्रय विक्रय करता है।

5. **अभिकर्त्ता सम्बन्धी सेवायें** (Agency Related Services) - वाणिज्यिक बैंक उपर्युक्त कार्यो के अतिरिक्त अपने ग्राहकों के अभिकर्त्ता कार्य भी निष्पादित

करता है। अभिकर्ता के रूप में कार्य करने हेतु बैंक अपने ग्राहकों से कमीशन लेता है।

बैकों के अभिकर्ता सम्बधी कार्य है– धन का स्थानान्तरण, ग्राहकों के धन को एकत्रित करना, चेकों, विनिमय विपत्रों, अधिविकर्षों को एकत्र करने तथा इनका भुगतान करने में ग्राहकों के लिए बैंक एक अभिकर्ता के रूप में कार्य करता है।

आधुनिक वाणिज्यिक बैंक अभिदान,किराया, बीमा, बिजली एंव पानी के बिलों का भुगतान भी ग्राहक की तरफ से करता है।

इसके अतिरिक्त बैंक अपने ग्राहकों के न्यासी तथा कार्यपालक के परमर्शदाता के रूप में भी कार्य करता है।

6. **वाणिज्यिक बैंकों के अन्य कार्य** (Other Functions of Commercial Banks) – आधुनिक बैंक निम्नलिखित अन्य कार्यों को भी सम्पन्न करता हैं –

जैसे– बैंक अपने ग्राहकों को लाकर्स की सुविधा प्रदान कर उनके कीमती वस्तुओं के अभिरक्षक के रूप में कार्य करता है। बैंक चेक, ड्राफ्ट, यात्री चेक जारी कर विभिन्न साख के साधनों को भी निर्गत करता है।

बैंक कम्पनी के अंश एंव ऋणपत्रों की जिम्मेदारी भी लेता है। बैंक ग्राहकों को डेबिट तथा क्रेडिट कार्ड भी निर्गत करता हैं। कार्ड जारी करने के बदले में बैंक निश्चित सेवा शुल्क लेता है।

14.5 विकासशील देशों में वाणिज्यिक बैकों की भूमिका (Role of Commercial Banks in Developing Country)

विकासशील देशों की सबसे बडी समस्या गरीबी एवं बेरोजगारी है। गरीबी एवं बेरोजगारी का मुख्य कारण जनसंख्या का अधिक घनत्व है। लोग पारम्परिक कृषि कार्यों में संलग्न है। विकासशील देशों में पूंजी की अत्यधिक न्यूनता है जिसके कारण लोगों में उद्यमिता का अभाव है। यातायात एवं संवादवाहन के साधन अल्पविकसित हैं एवं उद्योग धन्धों की गति भी अत्यन्त धीमी है।

अतः विकासशील देशों में सुदृढ बैंकिंग व्यवस्था एक अनिवार्य आवश्यकता है। अतः एक विकासशील अर्थव्यवस्था में बैकों की भूमिका निम्नांकित है –

1. **कृषि का वित्तपोषण (Financing Agriculture)** – वणिज्यिक बैंक कृषि के क्षेत्र में अनेकानेक प्रकार से सहायता प्रदान करते हैं। बैंक कृषि सम्बन्धी साधनों के लिए ऋण प्रदान करते हैं। बैंक इस कार्य को सम्पन्न करने हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी शाखाऐं खोलते हैं। बैंक किसानों द्वारा उत्पादित उपजों की बिक्री, खेतों का आधुनिकरण एवं मशीनीकरण, सिचाई सुविधाऐं तथा भूमि विकास के लिए प्रत्यक्ष रूप से वित्तीय सहायता प्रदान करते है।

बैंक पशुपालन, मुर्गीपालन, मछलीपालन, बागवानी, दुग्ध उत्पादन इत्यादि हेतु भी वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं। वाणिज्यिक बैंक छोटे तथा मध्यमवर्गीय किसानों उन श्रमिकों जो कि भूमिहीन हैं; ग्रामीण क्षेत्रों के कारीगर तथा ग्रामीण जनता जो कि कोई रोजगार करना चाहते हैं उन्हें वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

इस प्रकार वाणिज्यिक बैंक ग्रामीण जनता की सभी ऋण आवश्यकतायें पूरी कर कृषि का वित्तपोषण करता है। इस वित्तपोषण से ग्रामीण जनता की आय में वृद्धि होती है तथा उनका जीवनस्तर ऊंचा होता है।

2. **व्यापार का वित्तपोषण (Financing Trade)** – वाणिज्यिक बैंक छोटे मझोले तथा बड़े व्यापारियों को उनकी व्यापार सम्बन्धी वस्तुओं को इक्कठा करने के लिए ऋण प्रदान करता है। बैंक सभी प्रकार के व्यापारियों अर्थात विक्रेताओं को अधिविकर्ष की सुविधा प्रदान कर, चेकों का संग्रहण कर, उनके विपत्रों को भुना कर महती सेवा प्रदान करता है। बैंकों के इस कार्य से व्यापार में वृद्धि होती है। बैंक आयात–निर्यात में विदेशी विनिमय की सुविधा प्रदान करके विदेशी व्यापार में भी सहायता प्रदान करता है। इस प्रकार बैंक व्यापार का वित पोषण करता है।

3. **उपभोक्ता क्रियाओं का वित्तपोषण (Financing Consumer Activities)** – अल्पविकसित एंव विकासशील देशों के जनता की आय बहुत कम होती है; अतः उनके पास टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के क्रय करने की शक्ति नहीं होती। वाणिज्यिक बैंक टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं को क्रय करने हेतु ऋण प्रदान करता है। इस प्रकार से बैंक उपभोक्ता क्रियाओं का वित्त पोषण कर उपभोक्ताओं के जीवन स्तर को ऊंचा बनाने में सहायता करता है।

4. **रोजगार उन्मुख क्रियाओं का वित्तपोषण (Employment Oriented Activities)** – वाणिज्यिक बैंकों द्वारा रोजगार प्रदान करने वाली गतिविधियों को धन उपलब्ध कराया जाता है। इस कार्य हेतु उन लोगों को जो कि वाणिज्य, प्रबधन इन्जीनियरिंग चिकित्सा, आदि क्षेत्रों में रोजगार प्राप्त करना चाहते है; उन्हें विशिष्ट क्षेत्रों में शिक्षित करने हेतु शिक्षा ऋण प्रदान किया जाता है। ताकि वे अध्ययन के पश्चात तथा स्वरोजगार अपना कर अपना तथा अपने राष्ट्र का मान बढ़ा सकें। बैंक उपरोक्त कार्य सम्पन्न कर मानवपूंजी निर्माण में सहायता प्रदान कर रहा है; एवं लोगों को उद्यमशील बनाने के प्रयास में भी संलग्न है।

5. **उद्योगों का वित्तपोषण (Financing Industry)** – वाणिज्यिक बैंक उद्योगों को अल्पावधि, मध्यम अवधि तथा दीर्घवधि के ऋण प्रदान करता है। बैंक पूंजी बाजार के अंश एंव ऋणपत्रों का अभिगापन करने का कार्य भी करते हैं। इस प्रकार बैंक पूंजी बाजार के विकास में भी सहायता प्रदान करता है।

6. **पूंजी निर्माण हेतु बचतों को प्रोत्साहन (Mobilising Savings for Capital formation)** – वणिज्यिक बैंक शाखाओं का जाल फैलाकर लोगों की बचत को बैकों में जमा करने हेतु आर्कषक जमा योजनायें लाकर जनता को अपनी बचतें बैंक में जमा करने हेतु प्रोत्साहित करते हैं। बैंक धनवान लोगों के पास पड़ी हुई निष्क्रिय बचतों को भी एकत्र करने का प्रयास करता है।

इस प्रकार जमा की गयी धनराशि को इक्कठा कर बैंक विकासशील देशों में पूंजी निर्माण में सहायता प्रदान करते हैं।

7. **मौद्रिक नीति में सहायता (Help in monetary policy)** – देश का केन्द्रीय बैंक; जिसे रिजर्व बैंक भी कहा जाता है मौद्रिक नीति का निर्धारण करता है। जिसका पालन वाणिज्यिक बैंकों द्वारा किया जाता है। मौद्रिक नीति की सफलता वाणिज्यिक बैंकों की निष्ठा एंव कर्तव्यपालन पर टिका होता है। वाणिज्यिक बैंक उक्त कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करता है।

उपरोक्त के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकताहैं कि वाणिज्यिक बैंक विकासशील अर्थव्यवस्था में प्रमुख योगदान देता है।

14.6 वाणिज्यिक बैंको का संगठन एंव ढांचा (Organisation and Structure of Commercial Bank)

विश्व में बैंकिंग प्रणाली के कई स्वरूप पाये जाते हैं। लेकिन विश्व में प्रमुखतः दो प्रकार की बैंकिंग व्यवस्थाऐं हैं पहला इकाई बैंकिंग जिसे संयुक्त राज्य अमेरिका में पाया जाता है और दूसरी है शाखा बैंकिंग जिसे इग्लैण्ड कनाडा, न्यूजीलैण्ड एवं आस्ट्रेलिया जैसे देशों में बहुतायत में पाया जाता है। अमेरिका जैसे देशों में समूह बैंकिंग एवं श्रृंखाल बैंकिंग भी प्रचलन में है।

इन बैंकिंग प्रणाली का वर्णन निम्नांकित हैं:

14.6.1 इकाई बैंकिग (Unit Banking)

इस प्रणाली के अन्तर्गत बैंक का एक ही कार्यालय होता है।

प्रो. केण्ट के अनुसार– इकाई बैंकिंग प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्येक स्थानीय बैंक एक निगम होता है जिसका पंजीकरण पृथक होता है एवं जिसकी अपनी पूंजी, संचालक मण्डलं तथा अंशधारी होते हैं।

यह प्रणाली अमेरिका में लोकप्रिय है। अमेरिका में बड़े–बड़े बैंक विभिन्न नगरों एवं शहरों में शाखाऐं नहीं खोलते हैं। नगरों एवं शहरों में छोटे–छोटे बैंक होते हैं एवं ये बैंक सभी प्रकार की बैंकिंग क्रियाऐं सम्पन्न करते हैं। इकाई बैंकिंग एकाधिकार पर प्रतिबधं लगाते है। कुछ इकाई बैंकिंग के बैंक बहुत बड़े आकार के हो गये हैं। परन्तु ये कडे प्रतिबन्धों मे कार्य करते हैं। इन बैंकों को सिटी बैंक अथवा कन्ट्री बैंक के रूप में भी जाना जाता है।

इकाई बैंकिग के गुण अथवा लाभ (Merits or Advantages of Unit Banking)

1. प्रबन्धन तथा नियन्त्रण में सुविधा (Facilitates in management and control) इकाई बैंकिंग प्रणाली में बैंक का आकार छोटा होता है, आकार छोटा होने के कारण इन बैंकों का प्रबन्धन आसानी से किया जा सकता है; तथा इसी कारण नियन्त्रण एंव निरीक्षण भी समुचित ढंग से सम्पन्न किया जा सकता है।

2. कुशलतम रूप से कार्य करना (Efficient Working) - इकाई बैंक अपने ग्राहकों को शीघ्र सेवा प्रदान करते हैं। अतः ये कुशलतम रूप से कार्य करते हैं। एक ही शहर में कई यूनिट बैंक होते है, आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण शीघ्र सेवा प्रदान करने हेतु ये बैंक सदैव तत्पर रहते हैं। इस प्रतिस्पर्धा के कारण वे यूनिट बैंक जो कि ग्राहकों की सेवा शीघ्र नहीं कर पाते वे बैंक जीवित नहीं रह सकते।

3. एकाधिकारी बैंकिंग संस्थानों पर रोक (Prevention of Monopoly) - इकाई बैंकिग प्रणाली में बैंकों का आकार छोटा होता है तथा एक ही शहर अथवा नगर में कई इकाई बैंक होते हैं। बड़े बैंकों का इन शहरो/नगरों में अभाव होता है। इसलिए एकाधिकारी बैंकिंग संस्थानों के उत्पन होने की संभावना पर विराम लग जाता है।

4. निजी संबन्ध (Personal relations) - इकाई बैंकों के संगठनकर्ता एवं कर्मचारी स्थानीय लोग होते हैं, अतः ग्राहकों से उनके निजी संबध होते हैं जो उन्हें बैंकों के लिए संसाधन को बढाने में सहायता करते हैं।

5. जमाओं का स्थानीय प्रयोग (Local utilisation of resources) : इस प्रणाली में संचालक मण्डल, अधिकारी तथा कर्मचारी तथा ग्राहक सभी स्थानीय

होते है, अतः इन सभी को स्थानीय आर्थिक आवश्यकताओं का ज्ञान भली–भांति होता है अतः वे अर्जित संसाधनों का प्रयोग स्थानीय विकास के लिए कर सकने में सक्षम होते है।

6. शीघ्र निर्णय (Quick Decision) : संगठन अधिकारी तथा कर्मचारी स्थानीय होने के कारण वे ग्राहकों की आवश्यकताओं को शीघ्रता से पूरा करने का निर्णय ले सकते है क्योकि वे ग्राहकों की आवश्यकताओं को भलिभांति जानते हैं, बैकं प्रबन्धन द्वारा सर्वदा उसी स्थान पर निर्णय लिए जाते है।

इकाई बैकिंग की हानियां, दोष या अवगुण (Demerits, disadvantages or Losses of unit Banking) :–

इकाई बैकिगं के दोष, हानियों या अवगुण निम्नलिखित है।

1. निधियों मेंगतिशीलता की कमी (Lack of mobilization of funds) :– चूकि इकाई बैकिंग प्रणाली में बैकं अपने क्षेत्र के बाहर से कोष प्राप्त नहीं करते अतः देश में निधियों की गतिशीलता में कमी होती है। निधियाँ /कोष जितना अधिक गतिशील होगा विकास की संभावनाये उतनी ही प्रबल होगी।

2. जोखिम का भौगोलिक वितरण नहीं होगा (Geographical distribution of risk is not possible) बैंक क्यूँकि एक ही स्थान पर केन्द्रित होता है। अतः व्यावसायिक जोखिम का वितरण संभव नहीं हो पता जबकि बैंकिग की दूसरी प्रणाली शाखा प्रणाली में बैंकों का व्यावसायिक जोखिम विभिन्न क्षेत्रों में फैला होता है क्यूँ बैंक की शाखायें विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में फैली होती है।

3. बड़े पैमाने की बचतें संभव नहीं (No Economics of large scale production) : इकाई बैंकिग प्रणाली में बड़े पैमाने के बैंकों के लाभ नहीं मिल पाते क्योंकि ये बैंक लघु आकार के होते है। इस कारण श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण का लाभ इन्हें मिल पाता है।

4. निधियों का प्रेषण (Remittence of funds) : – यूनिट बैंकिग में एक ही शहर या नगर में केवल एक ही बैंक होता है, इसलिये निधियों को दूसरे स्थानों पर प्रेषण के लिये अन्य बैंकों पर निर्भर होना पड़ता है। निधियों के प्रेषण पर भारी शुल्क लगता है। जिससे व्यय अधिक हो जाने के कारण इकाई बैंक के लाभ पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

5. आर्थिक संकटों को सहन करने में असमर्थता (Inability to bear economic difficulties) : – बैंकों का आकार छोटा होने के कारण इन बैकों के आर्थिक संसाधन भी सीमित होते हैं। अतः ये बैंक आर्थिक संकटों का सामना करने में असमर्थ होते हैं। 1929 की आर्थिक मन्दी ने इसी कारण से अमेरिका के इकाई बैंकिग को बरबाद कर दिया था।

इकाई बैंकिंग के दोषों को दूर करने के उपाय (Measures to cope up with the demerits of unit Bankig) :

1. नयी शाखाओं को स्थापित करने का अधिकार प्रदान किया जाय।
2. ऋखंला बैंकों की प्रणाली को प्रोत्साहन दिया जाय।
3. करे सपाण्डेण्ट बैंकों का निर्माण किया जाय।

14.6.2. शाखा बैंकिंग (**Branch Banking**) :

भूमिका (**Introduction**)

शाखा बैंकिंग प्रणाली में बैंक का मुख्य कार्यालय किसी बड़े शहर में स्थापित किया जाता है और उसकी शाखायें देश के विभिन्न भागों में स्थापित की जाती है। अधिकांश राष्ट्रों में शाखा बैंकिंग सर्वाधिक प्रचालित व्यवस्था है। भारत में भी शाखा बैंकिंग प्रणाली ही प्रचलित है।

शाखा बैंकिंग के गुण (Merits of Branch Banking) : – शाखा बैंकिंग के गुण निम्नवत हैं–

1. **जोखिम का विस्तारीकरण (Spreading risks)** – शाखा बैंकिंग में जोखिम का अंश भौगोलिक आधार पर आत्मस्फूर्त वितरित हो जाता है क्योंकि बैंक की शाखा विभिन्न स्थानों पर खोली जाती है एवं उनके द्वारा देश के विभिन्न क्षेत्रों में अलग – अलग रूप से बैंकों की जमाओं का निवेश किया जाता है। ऐसा करने के कारण बैंकों के जोखिम का अंश विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित हो जाता है। यदि एक क्षेत्र में किसी कारण वंश बैंक की शाखाओं को हानि होती है तो वह अन्य क्षेत्रों में अवस्थित शाखाओं के लाभ में से समायोजित किया जा सकता है।

2. बड़े पैमाने की विशेषज्ञता तथा श्रम विभाजन का लाभ (Advantages of specialization and division of labour of large scale production) – शाखा बैंकिंग प्रणाली में बैंकों का आकार बहुत बड़ा होता है। उनके आर्थिक संसाधन भी अधिक होते हैं। इस प्रकार ये बैंक विशेषज्ञता एवं श्रम विभाजन के लाभों को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

3. निधियों के हस्तान्तरण में सुविधा (Facititates in transfer of funds) – शाखा बैंकिंग प्रणाली में बैंक की शाखा देश के तमाम क्षेत्रों में फैली हुई होती हैं, इस कारण निधियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने में कोई कठिनाई नहीं होती है तथा भारी प्रेषण शुल्क से भी बचा जा सकता है।

4. ब्याज दरों में समानता (Equality in interest rates) – बैंकिंग की इस प्रणाली के कारण पूरे देश की शाखाओं में एक ही ब्याज दर पर लेन देन होता है। यदि किसी कारण से देश के अन्य भागों में मुद्रा की मांग बढ़ जाये तो वहाँ ब्याज दरा भी बढ़ जाती है। इस कमी को दूर करने के लिये उस स्थान विशेष पर जहाँ मुद्रा की मांग अधिक हो गयी है पर अतिरेक मुद्रा भेज कर ब्याज दरों में समानता कायम की जाती है।

5. पूँजी का समुचित प्रयोग (Proper utilization of capital) – बहुशाखाओं वाला एक बड़ा बैंक अपने कोषों का लाभदायकता के साथ उपयोग कर सकता है। यदि किसी शाखा के पास पर्याप्त जमायें हैं परन्तु उसको विनियोग का अच्छा अवसर प्राप्त नहीं हो पा रहा है तो वह बैंक अपनी अतिरिक्त धनराशि को अन्य शाखाओं को आसानी से भेजकर लाभदायक निवेश में निवेश करा सकता है। इस प्रकार शाखा बैंकिंग में पूँजी का समुचित उपयोग किया जा सकता है।

6. बैंकिंग सुविधाओं में विकास (Development in Banking facilities) – इस प्रणाली द्वारा ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में बैंक की शाखायें खोलने का अधिकार बैंक को होता है। इसलिये बैंक राष्ट्र के विभिन्न स्थानों, नगरों, कस्बो, तथा शहरों में शाखायें खोल कर बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार करते हैं।

7. <u>भारी निवेश (Large Investments)</u> – शाखा बैंकिंग के अन्तर्गत एक बैंक जो कि विशाल वित्तीय संसाधनों वाला है; प्रतिभूतियों के चयन में सबल स्थिति में होता है तथा सुरक्षा एवं तरलता के सिद्धांतों का पालन करते हुए भारी निवेश करने में सफल होता है।

8. <u>प्रभावी केन्द्रीय बैंक नियन्त्रण (Effective control of central bank)</u> – देश का केन्द्रीय बैंक शाखा बैंकिंग प्रणाली के अन्तर्गत बैंकों का नियन्त्रण प्रभावशाली तरीके से कर सकता है।

<u>शाखा बैंकिंग के दोष (Demerits of Branch Banking) –</u>

शाखा बैंकिंग के दो निम्नवत् हैं –

1. <u>पहल का अभाव (Lack of initiative)</u> – शाखा बैंकिंग में कोई भी शाखा मुख्य कार्यालय की अनुमति के बिना कोई भी निर्णय स्वतन्त्र रूप से नहीं ले सकती। परिणास्वरूप स्थानीय वातावरण के अनुसार बैंकिंग कार्यों का निष्पादन नहीं हो पाता। इस प्रणाली में लोच का सर्वथा अभाव रहता है। कोई भी अधिकारी स्वयं से कोई निर्णय नहीं ले सकता। अतः कहा जा सकता है कि इस प्रणाली में पहल का अभाव रहता है।

2. <u>नौकरशाही चरम सीमा पर (Bureaucratisation on its height)</u> – इस बैंकिंग प्रणाली का मुख्य दोष है। नौकरशाही का बोलबाला। इसमें सभी शाखाओं का नियन्त्रण मुख्य कार्यालय के पास होता है। इससे शाखायें स्वतन्त्र निर्णय लेने में अक्षम होती है जिससे बिना वजह ग्राहक सेवा में विलम्ब होता है।

3. <u>आर्थिक एकाधिकार की संभाव्यता (Possibility of economic monopoly)</u> – इस प्रणाली की व्यवस्था से देश में आर्थिक एकाधिकार के उत्पन्न होने की संभावना अधिक बलवती हो जाती है। कुछ बड़े बैंक देश में शाखाओं का जाल बिछाकर आर्थिक संसाधनों पर कब्जा जमा लेते हैं। जबकि छोटे बैंक आर्थिक कठिनाइयों के कारण आर्थिक एवं बैंकिंग जगत में अपना स्थान नहीं बना पाते। इस कारण छोटे बैंक जल्दी ही बन्द हो जाते हैं। तथा बड़े बैंक अपना एकाधिकार जमा लेते हैं। कोष निधियाँ केवल कुछ ही बैंकों में जमा हो जाती है। इससे बैंकिंग क्षेत्र में कार्यरत संस्थानों को भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। आर्थिक शक्तियाँ कुछ ही बैंकों के पास केन्द्रित हो जाती हैं। जिसका दुष्प्रभाव भी उद्योग जगत एवं समाज को झेलना पड़ता है।

4. <u>हानि का भय (Fear of Loss)</u> – जब शाखा बैंकिंग का फैलाव वृहद् पैमाने पर हो जाता है तो कुछ शाखाओं के पास जमा कम एकत्रित होने के कारण डूबन्त ऋण की समस्याओं से हानि में वृद्धि की संभावना बलवती हो जाती है। जिस कारण से बैंकों के बन्द होने की संभावना अधिक हो जाती है।

5. <u>बैंकिंग सुविधाओं का दोहराव (Duplication in Banking facilities)</u> – जब एक ही स्थान पर विभिन्न बैंकों की शाखायें खुल जाती हैं तो इस कारण से अनावश्यक बैंकिंग सुविधाओं का दोहराव हो जाता है।

6. <u>अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा (Unhealthy Competetion)</u> – शाखा बैंकिंग के कारण विभिन्न बैंकों में एक ही स्थान पर शाखायें स्थापित करने की प्रतिस्पर्धा के कारण बैंकों के व्यय में अनावश्यक वृद्धि हो जाती है। विभिन्न बैंकों की शाखायें एक ही स्थान पर केन्द्रित हो जाने के कारण उनमें परस्पर शत्रुता एवं प्रतिस्पर्धा

हो जाती है। आकर्षक जमा योजनायें लाकर बैंक ग्राहकों को आकर्षित करने का प्रयास करते हैं। जिसके कारण बैंकों के व्ययों में वृद्धि हो जाती है एवं राष्ट्रीय स्तर पर संसाधनों का अपव्यय होता है जो कि राष्ट्रहित में नहीं है।

7. <u>विदेशों में कठिनाईयाँ (Difficulties in foreign countries)</u> – शाखा बैंकिंग प्रणाली में जब बैंक विदेशों में अपनी शाखायें खोलता है तब उन्हें विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है क्योंकि विदेशों के बैंकिंग नियम, व्यावसायिक परिस्थितियाँ साख प्रणाली, मौद्रिक प्रणाली, अलग अलग होती हैं। इसके अलावा विदेशी सरकारों द्वारा बैंकों के विलय तथा राष्ट्रीयकरण का भी डर सदैव बना रहता है।

निष्कर्ष (Conclusion) –

उपरोक्त अध्ययन के पश्चात यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि उपरोक्त दोंनों बैंकिंग प्रणालियों में से कौन सी प्रणाली अच्छी है ?

इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि दोनों ही प्रणालियाँ समयकाल एवं परिस्थिति के अनुसार श्रेष्ठ हैं। दोनों में यदि कुछ गुण हैं तो अवगुण भी हैं।

भारत जैसे विकासशील देश में इकाई बैंकिंग की तुलना में शाखा बैंकिंग प्रणाली को प्राथमिकता प्रदान की जाती है। अल्प विकसित एवं गरीब देश में इकाई बैंकिंग प्रणली की सफलताद में संदेह है। इन देशों में कृषि, उद्योग धन्धे, व्यापार, शिक्षा, रोजगार, को विकसित करने की आवश्यकता होती है जिसे केवल विशाल वित्तीय संसाधनों वाली बैंकिंग प्रणाली से ही प्राप्त किया जाना संभव है।

शाखा बैंकिंग द्वारा उन्नत क्षेत्रों में स्थित शाखाओं के अतिरेक एवं अतिरिक्त कोष को अल्प विकसित एवं पिछड़े क्षेत्रों की शाखाओं में स्थानान्तरित कर उनका उपयोग किया जा सकता है जो कि इकाई बैंकिंग व्यवस्था में संभव नहीं है। इसलिये अविकसित एवं पिछड़े देशों में जहाँ क्षेत्रीय असन्तुलन अधिक है। उन स्थानों के लिये शाखा बैंकिंग अर्थव्यवस्था में रक्त संचालन का कार्य करता है।

<u>14.6.3 समूह बैंकिंग (**Group Banking**)</u> – यह एक प्रकार का बहु अधिकोषण कार्यालय है, जिसमें एक सूत्रधारी कम्पनी के नियन्त्रण में दो या अधिक बैंक होते हैं। यह सूत्रधारी कम्पनी बैंक या गैर बैंक संस्था भी हो सकती है। सूत्रधारी कम्पनी को मूल कम्पनी तथा मूल कम्पनी के सहायक या अन्तर्गत आने वाले बैंकों को परिचालन बैंक या परिचालन बैंकिंग कम्पनियाँ कहा जाता है। सूत्रधारी कम्पनी या मूल कम्पनी समूह के अन्दर आने वाले परिचालन बैंकों का प्रबन्ध एवं नियन्त्रण करती है।

समूह के अन्तर्गत आने वाले बैंक अपनी अलग पहचान एवं नाम रखते हैं। समूह बैंकिंग व्यवस्था अमेरिकी अर्थव्यवस्था में प्रचलित है।

<u>मिश्रित बैंकिंग (Mixed Banking)</u> – मिश्रित बैंकिंग व्यवस्था में वाणिज्यिक बैंक उद्योग एवं वाणिज्य की अल्पकालीन, दीर्घकलीन आवश्यकताओं एवं औद्योगिक वित्त को पूरा करने के लिये ऋण प्रदान करते हैं। मिश्रित बैंक सामान्य बैंकिंग कार्य भी सम्पन्न करते हैं। ये बैंक यूरोपीय देशों, जर्मनी, नीदरलैण्ड इत्यादि देशों में कार्य करते हैं।

सहसंबंधी बैंकिंग (Correspondendent Banking) – सहसंबंधी बैंकिंग में विभिन्न प्रकार के बैंक एक दूसरे से सहसंबंध होने के कारण कुशलतापूर्वक कार्य करते हैं। इस प्रकार की बैंकिंग व्यवस्था अमेरिका जैसे बड़े भौगोलिक राष्ट्र में व्याप्त है। इस व्यवस्था में देशी बैंकों की जमा शहरी बैंकों में तथा शहरी बैंकों की जमा उसी या अन्य शहरों तथा राज्यों के बैंकों में जमा होती है।

14.7 एक अच्छी/सुदृढ़ बैंकिंग प्रणाली की विशेषतायें (Essentials or Characteristics of a Sound or Good Banking System)

बैंक देश के विभिन्न वर्गों की बचतों को एकत्रित कर राष्ट्र की पूँजी निर्माण में सहयोग प्रदान करते हैं। बैंक साख का सृजन कर देश की उत्पादकता को भी बढ़ाते हैं। देश के औद्योगिक तथा व्यापारिक विकास के लिये एक सुदृढ़ बैंकिंग प्रणाली का होना अत्यावश्यक ही नहीं अपितु नितान्त आवश्यक है।

एक अच्छी बैंकिंग प्रणाली की विशेषतायें निम्नांकित हैं –

1. बैंकिंग प्रणाली देश की परिस्थितियों के अनुसार : प्रत्येक देश की आर्थिक, भौगोलिक तथा सामाजिक परिस्थितियाँ एवं वातावरण भिन्न होता है। अतः देश की बैंकिंग प्रणाली एसी होनी चाहिये जो उस देश की आर्थिकी को प्रोत्साहित करे।

2. बचतों को प्रोत्साहन – बैंकिंग प्रणाली से देश की बचतों को प्रोत्साहन मिलना चाहिये। बचतों को प्रोत्साहन से देश की जनता अपनी छोटी – छोटी बचतों को बैंकों में जमा करती है। इससे पूँजी निर्माण में सहायता मिलती है।

3. साख पर नियन्त्रण – एक अच्छी बैंकिंग व्यवस्था साख पर नियन्त्रण रखने में सक्षम होने वाली चाहिये। यदि साख पर नियन्त्रण नहीं स्थापित किया जायेगा तो इससे मुद्रा का प्रसार तीव्र गति से होने लगेगा जो कीमतों में वृद्धि का कारक बन जायेगा। जिससे जन मानस का जीवन स्तर गिर जाने की संभावना बढ़ जायेगी। अतः एक अच्छी बैंकिंग व्यवस्था साख पर नियन्त्रण रखने वाली होनी चाहिये।

4. समन्वित बैंकिंग प्रणाली – प्रतियोगिता विकास का आधार है परन्तु स्वस्थ प्रतियोगिता एक अच्छी बैंकिंग प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिये कि वह बैंको के मध्य अस्वस्थ प्रतियोगिता को विकसित न होने दे अपितु बैंकों के मध्य उचित सामन्जस्य स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो सके।

4 तरलता – एक अच्छी बैंकिंग व्यवस्था की आवश्यकता उच्च स्तर की तरलता है। बैंक अपनी सम्पत्तियों का कुछ अनुपात नकदी के रूप में रखता है। अतः बैंकों में परिसम्पत्तियों में तरलता का उचित मानक होना चाहिये जिससे उन्हें सरलता से नकदी में परिवर्तित किया जा सके।

केन्द्रीय बैंक ने वाणिज्यिक बैंकों के लिये तरलता की सुनिश्चिता के लिये परिसम्पत्तियों का कुछ भाग नकदी के रूप में रखना अनिवार्य घोषित कर दिया है।

5. सुरक्षा (Safety) – एक अच्छी एवं सुदृढ़ बैंकिंग व्यवस्था की विशेषता 'सुरक्षा' भी है। बैंक जनता की जमाओं को स्वीकार करता है तो जनता के इस धन की सुरक्षा भी होनी चाहिये। बैंक ग्राहकों के जमा से ही साख का सृजन कर उन्हें अन्य ग्राहकों को जिन्हें ऋण/अग्रिम की आवश्यकता होती है को ऋण प्रदान करता है। यदि बैंक के ये ऋण लेने वाले ऋण का समय पर भुगतान नहीं

करते हैं तो बैंक दिवालिया हो जायेगा। जिसका दुष्परिणाम यह होगा कि ग्राहक जिन्होंने बैंक में धनराशि जमा किया है उन्हें अपनी जमायें वापस नहीं मिल पायेंगी। अतः बैंकों को जमा की सुरक्षा सुनिश्चित करनी चाहिये।

6. लाभदायकता (Profitability) – एक अच्छी बैंकिंग व्यवस्था में पर्याप्त लाभार्जन करने की क्षमता होनी चाहिये। लाभार्जन क्षमता बैंकों के आत्मनिर्भरता एवं सातत्यता का लिये आवश्यक है। बैंक में अंशधारियों, कर्मचारियों, अधिकारियों एवं ग्राहकों के हित होता है। अतः इनके हितों का पूरा करने के लिये बैंकों में लाभाअर्जन की क्षमता होनी चाहिये।

7. स्थिरता (Stability) – एक अच्छी एवं सुदृढ़ बैंकिंग व्यवस्था का स्थिरता भी एक महत्वपूर्ण गुण है। बैंकिंग व्यवस्था को आर्थिक प्रगति की नीति अपनानी चाहिये। साख का न तो आवश्यकता से अधिक विस्तार करना चाहिये तथा न ही अनावश्यक रूप से साख विस्तार पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिये।

8. विस्तार (**Expansion**) – बैंकिंग व्यवस्था का सम्पूर्ण राष्ट्र में विस्तार होना चाहिये न कि केवल बड़े शहरों एवं विकसित राज्यों में ही। बैंकिंग का विस्तार सूदूर ग्रामीण क्षेत्रों से लेकर शहरी क्षेत्रों तक होना चाहिये। इससे समान विकास के अवसर सभी क्षेत्रों को मिल सकेगा।

14.8 बैंको का महत्व (**Importance of Banks**)

आधुनिक अर्थव्यवस्था में बैंकों का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी देश के उत्पादन, व्यापार, व्यवसाय, उद्योग–धन्धे, विनिमय तथा वितरण सभी बैंकिंग व्यवस्था पर ही केन्द्रित होते हैं, हम कह सकते है कि उपरोक्त सभी कार्य बैंक के ही चारो तरफ घूमते हैं। या बैंक आधुनिक अर्थव्यवस्था की रीढ है (Bank is the backbone of modern economy)।

अग्रांकित पक्तियों में बैंको के महत्व का वर्णन किया गया हैः–

बैंको का महत्व निम्नलिखित हैः–

1. बैंक बचतों का संग्रह करते हैं।
2. बैंक व्यापार एवं उद्योंगधन्धों का अर्थ प्रबन्धन करते हैं।
3. बैंक बहुमूल्य धातुओं के प्रयोग मे मितव्ययिता लाते है।
4. बैंक मुद्रा के स्थानान्तरण में सहायता करते हैं।
5. बैंक मुद्रा प्रणाली मे लोच उत्पन्न करते हैं।
6. बैंक कीमतों मे स्थिरता लाने में सहायता करते हैं।
7. बैंक अन्तराष्ट्रीय व्यापार के लिये अर्थ प्रबन्धन करते हैं।
8. बैंक भुगतान में सहायता करते हैं।
9. बैंक जनता मे बचत करने की प्रवृति को बढावा देते हैं।
10. उपरोक्त के अतिरिक्त बैंक अभिकर्त्ता सम्बन्धी सेवायें भी करते हैं।

14.9 वाणिज्यिक बैंको द्वारा साख निर्माण (**Creation of credit by Commercial Banks**)

साख का निर्माण वाणिज्यिक बैंकों का महत्वपूर्ण कार्य है। इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण यह है कि हम साख शब्द के अर्थ को जान लें अर्थात् साखका क्या अभिप्राय है ?

साख का अर्थ है ऋण उत्पन्न करना या उधार का सृजन करना। व्यावसायिक संस्थाओं की तरह ही वाणिज्यिक बैंको का उद्देश्य भी लाभ कमाना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु बैंक ग्राहको से नकद जमाओं को स्वीकार करते है एवं अपने उन ग्राहकों को जिन्हें ऋण की आवश्यकता होती है उन्हें उधार पर धन देते हैं, इस हेतु उनसे ब्याज वसूलते है इस ब्याज की दर जमा पर प्रदान किये जाने वाले दर से अधिक होती है। जब कोई बैंक उधार देता है तो वह प्रायः उधार दी जाने वाली ाशि का भुगतान नकद नहीं करता है अपितु बैंक ग्राहक के नाम से एक खाता खोल देता है एवं आवश्यकता की धनराशि आहरित करने हेतु ग्राहको को चेक प्रदान कर देता है ग्राहक चेक के द्वारा धनराशि आहरित करता है। इस तरीके से बैंक साख का निर्माण करता है।

साख निर्माण के विषय पर अर्थशास्त्रियों में मत–विभेद है। कुछ अर्थशास्त्री जैसे जे0एम0 कीन्स, प्रो0 सयर्स प्रो0 हाम तथा प्रो0 हार्टले विदर्स आदि का मत है कि बैंक साख का निर्माण करते है जबकि प्रो0 एडविन कैनन जैसे अर्थशास्त्रियों का मानना हे कि बैंक साख का निर्माण नहीं कर सकते।

उपरोक्त दोनों मतों का अध्ययन निम्नांकित दोशीर्ष कों में विभक्त कर किया जा सकता है–

1. **बैंक साख का निर्माण करते है–**

जिन अर्थशास्त्रियों का मत है कि बैंक साख का निर्माण करते है उनका तर्क है कि–

1. बैंक कागजी मुद्रा का निर्गमन करके साख का निर्माण करते हैं। 19 वीं शताब्दी में लगभग सभी बैंको को मुद्रा निर्गमित करने का अधिकार प्राप्त था परन्तु, वर्तमान समय में देश के केन्द्रीय बैंक को ही मुद्रा निर्गमित करने का अधिकार है अतः केन्द्रीय बैंक ही मुद्रा जारी करके साख निर्माण करता है।

जब बैंक कागजी मुद्रा निर्गमित करते है तो उस समय वे साख का निर्माण भी करते हैं। केन्द्रीय बैंक द्वारा नोट निर्गमन की जो प्रणाली अपनायी जाती है उसमे शत–प्रतिशत स्वर्ण, रजत, या प्रतिभूतियाँ नही रखी जाती है अपितु नोट निर्गमन हेतु इन धात्विक एवं प्रतिभूतियों का निश्चित अंश रखकर ही नोट निर्गमित किया जाता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यह नोट निर्गमन केन्द्रीय बैंक या बैंक की साख के आधार पर ही होता है।

2. नकद जमा तथा साख जमा के आधार पर भी साख का निर्माण किया जाता है। जैसा कि हम जानते है कि निक्षेप दो प्रकार के होते हैं–पहला नकद जमा जिसे हम प्रारम्भिक निक्षेप (Primary Deposits) कहते हैं, तथा दूसरा साख जमा जिसे हम व्युत्पपन्न निक्षेप (Derivatives deposits) कहतें है।

प्रारंभिक निक्षेपों का अभिप्राय उन निक्षेपों से है जिन्हें ग्राहकों द्वारा वास्तविक मुद्रा के रूप में जमा किया जाता है।

जबकि बैंक जब किसी व्यक्ति के खाते में स्वंय कुछ राशि जमा कर देता है तो उस व्युत्पन्न जमा या साख जमा कहां जाता है ऐसा तब किया जाता है जब कोई ग्राहक बैंक से ऋण लेता है तो बैंक ऋण की सम्पूर्ण राशि ग्राहक को नकद नहीं देता है अपितु ग्राहक का बैंक मे खाता खोलकर ऋण की राशि को खाते मे स्थानान्तरित कर देता है। ग्राहक अपनी आवश्यकतानुसार खाते से धनराशि चेक द्वारा निकाल कर अपनी आवश्यकतायें पूरी करता रहता है।

इस प्रकार जमा की गयी धनराशि को साख जमा या व्युत्पन्न जमा कहा जाता है। प्रो0 हाम का कहना है कि साख का निर्माण व्युत्पन्न निक्षेप से होता है।

व्युत्पन्न निक्षेपों से साख के सृजन का उदाहरणः–

यदि श्याम ने अपने खाते मे रू0 1,00,000 जमा किया। तो श्याम अपने खाते से यह राशि कभी भी आहरित (निकाल) कर सकता है।

परन्तु बैंक को अनुभव से यह पता है कि श्याम या जमाकर्त्ता अपनी राशियों को एक ही समय पर नहीं निकालेंगे। इसलिये बैंक जमा राशियों का एक निश्चित भाग (मान लीजिये 10 या 20 प्रतिशत) नकदी के रूप में रख कर शेष धनराशि को ऋण के रूप मे दे देता है। इस उदाहरण मे श्याम की जमा धनराशि रू0 1,00,000 है माना बैंक 10 प्रतिशत नकदी के रूप मे रखता है तो रू0 1,00,000 का 10 प्रतिशत रू0 10,000 को नकद रूप मे रखकर बैंक रू0 90,000 ऋण के रूप मे प्रदान कर देगा। बैंक क्योंकि अपने अनुभव से यह जानता है कि ऋण लेने वाला रू0 90,000 की सम्पूर्ण धनराशि एक ही बार मे आहरित नहीं करेगा तो बैंक नियमानुसार 10 प्रतिशत की राशि कोष में रखकर अर्थात रू0 9000 : रू0 81000 रूपये किसी अन्य व्यक्ति को ऋण के रूप मे प्रदान कर देगा।

इसी प्रकार यह क्रम लगातार चलता रहेगा। इस तरह से जैसे–जैसे बैंक के निक्षेप बढते जाते है वैसे ही उसकी साख निर्माण शक्ति भी विकसित होती चली जाती है।

बैंक नकद कोष का प्रतिशत कम करके, अधिविकर्ष की सुविधाये देकर बिलो तथा हुण्डियों को भुनाकर, सरकारी बाण्डो तथा प्रतिभूतियों का क्रय करके भी साख का निर्माण करते है।

14.9.1 क्या बैंक वास्तव मे साख का सृजन करते है ? (**Do Bank really create Credit?**)

वाल्टर लीफ तथा कुछ अन्य व्यावहारिक अर्थशास्त्रियों का मानना है कि "बैंक शून्य मे मुद्रा का निर्माण नहीं कर सकते वे ऋण तभी दे सकेंगे जब उनके पास देने के लिये नकद मुद्रा होगी। इसलिये बैंक न तो मुद्रा का निर्माण कर सकते है तथा न ही साख का।

बैंक स्वयं साख का निर्माण नहीं करते साख निर्माण का कार्य तो बैंक के जमा कत्ताओं द्वारा किया जाता है। इसके विपरीत कुछ अर्थशात्रियों का मानना है कि बैंक वास्तव में साख का सृजन करते है उनका तर्क है कि बैंक के ग्राहक ही अपने निक्षेपों से बैंक को मासेद्रिक साधन प्रदान करते है। बैंक निक्षेपों के एक भाग को ग्राहकों को बतौर ऋण देता है। बैंक ऐसा करने में संक्षम इसलिये होता है क्योंकि बैंक को अनुभव से यह पता होता हे कि सभी जमाकर्त्ता अपनी जमायें आहरित करने एक बार ही बैंक नहीं आ जायेंगें इस प्रकार बैंक जमा राशि से अधिक मात्रा में ऋण प्रदान करने मे समर्थ हो जाते है। अतः बैंक साख का वास्तविक रूप में सृजन करते है।

अतः यह कहना आतेश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा कि बैंको मे साख सृजन की क्षमता होती है।

14.9.2 <u>साख सृजन की सीमायें</u> (**<u>Limitations of credit creatios</u>**)

बैंक साख का निर्माण करते है परन्तु इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि बैंको की साख निर्माण शक्ति असीमित है। साख निर्माण शक्ति का कुछ सीमायें भी है, बैंको को उन सीमाओं अथवा नियन्त्रणो मे रहकर ही कार्य निष्पादित करना होता है।

बैंको की साख निर्माण की सीमायें निम्नांकित हैः–

1. <u>देश में नकद मुद्रा की मात्रा (**Amount of cash money in a country**)</u> बैंक की साख निर्माण शक्ति देश मे प्रचलित मुद्रा की मात्र पर निर्भर करती हैं। देश में मुद्रा की मात्रा जितनी अधिक होगी उतनी ही उस देश के बैंको की साख निर्माण शक्ति अधिक होगी। जब बैंक अधिक मात्रा में कागजी मुद्रा छापता है तो उतनी ही मात्रा में बैंको मे जमाये बढती है। जब बैंको मे प्राथमिक जमाओं की मात्रा मे वृद्धि होती है तो बैंक के व्युत्पन्न जमाओ अर्थात साख जमाओं मे भी वृद्धि हो जाती हें

2. <u>जनता की बैंकिग संबंधी आदते (**Banking habits of the people**)</u>

जनता की बैंकिग सम्बन्धी आदते भी बैंक की साख निर्माण की शक्ति को प्रभावित करती है। यदि ग्राहको/जनता मे चेकों के प्रयोग करने की आदत नही है तो ऐसे ग्राहक जिन्हे बैंक ने ऋण दिया है वे निकासी फार्म का प्रयोग कर धनराशि निकालेंगे परिणामतः बैंक की साख निर्माण प्रक्रिया क्षीण हो जोयगी। इसके अतिरिक्त यदि किसी देश मे अधिकांश व्यापारिक सौदे नकद मे ही किये जाते है तो लोगो की नकदी की मांग बढ जाती है जिसके कारण बैंको के नकद कोष भी कम हो जाते है, जब नकद कोष कम हो जायेंगे तो उनकी साख निर्माण शक्ति भी उतनी ही मात्रा मे कम हो जायेगी। इस प्रकार बैंको की साख निर्माण शक्ति जनता की बैंकिग सम्बन्धी आदते भी सीमित कर देती है।

3. <u>केन्द्रीय बैंक के पास जमा राशियाँ (Securities with central Bank) :</u> प्रत्येक बैंक को अपने मांग निक्षेपों तथा समय निक्षेपों का कुछ निश्चित भाग केन्द्रीय बैंक के पास जमा करना/रखना पड़ता है। यह जमा दर समय समय पर केन्द्रीय बैंक द्वारा परिवर्तित किया जाता रहता है। जब केन्द्रीय बैंक इस जमा दर को बढ़ा देता है तब उस अनुपात में व्यापारिक बैंकों की साख सृजन शक्ति कम हो जाती है। इसके विपरीत जब केन्द्रीय बैंक इस जमा प्रतिशत को कम कर देता है तो वाणिज्यिक बैंकों की साख निर्माण की शक्ति बढ़ जाती है।

4. <u>उचित जमानतें (Proper Securities)</u> : पर्याप्त जमानतों की उपलब्धता भी बैंक की साख निर्माण शक्ति को सीमित करता है। बैंक अपने ग्राहक को किसी सम्पत्ति की जमानत पर ऋण देता है। बैंक अचल/अतरल सम्पत्ति को तरल सम्पत्ति में परिवर्तित कर साख का निर्माण करता है। परन्तु यदि जनता के पास उचित प्रतिभूतियाँ/सम्पत्तियाँ न हो तो उसे ऋण नहीं मिलेगा तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि बैंक साख का निर्माण नहीं कर सकेगा।

5. <u>आर्थिक वातावरण (Economic Environment)</u> : बैंक की साख सृजन शक्ति देश के आर्थिक वातावरण पर भी निर्भर करती है। बैंक शून्य में साख का निर्माण नहीं कर सकते। यदि देश में आर्थिक मन्दी है तो साख का सृजन

कम होगा परन्तु यदि देश में आर्थिक प्रगति का वातावरण होगा तो साख के सृजन को गति मिलेगी अर्थात् साख का विस्तार होगा।

6. केन्द्रीय बैंक की साख नियन्त्रण नीति (Central Bank's Credit Control Policy) : केन्द्रीय बैंकों की साख सृजन शक्ति; केन्द्रीय बैंक की साख नियन्त्रण नीति पर निर्भर करती है। जब केन्द्रीय बैंक यह देखता है कि वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख का अत्यधिक विस्तार किया जा रहा है तो वह विभिन्न नियन्त्रणात्मक उपायों द्वारा जैसे बैंक दर नीति, खुले बाजार की क्रियायें आदि द्वारा साख के विस्तार पर रोक लगाता है।

इसी के व्युत्क्रम यदि केन्द्रीय बैंक यह महसूस करता है कि बाजार में साख की कमी है या साख का निर्माण कम हो रहा है तो केन्द्रीय बैंक बैंक दर को कम करके, खुले बाजार में प्रतिभूतियों का क्रय करके बैंकों की साख निर्माण शक्ति में वृद्धि करने का प्रयास करता है।

7. अन्य बैंकों का व्यवहार (Behaviour of other Banks) : यदि कोई बैंक उस सीमा तक ऋण नहीं प्रदान करता है जिस सीमा तक ऋण प्रदान करने की उससे अपेक्षा की जाती है तो इस प्रकार साख निर्माण की प्रक्रिया अघर में लटक जायेगी, बैंकिंग प्रणाली साख का पूर्ण सृजन नहीं कर पायेगी।

अतः बैंकों का व्यवहार भी साख सृजन प्रक्रिया को सीमित कर देता है।

8. अन्य कारण (Other Causes) : उपरोक्त के अतिरिक्त बहुत से अन्य कारण जैसे चेक समाशोधन, अतिरिक्त आरक्षिति न्यूनतम कानूनी रिजर्व अनुपात, इत्यादि भी बैंकों के साख सृजन क्षमता को प्रभावित करते हैं।

14.10 सारांश

बैंक एक एसी संस्था है जो जन सामान्य की जमायें स्वीकार करता है एवं इसके बदले में साख का सृजन कर ऋण प्रदान करता है। बैंक विभिन्न प्रकार के कार्य करते हैं जैसे – जमा स्वीकार करना, अग्रिम ऋण देना, साख निर्माण एजेन्सी संबंधी कार्य इत्यादि। विकासशील देशों में पूँजी की अत्याधिक कमी है। अतः विकासशील देशों में सुदृढ़ बैंकिंग व्यवस्था एक अनिवार्य आवश्यकता है। विश्व में बैंकिंग प्रणाली के विभिन्न स्वरूप पाये जाते हैं परन्तु इकाई बैंकिंग एवं समूह बैंकिंग प्रणाली विश्व के बहुतायत राष्ट्रों में पायी जाती है। देश के औद्योगिक तथा व्यावसायिक विकास हेतु एक सुदृढ़ बैंकिंग प्रणाली का होना अति आवश्यक है।

किसी देश का उत्पाद, व्यापार, व्यवसाय, उद्योग – धन्धे, विनिमय तथा वितरण सभी बैंकिंग व्यवस्था पर ही केन्द्रित होते हैं। बैंक आधुनिक अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। साख का निर्माण व्यापारिक बैंकों का महत्वपूर्ण कार्य है। व्यावसायिक संस्थाओं की तरह बैंक भी एक वाणिज्यिक संस्थान है। इसका उद्देश्य भी लाभ कमाना होता है। बैंक साख का सृजन कर अन्य लोगों को ऋण देकर लाभ कमाता है इसके अतिरिक्त बैंक अन्य कार्यों को निष्पादित करके भी लाभ अर्जित करता है। परन्तु साख सृजन की कुछ सीमायें भी हैं।

14.11 शब्दावली

बैंक (Bank)– बैंक का अभिप्राय मुद्रा मे लेन–देन करने वाली संस्था से है।

वाणिज्यिक बैंक (Commercial Bank): बैंक का अभिप्राय वाणिज्यिक बैंक से ही है।

इकाई बैंकिंग (Unit Banking) : इस बैंकिंग में बैंक का एक ही कार्यालय होता है।

शाखा बैंकिग (Branch Banking): मुख्य कार्यालय किसी बड़े शहर में स्थापित होता है तथा शाखायें देश के विभिन्न भागों में होती हैं।

समूह बैंकिंग (Group Banking) – इसमे एक सूत्रधारी कम्पनी के नियन्त्रण मे दो या अधिक बैंक होते हैं।

साख (Credit): साख का अर्थ है ऋण उत्पन्न करना या उधार का सृजन करना।

14.12 बोध प्रश्न

1. बैंक की परिभाषा दीजिये। व्यापारिक बैंकों की मुख्य विशेषतायें बताइये।
2. बैंक को परिभाषित कीजिये तथा व्यापारिक बैंकों के कार्यों की विवेचना कीजिये।
3. वाणिज्यिक बैंक से आप क्या समझते है ? विकासशील देशों मे वाणिज्यिक बैंकों की भूमिका बताइये।
4. एक अच्छी/सुदृढ़ बैंकिंग प्रणाली की क्या विशेषतायें होनी चाहिए ?
5. आधुनिक अर्थव्यवस्था में बैंकों के महत्व की विवेचना कीजिये।
6. साख निर्माण से आप क्या समझते हैं ? वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख सृजन किस प्रकार किया जाता है ?
7. क्या बैंक वास्तव में साख का सृजन करते हैं ? साख सृजन की क्या सीमायें हैं ? व्याख्या करें।

14.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. इस प्रश्न के उत्तर हेतु पहले बैंक की सामान्य परिभाषा लिखे फिर दो या तीन विद्वानों की परिभाषा देकर अपने शब्दों में बैंक को परिभाषित कीजिये इसके पश्चात् बिन्दुवार बैंक वाणिज्यिक बैंक की विशेषतायें लिखें।
2. प्रश्न 1 के प्रथम भाग का उत्तर लिखे तथा दूसरे भाग में बैंक द्वारा किये जाने वाले कार्यों का वर्णन, बैंक के कार्यों को वर्गीकृत करते हुये कीजिये।
3. सर्वप्रथम बैंक की उचित परिभाषा दीजिये तत्पश्चात् विकासशील देशों में बैंकों के द्वारा किये जाने वाले कार्य लिखिये फिर कार्यों के महत्व को बताते हुये लिखिये कि इन कारणों से वाणिज्यिक बैंक विकासशील देशों में अतिमहत्वपूर्ण कार्य करते हैं।
4. पहले बैंक की उचित परिभाषा दीजिये फिर एक बैंकिंग प्रणाली की विशेषता लिखिये।
5. पहले बैंक के कार्यों को लिखिये फिर अर्थव्यवस्था में बैंकिंग प्रणाली की महत्ता लिखिये।
6. सर्वप्रथम साख क्या है लिखिये फिर साख का सृजन बैंकों द्वारा किस प्रकार किया जाता है उदाहरण देकर समझाइये।

7. पहले साख सृजन की परिभाषा दीजिये, बैंक साख कैसे उत्पन्न करते हैं समझाइये फिर तर्कसहित बताइये कि साख का सृजन कैसे होता है तत्पश्चात यह बताइये कि साख के सृजन में क्या कमियाँ हैं ?

14.14 स्वपरख प्रश्न

1. वाणिज्यिक बैंक से आप क्या समझते हैं ? एक बैंक के विभिन्न कार्यों की व्याख्या कीजिए।
2. एक विकासशील देश में वाणिज्यिक बैंकों की भूमिका पर प्रकाश डालिये।
3. एक सुदृढ़ बैंकिंग व्यवस्था की आवश्यकताओं की विस्तारपूर्वक चर्चा करें।
4. यूनिट बैंकिंग एवं शाखा बैंकिंग में भेद बताइये।
5. यूनिट एवं शाखा बैंकिंग प्रणालियों के गुणों एवं अवगुणों की विवेचना कीजिये।
6. बैंक साख निर्माण कैसे करते हैं ? बैंक की साख निर्माण शक्ति की क्या सीमायें हैं?

14.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. विनीत एवं अवधेश कुमार गुप्त – वाणिज्य; भारत भारती प्रकाश एण्ड क० वेस्टर्न कचहरी रोड मेरठ (उ०प्र०)
2. एम० एल० सेठ – Monetary Economics
3. डा० सतीश कुमार साहा – मुद्रा एवं वित्तीय प्रणालियाँ
4. डा० एम० एल० सेठ – मुद्रा एवं बैंकिंग
5. एम० एल० झिंगन – मौद्रिक अर्थशास्त्र

इकाई - 15 विकास बैंकिंग (Development Banking)

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 अर्थ एवं परिभाषा
15.3 विकास बैंकों की विशेषतायें
15.4 विकास बैंक के कार्य
15.5 विकास बैंकों का महत्व
15.6 भारत में विकास बैंक
15.7 विकास बैंकों का वर्गीकरण
    15.7.1 भारतीय औद्योगिक वित्त निगम
    15.7.2 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक
    15.7.3 भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम
    15.7.4 भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक
    15.7.5 राज्य वित्तीय निगम
15.8 सारांश
15.9 शब्दावली
15.10 बोध प्रश्न
15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.12 स्वपरख प्रश्न
15.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- विकास बैंकिंग क्या है, की व्याख्या कर सके ।
- विकास बैंकिंग की परिभाषा तथा उसकी विशेषता से अवगत हो सके। ।
- विकास बैंकों का अर्थव्यवस्था में क्या महत्त्व है, को जान सके।
- विकास बैंक कितने प्रकार के होते हैं, का वर्णन कर सकें ।
- भारत में विकास बैंकिंग की शुरूआत कब से हुई तथा किन कारणों से हुई, की व्याख्या कर सके ।

15.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्वयुद्ध की अवधि में विश्व के अधिकांश देशों की औद्योगिक प्रगति को काफी गहरा आघात पहुँचा, इन देशों के उद्योग – धन्धों के पुनर्निर्माण हेतु भारी वित्त की आवश्यकता ने विकास बैंकिंग की एक नवीन प्रवृत्ति का बीजारोपण किया अर्थात् विकास बैंकिंग द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त की एक नवीन वित्तीय खोज है। वर्ष 1902 में इण्डस्ट्रियल डेवलपमेंट बैंक जापान के रूप में पहले विकास बैंक की नींव पड़ी। अपने शुरूआती वर्षों में इस बैंक ने समुद्री जहाज हेतु बंधक ऋणों का प्रबन्धन किया परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के तुरन्त बाद ही इस बैंक ने वास्तविक रूप में विकास बैंक के कार्यों का निष्पादन प्रारंभ किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् कई विकसित देशों में विकास बैंकों की स्थापना हुई, उदाहरणार्थ – 1944 में इण्डस्ट्रिल बैंक आफ कनाडा, 1945 में द

कामर्शियल फाइनेन्स कारपोरेशन लि० ग्रेट ब्रिटेन फाइनेन्स कारपोरेशन फार इण्डस्ट्री लि० ग्रेट ब्रिटेन; 1946 में द इण्डस्ट्रियल फाइनेन्स आफ द कामनवेल्थ बैंक आफ आस्ट्रेलिया, 1949 में द डयूस हर्सल बैंक, द इण्डस्ट्रियल बैंक आफ जर्मनी 1949 इत्यादि।

इसके अलावा विश्व के अन्य देशों जैसे नाइजीरिया, थाइलैण्ड, मलेशिया, चिली, घाना, श्रीलंका, ईरान, भारत, पाकिस्तान आदि विकासशील देशों में भी विकास बैंकों की स्थापना हुई। ये बैंक विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित थे। भारत में पहला विकास बैंक आई०एफ०सी० 1946 में स्थापित किया गया।

15.2 अर्थ एवं परिभाषा

एक ऐसा वित्तीय संस्थान जो उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करता है। संगठनात्मक कुशलता बढ़ाने में सहयोग करता है, तकनीकी एवं व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध कराता है, ऋण एवं पूँजी प्रदान करता है तथा साथ ही साथ परामर्शी सेवायें भी उपलब्ध कराता है को विकास बैंक कहते हैं। सरल शब्दों में कहें तो विकास बैंक पूँजी एवं ऋण को उपलब्ध कराने के साथ ही साथ समग्र परामर्शी सेवायें भी उपलब्ध कराता है अर्थात् यह बैंक वित्तीय तथा विकास सम्बन्धी सेवाओं के सम्मिश्रण की व्यवस्था करता है।

विकास बैंक विशेषीकृत वित्तीय संस्थान हैं। ये औद्योगिक एवं कृषि क्षेत्रों को मध्यावधि एवं दीर्घावधि ऋण प्रदान करते हैं। ये सार्वजनिक तथा निजी दोनों क्षेत्रों को ऋण प्रदान करते हैं। ये बैंक बहुद्देशीय वित्तीय संस्थान हैं। ये समयावर्ती ऋण देते हैं, प्रतिभूतियों तथा अन्य स्थानों/क्रियाओं में विनियोग भी करते हैं। ये जनता में बचत एवं विनियोग की प्रवृत्ति को भी बढ़ावा देते हैं।

सामान्य सन्दर्भों में परिभाषा –

"विकास बैंक वे वित्तीय संस्थायें हैं जिनका प्राथमिक लक्ष्य समाज की आधारभूत आवश्यकताओं का वित्तीयन करना है। इनके वित्त पोषण के परिणामस्वरूप राष्ट्र का सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र प्रगति एवं विकास करता है। यद्यपि कि क्षेत्र वार समाज की आवश्यकतायें परिवर्तित होती रहती हैं क्योंकि सामाजिक संरचना, आर्थिकी तथा अन्य पहलू भिन्न भिन्न होते हैं।

बोस्की के अनुसार – "एक वित्तीय मध्यवर्ती संस्थान जो बैंक योग्य आर्थिक विकास परियोजनाओं के लिये मध्यम तथा दीर्घकालीन ऋण तथा संबंधित सहायक सेवायें प्रदान करता है; को विकास बैंक कहते हैं।"

15.3 विकास बैंकों की विशेषतायें (Characteristics of Development Bank)

1. विकास बैंक के अन्तर्गत वे बैंक आते हैं जिनकी स्थापना विशिष्ट क्षेत्र के विकास के लिये किया जाता है। जैसे – उद्योग, कृषि, आयात, निर्यात आदि।
2. यह साधारण बैंकों की तरह जनता से धन संग्रह का कार्य नहीं करते।
3. यह वाणिज्यिक बैंकों की तरह अल्पकालीन ऋण उपलब्ध नहीं कराते।
4. ये बैंक मध्यम एवं दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराते हैं।
5. इनका प्रमुख कार्य अपनी प्राथमिकता वाले क्षेत्र में निवेश एवं व्यवसाय को प्रोत्साहित कर आर्थिक प्रगति को तेज करता है।

15.4 विकास बैंक के कार्य (Functions of Development Bank)

विकास बैंक एक विशिष्ट वित्तीय संस्थान है जो उसे वाणिज्यिक बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से भिन्न बनाता है। जैसा कि इसकी विशेषताओं में वर्णित किया गया है कि यह बैंक ग्राहकों से जमा स्वीकार नहीं करता तथा अल्पकालीन ऋण भी नहीं प्रदान करता, यह बैंक नवोन्वेषक तथा प्रोत्साहनात्मक क्रियाओं को करता है। यह सामाजिक लाभ (Social Benefit) के अटल सिद्धान्त पर कार्य करता है जबकि अन्य वित्तीय संस्थायें एवं बैंक लाभ की प्रेरणा से कार्य करते हैं।

विकास बैंक के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं –

1. विकास बैंक नवीन उद्यमों के लिये विशेष प्रस्तावों का निर्माण करता है।
2. यह मौजूदा इकाइयों के विस्तार में भी सहायता करता है।
3. यह नवीन औद्योगिक परियोजनाओं की स्थापना में सहायता करता है।
4. जोखिम पूँजी का प्रबन्ध करता है।
5. मध्यमकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण तथा अग्रिम प्रदान करता है।
6. देश के अन्दर तथा बाहर से लिये गये ऋणों की प्रतिभूति लेता है।
7. यह उद्योगों के स्टाक, ऋणपत्र, अंश, बाँण्ड आदि का अंशदान देने की प्रतिज्ञा करता है।
8. यह उद्योगों के स्टाक, अंश, बाण्ड तथा ऋणपत्रों आदि के निर्गमों की हामीदारी करता है।
9. यह उपलब्ध सयन्त्र तथा मशीनरी के आधुनिकीकरण, मरम्मत आदि में सहायता करता है।
10. यह विशेष परियोजनाओं के लिये सामान्य औद्योगिक सर्वेक्षण तथा व्यवहार्यता अध्ययन का प्रबन्धन करता है।
11. यह स्थानीय एवं विदेशी निवेशकर्त्ताओं हेतु उद्यमकर्त्ता भागीदारों की खोज में सहायता करता है।
12. यह तकनीकी सहायता जुटाने के लिये परामर्शदाता की सेवायें भी देता है।
13. यह प्रबन्धकीय कौशल विकास हेतु कार्यक्रमों को भी प्रायोजित करता है।

15.5 विकास बैंकों का महत्त्व (Importance of Development Banks)

किसी देश के सर्वांगीण विकास प्रक्रिया में विकास बैंकों की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण है क्योंकि विकास बैंक उस देश के विकास में अहम कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य सम्पन्न करता है। यह बैंक देश के विकास रूपी वाहन में इंजन की भूमिका का निर्वहन करता है। विकास बैंकों के महत्त्व का निम्नांकित शीर्षकों में अभिव्यक्त किया जा सकता है –

1. **उद्यम की स्थापना एवं उन्नति में सहायक** (Helps in establishment and development of enterprises) : विकास बैंक नये उद्यमों की स्थापना में सहायता करता है तथा उनके विकास हेतु पूँजी भी उपलब्ध कराता है इस प्रकार उनका विकास करता है।

2. **संतुलित क्षेत्रीय विकास की उन्नति में सहायता** (Helps in promotion of balanced regional development) : विकास बैंक देश के पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों को स्थापित करने में सहायता प्रदान कर उद्योगों के विकेन्द्रीकरण व

विस्तार में सहायता करता है जिससे क्षेत्रीय विषमता दूर करने में सहायता मिलती है।

3. **संस्थान निर्माण** (Institution Building) : यह बैंक संस्थान निर्माण में भी सहायक होता है। यह सर्वाधिक ऋणदाता संस्थाओं के निर्माण में तथा उनके विकास में सहायक सिद्ध होता है। ये संस्थान बड़े ऋणदाता संस्थानों द्वारा प्रायोजित होते हैं।

4. **विकास के इन्जन** (Engines of development) : विकास बैंक देश के विकास रूपी वाहन के इन्जन हैं। ये बैंक विशेषज्ञता, व्यावहारिक अध्ययन तथा वित्त के प्रबन्ध द्वारा विकास के सक्रिय प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है।

5. **कौशल उन्नति में सहायक** (Helps in upgradation of skills) : यह छोटे मध्यम तथा बड़े उद्यमियों को उचित प्रशिक्षण प्रदान कर प्रबन्धकीय कौशल बढ़ाने में सहायक भी होता है।

6. **तकनीकी उन्नति** (upgradation of technology) : यह बैंक अपने यहाँ स्थापित तकनीकी सलाहकारी तथा शोध एवं परामर्शी विभाग द्वारा सहायतित संस्थानों को प्रशिक्षण सलाह एवं तकनीकी सेवायें भी प्रदान कर उन्हें तकनीकी रूप से उन्नत बनाता है।

7. **विदेशी पूँजी उपलब्ध कराने में सहायता** (Assist in surveying Foreign capital) : विकास बैंक विदेशी पूँजी एकत्र करके विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार आवंटित करता है यह बैंक विश्व बैंक आदि अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं से वित्त एकत्र करता है एवं विभिन्न परियोजनाओं में विनियोजित करता है।

8. **समन्वय** (Co-ordination) : ऐसे वित्तीय संस्थान जो कि उद्योगों के वित्तपोषण एवं विकास कार्यों में संलग्न हैं, के द्वारा असंगठित विकास को रोकने के लिये बैंक समन्वयक की भूमिका निभाता है।

15.6 भारत में विकास बैंक (DEVELOPMENT BANK IN INDIA)

किसी भी देश के औद्योगिक विकास में ''वित्त धमनियों में 'रक्त' के समान होता है। उद्योगों की स्थापना, विस्तार तब तक संभव नहीं है जब तक वित्त न हो। उद्योगों को स्थायी सम्पत्तियों हेतु दीर्घकालीन वित्त/कोष एवं कार्यशील पूँजी हेतु अल्पकालीन वित्त/कोष की आवश्यकता होती है। आधुनिक समय में अधिकांश बड़े उद्योगों को दीर्घकालीन वित्त की पूर्ति पूँजी बाजार से एवं अल्पकालीन वित्त की पूर्ति वाणिज्यिक बैंकों से की जाती है।

परन्तु जब पूँजी बाजार का विकास नहीं हुआ था तब दीर्घकालीन वित्त के लिये संस्थागत वित्तीय संस्थायें ही उद्योगों को दीर्घकालीन वित्तीय सहायता प्रदान करती थीं।

15.7 विकास बैंकों का वर्गीकरण (Classification of Development Bank)

(A) **कृषि के विकास के लिये विकास बैंक –**

(1) प्राथमिक भूमि विकास बैंक

(2) राज्य/केन्द्रीय भूमि विकास बैंक

(3) कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (NABARD)

(B) उद्योगों के लिये विकास बैंक –

(i) **उद्योगों के लिये राष्ट्र स्तरीय विकास बैंक –**

(1) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई०डी०बी०आई०)

(2) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (आई०एफ०सी०आई०)

(3) भारतीय औद्योगिक वित्त एवं निवेश निगम (आई०सी०आई०सी०आई०)

(4) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (एस०आई०डी०बी०आई०)

(5) भारतीय औद्योगिक पुननिर्माण बैंक (आई०आर०बी०आई०)

(6) जोखिम पूँजी तथा तकनीकी वित्त निगम (आर०टी०सी०एफ०सी०)

(7) भारतीय तकनीकी विकास एवं सूचना कम्पनी (टी०डी०आई०सी०आई०)

(8) भारतीय जहाजरानी ऋण एवं निवेश निगम (एस०सी०आई०सी०आई०)

(9) भारतीय पर्यटन वित्त निगम (टी०एफ०सी०आई०)

(ii) **राज्य स्तर पर राज्य विकास बैंक –**

(1) राज्य वित्तीय निगम (एस०सफ०सी०)

(2) राज्य औद्योगिक विकास निगम (एस०आई०डी०सी०)

(C) **विदेशी क्षेत्र हेतु –**

(1) आयात – निर्यात बैंक (Export Import Bank)

कुछ महत्त्वपूर्ण वित्तीय संस्थानों का वर्णन निम्नांकित है –

15.7.1 <u>भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation of India - IFCI)</u>

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना 1948 में की गयी। यह भारत का पहला विकास बैंक था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय राष्ट्र में दीर्घावधि की वित्तीय योजना का निर्माण करने वाली संस्था का सर्वथा अभाव था जिसके कारण देश में औद्योगिक क्षेत्रों के विकास हेतु भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना का निर्णय लिया। इसकी स्थापना 1 जुलाई 1948 को की गयी।

यह भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की एक सहायक कम्पनी है जिसकी 50 प्रतिशत अंश पूँजी आई०डी०बी०आई० के पास है तथा शेष 50 प्रतिशत बैंकों, बीमा कम्पनियों तथा सहकारी बैंकों के पास है।

इसका मुख्य उद्‌देश्य भारत में निजी, सार्वजनिक, संयुक्त तथा सहकारी क्षेत्र के उद्योगों को मध्यम तथा दीर्घावधि का ऋण प्रदान करना है।

<u>निगम के वित्तीय साधन (FINANCIAL RESOURCES OF THE CORPORATION)</u>

निगम का प्रमुख आर्थिक साधन, इसकी अंश पूँजी है। स्थापना के समय इसकी पूँजी 100 करोड़ रूपये थी।

इसकी अंशपूंजी मार्च 2018 में 1920.99 करोड रूपये थी (साभार इकोनामिक टाइम्स)। ऋणपत्र एंव वाण्डों को निर्गमित करके भी यह अपने वित्त्तीय साधन जुटाता है। यह

आन्तरिक स्थिति को मजबूती प्रदान करने हेतु निगम संचय कोष की भी व्यवस्था करती है। आवश्यकता पड़ने पर यह केन्द्रीय सरकार एंव राज्य सरकारों की प्रतिभूतियों पर 90 दिनों के लिए ऋण ले सकता है।

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम के कार्यः

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम के कार्य निम्नांकित है।

अ–: **वित्तपोषक के रूप में कार्यः** (As a facilitator of finance)

वित्तपोषक के रूप में आई एफ सी आई निम्न कार्य करता है जैसे –

1. यह भिन्न भिन्न औद्योगिक इकाइयों को भारतीय मुद्रा में तथा विदेशी मुद्रा में ऋण तथा अग्रिम प्रदान करता है जो कि दीर्घावधि में देय होते है
2. यह नवीन औद्योगिक परियोजनाओं, वर्तमान इकाइयों के विस्तारीकरण,आधुनिकीकरण, संशोधन नवोन्वेष, इत्यादि के लिए भी आर्थिक सहायता उपलब्ध कराता है।
3. यह अंशों, ऋणपत्रों, बन्धपत्रों, जिसे सात वर्षों के अन्दर समाप्त करना होता है की हमीदारी करता है।
4. यह भारत अथवा विदेश में क्रय की गयी मशीनरी में विलम्ब से भुगतान के सम्बन्ध में गारण्टी भी देता है
5. अपने वित्तीय सेवाओं के रूप में औद्योगिक प्रतिष्ठानों को उपकरणों का वित्त पोषण, उपकरणों को पट्टे पर देना, उपकरण प्राप्ति पूर्तिकर्ताओं को ऋण, मर्चेण्ट बैंकिगं तथा किराया क्रय जैसी अनेक सेवायें प्रदान करता है।

प्रोत्साहक के रूप में कार्य (Work as a Promoter)

आई.एफ.सी.आई. प्रोत्साहक के रूप में निम्न कार्य करता है।

यह संतुलित क्षेत्रीय विकास के लिए पिछड़े क्षेत्रों में लगी औद्योगिक इकाइयों के लिए सहायता स्वीकृत करता है।

- यह अतिलघु, लघु एवं सहायक औद्योगिक इकाइयों के आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन देता है तथा विपणन सहायता एवं परामर्शी सहायता भी प्रदान करता हैं
- महिला उद्यमियों हेतु ब्याज में छूट के साथ पूंजी उपलब्ध करवाता है।
- छोटी एंव मध्यम औद्योगिक इकाइयों में प्रदुषण नियन्त्रण करने में सहायता देता है।
- यह नवीन तकनीकी उन्नत तकनीकी, ऊर्जा संरक्षण प्रक्रियाओं, तथा प्रणालियों, पर्यावरण सुरक्षा, प्रायोगिक संयन्त्र की स्थापना इत्यादि के लिए वित्त की सुविधा उपलब्ध कराता है। भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड ने इलेक्ट्रानिक, सेन्थेटिक, प्लास्टिक, सेन्थेटिक फाइबर, विभिन्न प्रकार के रसायनों को उत्पादित करने वाले पूंजीगत एवं मध्यवर्ती उद्योगों, सेवा उद्योग जैसे होटल अस्पताल इत्यादि, उपभोक्ता वस्तु उद्योग जैसे–कपड़ा, कागज, चीनी उद्योग रचनात्मक क्षेत्र जैसे–ऊर्जा, दूर संचार इत्यादि, आधारभूत उद्योग जैसे– सीमेन्ट, लोहा एवं इस्पात , रासायनिक खाद इत्यादि उद्योगों को सहायता देकर विकसित किया है।

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम का संगठन एंव प्रबन्ध

इस निगम का प्रबन्ध 13 संचालकों का एक प्रबन्ध संचालक मण्डल करता है। इसमें से अध्यक्ष तथा दो संचालक भारत सरकार द्वारा, चार संचालक औद्योगिक विकास बैकं द्वारा मनोनित किये जाते है।

शेष छः संचालकों में से दो को अनुसचित बैकों द्वारा, दो को बीमा तथा अन्य वित्तीय संस्थाओ द्वारा तथा दो को सहकारी बैंको द्वारा चुनाव किया जाता है। निगम का अध्यक्ष पूर्णकालिक एवं संवैतनिक होता है। औद्योगिक वित्त निगम का महाप्रबन्धक उसका मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न विभागो मे देख–रेख के लिये उप–महाप्रबन्धक तथा विभाग का कार्य सम्भालने के लिये सहायक महा प्रबन्धक होते है। निगम का प्रधान कार्यालय दिल्ली मे है। इसके अतिरिक्त इसके 17 कार्यालय है।

भारतीय औद्योगिक वित्त निगमो की प्रगति (Progress of Industrial Finance corporation of India)

निगम को स्थापित हुये लगभग 70 वर्ष हो चुके हैं और इस अवधि मे निगम ने निरन्तर प्रगति की है। इस अवधि मे निगम ने न केवल अपने वित्तीय साधनों मे ही वृद्धि की है अपितु अपने कार्य क्षेत्र को भी अधिक व्यापक बनाकर ऋ़णो के परिमाण में भी पर्याप्त वृद्धि की है।

निगम ने अपनी सहायता के कार्य क्षेत्र में अनेक प्रकार के उद्योगो को सम्मिलित कर लिया है जैसे–आधारभूत औद्योगिक रसायन, उर्वरक, खनिज तेल, रसायन, लौह, अलौह एवं धातुये विद्युत उपकरण, मशीन एवं यन्त्र, मोटर वाहन, कृषि यन्त्र, कृत्रिम रेशे, रबर की वस्तुयें, कांच, सीमेन्ट, कागज, चीनी, सूती वस्त्र आदि।

निगम अब उद्योगो की अंश पूंजी में भी भाग ले सकता है लेकिन निगम उद्योगो के लिये सभी आवश्यक कार्य नहीं कर सकता जैसे कच्चे माल की व्यवस्था करना, बाजार मांग को उत्पन्न करना, एवं व्यावसायिक दक्षता का निर्माण करना आदि। निगम ने जनवरी 1975 से एक जोखिम पूंजी प्रतिष्ठान प्रारंभ किया है जो नये उद्यमियों को उदारशर्तो पर ऋण देता है। जिससे वे अंशपूंजी मे संस्थापक का अंश दे सकें। मार्च 1974 से निगम के द्वारा स्थापित प्रबन्ध विकास संस्थान ने कई पाठ्यक्रम आयोजित किये हैं जिसमें प्रबन्ध के विभिन्न आयामों पर आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान किया गया है।

निगम ने चार तकनीकी सलाहकार संगठन स्थापित करने मे योगदान दिया है जो परियोजना निर्माण, क्रियान्वयन मूल्यांकन आदि मे सहायता करते है इससे नये उ़द्यमियों को लाभ हुआ है। निगम ने विभिन्न विश्वविद्यालयों मे विकास बैंकिग एवं औद्योगिक वित्त पर छः पीठे स्थापित की है जिनमे इन विषयो पर अनुसंधान व उच्च स्तरीय अध्ययय का प्रोत्साहन मिला है।

निगम ने वर्ष 1982–83 में राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय उ़द्यमशीलता विकास संस्थान की स्थापना मे सहायता प्रदान की है तथा विज्ञापन व टेक्नोलाजी उद्यमशीलता विकास कार्यक्रम की लागत मे अपनी हिस्सेदारी की मंजूरी भी दी है।

इस प्रकार यह निगम उद्यमशीलता के विकास मे काफी सराहनीय योगदान दे रहा है। भारतीय औद्योगिक वित्त निगम ने अब तक दो तकनीकी परामर्श संगठन हिमांचल प्रदेश एवं राजस्थान मे स्थापित किये है तथा तीसरा मध्य प्रदेश में स्थापित करने हेतु प्रयासरत है।

निगम की आलोचना (**criticism of corporation**)

निगम ने स्थापना से लेकर अद्यावधि तक सराहनीय कार्य किये है फिर भी समय–समय पर इसकी आलोचना होती रही हैं आलोचना के मुख्य बिन्दु निम्न है:–

1. इसके द्वारा केवल बडे उद्योगो को ऋण दिया जाता है।
2. पूंजी बाजार मे यह अपनी ख्याति सृजित नही कर पाया है।
3. इसकी ब्याज दरे बहुत ऊंची है।
4. ऋण स्वीकृति मे अनावश्यक विलम्ब किया जाता है।
5. निगम की कार्य प्रणाली आलोचनापूर्ण है।
6. यह विकसित एवं अविकसित राज्यों मे अन्तर करता है।
7. निगम ने देश मे आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को बढावा दिया है।

15.7.2 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (**INDUSTRIAL DEVELOPMENT BANK OF INDIA IDBI**)

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना। 1 जुलाई 1964 को भारतीय रिजर्व बैंक की सहायक कम्पनी के रूप मे हुई। 1976 मे आई0डी0बी0आई0 को एक पूर्ण स्वायत्तशासी संस्थान बना दिया गया। इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र मे औद्योगिक वित्त की पूर्ति के साथ विभिन्न औद्योगिक, वित्तीय औद्योगिक संस्थाओं के साथ समन्वय स्थापित करना था। वर्तमान मे आई0एफ0सी0आई0, यू0टी0आई तथा भारतीय लद्यु उद्योग विकास बैंक इसकी सहायक कम्पनियां है। यह भारत सरकार, आर0बी0आई0 से ऋण, बाजार मे बाण्ड निर्गमित कर ऋण से धन प्राप्त कर तथा अंश पूंजी के निर्गमन से कोष प्राप्त कर वित्तीय साधन एकत्र करता है। आई0डी0बी0आई0 की कुल परिसम्पत्तियां वर्तमान मे रू0 350313.65 करोड है। तथा इसकी अंश पूंजी रू0 3083.86 करोड है।
(साभार थाम्सन र्यूटर्स रिपोर्ट 2018, मार्च)

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के कार्य (**Functions of industrial development bank of India**)

भारत मे विकास बैंकिंग के क्षेत्र मे आई0डी0बी0आई0 का शीर्षस्थ स्थान रहा है। यह बैंक वित्तपोषक, प्रोत्साहनकर्ता तथा समन्वयक की भूमिका निभाता है। यह बैंक सरकारी, निजी, संयुक्त तथा सहकारी क्षेत्र के लद्यु मध्यम तथा बडे पैमाने के उद्योगो को सहायता प्रदान करता है।

बैंक का कार्य क्षेत्र व्यापक रखा गया है जिसमे उन सभी कार्यों को सम्मिलित किया गया है जो वर्तमान वित्त निगमों द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं इनके कार्यो मे वित्त एवं विकास संबंधी सभी कार्य आ जाते है जो निम्नलिखित है:–

1. ऋण प्रदान करना (To provide loans)– बैंक सभी प्रकार की संस्थाओं को दीर्घकालीन ऋण देता है। ऐसी संस्थाओ द्वारा जारी किये गये ऋण–पत्रों को खरीदने का अधिकार भी इसे है।
2. ऋणों की गारण्टी देना (to give guarantee of loans)– औद्योगिक संस्थाओ द्वारा पूंजी बाजार मे अथवा बैंको से लिये जाने वाले ऋणो तथा निर्यात के स्थागत भुगतानों की गारण्टी देने का अधिकार इस बैंक को प्राप्त है। बैंको तथा अन्य संस्थाओं द्वारा किये गये अभिगोपन से उत्पन्न दायित्वों के लिये भी बैंक गारण्टी दे सकता है। इससे भारत मे संधीय

अभिगापन अथवा संयुक्त अभिगोपन के लिये अनुकूल वातावरण उत्पन्न होगा।

3. **पुनर्वित्त की सुविधायें देना** (To give refinance facilities)– औद्योगिक विकास बैंक निर्दिष्ट वित्तीय संस्थाओं द्वारा 3 से 25 वर्ष तक के दीर्घ कालीन ऋणों के लिये तथा अनुसूचित बैंको एवं सहकारी बैंकों द्वारा औद्योगिक संस्थाओं को दिये गये 3 से 10 वर्ष तक के ऋणो के लिये पुनार्वित्त की सुविधायें देता है। यह अवधि 10 वर्ष से अधिक भी हो सकती है।

   इसी प्रकार बैंको एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा निर्यात के संबंध में दिये गये मध्यमकालीन ऋणों के लिये भी पुनार्वित्त की सुविधायें आई0डी0बी0आई0 द्वारा दी जाती है।

4. **अंशो मे प्रत्यक्ष अभिदान** (Direct Subscription of Shares) विकास बैंक को औद्योगिक संस्थाओं द्वारा जारी किये गये स्कन्ध एवं अंशो मे प्रत्यक्ष अभिदान करने का भी अधिकार है। इस प्रकार के बैंक के लिए ऐसी व्यवस्था होना नितांत आवश्यक है क्योकि इसके बिना उद्योगो के प्रवर्तन एवं विकास में सक्रिय सहयोग देना बहुत ही मुश्किल होता है।

5. **अभिगोपन के कार्य** (Underwriting Activities)– औद्योगिक विकास बैंक अन्य औद्योगिक संस्थाओं द्वारा पूंजी बाजार में निर्गत किये जाने वाले अंशो, ऋणपत्रो, एवं बाण्डो का अभिगोपन भी करता है।

6. **विकास एवं गवेषणा के कार्य** (Developmental work) इस बैंक द्वारा अन्य विकासात्मक कार्य भी सम्पन्न किये जाते है जैसे–आधारभूत उद्योगों के विकास के उद्देश्य से नवीन योजनाओं को मूर्तरूप देने में प्रशासनिक एवं शिल्प सम्बन्धी सहायता प्रदान करना, विपणन, विनियोग एवं तकनीकी अनुसंधान तथा सर्वेक्षण इत्यादि कार्यर्यः साथ ही नये उद्योगो के प्रवर्तन, प्रबन्धन, प्रशासन आदि में भी यह बैंक सहायता प्रदान करता है।

औद्योगिक विकास बैंक सार्वजनिक एवं निजी दोनो ही क्षेत्रो मे उद्योगो को सहायता प्रदान करता है। सभी प्रकार के उद्योगो को इससे सहायता मिलती है जैसे–रासायनिक खाद, पैट्रोरसायन, लोह–अयस्क विशिष्ट, इस्पात, होटल, यातायात तथा अन्य उद्योग।

ऋणों की सीमा एवं ऋणों की सुरक्षा के लिये प्रदान की जाने वाली प्रतिभूति की प्रकृति तथा ऋण प्राप्त करने वाली संस्था के संगठन आदि के सबंध में इस बैंक के लिए कोई प्रतिबंध नहीं है।

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के कार्य की प्रगति (Progress of the working of the Industrial Development Bank of India)

औद्योगिक विकास बैंक 30 जून 2018 को अपने 54 वर्ष पूरे कर चुका है। इस अवधि में बैंक द्वारा सम्पन्न किये गये कार्य अत्यन्त सराहनीय रहे हैं। कुल मिला कर बैंक के द्वारा अपने 50 से अधिक वर्षों के कार्यकाल में 30 हजार करोड रूपयों से अधिक की वित्तीय सहायता स्वीकृत की गयी है।

इसमें अधिक सहायता उद्योगों को प्रत्यक्ष ऋण, औद्योगिक ऋणो के पुनर्वित्त एवं बिलों पर कटौती के रूप मे दी गयी है। निर्यात के लिये प्रत्यक्ष ऋण

एवं निर्यात ऋणो के पुनर्वित्त की तरफ इधर कुछ वर्षो से बैंक ध्यान देने लगा है और भविष्य मे इनके लिये और अधिक सहायता स्वीकार करेगा।

दीर्घ कालीन वित्त के क्षेत्र में शीर्षस्थ संस्था होने के नाते बैंक अन्य वित्तीय संस्थानों के अंशों एवं ऋण पत्रों के क्रय मे भी अधिकाधिक पूंजी निवेश कर रहा है।

लद्यु उद्योगो को आई0डी0बी0आई0 द्वारा प्रत्यक्ष सहायता नही दी जातीः अपितु अप्रत्यक्ष रूप मे दी जाती है इसके तीन रूप हैः–

1. राज्यों के वित्तीय निगमों द्वारा लद्यु क्षेत्र को दिये गये ऋणों के लिये पुनर्वित्त की सुविधा देकर,
2. मशीनों एवं स्थगित भुगतान के बिलों की पुनर्कटौती करके, एवं
3. उद्यमियों को बीजपूंजी सहायता प्रदान करके।

छंठवी योजना मे आई0डी0बी0आई0 द्वारा लद्यु क्षेत्र को समाहित कर 3287 की सहायतादी गयी। सातवीं योजना में मार्च 1990 तक इस विकास बैंक द्वारा लद्यु उद्योगों को प्रदान की गयी कुल सहायता 10135 करोड रूपये थी। यह सहायता विभिन्न स्वरूपों मे थी यथा–पुनर्वित्त, बिल–वित्त, बीज पूंजी इत्यादि के रूप मे लद्यु उद्योग विकास निधि के माध्यम से दी गयी।

2 अप्रैल 1990 से लद्यु उद्योग के वित्तीयन से संबंधित गतिविधियाँ विकास बैंक द्वारा लद्यु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) को सौप दी गयी। तदनुरूप लद्यु उद्योग विकास निधि तथा राष्ट्रीय समता निधि अब सिडबी को हस्तांतरित कर दिये गये है।

आई0डी0बी0आई0 प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनो प्रकार की सहायता प्रदान करता है। प्रत्यक्ष सहायता के अन्तर्गत परियोजना ऋण, अभिगोपन एवं प्रत्यक्ष अभिदान उदार या सुलभ ऋण, तकनीकी विकास निधि से ऋण तथा आस्थगित भुगतानो एवं ऋणो की प्रतिभूतियाँ आदि सम्मिलित है। अप्रत्यक्ष सहायता के अन्तर्गत औद्योगिक ऋणो हेतु पुनर्वित्त की सुविध, विपत्रों की पुनर्भुनायी, वित्तीय संस्थाओ के अंशो एवं ऋण पत्रो मे अभिदान तथा बीज पूंजी सहायता सम्मिलित होती हें।

आई0डी0बी0आई0 द्वारा प्रदत्त सहायता मे जिन पांच उद्योगो मे सबसे अधिक ऋण मिले है वे है सूती वस्त्र, सडक परिवहन, विद्युत उत्पादन, उर्वरक एवं विविध रसायन। इधर कुछ वर्षो से विकास बैंक सडक परिवहन, विद्युत उत्पादन, उर्वरक एवं मूल रसायन उद्योगों को अधिक सहायता देने का प्रयास करता रहा है। विकास बैंक द्वारा प्रदान की गयी सहायता मे महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु एवं आन्ध्रप्रदेश राज्यों को सबसे अधिक भाग प्राप्त हुआ है। वर्तमान मे आई0डी0बी0आई0 पिछडे राज्यों को अधिक ऋण देने का प्रयास करता है।

विकास बैंक द्वारा प्रदान की गयी सहायता मे निजी क्षेत्र का भाग 75.5 प्रतिशत रहा है। अन्य क्षेत्रो मे सार्वजनिक क्षेत्रो का भाग 14.9 प्रतिशत संयुक्त क्षेत्र का भाग 6.8 प्रतिशत तथा सहकारी क्षेत्र का भाग 2.8 प्रतिशत रहा है। आई0डी0बी0आई0 पुनर्वित्त प्रदान करने वाली सबसे बडी संस्था है। 1 अप्रैल 1990 से सिडबी (SIDBI) भी अब पुनर्वित्त सहायता प्रदान करने लगा है। विकास बैंक निर्यात ऋणो एवं आस्थागित भुगतानो की प्रतिभूति भी लेता है। विकास बैंक

द्वारा ऐसी प्रतिभूतियों की बकायाराशि 360 करोड रूपये थी। अब यह कार्य निर्यात–आयात बैंक द्वारा किया जा रहा है।

अन्य भारतीय वित्तीय निगमों की संयुक्त बैठकें भी समय–समय पर विकास बैंक द्वारा आयोजित की जाती है जिनमे राज्य स्तरीय वितीय निगमों के प्रतिनिधि भी भाग लेते है। उनमे अन्तर–संस्थगात मामलो पर विचार विमर्श होता है। विकास बैंक के अन्य कार्यों में अनेक कार्य सम्मिलित है जैसे–राज्यों के वित्तीय निगमों एवं तकनीकी संगठनों के अधिकारियों के प्रशिक्षण के कार्यक्रमों का आयोजन, निरीक्षण, एवं प्रगति रिपोर्ट की समीक्षा, वित्तीय परामर्श अध्ययन, अनुसंधान सर्वेक्षण, विचारगोष्ठियों का आयोजन आदि कार्य करना।

भारतीय औद्यागिक विकास बैंक ने 1976 में नरम उधार योजना (Soft loan Scheme) का शुभारंभ किया जिससे कुछ चुनिन्दा उद्योगों को रियायती दर पर ऋण उपलब्ध कराया जा सके। इस प्रकार कम लागत पर अधिक उत्पादन किया जाना संभव होगां

भारतीय औद्यागिक विकास बैंक की आलोचना (CRITICISM OF INDUSTRIAL DEVELOPMENT BANK OF INDIA)

भारत के औद्याोगिक विकास में विकास बैंक द्वारा जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष वित्तीय सहायता प्रदान की गयी है वह अत्यन्त उत्साहवर्द्धक रही है इसने देश के पूँजी बाजार को गति प्रदान की तथा दीर्घकालीन पूँजी के लिये विकास बैंक अब देश की सबसे बडी वित्तीय संस्था है। परन्तु देश के विकास में इसके योगदान का मूल्यांकन केवल इसकी वित्तीय सहायता के आधार पर ही नहीं लगाया जाना चहिए। इसमें कुछ कमियां भी हे जिसके कारण विकास बैंक की आलोचना भी की जाती है वे निम्नांकित हैः–

1. विकास बैंक द्वारा उद्योगो को प्रदान की जाने वाली सहायता प्राथमिक रूप से वित्तीय ही होती है परिणामतः यह परामर्श एवं प्रोत्साहनात्मक सेवाओं पर सीमित ध्यान दे पाता है।
2. इसकी वित्तीय सहायता बडे उद्योगो को ही मिलती है, लद्यु उद्योगों को सहायता का बहुत ही अल्प भाग मिल पाता है।
3. स्थापना के कुछ वर्षो तक इस बैंक द्वारा विकसित राज्यों को ही सहायता दी गयी, इससे क्षेत्रीय असन्तुलन को बढावा मिला।
4. विकास बैंक की सहायता का अधिकांश भाग निजी क्षेत्रों को मिला, सहकारी क्षेत्रों की विशेषकर उपेक्षा की गयी।
5. यह बैंक परियोजना ऋणों पर अधिक जोर देता है फलस्वरूप एक स्वस्थ पूंजी बाजार को विकसित करने में असफल रहा है।

यदि देखा जाय तो उपरोक्त आलोचनाओं का कोई खास महत्व नहीं है क्योंकि विकास बैंक का योगदान देश के औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायता ने देश की अर्थ व्यवस्था में महत्वपूर्ण एवं दूरगामी प्रभाव उत्पन्न किये है। इसके द्वारा सहायता प्राप्त परियोजनाओं में लाखो लोगो को रोजगार के अवसर प्राप्त हुये हैं। राष्ट्रीय आय मे वृद्धि हुई है, राजस्व मे बढोत्तरी हुई है, विदेशी मुद्रा में आय बढी है।

अतः अब विकास बैंक औद्योगिक प्रवर्तन एवं विकास के क्षेत्र में भारत की एक शीर्ष संस्था के रूप में कार्य कर रहा है।

15.7.3 भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम (INDUSTRIAL CREDIT AND INVESTMENT CORPORATION OF INDIA-ICICI)

भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश (**ICICI**) की स्थापना। जनवरी, 1955 में एक सार्वजनिक सीमित कम्पनी के रूप में हुई थी। निजी क्षेत्र के लद्यु एवं मध्यम पैमाने के उद्योगों के विकास में वित्तीय सहायता हेतु इसकी स्थापना की गयी। इस निगम की स्थापना में विश्व बैंक की अहम् भूमिका है।

वर्ष 1990 में ICICI ने अपने व्यवसाय को केवल परियोजना वित्तीयन से बढाकर अन्य विभिन्न वित्तीय सेवाओं की तरफ भी मोड दिया।

जनवरी 1997 में भारतीय जहाजरानी ऋण एवं निवेश निगम का विलय आई0सी0आई0सी0आई0 मे कर दिया गया।

वर्ष 1999 में ICICI भारत की पहली कम्पनी तथा भारत क पहला बैंक बन गई जिसने न्यूयार्क स्कन्ध बाजार (NYSE) में अनुसूचित हुई।

अप्रैल 2002 में ICICI का ICICI बैकं में विलय कर दिया गया एवं रिजर्व बैंक द्वारा अनुमोदन भी कर दिया गया।

वर्तमान में यह निगम विकास बैंक नहीं रह गया है अतः विकास बैंक के रूप में इसके अध्ययन की आवश्यकता नही रह गयी है।

स्थापना का उद्देश्यः (OBJECTIVES OF ITS ESTABLISHMENT)

1. औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन देने के लिये।
2. औद्योगिक इकाइयों की स्थापना, उनका विस्तारीकरण एवं उनके आधुनिकीकरण हेतु वित्त प्रदान करना।
3. देश के पूंजी बाजार को गति प्रदान करना।
4. ऐसी औद्योगिक परियोजनायें जिनमे विदेशी मुदा की आवश्यकता की जरूरत होती है, का वित्त भार पोषित करना।

आई0सी0आई0सी0आई0 के कार्य (FUNCTION OF ICICI)

यह निगम सार्वजनिक निजी, सहकारी एवं संयुक्त क्षेत्र के औद्योगिक इकाइयों को वित्तीय एंव अन्य प्रोत्साहनात्मक सुविधायें प्रदान करता है।

यह परियोजनाओ को भारतीय तथा विदेशी दोनो प्रकार की मुदाओं में ऋण उपलब्ध कराता है। अंश एवं ऋणपत्रों हेतु प्रत्यक्ष अंशदान देता है तथा प्रतिभूति देता हैं। उद्योगो की वित्तीय सेवाओं द्वारा सहायता जिसमें आस्थागत ऋण योजना के अन्तर्गत सहायता, किराया क्रय सुविधा, बन्धक ऋण सुविधा इत्यादि प्रदान करता है।

इस निगम द्वारा मर्चेण्ट बैंकिग की सुविधायें भी प्रदान की जाती है। यह निगम पिछडे क्षेत्रों में स्थापित उद्योगों को आसान एवं रियायती शर्ता पर परियोजना वित्त प्रदान करता है। यह पिछडे क्षेत्रों में आरंभिक या सीमान्त राशि अथवा ब्याज दर में आर्थिक सहायता के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करता है। नवीन परियोजनाओं तथा विस्तार एवं विविधिकरण परियोजनाओं को सहायता भी प्रदान करता है। इसके अलावा औद्योगिक प्रतिष्ठानो को जो अनुपूरक सहायता उपलब्ध करायी जाती है उनमें उपकरण वित्त तथा बढी हुई लागतों के लिये वित्त तथा अन्य विभिन्न उदेश्यों यथा उर्जा संरक्षण, प्रदूषण नियन्त्रण आदि सम्मिलित है, के लिये भी सहायता प्रदान करता है।

15.7.4 भारतीय लद्यु उद्योग विकास बैंक (**SMALL INDUSTRIES DEVELOPMENT BANK OF INDIA-SIDBI**)

भारतीय लद्यु उद्योग विकास बैंक अधिनियम 1989 के अन्तर्गत 2, अप्रैल 1990 को भारतीय लद्यु उद्योग विकास बैंक (**SIDBI**) की स्थापना की गयी। इसे पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कम्पनी के रूप में 250 करोड रूपये की अधिकृत पूँजी से स्थापित किया गया है जिसे 1000 करोड़ रूपये तक बढाया जा सकता है। स्थापना के समय से ही इस बैंक को लद्यु उद्योगों के विकास के लिये एक अग्रणी संस्था के रूप में देखा जाता है। सिडबी की निर्गमित पूंजी 450 करोड रूपये है जो 10 रूपये के 45 करोड अंशों में विभाजित है। सिडबी की स्थापना भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) के सहायक बैंक के रूप में किया गया था इसलिये सभी 450 करोड रूपये की पूंजी (IDBI) की प्रार्थित पूंजी थी।

स्थापना का उद्देश्य (OBJECTIVES OF ITS ESTABLISHMENT)–

1. लद्यु उद्योगों को प्रोत्साहित करना।
2. लद्यु उद्योगो के लिये वित्त की व्यवस्था करना।
3. समान गतिविधियों में संलग्न अन्य संस्थाओ के कार्यों के साथ समन्वय स्थापित करना।

कार्य (Functions):

सिडबी के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैः–

1. लघु उद्योग के क्षेत्र में एक शीर्ष संस्था होने के कारण भारतीय लद्यु उद्योग विकास बैंक (SIDBI) बैंकों एवं अन्य राज्य स्तरीय वित्तीय संस्थाओं के साथ मिलकर एक तन्त्र का कार्य करता है।
2. वित्तीय गतिविधियों में संलग्न अन्य संस्थानो के मध्य समन्वयक का काय्र करता है।
3. यह राष्ट्रीय लद्यु उद्योग निगम, राज्य औद्योगिक विकास निगम, राज्य लद्यु उद्योग निगम, अनुसूचित बैंक, राज्य सहकारी बैंक आदि को पुनः वित्त प्रदान करता है।
4. सिडबी ऋण तथा अग्रिमों के लिये पुनर्वित्त द्वारा, बिल–वित्त, बीज–पूंजी (Seed capital) आसान शर्तों पर ऋण प्रत्यक्ष सहायता, जैसी सुविधायें उपलब्ध कराकर लद्यु उद्योगो की सहायता करता है।
5. यह राज्य वित्त निगमों, राज्य औद्योगिक विकास निगमों आदि के अंश ऋणपत्र एवं बाण्डस् क्रय करके अथवा उसमें अंशदान करके सहायता करता है।
6. यह अस्तित्व में बरकरार इकाईयों की तकनीकी उन्नति व आधुनिकीकरण के लिये सहायता प्रदान करता है।
7. घरेलू एवं विदेशी बाजार में उत्पादों के विपणन हेतु सहायता करने का कार्य करता है।
8. रोजगार परक उद्योगों को प्रोत्साहित करता है विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां से जनसंख्या का पलायन हो रहा है।

9. सिडबी एम0एस0एम0ई के विकास से जुडी भारत सरकार की पहलों का समर्थन करता है व कुछ योजनाओं जैसे मेकइन इण्डिया एवं स्टार्टअप इण्डिया के लिये नोडल एजेन्सी के रूप मे काम करता है।

सिडबी की प्रगति (PROGRESS OF SIDBI)

अपने जीवने के अल्प समय मे ही सिडबी लद्यु उद्योगो के विकास की संजीवनी बन गया है। वर्ष 2003–4 तक सिडबी द्वारा 8224 करोड रूपये के ऋणों की स्वीकृति दी गयी तथा 4413 करोड़ रूपये उस स्वीकृति में से उस अवधि मे वितरित किये गये। 2005–06 में 11942 करोड रूपये स्वीकृत तथा 9100 करोड रूपये वितरित किये गये। वर्ष 2010–11 की अवधि में स्वीकृत एवं प्रदत्त वित्तीय सहायता क्रमशः 42,223 करोड रूपये तथा 38,824 करोड रूपये थी। वर्ष 2014–15 में रू0 53083 करोड का संवितरण किया गया।

MSME क्षेत्र की प्रमुख संस्था के रूप में 1990 से अब तक की अपनी 25 वर्ष की यात्रा में सिडबी ने बहुत से पडाव पार किये है और कई कीर्तिमान रचे है। सिडबी एक जिम्मेदार वित्तीय संस्था एवं प्रत्यक्ष ऋण, अल्प वित्त, जोखिम पूंजी, विभिन्न प्रकार की संवर्द्धनशील एवं विकास सहायता आदि प्रदान करने वाला समूह बनकर उभरा हैं अपनी सहयोगी/सहायक संस्थाओं के माध्यम से सिडबी एम0एस0एम0ई क्षेत्र को विविध प्रकार की सेवायें देता है जैसे–ऋण गारन्टी, उद्यम पूंजी साख निर्धारण, प्रौद्योगिकी मिलान तथा गैर निष्पादक आस्तियों का आस्तिपुर्ननिर्माण आदि।

15.7.5 राज्य वित्तीय निगम (STATE FINANCIAL CORPORATION)

भूमिका (INTRODUCTION)

राज्य स्तर पर लद्यु एवं मध्यम आकार के उद्योगो की वित्तीय आवश्यकता को पूरा करने के लिये केन्द्रीय सरकार द्वारा 8 दिसम्बर 1951 को राज्य वित्त अधिनियम (State Finance Act) पास किया गया। इस अधिनियम द्वारा देश के प्रत्येक राज्य को अपने–अपने राज्यों में वित्त निगम स्थापित करने का अधिकार प्राप्त हो गया।

राज्य वित्तीय निगमः राज्य स्तरीय वित्तीय संस्थायें हैं जो कि संबंधित राज्यों मे छोटे एवं मध्यम उद्यमों के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते है। राज्य वित्तीय निगम उच्च निवेश उत्प्रेरित करने के उद्देश्य के साथ स्थापित किया गया था, ये संस्थायें सर्वाधिक रोजगार उपलब्ध कराने एवं बिलों की छूट, ऋणपत्र/समता, लम्बी अवधि के ऋण आदि का आदान–प्रदान एवं बीज विशेष आदि के सन्दर्भ में अनेक सुविधायें उपलब्ध कराते है। इन संस्थाओं के माध्यम से नये प्रकार के सभी व्यवसायों को भी आर्थिक सहायता उपलब्ध करायी जाती हे जैसे–टिशू कल्चर, फूलों की खेती, मुर्गी पालन, इन्जीनियरिंग, मार्केटिंग एवं वाणिज्यिक परिसरो का निर्माण आदि। इनका उद्देश्य उपरोक्त के अलावा बडे पैमाने पर रोजगार उपलब्ध करवाने के लिये संतुलित क्षेत्रीय विकास को बढावा देना है।

भारत में कुल 18 राज्य वित्तीय निगम कार्य कर रहे हैं। ये वित्तीय निगम लघु तथा मध्यम उद्योगों के विकास के लिये राज्य स्तर के विकास बैंक है।

राज्य वित्तीय निगम के कार्य (FUNCTIONS FO STATE FINANCIAL CORPORATIONS)

राज्य वित्त निगम के प्रमुख कार्य निम्न हैः–

1. राज्य वित्त निगम नई इकाईयों की स्थापना एवं मौजूदा इकाईयों के विस्तारीकरण हेतु ऋण देते है।
2. राज्य वित्त निगम पिछडे क्षेत्रों में मध्यम तथा लघु उद्योगो के विकास को प्रोत्साहित करता है।
3. ये लघु एवं मध्यम स्तर के उद्योगो की अचल सम्पत्ति यथा भूमि, भवन मशीनरी तथा उपकरण आदि प्राप्त करने की आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु सार्वाधिक ऋण उपलब्ध कराते है।
4. ये आई0डी0बी0आई0 की तरफ से बहुत सी योजनायें चलाते है जैसे–महिला उद्यमियों के लिये योजना, आधुनिकीकरण योजना, चिकित्सालय एवं नर्सिंग होम के लिये योजना, भूतपूर्व सैनिकों के लिये योजना सिंगल विंडो योजना, विशेष पूंजी तथा बीज पूंजी योजना आदि।
5. ये उद्योगो को प्रत्यक्ष अंशदान, हुण्डियों की भुनाई, सावधि ऋणों द्वारा सहायता करते है।

राज्य वित्तीय निगमों की प्रगति (PROGRESS OF STATE FINANCIAL CORPORATIONS)

राज्य वित्तीय निगमों के कार्यों को दृष्टिगत रखते हुये यह कहा जा सकता है कि निगम ने विभिन्न राज्यों एवं विभिन्न उद्योगो के लिये महत्वपूर्ण कार्य किया है।

1. **राज्यों को सहायता (HELP TO STATES)** निगम ने विभिन्न राज्यों को सहायता प्रदान किया है इसमें महाराष्ट्र राज्य को कुल सहायता का 15.4 प्रतिशत, गुजरात को 11.8 प्रतिशत, आन्ध्रप्रदेश को 10.2 प्रतिशत तमिलनाडु को 10.6 प्रतिशत तथा उत्तर प्रदेश को 9.3 प्रतिशत प्राप्त हुआ है।

नवीन पंचवर्षीय योजना में सहायता की राशि को बहुत अधिक बढा दिया गया है।

2. **उद्योगो को ऋण प्रदान करना** (To provide loans for Industry) निगम द्वारा प्रदत्त ऋण का सर्वाधिक लाभ वस्त्र उद्योग, खाद्य पदार्थों का उत्पादन करने वाले उद्योग , उर्वरक एवं रसायन उद्योग को प्राप्त हुआ है। इन निगमों द्वारा स्वीकृत कुल सहायता का लघु उद्योगों तथा परिवहन संचालको को 75 प्रतिशत भाग प्राप्त हुआ हैं

3. **तकनीकी उद्यमियों को सहायता प्रदान करना** (To provide help to technical entrepreneur) राज्य वित्त निगम उन तकनीकी व्यक्तियों को जिनके पास तकनीकी ज्ञान है परन्तु ज्ञान को उपयोग करने का साधन नहीं है उन्हे उदार शर्तों पर ऋण प्रदान कर भारी सहायता कर रहा है।

4. **अति ल़घु क्षेत्रों को सहायता** (Help to micro Sector)

अतिलघु क्षेत्रो के लिये आई0डी0बी0आई0 के सुझाव पर वर्तमान समय में राज्य के वित्तीय निगमो द्वारा रियायती शर्तो पर ऋण उपलब्ध कराया जा रहा है।

5. **गारण्टी एवं अभिगोपन** (Gurantee and underwriting) राज्यों के वित्तीय निगमों ने उपक्रमियों द्वारा मशीनों के क्रय के आस्थगित भुगतानों की

प्रतिभूति लेने एवं अंशो तथा ऋण पत्रों के निर्गमन के लिये अभिगोपक की भूमिका भी बखूबी निभा रहा है।

राज्य वित्तीय निगमों की संख्या (Number of State finance corporations)

राज्य वित्तीय निगमों की कुल संख्या 18 है। ये निम्नांकित है–

1. आन्ध्र प्रदेश राज्य वित्तीय निगम।
2. हिमांचल प्रदेश राज्य वित्तीय निगम।
3. मध्य प्रदेश वित्तीय निगम।
4. पूर्वोत्तर विकास वित्त निगम।
5. राजस्थान वित्त निगम।
6. तमिलनाडु औद्योगिक निवेश निगम लिमिटेड।
7. उत्तर प्रदेश वित्तीय निगम।
8. दिल्ली वित्तीय निगम।
9. गुजरात राज्य वित्तीय निगम।
10. गोवा आर्थिक विकास निगम।
11 हरियाणा वित्त निगम।
12. जम्मू कश्मीर राज्य वित्तीय निगम।
13. कर्नाटक राज्य वित्तीय निगम
14. केरल वित्तीय निगम।
15. महाराष्ट्र राज्य वित्तीय निगम।
16. ओडिशा राज्य वित्त निगम।
17. पंजाब वित्त निगम।
18. पश्चिम बंगाल वित्त निगम।

15.8 सारांश

द्वितीय विश्व युद्ध की अवधि में विश्व की सभी अर्थव्यवस्थायें क्षत–विक्षत हो गयी थीं। विश्व के सभी राष्ट्रों के उद्योग–धन्धों के पुनः सृजन हेतु भारी वित्त की आवश्यकता थी; इसी आवश्यकता की त्वरित पूर्ति हेतु विकास बैंकिंग की अवधारणा ने जन्म लिया। विकास बैंकिंग व्यवस्था उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करता है एवं संगठनात्मक कुशलता का सम्बर्द्धन करता है। इस बैंकिंग व्यवस्था में वे बैंक सम्मिलित हैं जिनकी स्थापना क्षेत्र विशेष के विकास के लिये किया जाता है। विकास बैंक विशिष्ट वित्तीय संस्थान हैं जो उसे वाणिज्यिक बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थानों से भिन्न बनाते हैं। विकास बैंक किसी देश के विकास में इंजन की भूमिका का निर्वहन करते हैं।

किसी भी देश के औद्योगिक विकास में विकास बैंक दीर्घकालीन वित्त के साथ–साथ अन्य बहुत सी सेवायें प्रदान करता है। विकास बैंक को कई श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। जैसे – कृषि के विकास के लिये विकास बैंक, उद्योगों के विकास हेतु विकास बैंक, राज्य स्तर पर राज्य विकास बैंक एवं विदेशी क्षेत्र हेतु आयात–निर्यात बैंक। विकास बैंक का योगदान देश के औद्योगिक विकास में महत्त्वपूर्ण है। विकास बैंक द्वारा प्रदान की गई वित्तीय सहायता ने देश की अर्थव्यवस्था में बहुत ही महत्वपूर्ण एवं दूरगामी प्रभाव उत्पन्न किये हैं। इससे राजस्व में वृद्धि हुई है एवं विदेशी मुद्रा आय में भी वृद्धि हुई है।

15.9 शब्दावली

विकास बैंक (Development Bank) – एक ऐसा वित्तीय संस्थान जो उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करता है, संगठनात्मक कुशलता बढ़ाने में सहयोग करता है तकनीकी एवं व्यवहारिक ज्ञान उपलब्ध कराता है, ऋण एवं पूँजी प्रदान करता है तथा साथ ही साथ परामर्शी सेवायें भी उपलब्ध कराता है।

संतुलित क्षेत्रीय विकास (Balanced regional Development) – विकास की ऐसी अवधारणा जिससे किसी एक क्षेत्र का ही विकास न हो अपितु देश के प्रत्येक क्षेत्र में विकास कराना।

कौशल उन्नति (Upgradation of Skills) – उचित प्रशिक्षण प्रदान कर प्रबन्धकीय कुशलता में वृद्धि करना।

आई.एफ.सी.आई (IFCI) – औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Coproation of India)

आई.डी.बी.आई (IDBI) – भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Idustrial Development Bank of India)

सिडबी (SIDBI) – भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (Small Industries Development Bank of India)

15.10 बोध प्रश्न

1. आई.सी.आई.सी.आई पर निबन्ध लिखें।
2. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम क्या है ? इसकी महत्ता का वर्णन करें।
3. सिडबी क्या है ? इसके कार्यों का वर्णन करें।
4. विकास बैंकिंग क्या है ? भारत के विकास में विकास बैंकों की भूमिका क्या है?

15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. इस प्रश्न के उत्तर के प्रथम भाग में आई.सी.आई.सी.आई क्या है लिखें तथा द्वितीय भाग में इसकी विशेषताओं को लिखते हुये इसकी महत्ता लिखें। अन्त में इसकी आलोचना लिखें।
2. इस प्रश्न के उत्तर के प्रथम भाग में औद्योगिक वित्त निगम क्या है, लिखें तथा द्वितीय भाग में इसकी महत्ता/महत्व को बिन्दुवार लिखें।
3. प्रथम भाग में सिडबी अर्थात् भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक कब स्थापित हुआ तथा इसकी कुल पूँजी के बारे में बतायें तत्पश्चात सिडबी के उद्देश्य लिखें तथा उत्तर के अन्तिम भाग में सिडबी के मुख्य कार्यों को बिन्दुवार लिखें।
4. इस प्रश्न के उत्तर के पहले भाग में विकास बैंक के प्रत्याय/अवधारणा को लिखे, उसके बाद अर्थव्यवस्था में विकास बैंक क्या भूमिका निभाता है सविस्तार लिखें।

15.12 स्वपरख प्रश्न

1. विकास बैंक की क्या अवधारणा है ? एक विकास बैंक की विशेषतायें बताइये।

2. क्या विकास बैंक अर्थव्यवस्था में अपनी भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वहन कर रहे हैं।
3. विकास बैंकों के कार्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये।
4. एक विकास बैंक के रुप में भारतीय औद्योगिक वित्त निगम के कार्यों का मूल्यांकन कीजिये।

15.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1. विनीत एवं अवधेश कुमार गुप्त – वाणिज्य; भारत भारती प्रकाश एण्ड क० वेस्टर्न कचहरी रोड मेरठ (उ०प्र०)
2. एम० एल० सेठ – Monetary Economics
3. डा० सतीश कुमार साहा – मुद्रा एवं वित्तीय प्रणालियाँ
4. डा० एम० एल० सेठ – मुद्रा एवं बैंकिंग
5. एम० एल० झिंगन – मौद्रिक अर्थशास्त्र

इकाई–16 गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थायें (Non Banking Financial Institutions)

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यास्थ /संस्थायें: अर्थ
16.3 गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं के कार्य/भूमिका
16.4 बैंक तथा गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों/संस्थाओं में भिन्नता
16.5 वित्तीय मध्यस्थ
16.6 वित्तीय मध्यस्थों के कार्य
16.7 अल्प विकसित देश एवं वित्तीय मध्यस्थ
16.8 गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं/कम्पनियों का विनियमन
16.9 सारांश
16.10 शब्दावली
16.11 बोध प्रश्न
16.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
16.13 स्वपरख प्रश्न
16.14 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यास्थ /संस्थायें क्या हैं, की व्याख्या कर सके।
- गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यास्थ /संस्थाओं के कार्यो का वर्णन कर सकें।
- गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यास्थ /संस्थाओं की अर्थव्यवस्था में क्या भूमिका है, की व्याख्या कर सके ।
- वित्तीय मध्यस्थ क्या होते हैं तथा इनके क्या कार्य हैं, का वर्णन कर सकें।

16.1 प्रस्तावना

गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थायें बचतों को इकट्ठा करने एवं उन्हें निवेश करने में विशिष्टता रखते हैं। इसलिये प्रतिभूतियों को कय करने तथा उनका विकय करने में लागतें कम आती हैं। लागतों में कमी होने के कारण लाभ में वृद्धि होती हैं। अतः इन संस्थाओं/मध्यस्थों के कारण निवेश की लागत कम होती है।

16.2 गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यास्थ /संस्थायें:अर्थ

गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ, निवल बचत कर्ताओं से कोष (Fund) लेकर एक जगह एकत्रित करते हैं एवं उन्हें व्यापारिक संस्थाओं एवं

स्थानीय निकायों के व्ययों की विता व्यवस्था करने के लिये उधार देते हैं। कोष एकत्रित करने के लिये ये संस्थायें ऐसी अप्रत्यक्ष प्रतिभूतियाँ निर्गमित करते एवं उनका विकय करते हैं। जैसे–सावधि जमा, सामान्य कोष स्टाक, बचत एवं ऋण के हिस्से एवं बीमा पालिसी। ये अन्तिम एवं ऋणी को धन/कोष उधार देने के लिये प्राथमिक प्रतिभूतियों का कय करते हैं।

प्राथमिक प्रतिभूतियों में सरकारी प्रतिभूतियां (Government Securities) सामान्य तथा अधिमान स्टाक (Common and preferred stock), उपभोक्ता ऋण (Consumer Borrowings) बंधक Mortgage तथा अल्पकालिक ऋण (Short term loan) सम्मिलित हैं।

अतः सामान्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि "कि गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थायें वे संस्थायें हैं जो एक प्रकार की वित्तीय परिसम्पत्तियां खरीदती हैं तथा दूसरी प्रकार की वित्तीय परिसम्पत्तियां बेचती हैं जैसे–बीमा कम्पनियाँ प्रमुखतया 'बाण्ड' खरीदती हैं एवं बीमा पालिसी का विकय करती है ऐसे ही बचत एवं ऋण संगठन बंधक का कय करते हैं एवं बचत जमायें या बचत पत्र बेचते हैं, वित्तीय कम्पनियां किश्त ऋणों को कय करती हैं एवं बचत वाणिज्यिक पत्रों का विकय करती है। ये संस्थायें अन्तिम ऋणदाताओं एवं अन्तिम ऋणी के मध्य अप्रत्यक्ष साधन का कार्य करती हैं।

गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं के उदाहरण हैं– बचत एवं ऋण संगठन/एसोसिएशन, जीवन बीमा कम्पनियाँ, बचत बैंक सामान्य ट्रस्ट कोष, पेंशन कोष एवं सरकारी उधार देने वाली एजेन्सियाँ।

गैर वित्तीय कम्पनियां उस कम्पनी को कहते हैं जो

1. कम्पनी अधिनियम 1956 के अन्तर्गत पंजीकृत हो,
2. इसका मुख्य कारोबार उधार देना, विभिन्न प्रकार के अंशों/स्टाक/बाण्डस/ऋण पत्रों/प्रतिभूतियों/पट्टा कारोबार/किराया कय/बीमा कारोबार, चिट सम्बन्धी कारोबार में निवेश करना तथा
3. किसी योजना में अथवा व्यवस्था के अन्तर्गत एक मुश्त रू॰ से किश्तों में जमा राशियां प्राप्त करना है।

   परन्तु किसी गैर वित्तीय कम्पनी में कोई ऐसी संस्था सम्मिनित नहीं है जिसका मुख्य कारोबार कृषि, आद्योगिक, व्यापार सम्बन्धी गतिविधियाँ हैं अथवा अचल सम्पत्ति का विकय/कय अथवा निर्माण करना है।
4. भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 की धारा 45 आई (सी) में किये गये उल्लेख के अनुसार ऋण/अग्रिमों से सम्बन्धित गतिविधियाँ स्वयं की गतिविधि से अलग की गतिविधियां हैं। यदि यह प्रावधान न होता तो समस्त कम्पनियां गैर–वित्तीय कम्पनियां होती।

   जिन गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों की परिसम्पत्तियों का आकार पिछले लेखा परीक्षा के आर्थिक चिटठे के अनुसार 100 करोड़

रूपये या उससे अधिक हों उन्हें प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियां माना जाता है।

इस प्रकार का वर्गीकरण किये जाने का महत्वपूर्ण कारण यह है कि इन गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों की गतिविधियों का हमारे देश की वित्तीय स्थिरता पर प्रभाव पड़ेगा।

31 मार्च 2014 तक गैर–वित्तीय बैंकिंग कम्पनियों की कुल संख्या 12029 थी जिसमें से जमा राशि स्वीकार करने वाली एन0बी0एफ0सी0 की संख्या 241 है। तथा 100 करोड़ और उससे अधिक के आकार वाली गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियां 465 हैं, रूपया 50 करोड़ और 100 करोड़ के मध्य जमा राशि नहीं स्वीकार करने वाली गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियां हैं एवं 50 करोड़ से कम बैंकिंग वित्तीय कम्पनियां 314 हैं एवं 50 करोड़ से कम परिसम्पत्ति आकार वाली गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनियां 11009 हैं। इस क्षेत्र का कुल परिसम्पत्ति आकार अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों (क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक को छोड़कर) का लगभग 14 प्रतिशत है।

16.3 गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं के कार्य/भूमिका (Functions of Non-Banking financial Institutions)

वित्तीय मध्यवर्ती संस्थायें होने के कारण गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थायें बचत एवं निवेश समुदाय को परस्पर एक साथ लाने के कार्य में संलग्न हैं। इस भूमिका में यह बैंकों के लिये प्रतिस्पर्धी नहीं बल्कि एक समानार्थक भूमिका निभा रही है। चूंकि देश की अधिसंख्य जनता अभी भी बैंक खाता सहित वित्तीय उत्पाद एवं सेवाओं की मुख्याधारा की पहुंच से बाहर है ऐसे में एनबीएफसी –एम.एफ आई. (माइक्रो फाईनेंस संस्थायें) तथा आस्ति वित्त कम्पनियां जैसी संस्थायें देश की वित्तीय समावेशन कार्य सूची में मानार्थ भूमिका का निर्वहन करता है।

इसके अतिरिक्त कुछ बड़ी NBFC's जैसे– इन्फास्ट्रक्चर वित्त कम्पनियां अथवा फैक्टरिंग कारोबार करने वाली कम्पनियां आधारभूत संरचना जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में वृद्धि एवं विकास का प्रोत्साहन देती हैं। गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों ने वत्तीय क्षेत्र के बीच स्वंय के लिये एक कारोबारी स्थान बना लिया है तथा ग्राहकों की आवश्यकतानुसार ग्राहकों के दरवाजे पर आवश्यकतानुसार उत्पाद जैसे पुराने वाहन के लिये वित्त पोषण उपलब्ध कराने के लिये विख्यात भी हैं।

संक्षेप में, गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियां द्वारा वित्तीय क्षेत्र में ज्यादा जरूरी विभिन्नता लाई गई हैं जिसमें बाजार में जोखिम का विविधीकरण एवं बाजार में तरलता बढ़ी है एवं इससे वित्तीय स्थिरता को बढ़ावा तथा वित्तीय क्षेत्र की सक्षमता में वृद्धि हुई है।

गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं के कार्य निम्नलिखित हैं–

1. घरेलू क्षेत्र की सहायता (Help household sector)-घरेलू क्षेत्र के लोगों की बचतों का लाभदायक उपयोग करने के लिये गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थायें उपभोक्ता साख ऋण, बंधन ऋण आदि उपलब्ध

कराती हैं। इससे जनता में बचत एवं निवेश करने की प्रवृत्ति बढ़ती है फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

2. संचय को ह्रासित करना **(Reduce hoarding of money)-** ये संस्थायें बचत कर्ताओं में बचत की भावना को प्रोत्साहित कर निवेश करने हेतु प्रेरित करते है। इससे जनता के पास जो धनराशि जमा होती रहती है उसे जनता विनियोजित करती रहती है इससे संचयों में कमी होती है इन जमाओं का प्रयोग गैर–वित्तीय बैंकिंग कम्पनियां अन्तिम ऋणियों को एक साथ ला दिया जाता है।
3. कोषों को तरलता प्रदान करना **(Provide Liquidity)-** एनबीएफसी अप्लावधि ऋण देते हैं एवं दीर्घावधि के लिये अपने विरूद्ध दावा पेश कर उन्हें वित्त उपलब्ध कराते हैं तथा विभिन्न ऋणियों के मध्य ऋणों में विविधता उत्पन्न करते हैं। गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थायें मुद्रा में मूल्य ह्रास के बिना शीघ्रता से किसी परिसम्पत्ति को नकदी में परिवर्तित करते हैं ऐसा करके ये संस्थायें कोष को तरलता प्रदान करता है।
4. ब्याज दरों को कम करने में सहायता प्रदान करना **(To provide help in lowering interest rates)-** गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थायें आपस में प्रतिस्पर्धी अवस्था में होती हैं; आपसी प्रतियोगिता के कारण ब्याज दरें कम हो जाती हैं। गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियां अपने बचतों की नकदी में रखने की अपेक्षा दूसरे गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों के पास रखना सुरक्षित समझती हैं। ये कम्पनियां उन कोषों को अन्य प्राथमिक प्रतिभूतियों में निवेश करते हैं। ऐसा करने के कारण प्रतिभूतियों को मूल्यों में वृद्धि हो जाती है परिणामस्वरूप ब्याज दरें कम हो जाती हैं।
5. जोखिम में कमी **(Less Risk)-** कोषों को उधार देने वालों एवं उधार लेने वालों के बीच मध्यस्थ के कार्यों को निष्पादित कर एनवीएफसी जोखिम का वहन स्वयं करते हैं इससे उधार देने वालों की जोखिम कम हो जाती है।
6. बचतों का संग्रहण एवं उन्हें चलायमान बनाना **(Collection of saving and their mobilization)-** विदित है कि गैर–बैंकिग वित्तीय संस्थायें बचत के रूप में एकत्रित निधियों का निवेशकों को उधार देते है। इन्हें जन–निक्षेपों का बहुत बड़ा भाग प्राप्त होता है। बहुत सी संस्थायें जैसे ऋण प्रदान करने वाली संस्थायें, साख यूनियन तथा बचत बैंक, जिनकी बचतों की तरलता अधिक होती है बचत करने वालों को आकर्षित करती है ये संस्थायें नियत मूल्य वाली परिसम्पत्तियां निर्गमित करती हैं जिनका मूल्य बाजार मूल्यों की तरह शीघ्रता से नहीं परिवर्तित होता।

पेंशन फण्ड, जीवन बीमा कम्पनियां तथा सार्वजनिक भविष्य निधि कोष वाली संस्थायें बचतकर्त्ताओं को दीर्घकाल तक अनेक प्रकार के लाभ प्रदान करते हैं। इन संस्थाओं के कार्यों से बचतें

एकत्रित होती हैं तथा उनको कियाओं में बचतों को प्रयोग करने के कारण निधियां चलायमान होती है।

7. पूंजी बाजार में स्थिरता **(Stability in Capital Market)-** गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थायें परिसम्पत्तियों एवं देयताओं में व्यापार करती हैं, विनियोजन मुख्यतया पूंजी बाजर में होता है। यदि ये संस्थायें इस क्षेत्र में नहीं कार्य करती हैं तो वित्तीय परिसम्पत्तियों एवं उनके प्राप्तियों की मांग तथा पूर्ति में परिवर्तन होता रहता, इससे पूंजी बाजार बुरी तरह प्रभावित होता। गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं के कार्यों के कारण पूंजी बाजार में स्थिरता बरकरार रहती है।
8. अर्थव्यवस्था को लाभ **(Benefits to Economy)-** गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थान केन्द्रीय बैंक के मौद्रिक एवं साख नीति के कियान्वयन तथा वित्तीय बाजार के कियाकलापों को प्रोत्साहित करने में बड़ी सहायता करते हैं। हानि सहन करने वाली इकाइयों में निधियों को स्थानान्तरित कर ये उनकी बड़ी सहायता करते हैं। अर्थव्यवस्था को मुद्रा पूर्ति एवं निकट मुद्रा परिसम्पत्ति उपलब्ध करा कर ये अर्थव्यवस्था की सहायता करते हैं। केंन्द्रीय बैंक की मौद्रिक एवं साख नीति समय–समय पर परिवर्तित होती रहती है; जिससे देश का वित्तीय बाजार बिना किसी कठिनाई के कार्य करता है। किसी भी अर्थव्यवस्था का विकास वित्तीय बाजर एवं वित्तीय तन्त्र के सही काम काज पर निर्भर है।

   इस प्रकार गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थान अर्थव्यवस्था की सहायता भी करता है।
9. आर्थिक प्रगति में सहायता **(Helps in economic progress)-** गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनियां जिन्हें हम गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ की संज्ञा भी देते हैं, अर्थव्यवस्था की प्रगति एवं विकास में महत्वपूर्ण सहायता उपलब्ध कराते हैं क्योंकि वे बचतकर्ता अर्थात् अन्तिम ऋणदाता के बीच मध्यस्थता करते है। ये संस्थायें रूप्ये की जमाखोरी को हतोत्साहित करती है एवं निवेशकों को ऋण देती है जो आर्थिक विकास की संवृद्धि के लिये आवश्यक है। इससे पूंजी निर्माण में गतिशीलता आती है।

16.4 बैंक तथा गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों / संस्थाओं में भिन्नता **(Difference between Bank and non&banking financial Institution/Companies)**

इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि बैंक तथा गैर–बैकिंग वित्तीय संस्थाओं में क्या समानता है।

कियात्मक रूप में यदि देखा जाय तो बैंकों अथवा वाणिज्यिक बैंकों एवं गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं के कार्य परस्पर मिलते जुलते हैं जैसे–

- बैंक एवं गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थान दो के दोनों ही उधार लेने एवं देने वालों के बीच मध्यस्थ का कार्य करते हैं, दोनों को मिलाने का कार्य करते हैं एवं अधिकाधिक लाभार्जन हेतु गैर वित्तीय ऋणदाताओं से गैर वित्तीय शेषों का हस्तान्तरण सुगम बनाते है।
- दोनों ही संस्थायें तरल कोष प्रदान करती हैं। वाणिज्यिक बैंकों की परिसम्पत्तियां तथा गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं की परिसम्पत्तियां तरल परिसम्पत्तियां होती हैं अन्तर केवल इतना होता है कि दोनों की कुछ परिसम्पत्तियाँ प्रकृति के आधार पर परिवर्तित होती रहती है।
- दोनों ही संस्थायें उधार योग्य कोषों के अप्रतिम निर्माणक होते हैं।
- जब बैंक, केन्द्रीय बैंक से ऋण लेते हैं तो वे मांग जमाओं का सृजन करते हैं एवं जब गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थायें बैंको से ऋण लेती हैं तो वे अप्रत्यक्ष ऋणों का निर्माण करती हैं।
- बैंक ऋण लेने वालों की प्राथमिक प्रतिभूतियां ऋण एवं जमायें प्राप्त कर आगे ऋण लेने वालों को अपनी ही अप्रत्यक्ष प्रतिभूतियां एवं मांग जमायें प्रदान करते हैं। यही किया गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थायें भी करती हैं। ऋण लेने वालों के रूप में दोनों ही द्वितीयक प्रतिभूतियों का निर्माण करते हैं।

बैंक एवं गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं में भिन्नता (Differences between bank and non-banking financel Institutions)-

इन दोनों संस्थाओं के कार्यों में समानता के बावजूद भी कुछ आधारभूत अन्तर है जो निम्नलिखित है–

क0सं0	अन्तर का आधार	बैंक/वाणिज्यिक बैंक	गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थायें वित्तीय मध्यस्थ
1.	जमानत (Security)	बैंक गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं की अपेक्षा कम जमानत पर ऋण देती है	ऋण देने से पहले ये संस्थायें जमानत वह भी बैंकों की अपेक्षा अधिक जमानत पर बल देती हैं। ये जमानतें अशों एवं उत्तर दिनांकित (Post dated) चेकों के रूप में होती है।
2.	वसूली (Recovery)	बैंका ऋण देने के लिये निर्गत निर्देशों का पालन करते हैं अर्थात बैंक ऋण देने में विशिष्ट नियमों का पालन करते हैं। बैंक निगमों इत्यादि को ऋण	NBFC'S ब्याज दरों एवं ऋणों की वसूली हेतु नये नये तौर–तरीके अपनाते हैं ये अच्छी एवं सुदृढ़ जमानतों पर ऋण देते हैं अतः वसूली की

		देते हैं अतः वसूली की दर कम होती है बैंकों के ऋण अपेक्षाकृत NBFC'S के ऋण से अधिक डूबते हैं अर्थात इनकी वसूली कम होता है।	दर NFC'S में अधिक होती है।
3.	नकद आरक्षित निधियों की आवश्यकता (Requirements of cash Reserve Funds)	बैंकों को अपनी कुल देयताओं का भुगतान करने हेतु अपनी कुल परिसम्पत्तियों पर अधिक दर से अर्जन करना पड़ता है। बैंकों के नगद आरक्षित कोषों को अधिक रखना पड़ता है। लेकिन इन नकद आरक्षित कोषों से इन्हें किसी प्रकार की आया प्राप्त नहीं होती फलतः बैंक अपने पास नकद आरक्षित निधियों को कम रखना चाहते हैं बैंक अपने पास वैधानिक रूप से आवश्यक नकद कोष से अधिक अपने एवं नहीं रखते एवं अतिरिक्त नकदी को नकद आय प्राप्त करने वाली सम्पत्तियों में विनियोजित कर देते हैं।	बैंकों के विपरीत गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं को नियमानुसार न्यूनतम नकद आरक्षित निधियां रखना पड़ता है। यह अनुपात बैंकों की आरक्षित निधियों की तुलना में अधिक होता है। ये बैंकों की तुलना में अधिक लाभदायक स्थिति में होते हैं।
4	निवेश सूची संरचना (Portfolio Structure)	बैंकों की देयतायें अत्यधिक तरल होती हैं। परिसम्पत्तियों के अनुपात में बैंकों की देयतायें अधिक होती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि बैंक अपनी परिसम्पत्तियों का अल्प भाग ही नकद कोष के रूप में रखता है। जबकि देयतायें ऐसी होती हैं जिन्हें अल्प सूचना में मांगने का अधिकार होता है। बैंकों के निवेश सूची संरचना में केन्द्रीय बैंक के	गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थायें अपने परिसम्पत्तियों के चयन में सीमित होते हैं तथा इन पर विशेष परिसम्पत्तियों का धारण निषेध होता है। अतः बैंकों की तुलना में इनका निवेश सूची आकार बहुत छोटा होता है। ये अल्प समय हेतु ऋण लेते हैं एवं दीर्घावधि हेतु ऋण देते हैं। ये बैंकों की तुलना

		पास जमायें, हुण्डियां तथा केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों एवं बड़ी फर्मों द्वारा जारी अन्य अल्पावधि हुण्डियां ग्राहकों को दिये गये विविध ऋण, दीर्घावधि बाण्ड तथा बन्धक में किये गये निवेश इत्यादि सम्मिलित हैं। इनका निवेश सूची आकार बड़ा होता है।	में कम तरल सम्पत्तियां रखते हैं। इनका निवेश सूची आकार छोटा होता है।
5	साख सृजन (Creation of Credit)	जैसा कि सर्वविदित है कि बैंक अर्थात वाणिज्यिक बैंक साख का सृजन उधार लेने वालों को उनके अर्थात बैंकों के पास जमा की गयी केवल मुद्रा (करेन्सी) को ऋण के रूप में देते हैं। जिन दरों पर बैंक जमा कर्त्ताओं को ब्याज देते हैं उससे अधिक दर पर उन जमा नोटों को दूसरों को उधार देने पर लेते हैं। इस प्रकार बैंक लाभार्जन करते हैं। नकदी के कुछ भाग को रोककर बाकी धनराशि ऋण के रूप में देकर बैंक साख का सृजन करते हैं।	गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियां बैंकों की तरह साख–सृजन नहीं करती। ये संस्थायें ऋण दाताओं द्वारा प्रदत्त कोष ऋण लेने वालों को प्रदान कर दलाल की भूमिका का निर्वहन कर लाभ अर्जित करते हैं। ये संस्थायें तरलता का निर्माण तो करती है परन्तु मुद्रा का निर्माण नहीं कर पाते परन्तु ये नयी परिसम्पत्तियों एवं नयी देयताओं का निर्माण अवश्य करते हैं जो मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित करती है।

उपरोक्त वर्णन के पश्चात् यह जानना आवश्यक है कि वित्तीय मध्यस्थ/वित्तीय संस्थायें क्या होती है? इस वर्णन के बिना गैर–वित्तीय मध्यस्थों के बारे में ज्ञान अधूरा ही रहेगा।

16.5 वित्तीय मध्यस्थ (Financial Intirmediaries)-

वित्तीय मध्यस्थ वे वित्तीय संस्थायें होती हैं जो अन्तिम ऋणदाताओं एवं अन्तिम उधार कर्ताओं के बीच कड़ी का कार्य करती है। वित्तीय संस्थाओं में वाणिज्यिक बैंक, सहकारी साख समितियां, सहकारी बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, बचत व ऋण कम्पनियां, बीमा कम्पनियां, मर्चेण्ट बैंक, भारतीय यूनिट ट्रस्ट आदि सम्मिलित हैं।

वित्तीय मध्यस्थ प्रतिभूतियों के व्यापारी होते हैं। ये अप्रत्यक्ष अर्थात् द्वितीयक प्रतिभूतियों के व्यापारी होते हैं। ये अप्रत्यक्ष प्रतिभूतियों के माध्यम से अपने ऊपर दावों का निर्माण कर प्राथमिक प्रतिभूतियों का कर

इसके आधार पर द्वितीयक प्रतिभूतियां निर्गत करती हैं। इन प्रतिभूतियों में सम्मिलित हैं–सावधि(समय) जमा, बचत जमायें, बीमा पालिसी, पेंशन निधियाँ इत्यादि।

उपरोक्त का आशय है कि वित्तीय मध्यस्थ प्राथमिक प्रतिभूनियों का कय करके अपनी द्वितीयक प्रतिभूतियों का विकय करते हैं इसी कारण इन्हें प्रतिभूतियों के व्यापारी कहते हैं।

<u>गुर्ले एवं शा के अनुसार–</u>

''वित्तीय मध्यस्थों का प्रधान कार्य वर्तमान उत्पादन को उत्पादित एव कय करना है न कि अन्य प्रतिभूति निर्गत कर, दूसरे प्रकार की प्रतिभूतियां कय करना है। ये अन्तिम उधार लेने वाले से प्राथमिक प्रतिभूतियां कय कर अन्तिम उधार दाताओं को विनियोग के लिये अप्रत्यक्ष ऋण निर्गत करते हैं।

सामान्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि वित्तीय मध्यस्थ आय के आधिक्य जो कि जनता के पास बचत के रूप में उपलब्ध होती है, को अर्जित/प्राप्त करके अन्तिम ऋण–दाताओं से अन्तिम उधार लेने वालों को कोषों का हस्तान्तरण करता है। इस तरह से वित्तीय मध्यस्थ एक साथ दो पक्षकारों को सन्तुष्ट करता है–पहला उधार देने वाल या ऋणदाता दूसरा ऋण लेने वाला या उधार लेने वाला।

अतः स्पष्ट है कि वित्तीय मध्यस्थ अन्तिम ऋणदाता एवं अन्तिम उधार लेने वाले के मध्य एक अतिमहत्वपूर्ण कड़ी है।

16.6 वित्तीय मध्यस्थों के कार्य (Functions of Financial Intermediaries)

वित्तीय मध्यस्थों में बैंक एवं गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थायें दोनों ही सम्मिलित हैं। अन्तिम ऋण देने वालों का अभिप्राय बचत कर्ताओं से है जबकि अन्तिम उधारकर्त्ता विनियोजक होते हैं।

वित्तीय मध्यस्थों द्वारा मांग जमा समय जमा या बीमा पालिसी का विकय कर कोष एकत्र किया जाता है एवं इस एकत्रित कोष को विनियोजकों को उधार देने के लिए उधारकर्ता द्वारा निर्गत अंशों, ऋण पत्रों बाण्डस आदि को कय किया जाता है। इस तरह से वित्तीय मध्यस्थ द्वितीयक वित्तीय परिसम्पत्तियों का विकय करके प्राथमिक वित्तीय परिसम्पत्तियों करने का कार्य करते हैं।

1. घरेलू बचतों में कमी लाना **(Reduction of Domestic Saving)-** वित्तीय मध्यस्थ जनता की बचतों को आवश्यकता से अधिक उपयोगी बनाते हैं, बचाये गये धन को बैंकों में अथवा प्रतिभूतियों में विनियोजित करने हेतु प्रेरणा देते हैं जिससे जनता अपनी अन्य बचतों को बैंकों में जमा कर उस पर ब्याज अर्जित करती है। इस प्रकार से जनता अपनी आवश्यकता से अधिक (आधिक्य) को वित्तीय मध्यस्थों के पास जमा करा कर लाभ अर्जित करती है। परिणामस्वरूप जनता के पास धन का संचय कम हो जाता है उन्हें वित्तीय मध्यस्थों द्वारा अन्य व्यक्तियों के पास पहुंचाकर अर्थव्यवस्था को लाभ दिलाया जाता है।

2. ऋण देने वालों एवं ऋण लेने वालों को लाभ पहुंचाना **(Provide benefit to lender and financial intermediaries/ Institution)**- वित्तीय संस्थाओं को वित्तीय मध्यस्थ की संज्ञा भी प्रदान की गयी है। जब बचत करने वाले लोग अपना धन वित्तीय संस्थाओं में जमा कराते हैं तो उन्हें पारितोषिक के रूप में ब्याज प्रदान किया जाता है। फिर जब वित्तीय संस्थानों द्वारा अन्तिम उधार लेने वाले को उधार दिया जाता है तो उनसे भी ब्याज लिया जाता है यह ब्याज दर ऋण देने वाले को प्राप्त ब्याज दर से अधिक होती है। इन दोनों ब्याज दरों का अन्तर वित्तीय संस्थाओं को प्राप्त होता है यही वित्तीय संस्थाओं का लाभ होता है।
3. बचत की आदत **(Habit of Savings):-** वित्तीय मध्यस्थ जनसामान्य के अधिक्य कोषों को प्रयुक्त करने हेतु अवसर उपलब्ध कराते हैं। बचत की प्रवृत्ति बढ़ने के कारण जनता उपभोक्ता साख ऋण एवं बन्धक ऋण प्राप्त करने के लिये वित्तीय संस्थाओं पर निर्भर रहने लगते हैं परिणाम यह होता है कि जनसामान्य में बचत एवं विनियोग की आदत को बढ़ावा मिलता है।
4. जोखिमों का हस्तान्तरण **(Transfer of Risks)**. जैसा कि विदित है वित्तीय मध्यस्थ दो पक्षकारों (ऋणदाता एवं ऋणगृहीता) के मध्य सेतु का कार्य करता है ये मध्यस्थ अनुभवजन्य होने के कारण जोखिमों को स्वयं वहन करते हैं एवं उधार देने वालों के जोखिमों को अपने उपर ले लेते हैं इससे जोखिमों का संकेन्द्रण नहीं होता है जोखिम दूसरों पर फैल जाते हैं।
5. नवीन परिसम्पत्तियों एवं देयताओं का सृजन **(Creation of new assets and liabilities)**- जितनी भी वित्तीय संस्थायें हैं वे परिसम्पत्तियों का निर्माण करती हैं जैसे बैंक प्राथमिक प्रतिभूतियां कय करते हैं तो इससे मुद्रा का निर्माण होता है। अतः प्रत्येक मायने में वित्तीय परिसम्पत्तियों का निर्माण परिसम्पत्तियों का कय करके किया जाता है इससे देयताओं का सृजन होता है जितनी अधिक परिसम्पत्तियों का कय किया जाता है उतनी ही अधिक देयताओं का भी निर्माण होता है।

   वित्तीय संस्थायें एक दूसरे की देयताओं को अपनाती है अतः वे परिसम्पत्तियां एवं देयताओं का सृजन करता है।
6. तरलता का सृजन करना **(Creation of Liquidity)**- वित्तीय संस्थायें स्वंय पर दावों को उत्पन्न करती है एवं कोषों की आपूर्ति करती है अर्थात ये संस्थायें सदैव तरलता बनाये रखने का प्रयास करती हैं। वित्तीय संस्थायें एक परिसम्पत्ति को मुद्रा के रूप में उसके मूल्य को कम किये बिना सरलता एवं शीघ्रता से नकदी में परिवर्तित करती है ऐसा कर वित्तीय संस्थायें तरलता उत्पन्न करती है।
7. ब्याज दर कम करने में सहायता **(Helpful in lowering interest rates):** वित्तीय मध्यस्थों में अनेक वित्तीय संस्थायें सम्मिलित होती

हैं तथा इन वित्तीय संस्थाओं में आपसी प्रतिस्पर्धा भी होती है इन प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप ब्याज दरों में कमी आती है क्योंकि सभी वित्तीय मध्यस्थ लाभ अर्जित करना चाहते हैं तथा सभी कोष संग्रह कर उसे उपयोगी परिसम्पत्तियों में परिवर्तित करना चाहते हैं। तो वे लुभावने प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं इससे इन संस्थाओं में आपसी प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होती है परिणामतः ब्याज दरो में कमी आती है।

इसे निम्न उदाहरण द्वारा और स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है–

मान लीजिये यदि किसी बाण्ड का अंकित मूल्य रू0 100 है इस ब्याज की दर 20 प्रतिशत है तो 100 रूप्ये के विनियोग पर एक वर्ष में 20 रूपये की निश्चित आय प्राप्त होगी, अब यदि बाण्ड का मूल्य 100 रूपये से बढ़ा कर 200 रूपये कर दिया जाय तब भी वार्षिक आय 20 रूपये ही होगी क्योंकि ब्याज बाण्ड के अंकित मूल्य पर ही प्राप्त होगा परन्तु 200 रूपये के विनियोग होने के कारण ब्याज की प्राप्ति दर घटकर 10 प्रतिशत हो जायेगी।

इसके अतिरिक्त जब जनता अपने पास उपलब्ध नगद को वित्तीय संस्थाओं में जमा करते हैं तो मुद्रा की मांग गिर जाती है जिससे ब्याज दर कम हो जाती है।

इस तथ्य को संलग्न रेखा चित्र में दर्शित किया गया है–

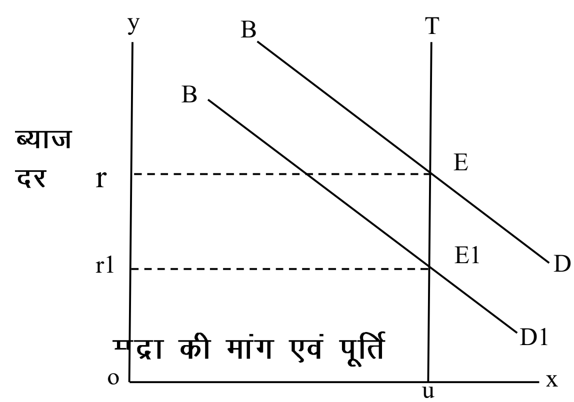

चित्र में व ग मुद्रा की मांग एवं पूर्ति तथा व ल ब्याज दर की रेखा है मुद्रा की पूर्ति TU अनुलम्ब वक्र द्वारा दर्शित किया गया है। मुद्रा की प्रारंभिक मांग BD है जो TU पूर्ति वक्र को E बिन्दु पर काटता है। अतः ब्याज की दर OR हैं अब जब मांग वक्र B_1D_1 पर आ जाता है तो TU रेखा को E_1 बिन्दु पर काटता है ऐसी दशा में ब्याज की दर घट कर ;व त सेद्ध $o\,r_1$ हो जाती है।

8. पूँजी बाजार में स्थिरता **(Stability in Capital Market)-** वित्तीय संस्थाओं द्वारा अनेकानेक परिसम्पत्तियों एवं देयताओं का लेन–देन किया जाता है जिनका अधिकांश व्यवसाय/लेनदेन पूंजी बाजार में किया जाता है।

वित्तीय संस्थाओं का कारोबार पूंजी बाजार के नियमों के आधार पर सम्पन्न होता है इस कारण से पूँजी बाजार का स्थिरता प्रदान करते हैं परिणमस्वरूप बचत करने वाले आकर्षित होते हैं।

9. राष्ट्र एवं अर्थव्यवस्था को लाभ **(Benefits to Nation and Economy)-**

वित्तीय संस्थायें पूँजी बाजार एवं वित्तीय बाजार में कार्य का वातावरण उत्पन्न करती हैं इसके परिणामस्वरूप विनियोग को प्रोत्साहन मिलता है, देश के पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है इससे राष्ट्र एवं अर्थव्यवस्था को लाभ मिलता है।

16.7 अल्पविकसित देश एवं वित्तीय मध्यस्थ (Underdeveloped Countries and Financial Intermediaries)-

एक अल्पविकसित देश में वित्तीय मध्यस्थों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है क्योंकि ऐसे देशों में बैंकिंग एवं पूंजी बाजार अविकसित व असंगठित होता है जनसंख्या वृद्धि दर बहुत अधिक होती है पर्याप्त प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता के बावजूद उनका दोहन उचित तरीके से नहीं होता है, बचत तथा बचत की प्रवृति कम होती है तथा व्यापार, उद्योग एवं तकनीकी पिछड़ापन होता है, यातायात एवं संचार की व्यवस्था सुचारू नहीं होती है। इन देशों में रहने वाली अधिसंख्य जनता सोने चांदी तथा वास्तविक सम्पत्तियों में विनियोग अधिक करती है एवं आय के अधिकांश भाग को दिखावटी उपभोग में व्यय करती है।

ऐसी दशा में एक ऐसी संस्था की आवश्यकता होती है जो इनकी बचतों को गति प्रदान करें एवं उन्हें विनियोग के सम्बन्ध में बताये तथा इन्हें शिक्षित करें। इस कार्य में वित्तीय मध्यस्थों का बहुत बड़ा योगदान होता है केवल बैंकों का अकेला प्रयास काफी नहीं होता।

वित्तीय मध्यस्थ अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में नये छोटे उद्यमियों की सहायता करते हैं बचतों की आदतों को बढ़ावा देते हैं तथा रोजगार सृजन, लाभार्जन इत्यादि द्वारा देश की अर्थव्यस्था को गति देते हैं।

16.8 गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों का विनियमन [Regulation of Non-Banking Financial Companies (NBFC's)]

गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियाँ भारतवर्ष में दो प्रकार की हैं– संगठित तथा असंगठित। भारत में असंगठित क्षेत्र के NBFC's को गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियाँ कहा जाता है इसमें सभी विकास बैंक समाहित हैं।

गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियाँ बैंकिंग अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत न होकर कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत थी। जिसके कारण भारतीय रिजर्व बैंक का इनके ऊपर नियन्त्रण नहीं था। पिछले वर्षों में NBFC's की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई। तथा इनके व्यवसाय के आकार में भी बहुत अधिक वृद्धि हुई। इनकी बढ़ती हुई भूमिका के कारण नरसिंहम् समिति ने NBFC's को अपने प्रतिवेदन में इन्हें मुख्य धारा से जोड़ने की सलाह दी।

1992 में डा0 एम0सी0 शाह की अध्यक्षता में वित्तीय कम्पनियों के सुधार हेतु कार्यकम तैयार करने के लिये एक कार्य समूह **(Work Force)** गठित किया गया। उक्त समिति के सुझावों के परिणामस्वरूप 12 अप्रैल 1913 को गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों के पंजीकरण की प्रणाली को आरम्भ किया गया। ऐसी **NBFC's** जिनका निवल स्वाधिकृत कोष 50 लाख से उपर था, को रिजर्व बैंक से पंजीकृत कराया जाना अनिवार्य कर दिया गया।

NBFC's द्वारा जमा राशि को स्वीकार करने के कार्य को विनियमित करने की योजना 1960 के दशक में प्रारम्भ हुई। इस विनियमन का मुख्य उद्देश्य था मौद्रिक तथा ऋण नीति को न केवल अनुपूरक के रूप में सेवा देना था अपितु जमाकर्ताओं के हितों की सुरक्षा करना भी था। वर्ष 1966 में वित्तीय कम्पनियों को जमा राशि स्वीकार करने, अवधि, मात्रा एवं ब्याज दर के सम्बन्ध में निर्देश जारी किये गये। 1973 में चिट्–फण्ड कम्पनियों को भी निर्देश जारी किये गये। 1975 में **NBFC's** को रिजर्व बैंक के निर्देशों से छूट दे दी गई उन्हें कम्पनी मामले के विभाग द्वारा विनियमित करने का आदेश निर्गत किया गया।

RBI अधिनियम, 1934 के अध्याय (III) बी0 के अन्तर्गत रिजर्व बैंक को सीमित शक्तियां प्राप्त हैं। इसका उद्देश्य गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों द्वारा जमा राशि प्राप्त करने को सीमित करना तथा जमा राशि स्वीकार करने के लिये शुद्ध स्वाधिकृत कोषों से सम्बद्ध करते हुये जमाकर्ताओं को सुरक्षा प्रदान करना था।

भारत सरकार ने 1997 में एक अध्यादेश जारी कर रिजर्व बैंक अधिनियम 1954 के प्रावधानों में व्यापक परिवर्तन किये। इसे बाद में भारतीय रिजर्व बैंक (संशोधन) अधिनियम 1997 नाम दिया गया। शाह समिति के सिफारिशों के अनुरूप कुछ प्रावधानों को जोड़ा गया है जैसे–

- प्रवेश के समय शुद्ध स्वाधिकृत कोषों **(NOF)** के रूप में 25 लाख रूपये का होना।
- रिजर्व बैंक में अनिवार्य रूप से पंजीकरण,
- तरल सम्पत्तियों के प्रतिशत (निर्धारित) को बनाये रखना,
- आरक्षित निधि का सृजन करना तथा प्रतिवर्ष शुद्ध लाभ का न्यूनतम 20 प्रतिशत स्थानान्तरित करना
- गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों का जनता से जमा राशि स्वीकार करने पर प्रतिबन्ध लगाने तथा नियमों एवं निर्देशों का पालन न करने वाली कम्पनियों के समापन के लिये वाद प्रस्तुत करना आदि सम्मिलित हैं।
- जमायें प्राप्त करने हेतु विज्ञापन करना इन कम्पनियों के लिये प्रतिबन्धित हैं। रिजर्व बैंक के निर्देशों का पालन नहीं करने पर कम्पनियों पर दण्डात्मक कार्यवाही भी की जा सकती है।

1997 में गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों को जारी दिशा निर्देशों जो कि आरबीआई द्वारा दिये गये थे में संशोधन किया गया। इस संशोधन के

फलस्वरूप जनवरी 1998 में इन कम्पनियों हेतु तरल आवश्यकताओं में वृद्धि करने का निर्देश निर्गत किया गया जिसमें यह कहा गया कि ऋण एवं निवेश कम्पनियां जिन्हें 5 प्रतिशत तरल सम्पत्तियां रखना अनिवार्य था को निर्देश दिया गया कि वे 01 अप्रैल 1998 से सरकारी एवं अन्य स्वीकृत प्रतिभूतियों में अपनी जमा राशि का कमशः 7.5% तथा 10% तरलता बनाये रखेंगे। अन्य गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों के लिये वैधानिक आरक्षिति 12.5% तथा 15% तक बढ़ा दिया गया है।

गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों के जोखिम की मात्रा को ध्यान में रखते हुये यह प्रस्ताव भी किया गया है कि पूंजी पर्याप्तता अनुपात को मार्च 1998 एवं मार्च 1999 के अन्त तक कमशः 10ः तथा 12ः तक बढ़ाया जाय।

NBFC's के लिये कुछ मार्गदर्शी सिद्धान्तों को भी लागू किया गया है। **NBFC's** की कार्यप्रणाली की सुदृढ़ता सुनिश्चित करने हेतु कानूनी ढँाचे में भारतीय रिजर्व बैंक को अधिक शक्तियां प्रदान की गयी हैं। अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार **NBFC**' को कुछ शर्तों का पालन करना अनिवार्य है जैसे– दावा किये जाने पर जमाकर्ताओं को भुगतान के लिए पर्याप्त राशि उपलब्ध हो तथा उसका कार्य–संचालन सन्तोषजनक हो। प्रबन्ध तन्त्र जनता एवं जमाकर्ताओं के हितों के विरूद्ध न हो,

रिजर्व बैंक ने **NBFC's** पर नियन्त्रण एवं निगरानी रखने हेतु त्रि–स्तरीय ढँाचा लागू किया है। पर्यवेक्षण का स्वरूप एवं उसका विस्तार निम्नांकित तीन मानदण्डों पर आधारित होगा– i गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों का आकार ii किये जाने वाले कार्यों का प्रकार ii जनता से जमा राशि स्वीकार करना अथवा न करना।

इस हेतु पूँजी पर्याप्तता, परिसम्पत्ति की गुणवत्ता, प्रबन्ध, आय, तरलता एवं प्रणालियों (कैमल्स) के आधार पर एक व्यापक पर्यवेक्षी माडल विकसित किया गया है। कैमल्स (CAMELS) दृष्टिकोण प्रत्यक्ष निरीक्षण की प्रकिया को NBFC's की देनदारियों के अलावा उनकी परिसम्पत्तियों की गहन जाँच करने की तरफ पुनर्विन्यास करता है।

16.9 सारांश

वित्तीय मध्यस्थ वास्तव में प्रतिभूतियों के व्यापारी होते है। ये ऋण देने वाले तथा ऋण लेने वालों के मध्य सेतु/पुल का कार्य करते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं वित्तीय मध्यस्थ तथा गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ। वित्तीय मध्यस्थ अधिक आय की बचतों का अर्जन करके अन्तिम ऋण दाताओं से अन्तिम उधारकर्ताओं को कोषों का हस्तान्तरण करता है। दोनों के कार्य लगभग समान हैं।

वित्तीय मध्यस्थ तथा गैर–वित्तीय मध्यस्थ दोनों ही बचतों को एकत्रित कर उत्पादक कार्यों में विनियोजित कर लाभ कमाते हैं तथा लाभ कमवाते हैं। इनका अर्थव्यवस्था में बहुत बड़ा योगदान है।

16.11 शब्दावली

वित्तीय मध्यस्थ–Financial Intermediaries

गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ–Non Financial Intermediaries (NBFC's)
शुद्ध/ निवल स्वाधिकृत कोष– Net Owned Fund (NOF)
भारतीय रिजर्व बैंक–Reserve Bank of India (RBI)

16.12 बोध प्रश्न

1. गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थायें क्या होती है? ये बैंकों से कैसे भिन्न होते हैं?
2. गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थों के कार्यों का वर्णन कीजिये।
3. वित्तीय मध्यस्थ/ संस्थायें कितने प्रकार की होती है?

16.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. इस प्रश्न के पहले भाग में गैर–वित्तीय मध्यस्थों के बारे लिखे तथा दूसरे भाग में बैंक एवं गैर–वित्तीय संस्थाओं/मध्यस्थों के अन्तर को लिखें।
2. प्रश्न के पहले भाग में गैर वित्तीय मध्यस्थों को समझाइये तथा दूसरे भाग में कार्यों का वर्णन करें।
3. इस प्रश्न के उत्तर के पहले भाग में वित्तीय तथा गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थों/संस्थाओं के बारे में लिखे तथा दूसरे भाग में यह बतायें कि वित्तीय मध्यास्थ दो प्रकार के होते है तथा उनको समझाते हुये दोनों के कार्यों का वर्णन करें।

16.14 स्वपरख प्रश्न

1. वित्तीय मध्यस्थ क्या है? अल्पविकसित देशों में इनकी भूमिका स्पष्ट कीजिये।
2. गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ/संस्थाओं से आप क्या समझते हैं। इनके कार्य तथा भूमिका का स्पष्ट वर्णन करें।
3. गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थों का अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में क्या योगदान है।
4. गैर–बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों से आप क्या समझते हैं? इसमें हुये कमिक सुधारों की संक्षिप्त विवेचना कीजिये।

16.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. एम0एल0झिंगन–मौद्रिक अर्थशास्त्र।
2. **M.L.Jhingan – Monetary Economics**
3. डॉ0 सतीश कुमार शाहा–मुद्रा एवम् वित्तीय प्रणालियाँ।
4. विनीत मिश्रा एवं अवधेश कुमार गुप्त–वाणिज्य।
5. एम0एल0सेठ– **Monetary Economics**
6. एम0एल0सेठ–मुद्रा एवं बैंकिंग।
7. के बैन एवं पीटर हावेल्स– **Monetary Economics: Policy and its Theoritical Basis**
8. कार्ल ई वाल्स– **Monetary Theory and Policy**

इकाई–17 भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank Of India)

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना
17.2 रिजर्व बैंक की स्थापना के पूर्व का इतिहास
17.3 रिजर्व बैंक की पूँजी
17.4 भारतीय रिजर्व बैंक का संगठन एवं प्रबन्ध
17.5 भारतीय रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण
17.6 रिजर्व बैंक के विभाग
17.7 भारतीय रिजर्व बैंक के उद्देश्य
 17.7.1 मुख्य प्रयोजन
 17.7.2 मूल्य
 17.7.3 विजन
17.8 भारतीय रिजर्व बैंक के कार्य
17.9 रिजर्व बैंक के वर्जित कार्य
17.10 भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यों का मूल्यांकन
17.11 सारांश
17.12 शब्दावली
17.13 बोध प्रश्न
17.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
17.15 स्वपरख प्रश्न
17.16 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- रिजर्व बैंक क्या है, का वर्णन कर सकें ।
- रिजर्व बैंक के संगठन एवं प्रबन्ध की व्याख्या कर सके।
- आर0बी0आई0 के उद्देश्यों का वर्णन कर सकें।
- आइ0बी0आई के कार्यों का वर्णन कर सकें ।

17.1 प्रस्तावना

प्रत्येक देश की बैंकिंग व्यवस्था में देश के शीर्ष पर एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना की जाती है। देश के शीर्ष बैंक का कार्य मुद्रा निर्गमन एवं साख नियन्त्रण होता है।। इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भारत वर्ष में 01 अप्रैल 1935 को रिजर्व बैंक आफ इण्डिया की स्थापना की गयी तब से लेकर वर्तमान तक भारतीय रिजर्व बैंक ने कई पड़ाव पार किये हैं।। भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में भारतीय रिजर्व बैंक ने अपने सभी दायित्वों को पूरा करते हुये देश की अर्थव्यवस्था को एक नई दिशा प्रदान की है।

17.2 रिजर्व बैंक की स्थापना से पूर्व का इतिहास (History before establishment of Reserve Bank of India)

जनवरी 1773 में बंगाल के तत्कालीन गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स ने जनरल बैंक इन बंगाल एण्ड बिहार के स्थापना की वकालत की थी वारेन हेस्टिंग्स के इस प्रयास को केन्द्रीय बैंक की स्थापना का पहला एवं सफल प्रयास कहा जा सकता है। इसके पश्चात बाम्बे सरकार के सदस्य राबर्ट रिचर्ड एवं मेनार्ड केन्ज ने 1807–08 में जनरल बैंक की योजना का प्रस्ताव दिया। सन् 1913 में चेम्बरलेन आयोग ने भारत में एक केन्द्रीय बैंक का स्थापित करने का प्रस्ताव दिया। सन् 1931 में रायल आयोग के एक सदस्य श्री केन्ज ने प्रोपोजल्स फार द एस्टेबलिशमेन्ट आफ ए स्टेट बैंक आफ इण्डिया की स्थापना हेतु एक ज्ञापन तत्कालीन सरकार को दिया। केन्ज ने अपने इस ज्ञापन में एक ऐसे बैंक को स्थापित करने का सुझाव दिया था जिसे केन्द्रीय बैंक तथा वाणिज्यिक बैंक दोनों के कार्यों का निष्पादन करना था। परन्तु युद्धकालीन परिस्थितियों के कारण यह योजना धरातल पर नहीं आ सकी।

वर्ष 1921 भारतवर्ष के लिये एक स्मरणीय वर्ष के रूप में माना जाता है क्योंकि इस वर्ष प्रेसीडेन्सी बैंकों को समामेलित ;प्दबवतचवतंजमद्ध कर ''इम्पीरियल बैंक'' की स्थापना भारतवर्ष में की गयी। इम्पीरियल बैंक को केन्द्रीय बैंकिंग के कार्यों में से एक महत्वपूर्ण कार्य 'साख नियन्त्रण' का कार्य करना था तथा मुद्रा का नियन्त्रण सरकार को करना था; परन्तु दुर्भाग्यवश 'इम्पीरियल बैंक' अपने कार्य को सफलतापूर्वक नहीं सम्पन्न कर पा रहा था। एक कार्य सरकार द्वारा (मुद्रा नियन्त्रण) तथा साख नियन्त्रण 'इम्पिरियल बैंक' द्वारा किये जाने के कारण देश की मुद्रा प्रणाली पर दोहरा नियन्त्रण था।

1925 में हिल्टन यंग कमीशन को उक्त दोनों कार्यों के सम्बन्ध में सुझाव देने हेतु गठित किया गया। इस कमीशन ने सुझाव दिया कि मुद्रा एवं साख पर दोहरा नियन्त्रण समाप्त किया जाना चाहिये। इस पर नियन्त्रण करने वाली कोई एक ही संस्था होनी चाहिये। इस आयोग ने 'रिजर्व बैंक आफ इण्डिया' के रूप में एक केन्द्रीय बैंक के गठन का सुझाव दिया। भारत सरकार ने हिल्टन यंग कमीशन के सुझाव को मानते हुये जनवरी 1927 में तत्कालीन विधानसभा में 'गोल्ड स्टैण्डर्ड एण्ड रिजर्व बैंक आफ इण्डिया' विधेयक पेश किया। निदेशक मण्डल तथा बैंक के स्वामित्व से सम्बन्धित मतभेदों के कारण यह विधेयक स्वीकृत/पारित नहीं हो सका। 1929 में सेन्ट्रल बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटी (Central Banking Enquiry Committee) गठित की गई।। इस कमेटी ने भी भारत मे रिजर्व बैंक की स्थापना के सम्बन्ध मे पुरजोर सिफारिश की। 8 सितम्बर 1933 को भारतीय विधानसभा में इस सम्बन्ध में एक और विधेयक स्वीकृति हेतु रखा गया जो 22 दिसम्बर 1933 को पारित हो गया।

इस पारित विधेयक को काउन्सिल आफ स्टेटस द्वारा 16 फरवरी 1934 को पारित कर दिया गया। 6 मार्च 1934 को इस पर गवर्नर जनरल की स्वीकृति मिल गयी। इस विधेयक के द्वारा ही 'भारतीय रिजर्व बैंक' का प्रादुर्भाव हुआ; <u>उद्घाटन 1 अप्रैल 1935 को किया गया</u>। इस प्रकार कहा

जा सकता है कि 1 अप्रैल 1935 को भारतीय रिजर्व बैंक अस्तित्व मे आ गया।

अस्तित्व मे आने के समय अर्थात् स्थापना के वर्ष मे रिजर्व बैंक का केन्द्रीय कार्यालय कोलकाता मे था परन्तु सन् 1937 में इसे स्थायी रूप से बाम्बे (वर्तमान मे मुम्बई) में स्थानान्तरित कर दिया गया वर्तमान में आरबीआई के कुल 22 कार्यालय हैं। जिनमें से अधिकांश राज्यों की राजधानियों मे स्थित हैं।।

17.3 रिजर्व बैंक की पूंजी (Capital of Reserve Bank of India)

भारतीय रिजर्व बैंक का गठन 5 करोड़ रूपये जो कि 100 रू0 वाले अंशों में विभक्त थी, की पूर्णदत्त पूंजी के साथ अंशधारकों के बैंक के रूप में हुआ अंशों की कुल संख्या 5 लाख थी जिसमे से 2200 अंश निदेशकों के पास थे बाकी बचे अंश निजी अंशधारियों के पास थे।

वर्तमान में रिजर्व बैंक के पास आरक्षिति के रूप में कुल रू0 2ए751ए650 करोड़ ;ने + 400 इपससपवदद्ध है तथा बैंक दर 6.50 प्रतिशत है। आरक्षित निधियों पर ब्याज की दर 4ण्0ः है जोकि बाजार आधारित है।।

17.4 भारतीय रिजर्व बैंक का संगठन एवं प्रबन्धन (Organization and Management of Reserve Bank of India)

आरबीआई के संगठन एवं प्रबन्ध को दो भागों में वर्गीकृत कर किया जाता है–पहला केन्द्रीय बोर्ड तथा दूसरा स्थानीय बोर्ड। त्ठप् का प्रबन्धन केन्द्रीय निदेशक मण्डल द्वारा किया जाता है वर्तमान में इस मण्डल में 21 सदस्य हैं।

गवर्नर – 5 वर्ष की अवधि हेतु
चार उपगवर्नर – 5 वर्ष की अवधि हेत
चार निदेशक – (प्रत्येक स्थानीय बोर्ड द्वारा नामित। बम्बई, कलकत्ता,
मद्रास एवं दिल्ली चार स्थानीय बोर्ड हैं।।)
दस निदेशक – भारत सरकार द्वारा नामित 4 वर्ष हेतु
दो सरकारी अधिकारी – भारत सरकार द्वारा नामित

सरकारी अधिकारी तथा चार निदेशकों को बोर्ड की बैठक में मतदान का अधिकार नहीं होता। बोर्ड की बैठक वर्ष मे कम से कम 6 तथा तीन माह मे न्यूनतम एक बैठक करनी होती है। वैसे गवर्नर जब चाहे तब बोर्ड की बैठक आहूत कर सकता है।

गवर्नर तथा उपगवर्नर बैंक के पूर्णकालिक अधिकारी तथा वेतनभोगी अधिकारी होते हैं। निदेशक अंशकालिक अधिकारी हैं; जिन्हें बोर्ड की सभाओं में भाग लेने हेतु नियमानुसार यात्रा भत्ता तथा अन्य भत्ते देय होते हैं।।

चार स्थानीय बोर्ड कमशः मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई तथा दिल्ली हैं।।

गवर्नर बैंक का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है। इसे निदेशक मण्डल के सभी सदस्यों का सहयोग मिलता है। आरबीआई में कुल 16 विभाग हैं जैसे– बैंकिंग विभाग, निर्गम विभाग, मुद्रा प्रबन्धन विभाग, विनिमय नियन्त्रण विभाग, कृषि ऋण विभाग, औद्योगिक ऋण विभाग इत्यादि।

17.5 रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation of Reserve Bank of India)

स्थापना के समय आरबीआई अंशधारियों का बैंक था। स्थापना के वर्षों में ब्रिटिश शासन था जो पूंजीवादी व्यवस्था के अगुवा थे। इसी कारण आरबीआई अंशधारियों का बैंक था। आरबीआई की अधिकृत पूंजी 5 करोड़ रूपये थी जो 100 रूपये वाले अंशों में विभक्त थी।

आजादी के पश्चात परिस्थितियाँ ऐसी परिवर्तित हुई तथा विश्व के अन्य देशों के केन्द्रीय बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। भारत में भी जनमत रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के राष्ट्रीयकरण के पक्ष मे हो गया। 1948 में सरकार द्वारा रिजर्व बैंक (लोक स्वामित्व हस्तान्तरण) अधिनियम 1948 में पारित किया गया जिसके द्वारा 1 जनवरी 1949 को रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। अधिनियम की शर्तों के अनुसार इसकी सम्पूर्ण प्रदत्त पूंजी 01 जनवरी 1949 को केन्द्रीय सरकार को प्रदान कर दी गई। इसके पश्चात यह एक पूर्ण सरकारी स्वामित्व वाला संगठन बन गया।

इसके पूर्व के अंशधारकों को उनकी पूंजी 100 रू0 के अंश के बदले में 118 रूपये 10 आने अर्थात 118 रूपये 62 पैसे के हिसाब से मुआवजा के रूप में प्रदान किया गया। 100 रूपये के बदले में 3 प्रतिशत ब्याज वाले सरकारी बाण्ड तथा 18 रूपये 62 पैसे के बदले में नकद धनराशि प्रदान कर उन्हें अंशधारकों के अधिकार से मुक्त कर दिया गया।

17.6 रिजर्व बैंक के विभाग (Department of RBI)

1. बैंकिंग विभाग (Banking Department) बैंकिंग विभाग को आरबीआई की स्थापना के वर्ष में ही स्थापित कर दिया गया था इस विभाग का प्रमुख कार्य सरकारी लेन–देन तथा लोक वित का प्रबन्धन करना है। आरबीआई के इस कार्य में अनुसूचित बैंकों के नगद निधियों को अपने पास सुरक्षित रखना तथा यदि आवश्यकता हो तो अनुसूचित बैंकों की आर्थिक सहायता करना भी है।
2. निर्गमन विभाग–(Issue Department) निर्गमन विभाग का मुख्य कार्य आरबीआई के द्वारा निर्गमित किये गये नोटों की व्यवस्था करना है तथा उनका प्रबन्धन करना है।

   नोटों/कागजी मुद्रा को छापने एवं मुद्रा की आपूर्ति के लिये भारत के विभिन्न स्थानों पर 10 कार्यालय तथा 4 उपकार्यालय हैं।।
3. बैंकिंग विकास विभाग (Banking Development Department) भारत गावों का देश है। ग्रामीण क्षेत्र की जनता बचत नहीं कर

पाती है क्योंकि इन क्षेत्रों में बचत की आदतों का विकास नहीं हुआ था एक तो जनता गरीब थी एवं उनके पास न तो रोजगार था तथा न ही रोजगार के साधन। जनता जो कमाती थी उसे खर्च कर देती थी; ऐसी अवस्था में आवश्यकता थी कि एक ऐसी एजेन्सी की स्थापना की जाय जो कि जनता को बचत करने के लिये प्रोत्साहित करे एवं जन सामान्य में बचत की आदतों को विकसित करे।

इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु सन् 1950 में आरबीआई द्वारा एक बैंकिंग विकास विभाग की स्थापना की गयी। इस विभाग का मुख्य कार्य दूर–दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग व्यवस्था को विस्तारित करने के लिये प्रोत्साहन देना तथा अन्य बैंकों के अधिकारियों को प्रशिक्षण देना है।।

4. कृषि साख विभाग **(Agricultural Credit Department)** यह विभाग कृषि साख से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान हेतु स्थापित किया गया है। यह विभाग केन्द्र सरकार, राज्य सरकार एवं अन्य ऐसे संस्थान जो कि कृषि साख के विस्तार हेतु कार्य करते हैं को परामर्शी एवं वित्तीय सहायता प्रदान करता है।।
5. बैंकिंग परिचालन विभाग **(Banking Operation Department)** यह विभाग देश में स्थापित अन्य बैंकों चाहे वे अनुसूचित बैंक हो राष्ट्रीय बैंक हों या अन्य कोई बैंक हो जो बैंकिंग का कार्य करते हैं के संचालन तथा कामकाज को नियन्त्रित तथा विनियन्त्रित करने का कार्य करता है।।
6. विदेशी मुद्रा नियन्त्रण विभाग **(Foreign Currency Control Department)** भारत सरकार द्वारा सन् 1947 में विदेशी विनिमय नियन्त्रण अधिनियम (Foreign Exchange Control Act) पारित किया गया जिसका उद्देश्य विदेशी मुद्रा के लेन–देन पर नियन्त्रण स्थापित करना था।
7. औद्योगिक एवं निर्यात ऋण विभाग **(Industrial and Export Debt Department)** छोटे एवं मझोले उद्योगों को ऋण की सुविधा प्रदान करने एवं निर्यात सम्बन्धी समस्याओं के समाधान हेतु इस विभाग की स्थापना 1957 में की गयी। यह विभाग राज्य वित निगमों को भी अपनी महत्वपूर्ण सलाह प्रदान करना है।
8. गैर–बैंकिंग कम्पनीज विभाग **;Non- Banking Companies Department)** वर्ष 1966 में स्थापित यह विभाग गैर–बैंकिंग कम्पनियों के कार्यों पर नियन्त्रण एवं उनका नियमन करने का कार्य करता है
9. कानून विभाग **(Legal Department)** इस विभाग की स्थापना 1951 में आरबीआई के विभिन्न विभागों को कानूनी सलाह प्रदान करने हेतु किया गया है।
10. आर्थिक एवं सांख्यिकी विश्लेषण विभाग **(Economic & Statistics Department)** यह विभाग बैंकिंग एवं वित्त सम्बन्धी आंकड़ों को

संग्रहित करता है, उनका विश्लेषण करता है एवं उन्हें प्रकाशित भी करता है।।

17.7 भारतीय रिजर्व बैंक के उद्देश्य (Objectives of Reserve Bank of India)

भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 में स्पष्ट रूप से आरबीआई के मुख्य उद्देश्य मूल्य तथा विजन (Vision) के बारे में वर्णन किया गया है–

17.7.1 मुख्य प्रयोजन (Principle Objectives)

संधारणीय आर्थिक वृद्धि के अनुरूप मौद्रिक एवं वित्तीय स्थिरता को प्रोत्साहन देना तथा एक सक्षम एवं समावेशी वित्तीय प्रणाली का विकास सुनिश्चित करना।

मुख्य प्रयोजन राष्ट्र के प्रति भारतीय रिजर्व बैंक की वचनबद्धता दर्शाता है–

- रूपये के आन्तरिक एवं बाह्य मूल्य में विश्वास बढ़ाना एवं समष्टि आर्थिक स्थिरता में योगदान देना;
- वित्तीय प्रणाली की स्थिरता एवं उपभोक्ता संरक्षण सुनिश्चित करने के लिये अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले बाजारों एवं संस्थाओं को विनियमित करना;
- मुद्रा का सक्षम प्रबन्ध तथा सरकार एवं बैंकों के लिये बैंकिंग सेवायें सुनिश्चित करना; एवं
- देश के संतुलित, समान एवं संधारणीय आर्थिक विकास में सहयोग देना।

17.7.2 मूल्य (Values)-

भारतीय रिजर्व बैंक निम्नलिखित साझा मूल्यों के प्रति वचनबद्ध है जो बैंक के मुख्य प्रयोजन के लिये संगठनात्मक निर्णयों तथा कर्मचारियों के कार्यों में मार्गदर्शन देते है।–

- सार्वजनिक हितः– भारतीय रिजर्व बैंक अपने कार्यों एवं नीतियों में सार्वजनिक हित तथा जनसामान्य के कल्याण हेतु प्रयास करता है।
- विचारों की सत्यनिष्ठा एवं स्वतन्त्रताः– भारतीय रिजर्व बैंक खुलेपन, विश्वास एवं जबाबदेही के माध्यम से विचारों की सत्यनिष्ठा एवं स्वतन्त्रता के उच्च मानक बनाये रखने का प्रयास करता है।
- उत्तरादायित्व एवं नवोन्मेषः– भारतीय रिजर्व बैंक एक गतिशील संस्था बनने का प्रयास करता है जो जनसामान्य की आवश्यकताओं के प्रति उत्तरदायी है तथा नवोन्मेष एवं पूछताछ की भावना को प्रोत्साहित करती है।
- विविधता एवं समावेशिताः– भारतीय रिजर्व बैंक विविधता एवं समावेशिता का ध्यान रखता है एवं उसका समर्थन करता है।

- आत्मविश्लेषण एवं विशिष्टता की खोजः– आरबीआई स्वमूल्यांकन; आत्मविश्लेषण एवं व्यावसायिक विशिष्टता के प्रति वचनबद्ध है।

17.7.3 विजन (**Vision**)

अपनी विश्वसनीय, पारदर्शी एवं अग्रसक्रिय नीतियों के लिये विख्यात भारतीय रिजर्व बैंक एक अग्रणी केन्द्रीय बैंक के रूप में सार्वजनिक हित तथा जनसामान्य के कल्याण के लिये वचनबद्ध है।

उपरोक्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय रिजर्व बैंक के उद्देश्य निम्नांकित हैं–

1. एक सुदृढ़ बैंकिंग प्रणाली को निर्मित करना;
2. रूपये के आन्तरिक एवं बाह्य मूल्यों में स्थिरता लाना;
3. विदेशी मुद्रा का नियन्त्रण एवं विनियमन करना;
4. बैंकिंग की आदतों को प्रोत्साहित करना;
5. कृषि एवं कृषि साख गतिविधियों को प्रोत्साहित करते हुये उनका एवं नियन्त्रण एवं विनियमन करना; तथा
6. साख एवं मुद्रा नीति में समन्वय स्थापित करना; इत्यादि

17.8 भारतीय रिजर्व बैंक के कार्य (Functions of Reserve Bank of India)

आरबीआई, केन्द्रीय बैंक के द्वारा निष्पादित किये जाने वाले सभी कार्य सम्पन्न करता है। रिजर्व बैंक के कार्यों को तीन शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है–

I. **केन्द्रीय बैंकिंग सम्बन्धी कार्य** (Central Banking Functions)
II. **साधारण बैंकिंग के कार्य** (General Banking Functions)
III. **विकासात्मक बैंकिंग कार्य** (Devlopmental Banking Functions)

I. केन्द्रीय बैंकिंग सम्बन्धी कार्य (Central Banking Functions)

आरबीआई के केन्द्रीय बैंकिंग सम्बन्धी कार्य निम्नलिखित है–

1. नोट निर्गमन कार्य (**Issue of Paper Money**) भारतीय रिजर्व बैंक मुद्रा निर्गमित करने का प्राधिकार है इसी प्राधिकार के कारण एक रूप्ये के नोट को छोड़कर अन्य सभी नोटों (कागजी मुद्रा को) निर्गमित करने का अधिकार आरबीआई को है वर्तमान में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 10, 20, 50, 100, 200, 500 तथा 2000 रूपये मूल्य की कागजी मुद्रा जारी की जाती है। एक रूपये का नोट (अब सिक्का) भारत सरकार के वित्त मन्त्रालय द्वारा जारी किया जाता है।

   मुद्रा निर्गमित करने हेतु स्वर्ण तथा विदेशी प्रतिभूतियों के रूप मे सुरक्षित कोष रखना पड़ता है अर्थात मुद्रा की जितनी छपाई होती है उतने ही मूल्य के स्वर्ण तथा विदेशी प्रतिभूतियां आरक्षित निधि के रूप में कोष में रखना पड़ता है। सन् 1956 में भारतवर्ष में आनुपातिक कोष प्रणाली को अपना कर नोटों का निर्गमन किया गया।

इस प्रणाली में जितने नोट का निर्गमन करना है उसके कुल मूल्य का 40 प्रतिशत हिस्सा स्वर्ण तथा विदेशी प्रतिभूतियों के रूप में रखना अनिवार्य था तथा शेष 60 प्रतिशत मूल्य के हिस्सों को भारत सरकार की प्रतिभूतियों तथा स्वीकृत व्यापारिक बिलों कें रूप में रखना अनिवार्य था। सन् 1956 में मुद्रा निर्गमन हेतु न्यूनतम कोष प्रणाली को अपनाया गया। सन् 1957 में रिजर्व बैंक अधिनियम में संशोधन किया गया। इस संशोधन के आधार पर न्यूनतम 400 करोड़ रूपये की विदेशी प्रतिभूतियां तथा 115 करोड़ रूपये मूल्य का स्वर्ण या स्वर्ण सिक्के रख कर मुद्रा निर्गमन किये जाने का प्रावधान किया गया फिर अक्तूबर 1957 में इसे संशोधित किया गया 400 करोड़ रूपये की विदेशी प्रतिभूतियों के स्थान पर 85 करोड़ तथा 115 करोड़ रूपये के स्वर्ण तथा स्वर्ण मुद्रा को रखा गया। अभिप्राय यह हुआ कि न्यूनतम सीमा की कुल राशि 200 करोड़ रूपये रखी गयी। वर्तमान में नोट निर्गमन की यही प्रणाली अपनाई जा रही है।

2. सरकार का बैंक सलाहकार तथा एजेण्ट **(Banker Advisor and agent of Government)** भारतीय रिजर्व बैंक केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार दोनों के बैंकर का कार्य करता है। सरकार के बैंकर के रूप में यह सरकार के नकद राशि को जमा के रूप में स्वीकार करता है तथा सरकारों के आदेश द्वारा कोषागार नियमों के आधार पर भुगतान एवं कोषों का हस्तान्तरण भी करता है। इस कार्य हेतु आरबीआई कोई शुल्क नहीं लेता है तथा सरकार की जमाओं पर किसी प्रकार का ब्याज भी नहीं देता है। आरबीआई सलाहकार के रूप में सरकार को वित्तीय, मौद्रिक तथा आर्थिक नीति निर्धारण तथा उसके कियान्वयन में सहायता उपलब्ध कराता है। एजेण्ट के रूप में आरबीआई समय–समय पर जनता से ऋण लेता है इस ऋण को सार्वजनिक ऋण की संज्ञा प्रदान की जाती है। इन ऋणों की वापसी तथा ब्याज के भुगतान की जिम्मेदारी रिजर्व बैंक ही लेता है।

3. बैकों का बैंक **(Bank of Banks)** आरबीआई बैंकों के बैंक रूप में कार्य करता है। यह देश का केन्द्रीय बैंक एवं शीर्ष बैंक होने के कारण बैंकों के अन्तिम ऋणदाता संरक्षक एवं नियन्त्रक के रूप में कार्य करता है। आरबीआई को बैंकों का बैंक कहने के पीछे यही अवधारणा है प्रत्येक अनुसूचित बैंक को आरबीआई के पास अपनी जमा धनराशि का निश्चित भाग रखना पड़ता है।

यह बैंक अन्य बैंकों के कार्यो का नियन्त्रण, पर्यवेक्षण एवं नियमन भी करता है आरबीआई शाखायें खोलने, विस्तार करने, विवरणियां मांगने, पुस्तकों तथा खातों का निरीक्षण, ऋण से सम्बन्धित दिशा निर्देश निर्गमित करने, बैंकों के निदेशकों की नियुक्ति तथा बैंकों के विलय इत्यादि से सम्बन्धित प्राधिकारी भी होता है। यह बैंकों को पुर्नवित्त सुविधा उपलब्ध कराता है, समाशोधन गृहों के रूप में

कार्य करता है तथा निर्यात के लिये पुनर्वित्त सुविधायें भी प्रदान करता है। इस प्रकार यह बैंकों के बैंक के रूप में कार्य करता है।

4. विदेशी विनिमय नियन्त्रण **(Foreign Exchange Control)** आरबीआई देश में विदेशी मुद्रा का नियन्त्रण एवं भण्डारण भी करता है। भारतीय रूप्ये की विनिमय दर में स्थिरता बनाये रखने हेतु विदेशी मुद्रा का कय एवं विकय करता है (धारा 10)। रूपये के बाह्रय मूल्य का निर्धारण; पाउण्ड स्टर्लिग को मध्यस्थ मुद्रा मानकर, भारत के मुख्य व्यापारिक साझीदारों के भारित समूह के सम्बन्ध में निश्चित किया जाता है, जैसा कि सर्वविदित है मुद्राओं का मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में परिवर्तित होता रहता है ।
5. साख नियन्त्रण **(Credit Control)** देश का केन्द्रीय बैंक होने के कारण आरबीआई देश की गत्यात्मक आर्थिक स्थिति के अनुरूप मुद्रा आपूर्ति तथा साख को नियन्त्रित करता है जिससे मूल्यों में स्थिरता बनी रहे। इस कार्य हेतु आरबीआई विभिन्न साख नियन्त्रण उपायों को अपनाता है जैसे–नकद रिजर्व अनुपात एवं वैधानिक तरलता अनुपात में परिवर्तन, खुले बाजार की कियायें, ब्याज दर में परिवर्तन तथा चयनात्मक साख नियन्त्रण इत्यादि।
6. सूचनाओं, आंकड़ों को एकत्रित करना तथा उनका प्रकाशन **(Collection of Data and Information and their Publication)** आरबीआई विभिन्न प्रकार के आंकड़ों जैसे–मुद्रा, ऋण वित, कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन, भुगतान शेष, मूल्य आदि की सूचनाओं एवं आंकड़ों का संग्रहण कर उनका प्रकाशन करता है यह कार्य आरबीआई के अधीन आर्थिक विश्लेषण एवं नीति विभाग करता है।
7. प्रशिक्षण सुविधा प्रदान करना **(Training Facilities)** आरबीआई बैंक के कार्मिकों को विभिन्न स्तरों पर प्रशिक्षण प्रदान करता है इस हेतु आरबीआई ने बीटीसी (बैकर्स ट्रेनिंग कालेज), रिजर्व बैंक स्टाफ कालेज, कृषि बैंकिंग कालेज, आंचलिक प्रशिक्षण केन्द्र, इन्दिरा गांधी विकास शोध संस्थान, कम्प्युटर तकनीक में प्रशिक्षणालय इत्यादि। इन संस्थाओं के माध्यम से आरबीआई बैंक के कार्मिकों के कौशल–विकास हेतु प्रशिक्षण प्रदान करता है।

II. साधारण बैंकिंग कार्य **(General Banking Functions)**

आरबीआई के साधारण बैंकिंग कार्य निम्नांकित है–

1. जमा स्वीकार करना **(Accepting Deposits)** आरबीआई जनसामान्य से निक्षेप/जमा स्वीकार नहीं करता परन्तु यह भारत सरकार, राज्य सरकारों तथा अन्य संस्थाओं से बिना ब्याज के जमा प्राप्त करता है।
2. ऋण प्राप्त करना **(Taking Advances)** आरबीआई देश के किसी भी अनुसूचित बैंक अथवा विदेशों के केन्द्रीय बैंक से अधिकाधिक 30 दिनों के लिये ऋण ले सकता है।
3. निश्चित दरों पर कय–विकय करना **(Sale and Purchase on certain Rates)** आरबीआई समय समय पर निश्चित दरो पर भारत

में भुगतान किये जाने वाले 90 दिनों की अवधि के व्यापारिक एवं वाणिज्यिक विनिमय विपत्रों का क्रय–विक्रय करता है एवं उन्हें भुनाता है। इसी प्रकार इंग्लैण्ड में 90 दिन के भुगतान होने वाले विनिमय विपत्रों को भुनाता एव क्रय–विक्रय करता है।

4. अन्तर्राष्ट्रीय बैंकों में खाता खोलना **(Opening Accounts in International Banks)** आरबीआई बैंक विदेशों के केन्द्रीय बैंक में अपना खाता खोलता है तथा एजेन्सी के रूप में सम्बन्ध स्थापित करता है।

5. कृषि बिलों का क्रय विक्रय **(Sale and Purchase of Agricultural Bill)**
रिजर्व बैंक भारत में भुगतान होने वाले 15 माह की अवधि के कृषि सम्बन्धी बिलों का क्रय विक्रय करता है एवं उन्हें भुनाता है।

6. मांग ड्राफ्ट जारी करना **(Issue of Demand Draft)** आरबीआई अपने ही कार्यालयों पर ड्राफ्ट जारी कर सकता है।

7. विदेशी प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय **(Sale and Purchase of Foreign Securities)** रिजर्व बैंक भारत के बाहर अन्य देशों की उन प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय कर सकता है जिसका भुगतान क्रय करने की तिथि से 10 वर्षों के अन्दर ही हो जाता है।

8. अन्य कार्य **(Other Functions)** रिजर्व बैंक अपनी रक्षा में हीरे–जवाहरात एवं अन्य प्रतिभूतियाँ रख सकता है, स्वर्ण एवं चाँदी के सिक्कों का क्रय–विक्रय कर सकता है। तथा केन्द्रीय एवं राज्य सरकार की प्रतिभूतियों का क्रय एवं विक्रय कर सकता है तथा 1 लाख रूपये तक की स्टर्लिंग का बैंकों से क्रय–विक्रय कर सकता है।

III. विकासात्मक कार्य **(Developmental Functions)**

देश के आर्थिक मोर्चे पर भारतीय रिजर्व बैंक के कार्य निम्नांकित है–

1. बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार **(Banking Development)** स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारतवर्ष में बैंकिंग का विकास सभी स्थानों/क्षेत्रों में नहीं हुआ था। इस सम्बन्ध में आरबीआई ने अपनी योजना में शाखा विस्तार नीति अपना कर आर्थिक विकास के कार्यों में अत्यन्त आवश्यक एवं सराहनीय कार्य कर रहा है विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधा का विस्तार कर सके।

2. कृषि साख **(Agricultural Credit)** रिजर्व बैंक द्वारा सहकारी बैंकों एवं साख समितियों के माध्यम से कृषि कार्यों के लिये दीर्घ, मध्यम एवं अल्पकालीन वित्त उपलब्ध कराया जाता है। इस हेतु देश में राष्ट्रीय कृषि साख (दीर्घकालीन) कोष तथा राष्ट्रीय कृषि साख (स्थायित्व) कोष की भी स्थापना की गयी है। इन कोषों की स्थापना फरवरी, 1956 में की गयी। रिजर्व बैंक भूमि बन्धक बैंकों के द्वारा ऋणपत्र खरीदता है एवं उनकी धरोहर पर ऋ़ण भी देता है। सन् 1982 में कृषि वित्त के लिये नाबार्ड ;छ।ठ।त्क्द्ध नामक

संस्था का गठन किया गया वर्तमान समय में कृषि एवं ग्रामीण विकास से सम्बन्धित ऋण उपलब्ध कराने का कार्य यह संस्था देख रही है।

3. आर्थिक स्थिरता लाना **(Brings stability in prices)** किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास के लिये मुद्रा स्फीति एवं संकुचन दोनों ही बुरे हैं भारतीय रिजर्व बैंक इन दोनों पर नियन्त्रण स्थापित कर मूल्यों में स्थिरता लाने का प्रयास करता है।
4. औद्योगिक साख की व्यवस्था करना **(To provide Industrial Credit)** देश में औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने हेतु आरबीआई प्रत्यक्ष रूप से किसी उद्योग को ऋण उपलब्ध नहीं कराता है परन्तु उद्योगों को दीर्घकालीन ऋण प्रदान करने हेतु महत्वपूर्ण संस्थाओं की स्थापना कर दीर्घकालीन ऋण उद्योगों को उपलब्ध कराता है। ये संस्थायें हैं–औद्योगिक वित निगम, औद्योगिक साख तथा विनियोग निगम, भारतीय औद्योगिक विकास निगम, इत्यादि।

17.9 रिजर्व बैंक के वर्जित कार्य (Probhitions for the Reserve Bank)

भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 की धारा 18 द्वारा आरबीआई निम्नांकित कार्यों को निष्पादित नहीं कर सकती–

1. रिजर्व बैंक न तो अपने अंश क्रय कर सकता है तथा न ही किसी अन्य बैंक के अंश कय कर सकता है तथा उन पर ऋण भी नहीं दे सकता।
2. रिजर्व बैंक किसी भी जमा राशि पर ब्याज नहीं दे सकता।
3. मांग पर शोधनीय न होने वाले बिलों को रिजर्व बैंक न तो लिख सकता है तथा न ही उन्हें भुना सकता है।
4. रिजर्व बैंक किसी भी बैंक या संस्था को प्रतिभूतिरहित ऋण प्रदान नहीं कर सकता।
5. रिजर्व बैंक अचल सम्पत्ति को न तो खरीद सकता है तथा न ही उनकी जमानत पर ऋण दे सकता है।
6. रिजर्व बैंक व्यापार एवं वाणिज्य में न तो प्रत्यक्ष रूप से भाग ले सकता है एवं न ही आर्थिक सहायता प्रदान कर सकता है।

17.10 भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यों का मूल्यांकन (Appraisal/Evaluation of the Functions of Reserve Bank of India)

भारतीय रिजर्व बैंक जनवरी, 1949 में सरकारी स्वामित्व वाला देश के केन्द्रीय बैंक के रूप में स्थापित है। शुरूआत से लेकर वर्तमान तक आरबीआई के समक्ष चुनौतियां आई परन्तु आरबीआई ने उनका डटकर मुकाबला किया तथा सफल भी रहा। सफलता एवं असफलता का अंश कभी कम तो कभी ज्यादा रहा सार रूप में आरबीआई की सफलतायें एवं असफलताओं का विवरण निम्न है–

i. रिजर्व बैंक की सफलतायें **(Achievement of RBI)**

भारतीय रिजर्व बैंक की कुछ मुख्य उपलब्धियां निम्न हैं–

1. सरकार के बैंक के रूप में **(Bank of the Government)** सरकार के बैंक के रूप में भारतीय रिजर्व बैंक दोनों सरकारों केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारों को महती सहयोग प्रदान किया है। केन्द्रीय बैंक के रूप में यह केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों को न्यूनतम ब्याज पर; बाजार में ऋणों को प्रवाहित कराने में सफलतम रूप से कार्य कर रहा है यह राज्य सरकारों को अग्रिम उपलब्ध कराता है तथा परामर्शी सेवायें भी प्रदान करता है।
2. सुदृढ़ बैंकिंग विकास को बढ़ावा **(Promotion of Sound Banking Developement)** भारतीय रिजर्व बैंक देश में सुदृढ़ बैंकिंग प्रणाली को विकसित एवं प्रोत्साहित किया है। यह बैंकों पर अपनी पैनी निगाह रखता है तथा त्रुटियों को सुधारने में अपनी राय देता है।
3. ब्याज दर में स्थिरता **(Stability in Interest Rates)** भारतीय रिजर्व बैंक देश के औद्योगिक एवं व्यापारिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये ब्याज दरों में स्थिरता लाने का प्रयास करता है एवं इसमें सफल भी हुआ है। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि ब्याज दरों में, खुले बाजार की कियाओं के कारण लगातार परिवर्तन होता रहता है।
4. बचतों का संस्थानीकरण **(Institutionalization of Savings)** भारतीय रिजर्व बैंक ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में बचत की आदतों के विकास में सहायक हुआ है। रिजर्व बैंक द्वारा निर्देश के कारण ही प्रत्येक क्षेत्र में बैंकों की शाखायें खुली है; लोगों में बैंकिंग सुविधाओं का उपयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ी है।। बैंकों के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट बैंकिंग एवं गैर–बैंकिंग संस्थानों की संख्या में वृद्धि इसी का परिणाम है।
5. बैंकिंग प्रणाली का संरक्षक **(Custodian of Banking System)** भारतीय रिजर्व बैंक; बैंकिंग प्रणाली के संरक्षक के रूप में बैंकों को जमा बीमा तथा ऋण गारन्टी प्रदान करता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु भारतीय रिजर्व बैंक ने जमा बीमा तथा गारन्टी निगम की स्थापना भी की है।
6. बैंकों का बैंक **(Banker of Banks)**. देश में अवस्थित अन्य बैंकों के अन्तिम ऋणदाता के रूप में भारतीय रिजर्व बैंक आर्थिक सहायता देता है। जब अनुसूचित बैंकों को कहीं से भी ऋण उपलब्ध नहीं हो पाता है तब भारतीय रिजर्व बैंक उन्हें ऋण उपलब्ध कराकर उनकी सहायता करता है। इसी कारण इसे 'बैंकों का बैंक' की संज्ञा प्रदान की गयी है इस कार्य को भी रिजर्व बैंक सफलतापूर्वक सम्पन्न कर रहा है।
7. आर्थिक विकास में सहयोग **(Contribution in Economic Development)** रिजर्व बैंक सरकार के आर्थिक विकास एवं नियोजन कार्यकमों में पूरा–पूरा योगदान देता है। रिजर्व बैंक ने नियोजन हेतु घाटे की वित्त व्यवस्था की पूर्ति के साथ ही कृषि,

उद्योग, व्यापार विदेशी विनिमय आदि के लिये साख मांग की पूर्ति भी करता है।

8. कृषि विकास में सहयोग **(Contribution in Agricultural Development)** रिजर्व बैंक; कृषि क्षेत्र को सहकारी बैंकों के माध्यम से अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन वित उपलब्ध कराने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। रिजर्व बैंक ने कृषि साख की मद में दो हजार करोड़ रूपये से अधिक के ऋण उपलब्ध कराये हैं।

9. औद्योगिक वित **(Industrial Fianance)** रिजर्व बैंक ने औद्योगिक वित बैंक की स्थापना के साथ–साथ अन्य संस्थाओं जैसे– औद्योगिक वित्त निगम, राज्य वित्त निगम, आदि के अंशों का क्रय करके उद्योगों के लिये पर्याप्त वित्त उपलब्ध कराया है। रिजर्व बैंक द्वारा एक औद्योगिक साख कोष स्थापित किया गया है, जिसमें उद्याोगों के लिये 3300 करोड़ रूपये की राशि जमा की जा चुकी है।।

10. आर्थिक सलाहकार **(Economic Advisor)** रिजर्व बैंक ने विगत वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे–अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक आदि में सरकार की आज्ञानुसार अपने विशेषज्ञ भेजे हैं। रिजर्व बैंक के विशेषज्ञ घाना, रूमानिया, युगाण्डा, लीबिया, आदि देशों के केन्द्रीय बैंक में आर्थिक सलाहकार के रूप में कार्य कर रहे हैं। इसके विशेषज्ञ देश के जीवन बीमा निगम, कृषि पुनर्वित्त निगम, युनिट ट्रस्ट, औद्योगिक विकास बै।क आदि में कार्य कर रहे हैं।

11. सार्वजनिक ऋणों की व्यवस्था **(Organising Public Debts)** रिजर्व बैंक सरकार का आर्थिक प्रतिनिधि है।। अतः यह सार्वजनिक ऋण की व्यवस्था भी करता है। रिजर्व बै।क ने इसमें सफलता भी प्राप्त की है। समय समय पर रिजर्व बैंक ने सरकार को आपातकालीन ऋण प्रदान कर वित्तीय समस्याओं का समाधान भी किया है।

12. समाशोधन गृहकार्य **(Function of Clearing House)** भारतवर्ष में समाशोधन गृह का कार्य रिजर्व बैंक सुचारू रूप से कर रहा है। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न बैंकों के आपसी लेन–देन सरलता से तथा त्वरित गति से सम्पन्न किये जा रहे हैं।

13. बैंकिंग व्यवस्था में सुधार **(Improvement in Banking Syestem)** रिजर्व बैंक के सफल नियमन एवं नियन्त्रण द्वारा बैंकिंग व्यवस्था का सुदृढ़ विकास हुआ है। रिजर्व बैंक अन्य बैंकों के लिये मित्र, दार्शनिक एवं मार्गदर्शक का काम सफलता पूर्वक कर रहा है।

14. साख का नियमन एवं नियन्त्रण **(Regulation and Control of Credit)** यद्यपि रिजर्व बैंक को साख नियन्त्रण में सफलता नहीं मिली है फिर भी उसके साख नियन्त्रण प्रयास सराहनीय हैं। रिजर्व बैंक ने परिमाणात्मक, गुणात्मक एवं चयनात्मक साख नियन्त्रण रीतियों का समुचित प्रयोग किया है। यदि भारतीय रिजर्व बैंक इन

उपायों को नही अपनाता तो देश में मुद्रा स्फीति की स्थिति बहुत भयावह होती।

15. बिल बाजार विकास **(Development of Bill Market)** रिजर्व बैंक ने देश में संगठित बिल बाजार की स्थापना हेतु 1952 से 'बिल बाजार योजना' प्रारम्भ की है जिससे बिल बाजार का विकास हो सके।
16. धन का हस्तान्तरण **(Transfer of Money)** रिजर्व बैंक ने सरकार, व्यापारिक बैंकों एवं सहकारी संस्थाओं के धन के हस्तानान्तरण के लिये सस्ती एवं तीव्रगामी सेवायें उपलब्ध करायी हैं। रिजर्व बैंक के माध्यम से व्यापारिक बैंक बहुत कम व्यय पर अपने धन का हस्तान्तरण करते हैं।
17. नोट निर्गमन में सफलता **(Success in Note Issue)** रिजर्व बैंक ने 1956 तक आनुपातिक कोष प्रणाली द्वारा एवं 1956 के बाद न्यूनतम कोष प्रणाली द्वारा नोटों का निर्गमन किया है। सामान्यतः लोगों का विश्वास था कि यह स्फीति को बढ़ायेगा परन्तु उसकी तत्परता एवं कठोर मौद्रिक नियन्त्रण नीति के कारण स्फीति अधिक नहीं बढ़ी।
18. आंकड़ों का संकलन एवं प्रकाशन **(Collection and Publication of Statistics)** रिजर्व बैंक; मुद्रा, राष्ट्रीय आय, मूल्य स्तर, वित्त आदि से सम्बन्धित अनेक प्रकार के आंकड़े एकत्रित कर अपनी विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित करता है। 'रिजर्व बैंक आफ इण्डिया बुलेटिन' इसकी सबसे अधिक लोकप्रिय मासिक पत्रिका है।
19. बैंकिंग लोकपाल **(Banking Ombudsman)** रिजर्व बैंक ने देश के सभी राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में लोकपाल नियुक्त किये हैं जो बैंकिंग सेवाओं में पायी जाने वाली कमियों के सम्बन्ध में ग्राहकों की शिकायतों को शीघ्रता से एवं कम खर्चीले ढंग से निपटाते हैं।
20. साख नियन्त्रण **(Credit Control)** रिजर्व बैंक की उपलब्धियों में साख नियन्त्रण एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। रिजर्व बैंक ने साख नियन्त्रण की उचित नीति अपनाकर देश में साख के परिमाण का नियन्त्रण एवं नियमन करने का कार्य किया है।

ii भारतीय रिजर्व बैंक की असफलतायें **(Failures of Reserve Bank of India)**

यद्यपि कि भारतीय रिजर्व अपने कार्यों को निष्पादित करने में महत्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल किया है फिर भी कुछ क्षेत्रों में इसे असफलता मिली है।

रिजर्व बैंक की कुछ असफलतायें निम्नलिखित हैं–

1. बैंकिंग व्यवस्था का नियमन एवं नियन्त्रण **(Regulation and Control of Banking System)** रिजर्व बैंक; व्यापारिक बैंकों एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं के नियमन एवं नियन्त्रण में असफल रहा है बैंकिंग कानून का पालन कराने, बैंकों के अंकेक्षण प्रतिवेदन का

अध्ययन करने एवं ऋण राशि के लेन–देन को नियन्त्रित करने में रिजर्व बैंक असफल रहा है। यही कारण है कि हर्षद मेहता एवं अन्य दलाल बैंकों की सांठ–गांठ से 4500 करोड़ रूपये से अधिक का घोटाला करने में सफल हुये; संसदीय जांच समिति ने भी इस तथ्य को उजागर किया है।

2. आन्तरिक कीमत स्तर में वृद्धि **(Increase in Internal Price Level)** रिजर्व बैंक द्वारा मुद्रा एवं साख में सतत वृद्धि करते रहने से कीमत स्तर तेजी से बढ़ा है जिसका सामान्य लोगों पर एवं आर्थिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ा है। देश में मुद्रा की आपुर्ति सतत् बढ़ती गयी रिजर्व बैंक ने कीमतों में होने वाली वृद्धि को ठीक ढ़ग से रोकने के प्रयास नहीं किये।

3. असंगठित मुद्रा बाजार को नियन्त्रित करने में असफल **(Failure to Control Unorganised money market)** भारतीय रिजर्व बैंक देश के मुद्रा बाजार को नियन्त्रित करने विशेष तौर पर असंगठित मुद्रा बाजार को नियन्त्रित करने विफल रहा है। इससे स्वस्थ बैंकिंग व्यवस्था में व्यवधान उत्पन्न होता है भारतीय रिजर्व बैंक की कठोर नीतियों के बावजूद भी देशी बैंकर स्वतन्त्रता से कार्य कर रहे हैं।

4. विनिमय दर में अस्थिरता **(Unstability in Exchange Rate)** रिजर्व बैंक भारतीय रूपये की विदेशी विनिमय दर को स्थिर रखने में भी असफल रहा है। इसी कारण भारत ने अपनी मुद्रा का 1949 में 333 प्रतिशत 1996 में 365 प्रतिशत 1991 में 21 प्रतिशत का अवमूल्यन किया सन् 1980 में एक अमरीकन डालर 7.9 रूप्ये के बराबर था जो सन् 2019 में बढ़कर 70 रूपये से अधिक हो गया है । अतः स्पष्ट है कि रिजर्व बैंक रूपये के विनिमय मूल्य को स्थिर रख पाने में असफल रहा है।

5. स्फीतिक दबाओं को रोकने में असफल **(Failure to Check inflationany pressures)** नियन्त्रित मुद्रा विस्तार की नीति को अपनाने के बावजूद भी रिजर्व बैंक अर्थव्यवस्था में मौजूद मुद्रा स्फीति के दबाओं को नियन्त्रित करने में असफल रहा है।

6. बैंकिंग व्यवस्था में सुधार करने में असफल **(Failure in improving Banking System)** रिजर्व बैंक 80 वर्षो से भी अधिक लम्बे जीवनकाल में देश की बैंकिंग व्यवस्था को सुदृढ़ करने में असफल रहा है। 1949 से 1959 के मध्य 338 बैंक बन्द हो गये। वर्तमान समय में भी अनेक बैंक संकटग्रस्त हैं 1960 में लक्ष्मी बैंक एवं पलाई सेन्ट्रल बैंक बन्द हुये। विभिन्न बैंकों को अभी भी पर्याप्त सहायता रिजर्व बैंक से नहीं मिल पा रही है।

7. आंकड़ों का अभाव **(Lack of Statistics)** यद्यपि रिजर्व बैंक के पास देश की विभिन्न आर्थिक मदों के आंकड़े एकत्रित करने के लिये अनेक एजेन्सियां हैं फिर भी यह एक ऐसी प्रणाली विकसित नहीं कर पाया है जिसके प्रकाशनों का प्रयोग बैंक के विश्वसनीय आंकड़ों के रूप में किया जा सके।

8. बिल बाजार के विकास में असफल (**Failure in Developing Bill Market**) यद्यपि भारतीय रिजर्व बैंक ने बिल बाजार के विकास के लिये 1952 से ही एक योजना प्रारम्भ की है फिर भी उसे इस दिशा में पर्याप्त सफलता नहीं मिली है, यही कारण है कि देश में आज भी अच्छे बिल बाजार का अभाव है। वास्तव में यह बिल संस्कृति को विकसित करने में असफल रहा है। इसके अतिरिक्त आरबीआई ने हुण्डियों को विनिमय विपत्रों की तरह इनकी व्यवस्था एवं उन्हें मान्यता प्रदान नहीं किया है।
9. अपर्याप्त बैंकिंग सुविधायें (**Insufficient Banking Facilities**) देश में बैंकों के राष्ट्रीयकरण से बैंक के शाखाओं में तो वृद्धि हुई है परन्तु अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का अभाव है।
10. ब्याज दरों में विविधता (**Multiplicity of Interest Rates**) मुद्रा बाजार का रिजर्व बैंक से उचित तालमेल न होने के कारण ब्याज दरों में विभिन्नता पायी जाती है। स्वदेशी बैकर एवं साहूकार बैंक दरों की परवाह किये बिना काफी ऊँची दरों पर जनता को ऋण देते हैं। यहां तक कि बैंकों द्वारा ली जाने वाली मुद्रा बाजार दरों तथा गैर–बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थों द्वारा ली जाने वाली ब्याज दर भी भिन्न– भिन्न होती है ।
11. ग्रामीण साख का अपर्याप्त विकास (**Insufficient Development of Rural Credit**) यद्यपि रिजर्व बैंक ग्रामीण साख के विकास हेतु अनेकानेक प्रयास करता है किन्तु ये प्रयास ग्रामीण क्षेत्र की आवश्यकताओं हेतु अपर्याप्त हैं। यही कारण है कि आज भी अधिकांश ग्रामीण जनता ऋण के लिये देशी महाजनों पर ही निर्भर हैं
12. कालेधन के नियन्त्रण में असफल (**Failure to Control Black Money**) भारतीय रिजर्व बैंक के पास कालेधन के नियन्त्रण हेतु कोई उचित एवं ठोस नीति नहीं है। रिजर्व बैंक की ऋण संकुचन नीति ने ही कालेधन को बढ़ाया है ऐसा विशेषज्ञों का मानना है। व्यवसायी कालेधन का आश्रय लेकर ऋण प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यद्यपि केन्द्रीय बैंक के रूप में रिजर्व बैंक ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये हैं तथापि यह बैंक देश की बैंकिंग एवं साख सम्बन्धी समस्याओं को हल करने में असफल रहा है। संक्षेप में रिजर्व बैंक को देश में सफल बैंकिंग विकास हेतु अभी भी बहुत कुछ करने की आवश्यकता हैं।

17.11 सारांश

प्रत्येक देश की बैंकिंग व्यवस्था में शीर्ष पर एक केन्द्रीय बैंक होता है। भारत का केन्द्रीय बैंक ''रिजर्व बैंक आफ इण्डिया'' है। इसकी स्थापना 01 अप्रैल 1935 को हुई रिजर्व बैंक की स्थापना का मुख्य उद्देश्य था रूपये के आन्तरिक एवं बाह्य मूल्यों में स्थिरता लाना, साख एवं मुद्रा नीति में समन्वयन, कृषि साख की व्यवस्था, मुद्रा

बाजार को संगठित करना, व्यापारिक बैंकों का विकास इत्यादि। रिजर्व बैंक का प्रबन्ध 20 सदस्यों वाले एक केन्द्रीय निदेशक बोर्ड द्वारा किया जाता है। इसका मुख्य कार्यालय मुम्बई में है तथा चार स्थानीय प्रधान कार्यालय मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई तथा दिल्ली में है। रिजर्व बैंक कई विभागों के माध्यम से कार्य करता है। इसके मुख्य विभाग हैं–निर्गमन विभाग, बैंकिंग विभाग, परिचालन विभाग, विकास विभाग, कृषि साख विभाग, विदेशी मुद्रा नियन्त्रण विभाग, औद्योगिक एवं निर्यात ऋण विभाग, सांख्यिकी विभाग गैर–बैंकिंग कम्पनीज विभाग इत्यादि।

रिजर्व बैंक के मुख्य कार्य हैं–नोटों का निर्गमन, साख का नियन्त्रण, सरकार का बैकर एवं सलाहकार, बैंकों का बैंक, विदेशी विनिमय नियन्त्रक, जमा स्वीकार करना इत्यादि।

रिजर्व बैंक द्वारा कुछ कार्य वर्जित भी है जैसे–रिजर्व बैंक न तो किसी प्रकार के व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग में भाग ले सकता है न तो आर्थिक सहायता कर सकता है, अचल सम्पत्ति नहीं कय कर सकता जनता से ब्याज के लिये जमा स्वीकार नहीं कर सकता इत्यादि।

भारत राष्ट्र के विकास में रिजर्व बैंक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है परन्तु इसकी कुछ विफलतायें भी हैं। परन्तु संक्षेप में कहा जा सकता है कि आरबीआई अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने की पूरी कोशिश कर रहा है एवं यह उसमें सफल भी होगा।

17.12 शब्दावली

आरबीआई – रिजर्व बैंक आफ इण्डिया (Reserve Bank of India)-

केन्द्रीय बैंकिंग जांच समिति – (Central Banking Enquiry Committee)

साख – (Credit) उधार का सृजन करना।

बैंकिंग लोकपाल – (Banking Ombudsman) बैंकिंग सेवाओं से सम्बन्धित ग्राहकों की शिकायतों का निवारण करता है।

बैंकों का बैंक (Banker of Banks)- यह सभी बैंकों की जमायें स्वीकार करता है तथा इन्हें ऋण भी उपलब्ध कराता है अर्थात् RBI अन्य बैंकों को आर्थिक सहायता प्रदान करता है।

समाशोधन गृह (Clearing House). चेकों के संग्रहण एवं भुगतान हेतु एक स्थान जहां सभी बैंकों के बैंक का समाशोधन वह होता है।

17.13 बोध प्रश्न

1. रिजर्व बैंक के प्रबन्ध, संगठन एवं कार्यों का वर्णन कीजिये।
2. भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यों का वर्णन करें।
3. भारतीय रिजर्व बैंक की सफलताओं एवं असफलताओं की व्याख्या करें।

17.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. इस प्रश्न के उत्तर के प्रथम भाग में रिजर्व बैंक के बारे लिखें तथा उत्तर के दूसरे भाग में प्रबन्ध एवं संगठन तथा तृतीय भाग में रिजर्व बैंक के कार्यों का वर्णन करें।
2. इस प्रश्न के उत्तर में रिजर्व बैंक के कार्यों का वर्गीकरण करके 3 भाग में उत्तर लिखें जैसे– ;पद्ध केन्द्रीय बैंकिंग कार्य ;पपद्ध साधारण बैंकिंग कार्य तथा ;पपपद्ध विकासात्मक कार्य
3. इस प्रश्न के उत्तर को दो भागों में यथा पहले रिजर्व बैंक की सफलतायें लिखें तथा दूसरे भाग में रिजर्व बैंक की असफलतायें लिखें तथा अन्त में निष्कर्ष रूप में यह लिखें कि रिजर्व बैंक अपने कार्यों को निष्ठापूर्वक निष्पादित कर रहा है, फिर भी कुछ असफलतायें भी इसके साथ हैं। सारांश रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय रिजर्व बैंक अपने उद्देश्यों को पूरा करने में बहुत हद तक सफल रहा है।

17.15 स्वपरख प्रश्न

1. रिजर्व बैंक के संविधान तथा संगठनात्मक ढ़ाँचे का वर्णन किजिये।
2. भारतीय रिजर्व बैंक के क्या कार्य हैं? यह देश के केन्द्रीय बैंक के रूप में कहाँ तक सफलता प्राप्त किया है?
3. भारतीय रिजर्व बैंक की उपलब्धियों एवं असफलताओं का वर्णन कीजिये।

17.16 सन्दर्भ पुस्तकें

1. एम0एल0 झिंगन– मौद्रिक अर्थशास्त्र
2. डॉ0 सतीश कुमार साहा – मुद्रा एवं वित्तीय प्रणालियाँ
3. डॉ0 एल0 एम0 सेठ – मुद्रा एवं बैंकिंग
4. डॉ0 एम0एल0 सेठ – मनी बैंकिंग एण्ड इण्टरनेशनल ट्रेड
5. डॉ वी0सी0 सिन्हा एवं डॉ0 पुष्पा सिन्हा – मुद्रा एवं वित्तीय प्रणालियां

इकाई–18 ब्याज दर ढांचा (Interest Rates Structure)

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 ब्याज दर
18.3 ब्याज क्यों दिया जाता है?
18.4 ब्याज दर को प्रभावित करने वाले घटक
18.5 ब्याज दर ढांचा
18.6 ब्याज दर ढांचे को निर्धारित करने वाले तत्व या घटक
18.7 ब्याज दर ढांचा सिद्धान्त
18.7.1 प्रत्याशा सिद्धान्त
18.7.2 विभक्त बाजार सिद्धान्त
18.7.3 तरलता प्रब्याजि सिद्धान्त
18.8 सारांश
18.9 शब्दावली
18.10 बोध प्रश्न
18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
18.12 स्वपरक प्रश्न
18.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- ब्याज का क्या अभिप्राय है, की व्याख्या कर सके।
- ब्याज क्यों दिया जाता है, की व्याख्या कर सके।
- ब्याज दर को प्रभावित करने वाले घटकों का वर्णन कर सकें ।
- अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ब्याज दरों के मध्य पाए जाने वाले सम्बन्ध की व्याख्या कर सके।
- ब्याज दर के सिद्धान्तों का वर्णन कर सकें।
- ब्याज दरों के अवधि ढांचा क्या है तथा इसके महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की व्याख्या कर सके।

18.1 प्रस्तावना

जब कोई व्यक्ति अपनी जमा पूँजी को या जमा धन को किसी अन्य व्यक्ति को प्रयोग हेतु देता है तो प्रयोगकर्ता उस धन के प्रयोग के बदले में कुछ निश्चित धनराशि; धन प्रदान करने वाले को प्रदान करता है इसी धनराशि को 'ब्याज' कहते है। अर्थशास्त्र की भाषा में ''राष्ट्रीय आय'' का वह भाग जो पूंजी के प्रयोग के बदले में पूँजीपति को दिया जाता है, ब्याज कहलाता है।

जैसा कि विदित है कि जन सामान्य अपनी आय का कुछ भाग भविष्य की अनिश्चितताओं के कारण बचा कर रखता है। इन अल्प बचतों को इकट्ठा करके रखता है। इन बचतों से पूंजी निर्मित होती है। बचत का सृजन; बचतकर्ताओं के वर्तमान आवश्यकताओं के त्याग द्वारा होता है।

अतः कह सकते हैं कि बचत 'त्याग' का परिणाम है।

प्रो0 कीन्स **(Prof Kynes)** के अनुसार– ''एक निश्चित समय के लिये तरलता के परित्याग का पुरस्कार ब्याज है।'' (Interest is the reward of parting with liquidity for a specified period.)

ए0एल0मेयर्स **(A.L.Mayers)** के अनुसार– ''ब्याज उस कीमत को कहते हैं जो उधार देने योग्य कोषों के प्रयोग के बदले में दिया जाता है।'' (Interest is the price for the use of lonable fund.)

LksfyxeSu (Seligman) के अनुसार : ''ब्याज पूंजी के कोष से मिलने वाला पारितोषिक है''। (Interest is the return from the fund of capital.)

परिभाषाओं के अध्ययनोपरांत सार रूप में यह कहा जा सकता है कि ''पूंजी के बदले में पूंजी प्रदान करने वाला जो प्रतिफल प्राप्त करता है उसे ही 'ब्याज' कहा जाता है।

18.2 ब्याज दर (Interest Rate)

ब्याज दर का अभिप्राय उस दर से है जिसे प्रति 100 रूपये पर प्राप्त किया जाता है

उदाहरणार्थ–यदि एक पूँजीपति 1,00,000 रूपये की अपनी बचत को किसी अन्य व्यक्ति को प्रयोग हेतु देता है तथा प्रयोकर्ता इस धन के प्रयोग के बदले एक वर्ष के अन्त में पूंजीपति को 10000 रूपये बतौर प्रतिफल देता है तो यहाँ ब्याज की दर होगी 10 प्रतिशत।

$$\text{ब्याज} = \frac{\text{मूलधन} \times \text{दर} \times \text{समय}}{100}$$

प्रश्नानुसार–

ब्याज (Interest) = रू0 10000

मूलधन = रू 100,000

समय = 1 वर्ष

ब्याज दर = ?

सूत्रानुसार :

$$\text{रू0 } \frac{10,000}{1} = \frac{10,000 \times \text{दर} \times 1}{100}$$

तिर्यक गुणा करने पर

$$\text{रू0 } 10,000 \times 100 = \text{रू0 } 100,000 \times \text{दर} \times 1$$

$$10,00,000 = 1,00,000 \times \text{दर}$$

$$\text{इसलिये दर (Rate)} = \frac{10,00,000}{10,00,00}$$

दर (Rate) = 10:

18.3. ब्याज क्यों दिया जाता है?

ब्याज के देय होने से सम्बन्धित दो अवधारणाऐं हैं–

1. <u>उधार देने वाले के दृष्टि से</u> **<u>(in creditors point of view):-</u>** उधार देने की क्षमता; उस व्यक्ति अर्थात् ऋणदाता के पूंजी निर्माण की क्षमता पर निर्भर करती है। ऋणदाता ब्याज प्राप्त करने की

प्रत्याशा में पूंजी निर्माण करता है या यूं कहें कि वह ब्याज प्राप्त करने के लालच में बचत करता है। यदि ऋण देने वाले को यह लालच न हो कि जितनी अधिक मात्रा में वह पूंजी या धन उधार लेने वाले लोगों को देगा उसे उतना अधिक ब्याज मिलेगा तो वह बचत करने में रूचि नहीं लेगा।

ऐसी स्थिति में देश में पूंजी का निर्माण भी नहीं होगा जो अर्थव्यवस्था के विकास हेतु एक आवश्यक अवयव है।

2. <u>उधार लेने वाले/ ऋणी के दृष्टिकोण से **(In debtors point of view)**</u> ब्याज का भुगतान <u>ऋणी/उधार लेने वाला; ऋणदाता</u> को करता है।। ऋणी ब्याज का भुगतान इसलिए करता है क्योंकि वह उधार देने वाले के धन का उपयोग अपनी आगम/आय बढाने हेतु या अपनी संतुष्टि बढ़ाने के लिए करता है। परन्तु यदि वह दूसरे की पूंजी का प्रयोग न करें तो उसकी आय या संतुष्टि में वृद्धि संभव न होगी। इसी संतुष्टि या आय सृजन के पारितोषिक/प्रतिफल के रूप में पूंजी का उपयोग कर्ता ब्याज के रूप में धन उधार देने वाले को देता है।

ऋणदाता ऋण एक विशेष समायावधि के लिए देता है। एसी संभावना भी होती है कि समयावधि समाप्त होने के बाद भी लिए गये ऋण को न चुकाया जाए एंव ऋण अप्राप्य हो जाए। ऋण देने में अनिश्चितता या जोखिम का तत्व समाहित होता है। अतः ब्याज जोखिम या अनिश्चितता को वहन करने का पुरस्कार भी है।

यदि ऋण की समयावधि समाप्त होने से पहले ही ऋणी को धन की आवश्यकता हो जाय तो ऋणदाता; ऋणी से अपना धन वापस नही प्राप्त कर सकता है। इस कारण ऋणदाता को बहुत सी कठिनाइयों/असुविधा को झेलना पड़ता है। मतलब यह है कि इसी के बदले ब्याज दिया जाता है। इस तरह से कहा जा सकता है कि ब्याज असुविधा के लिए भुगतान है।

जब से ऋण दिया जाता है तथा जब ऋण की अवधि पूरी होती है; इस समयावधि में कई प्रकार के खर्च भी ऋणदाता को करना पड़ता है जैसे खाते तैयार करने हेतु एकाउटेण्ट का वेतन, ऋण की वसूली हेतु रखे गये एजेन्टों का वेतन, लेखन सामग्री का व्यय इत्यादि। इन खर्चों को ऋणदाता किससे वसूल करेगा? स्पष्टतया ऋणी से वसूल करेगा। अभिप्राय यह है कि ब्याज प्रबन्धकीय खर्चों के लिए भुगतान है।

18.4 ब्याज दर को प्रभावित करने वाले घटक (Factors affecting Interest Rates)

भिन्न–भिन्न व्यक्तियों उद्योगों, समयों तथा स्थानों के आधार पर ब्याज दर में भी भिन्नता पाई जाती है। आशय यह है कि व्यक्ति विशेष, उद्योग विशेष, स्थान विशेष एंव समय विशेष पर अलग–अलग ब्याज दरें ली जाती है।। ब्याज दरों में भिन्नता के मुख्य कारण निम्नांकित हैं–

1. <u>समयावधि में एकरूपता नहीं ;Non unformity in time lag)</u> ऋण एक विशेष समयवधि हेतु लिये या दिये जाते है। समयावधि को अल्पकाल, मध्यकाल, तथा दीर्घकाल में विभक्त किया जा सकता है। यदि कोई ऋण दीर्घावधि हेतु दिया या लिया जाता है तो ब्याज दर अधिक होगी परंतु यदि ऋण मध्यमअवधि या अल्पावधि हेतु लिये या दिये जाते हैं तो ब्याज दर कम होगी। इसका मुख्य कारण स्फीतिक परिस्थितियां होती हैं। अल्पावधि के ऋणों मे जोखिम की मात्रा कम होने के कारण ब्याज दर कम एवं दीर्घावधि में ऋणों के डूबने की सम्भावना अल्पावधि जोखिम अधिक संलग्न होने के कारण ब्याज दर अधिक होती है क्योंकि दीर्घावधि में ऋणों के डूबने की सम्भावना अल्पावधि की तुलना में अधिक होती है। स्फीति–काल में मुद्रा की क्रय शक्ति में कमी आ जाना भी ब्याज के अधिक या कम होने का कारण बनता है।
2. <u>उधार लिए गये धन के उपयोग में अंतर (Difference in use of fund borrowed)</u> यदि उधार लिए गये धन का उपयोग अनुत्पादक या दिखावटी कार्यों हेतु किया जाता है तो इन उधार दिये गये धन के वापस न मिलने की संभावना अधिक होती है। अतः ब्याज दर अधिक होती है, जैसे शादी समारोह में व्यय करने हेतु ऋण, मकान बनाने हेतु लिए गये ऋण या किसी रीति–रिवाज को पूरा करने हेतु लिये गये ऋण, परंतु यदि ऋण उत्पादक कार्यों हेतु लिया जाता है तो इनसे आय की प्रबल संभावना होती है। उत्पादक कार्यों हेतु प्रदान किये जाने वाले ऋण के डूबने की संभावना कम होती है अतः इन पर ब्याज दर भी कम होती है।
3. <u>जोखिम में भिन्नता (Difference in risks)</u>
व्यवसायों की प्रकृति में भिन्नता के परिणामस्वरूप जोखिम या अनिश्चिता में भी भिन्नता होती है। यदि ऋण स्थायी प्रकार के व्यवसायों हेतु प्रदान किया जाता है, तो ब्याज दर कम होगा, परंतु यदि अस्थायी व्यापार हेतु ऋण दिया जाता है तो ब्याज दर अधिक होगा जैसे–' सट्टा व्यापार या अंशपूंजी बाजार हेतु दिया जाने वाला ऋण।
4. <u>उधार दिये जाने वाले धन की मात्रा (Volume of amount of loan)</u>
उधार दिये जाने वाले धन की मात्रा भी ब्याज दर को प्रभावित करती है। यदि यह मात्रा अधिक होगी तो ब्याज दर कम परंतु यदि यह मात्रा कम होती है तो ब्याज दर अधिक होगा। यह एक ऐसी परिस्थिति है जो हमें यह समझने के लिए मजबूर कर देती है कि ऐसा क्यों है जब ऋण अधिक तो दर कम, परंतु यदि ऋणराशि कम तो ब्याज दर ज्यादा? इसका उत्तर यह है कि एक ऐसा व्यक्ति जिसे बहुत बडी धनराशि उधार के रूप में दी जा रही है; उसकी साख मजबूत होती है, धन डूबने की आंशका कम होती है। अतः उसे कम ब्याज दर पर ऋण दिया जाता है। इसी के विपरीत जिस व्यक्ति को ऋण की मात्रा कम दी जाती है उसकी

साख सुदृढ़ नहीं होती है धन डूबने की आशंका अधिक होती है। अतः उसे अधिक ब्याज दर पर ऋण दिया जाता है।

5 व्यापार चक्र **(Trade Cycle)** व्यापार में तेजी की अवस्था में ब्याज दरें कम होती है जबकि मंदी की अवस्था में ब्याज दर अधिक रहती है।

6. आर्थिक विकास (Economic Growth) जिन राष्ट्रों में प्रतिव्यक्ति आय अधिक होती है एवं बचत की मात्रा अधिक हाती है वहां ब्याज की दर कम होती है। बचत की मात्रा अधिक होने के कारण पूंजी की आपूर्ति भी अधिक होती है। इसी के बिल्कुल प्रतिकूल उन राष्ट्रों में जो कि अविकसित या विकासशील है वहां उधार कोष की मांग, पूर्ति की अपेक्षा अधिक होती है तो ब्याज दर भी अपेक्षाकृत अधिक होती है।

7. राजनीतिक अवस्था (Political Situation) यदि किसी देश में राजनीतिक अवस्था स्थिर होती है वहां ब्याज दर कम एवं जिन देशों में राजनीतिक उठापटक या अस्थिरता होती है वहां ब्याज दर अधिक होती है।

18.5 ब्याज दर ढांचा (Structure of Interest Rates)

ब्याज दर ढांचा; अल्पावधि एवं दीर्घावधि प्रतिभूतियों पर ब्याज की बाजार दरों के मध्य सम्बन्ध को वर्णित करता है। निश्चित आय प्रतिभूतियों की ब्याज दरों में अन्तर प्रतिभूतियों के परिपक्वता अवधि के कारण होता है। ब्याज दर ढांचा समान प्रकार की प्रतिभूतियों की आय (yields) एवं परिपक्वताओं के मध्य सम्बन्धों की व्याख्या करता है। यदि दो प्रतिभूतियाँ हर प्रकार से एक समान हैं तो भी यह संभावना होती है कि वे विपणि (Market) में विभिन्न ब्याज दरों पर बिकें। उनकी कीमतों में वृद्धि की प्रकृति एक समान होगी। कीमतें एक ही दिशा में परिवर्तित होगी। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि प्रतिभूतियाँ (Securities) की कीमतों में वृद्धि होती है तो दीर्घावधि प्रतिभूतियाँ की कीमतों में भी वृद्धि होगी। बाजर में निवेशक अपने पोर्टफोलियो में सामान्य तौर पर दोनों ही प्रकार की प्रतिभूतियों को सम्मिलित करते हैं जिससे आगम (Receipts) को समायोजित किया जा सके। एक की प्राप्ति की कमी को दूसरी से पूरित किया जा सके। सामान्य तौर पर दीर्घावधि प्रतिभूतियों की कीमतों में उतार–चढ़ाव अधिक होता है तुलना में अल्पावधि प्रतिभूतियों के। ब्याज दरों की संरचना को ब्याज दरों की ऋंखला भी कहते हैं।

इस सम्बन्ध को (प्राप्ति तथा परिपक्वता की अवधि के बीच) को चित्र स0 1 में दर्शित किया गया है।

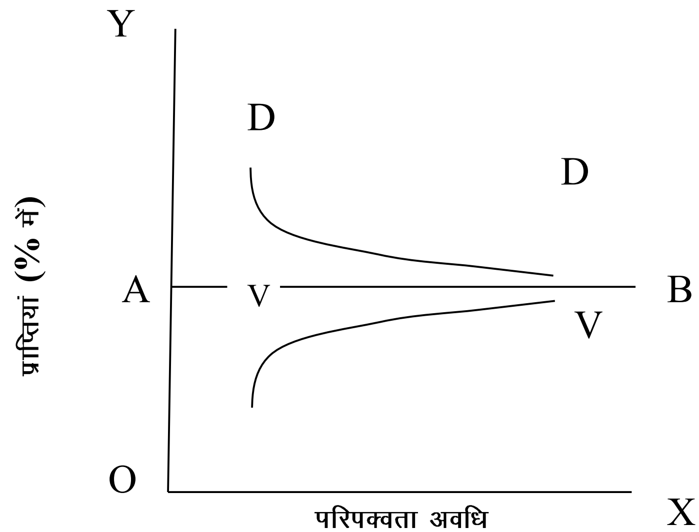

चित्र संख्या–1

उपर्युक्त चित्र संख्या 1 में तीन प्राप्ति वक्रों को दर्शित किया गया है। AB वक्र, DD वक्र तथा VV वक्र। जब अल्पावधि ब्याज दरें दीर्घावधि ब्याज दरों से उपर होती है तब प्राप्ति वक्र नीचे दाईं ओर झुकता है जैसा कि चित्र में DD वक्र है। जब अल्पावधि ब्याज दरें, दीर्घावधि ब्याज दरों से नीची होती हैं तब प्राप्ति वक्र का झुकाव दाईं ओर उपर की तरफ होता है जैसा कि चित्र में VV वक्र है। जब अल्पावधि एवं दीर्घावधि प्राप्तियां एक समान होती है तब प्राप्ति वक्र सीधी रेखा में या यूं कहें कि चपटा होता है जैसा कि चित्र में AB वक्र है।

18.6 ब्याज दर ढांचे को निर्धारित करने वाले तत्व/घटक (Factors determining the structure of interest rates)

ब्याज दर ढांचे को निर्धारित करने वाले घटक वे ही हैं जो ब्याज दर को प्रभावित करते हैं फिर भी संक्षेप में ये निम्नांकित हैं–

(i) पूर्ति एवं मांग की अवदशायें **(Supply demand conditions)** मांग व पूर्ति की दशायें भी ब्याज दर को प्रभावित करती है। जब अल्पावधि प्रतिभूतियों की पूर्ति कम होती है, इसके कारण अल्पावधि प्रतिभूतियों की कीमत बढ़ जाती है एवं जब अल्पकालीन प्रतिभूतियों की पूर्ति बढ़ती है तो उनकी कीमतें गिर जाती हैं। इसी प्रकार दीर्घावधि ब्याज दर उपर उठती है परिणामस्वरूप प्रतिफल वक्र दायें उपर की ओर झुकता हुआ होता है। इसी के व्युत्क्रम मांग व पूर्ति की दशाओं में अल्पावधि ब्याज दरें ऊंची एवं दीर्घकालीन ब्याज दरें नीची होंगी एवं प्रतिफल वक्र दाईं ओर नीचे की तरफ झुकता हुआ होगा।

(ii) प्रत्याशा एवं अनिश्चिततायें (Expectations and Uncertainities) ब्याज एवं प्राप्ति वक्र को प्रभावित करने वाला एक अन्य महत्वपूर्ण कारक प्रत्याशा एवं अनिश्चिततायें हैं। यदि विनियोगकर्ता; राजनीतिक अस्थिरता, युद्ध, सामाजिक विघटन स्फीतिकारी

अवदशायें इत्यादि की प्रत्याशा करते हैं तो ऐसी दशा में वे प्रतिफल दर नीची होती हुये भी दीर्घकालीन प्रतिभूतियों को ही कय करना पसन्द करेंगें। दीर्घकालीन ब्याज दर में वृद्धि की प्रत्याशा के अनुसार अल्पकालीन ब्याज दर किसी समयावधि के लिये दीर्घकालीन ब्याज दर से काफी नीचे रहती है। इसका वक दाई ओर उठते प्राप्ति वक का सृजन करता है ।

(iii) जोखिम अधिमान (Risk Preferences) जैसा कि अल्पकालीन प्रतिभूतियों की तुलना में दीर्घकालीन प्रतिभूतियों पर भुगतान न करने की प्रबल सम्भावनायें होती है इसलिये ऋणदाता अल्पकाल के लिये ऋण देना पसन्द करेंगे, यदि दोनों ही प्रतिभूतियां एक समान हैं। ऋणदाताओं का अल्पकालीन प्रतिभूतियों के प्रति यह पसन्द प्रतिभूतियों की कीमतों को बढ़ा देता है एवं उनकी प्राप्तियों को नीचे ला देता है। ऋणी भी अल्पकालीन ऋणों को अधिमान देते हैं इसका मुख्य कारण यह है कि ऋणी को ब्याज दरों की वृद्धि एवं बार–बार ऋणों के नवीनीकरण की चिन्ता नहीं रहती है। इसी कारण ऋणी अल्पकालिक प्रतिभूतियों के लिये अधिक कीमत देने को तैयार रहते हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि प्रतिभूतियों की कीमत व उन पर मिलने वाले प्रतिफल में विपरीत सम्बन्ध होता है। इस तरह से ऋणदाता व ऋणी दोनों का ही आकर्षण अल्पकालीन प्रतिभूतियों की तरफ होता है परिणामतः प्राप्ति वक का झुकाव ऊपर की ओर होता है।

(iv) विपणन सहायता (Marketability) प्रत्येक प्रकार के वित्तीय परिसम्पत्तियों की विपणन साध्यता भिन्न–भिन्न होती है। कुछ वित्तीय परिसम्पत्तियों की विपणन साध्यता अधिक तो कुछ की कम होती है। अन्य बातों के समान रहने पर जिन वित्तीय परिसम्पत्तियों की तरलता अधिक होगी उनमें ब्याज की दर अपेक्षाकृत कम होगी।

18.7 ब्याज दर ढांचा सिद्धान्त (Theories of Interest Rate Structure)

जिस तरह किसी भी वस्तु या सेवा की कीमत; बाजार में मांग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है ठीक उसी प्रकार वित्तीय बाजार में ब्याज की दर का निर्धारण भी मुद्रा की मांग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा किया जाता है जैसा कि हम जानते हैं 'ब्याज' मुद्रा के प्रयोग की कीमत है। ऋणी एक निश्चित समय के लिये मुद्रा के उपयोग के बदले में ऋणदाता को ब्याज देता है। अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रतिभूतियों की ब्याज की दरों की संरचना में अन्तर स्पष्ट करने हेतु विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा ब्याज दर निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है ब्याज दर निर्धारण के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त निम्नलिखित है–

1. प्रत्याशा सिद्धान्त (Expectations Theory)
2. तरलता या जोखम सिद्धान्त (The Liquidity or Risk Theory)

3. विभक्त बाजार सिद्धान्त (The Segmented Market Theory)

18.7.1 प्रत्याशा सिद्धान्त (Expectations Theory)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन इरविंग फिशर (E.Fisher) द्वारा किया गया एवं इसे जे0आर0हिक्स (J.R.Hicks) द्वारा अपनी पुस्तक मूल्य एवं पूंजी (Value and Capital) में पूरा किया गया। इस सिद्धान्त के अनुसार ''भविष्य में ब्याज की दर की दिशा की प्रत्याशा ब्याज दर का मुख्य निर्धारक होता है। प्रत्याशा सिद्धान्त भविष्य ब्याज दर को वर्तमान ब्याज दरों के ढांचे का मुख्य एवं एकमात्र निर्धारक मानता है। यह सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि समय के किसी निश्चित बिन्दु पर दीर्घकालीन ब्याज दर प्रत्याशित अल्पावधि ब्याज दर की औसत को व्यक्त करता है।

उदाहरणार्थ–

माना 3 वर्ष के उपरान्त परिपक्व होने वाली दीर्घकालीन प्रतिभूति प्रथम वर्ष में 4% की अल्पावधि ब्याज दर पर बेची जाती है एवं द्वितीय तथा तृतीय वर्ष में प्रत्याशित अल्पावधि ब्याज दरें कमशः 5% एवं 6% हैं। इन प्रतिभूतियों पर दीर्घकालीन ब्याज दर तीन वर्ष की अल्पकालीन ब्याज दर का औसत अर्थात् 5% (4%+5%+6% = 15% ÷3) होगा।

यदि अल्पकालीन प्रतिभूति पर पहले वर्ष की ब्याज दर 1ः गिरने की सम्भावना/प्रत्याशा है, तो तीन वर्ष की प्रतिभूति पर दीर्घकालीन प्रतिफल 4.66% (3%+5%+6%)=14%÷3) होगी। इसी के विपरीत यदि तीन वर्ष की प्रतिभूति पर 1 प्रतिशत ब्याज दर की प्रत्याशा है तो दीर्घकालीन प्रतिफल 5.33%(4%+5%+7%=16%÷(3) होगी। इस प्रकार दीर्घकालीन ब्याज दर प्रत्याशित अल्पकालीन ब्याज दर द्वारा निर्धारित होती है।

प्रत्याशा सिद्धान्त की अवधारणा यह है कि विभिन्न परिपक्वताओं की प्रतिभूतियों पर होने वाली प्राप्तियों में अन्तर का कारण यह है कि बाजार में विभिन्न प्रतिभूतियों पर ब्याज दरें समान अवधि में एक समान होती है। यदि ऐसा नही होगा तो एक निवेशक परिवक्वता की एक प्रतिभूति को बेचकर दूसरी ऐसी प्रतिभूति कय कर लेंगे जिन पर अधिक प्राप्ति मिल रहा हो यही अन्रपणन प्रकिया (Arbitrage procedure) है (एक परिपक्व प्रतिभूति खरीदना तथा दूसरी परिपक्व प्रतिभूति को बेचना) जो विभिन्न परिपक्वताओं की प्रत्याशित प्राप्तियों को समान रखती हैं।

अभिप्राय यह है कि ''दीर्घकालीन ब्याज दर प्रत्याशित अल्पकालीन ब्याज दर द्वारा निर्धारित होती है।

<u>दीर्घकालीन ब्याज दर एवं प्रत्याशित अल्पकालीन ब्याज दरों के निहितार्थ (Implications of Long term Interest rates and expected short term Interest rates):</u>

- जब अल्पकालीन या अल्पावधि ब्याज दरों के गिरने की प्रत्याशा होती है तो वर्तमान अल्पकालीन दरें; दीर्घकालीन दरों के उपर होंगी एवं प्रतिफल/प्राप्ति वक ऋणात्मक रूप से ढालू अर्थात् गिरता हुआ होगा।

- जब अल्पकालीन दरों के बढ़ने की प्रत्याशा होती है तो वर्तमान अल्पकालीन दरे दीर्घकालीन दरों के नीचे होंगी एवं प्रतिफल/प्राप्ति वक्र धनात्मक रूप से ढालू होगा।
- जब अल्पावधि दर सामान्य पर है तो तथा उसमें किसी परिवर्तन की प्रत्याशा नहीं होती है तो सभी परिपक्वताओं की दरें लगभग सीधी रेखा में क्षैतिज होगी।

रेखा चित्र द्वारा स्पष्टीकरणः

अल्पावधि एवं दीर्घावधि ब्याज दरों के मध्य इन सम्बन्धों को चित्र सं0–2 में स्पष्ट दर्शित किया गया है। इस चित्र में OX अक्ष पर परिपक्वता अवधि एवं OY अक्ष पर प्रतिफल या प्राप्तियों को दर्शित किया गया है–

निहितार्थ–1 में जब मौजूदा अल्पकालीन दरें दीर्घकालीन दरों से उपर हैं एवं इनके गिरने की प्रत्याशा हो तो प्राप्ति वक्र 'D;D' ऋणात्मक रूप से दाईं ओर नीचे ढालू होता है।

निहितार्थ–2 में जब मौजूदा अल्पकालीन दरें, दीर्घकालीन दरों से नीचे हैं तथा इनके बढ़ने की आशा है तो प्राप्ति वक्र या प्रतिफल वक्र 'V;V' धनात्मक रूप से दाईं ओर ऊपर ढालू होता है तथा

निहितार्थ–3 में जब वर्तमान अल्पकालीन दरें, दीर्घकालीन दरों के समान होती है तथा अल्पकालीन दरों के बढ़ने या घटने की प्रत्याशा नहीं होती है तो प्रतिफल/ प्राप्ति वक्र 'AB' एक सीधी क्षैतिज रेखा होता है

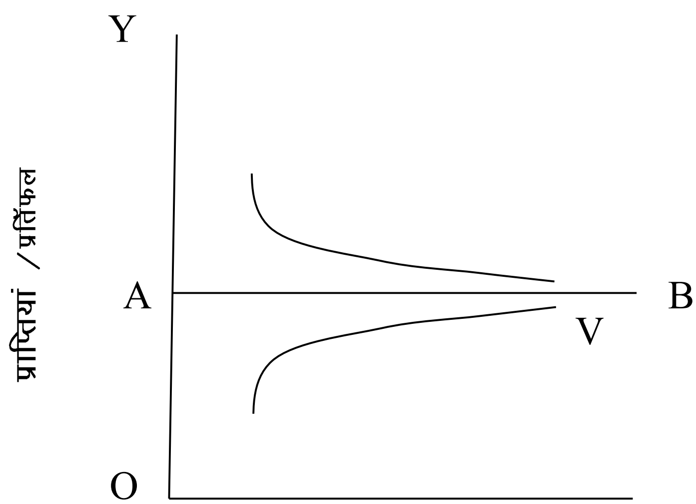

चित्र संख्या–1

परिपक्वता अवधि

चित्र संख्या–2

<u>प्रत्याशा सिद्धान्त की महत्वपूर्ण या नीतिपरक बातें– **(Essential and Policy oriented statements of the Expectations Theory)**</u>

1. विभिन्न प्रकार की दीर्घावधि एक अल्पावधि प्रतिभूतियाँ पूर्ण स्थानापन्न होते हैं। अतः केन्द्रीय बैंक ब्याज दरों के अवधि ढांचें

को तब तक प्रभावित नहीं कर सकता जब तक वह ऋणदाताओं एवं उनकी प्रत्याशाओं को प्रभावित नहीं करता।

2. जब सरकार अल्पावधि ऋण की समान धनराशि के साथ दीर्घावधि ऋण की दी हुई राशि को परिवर्तित करना चाहती है। तो ऐसी नीति का ब्याज दरों के ढांचे पर कोई प्रभाव नहीं होगा। इसका प्रमुख कारण यह है कि दीर्घावधि एवं अल्पावधि दोनों, ऋण निवेशकों के पोर्टफोलियो में पूर्ण स्थानापन्न समझे जाते हैं।
3. निवेशकर्ताओं के पोर्टफोलियो में अल्पावधि एवं दीर्घावधि प्रतिभूतियां दोनों एक दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न हैं। जब दीर्घावधि प्रतिभूतियों की पूर्ति बढ़ती है तथा अल्पावधि प्रतिभूतियों की पूर्ति घटती है तो इनकी प्राप्तियों/प्रतिफलों में कोई अन्तर नहीं होता।

   जितने समय तक प्रत्याशित भविष्य की अल्पकालीन दरे परिवर्तित नहीं होती; प्राप्तियों या प्रतिफलों में परिवर्तन न होने पर दीर्घावधि प्रतिभूतियों को अल्पावधि प्रतिभूतियों के साथ बदला जायेगा।

<u>प्रत्याशा सिद्धान्त की मान्यतायें **(Assumptions of the Expectations Theory)**</u>

इस सिद्धान्त की मान्यतायें निम्नांकित हैं—

1. वित्तीय बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान होती है।
2. निवेशकर्ता भविष्य की अल्पावधि ब्याज दरों के बारे में एक समान प्रत्याशा रखते हैं तथा निवेशकर्ताओं को इन प्रत्याशाओं के बारे में पूर्ण विश्वास होता है।
3. संव्यवहार अर्थात् लेने—देन में कोई लागत नहीं आती।
4. निवेशक का उद्देश्य प्रत्याशित प्राप्तियों को अधिकतम करना होता है। इस हेतु निवेशक; निधियों को स्वतन्त्र रूप से अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रतिभूतियों में हस्तानान्तरित करने हेतु तैयार रहते हैं।
5. जोखिम एवं तरलता के कारण होने वाले किसी भी अन्तर के लिये अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ब्याज दरों को समायोजित किया जाता है।
6. सभी निवेशक निश्चिततपूर्वक भविष्य की दरों के संव्यवहार के बारे में समान प्रत्याशायें रखते हैं।
7. निवेशकों के निवेश पोर्टफोलियो में अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रतिभूतियां पूर्ण स्थानापन्न होती हैं।

प्रत्याशा या अपेक्षा सिद्धान्त की आलोचनायें **(Criticisms of Expectation Theory)** इस सिद्धान्त की आलोचना निम्नलिखित आधारों पर की जाती है—

1. इस सिद्धान्त में यह माना गया है कि निवेशक अल्पकालीन ब्याज दरों के सम्बन्ध में दीर्घकालीन प्रत्याशायें कर सकते हैं परन्तु इस बात में सन्देह है कि ऐसी भविष्यवाणियां सही ही हो।

2. यह सिद्धान्त अव्यावहारिक है तथा इसकी मान्यतायें भी अवास्तविक है। इस सिद्धान्त द्वारा अनौपचारिक व ग्रामीण बाजारों में ब्याज संरचना को स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इन बाजारों में प्रतिभूतियों का विपणन उसी तरह से नहीं होता जैसा कि इस सिद्धान्त में मान लिया गया है। इसी तरह से यह सिद्धान्त बैंक जमाओं की ब्याज दर हेतु भी अनुपयुक्त है क्योंकि यहां पर किसी प्रकार की प्रतिभूतियों का कय–विकय नहीं होता है।
3. इस सिद्धान्त में यह मान लिया गया है कि देश का केन्द्रीय बैंक खुले बाजार की कियाओं द्वारा ब्याज दर को प्रभावित नहीं कर सकता जबकि व्यवहार में केन्द्रीय बैंक खुले बाजार की क्रियाओं द्वारा बैंक दर को प्रभावित करता है। यह मान्यता अव्यावहारिक है।
4. यह सिद्धान्त इस बात पर प्रकाश नहीं डालता कि प्रत्याशाओं के आधार पर प्रतिफल वक्र किस प्रकार निर्मित किया जाता है बल्कि इस बात पर प्रकाश डालता है कि इस प्रतिफल वक्र से किस प्रकार हम प्रत्याशाओं की व्युत्पत्ति कर सकते हैं।
5. यह सिद्धान्त 'जोखिम तत्व' की अवहेलना करता है क्योंकि इस सिद्धान्त में यह मान लिया गया है कि विनियोजक केवल और केवल अपनी प्राप्तियों/प्रतिफलों को अधिकतम करना चाहता है जो कि त्रुटिपुर्ण है तथा हमेशा ऐसा सम्भव नहीं होता है।
6. इस सिद्धान्त में संव्यवहार लागतों को शून्य मान लिया गया है कि जबकि जब भी प्रतिभूतियों का कय–विकय किया जाता है उन पर कुछ न कुछ व्यय अवश्य करना पड़ता है।
7. ऋणदाताओं तथा ऋण प्राप्तकर्ताओं की प्रत्याशायें समान होती है ऐसा इस सिद्धान्त में मान लिया गया है जो कि गलत है। दोनों की प्रत्याशायें हमेशा एक समान न होकर भिन्न–भिन्न होती हैं।
8. यह सिद्धान्त यह भी व्याख्या करने में विफल रहा है कि भविष्य की अल्पकालीन ब्याज दरों से सम्बन्धित प्रत्याशायें किस प्रकार बनायी जाती हैं।

18.7.2 विभक्त बाजार सिद्धान्त (The Segmented Market Theory)

विभक्त बाजार सिद्धान्त को संस्थागत, पेशबन्दी, विखण्डन इत्यादि संज्ञाओं से विभूषित किया जाता है।

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो0 कलबर्टसन द्वारा किया गया इस सिद्धान्त को 'जोखिम बचाव सिद्धान्त (Risk Avoidance Theory) भी कहा जाता है इस सिद्धान्त के अनुसार निवेशक जोखिम से बचते हैं अन्यथा अपने जोखिमों को न्यूनतम करने वाले होते हैं।

जोखिमों को कम से कम करने के लिये निवेशक या विनियोगकर्ता अपने दायित्वों/देयताओं (Liabilities) से अपनी परिसम्पत्तियों (Assets) के परिपक्वता की तुलना करते हैं (The way to minimize risk is to match maturities of Assets and liabilities)। यदि किसी निवेशक/विनियोजक की परिसम्पत्तियों की परिपक्वता उसकी देयताओं की परिपक्वता (Maturity)

से अधिक लम्बी अवधि वाली होती है तो उसे पूंजी हानि (Capital Loss) होती है। एवं वह अपनी परिसम्पत्तियों (Assets) के शोधन (Redemption) के लिये अर्थात् देय तिथि से पूर्व विक्रय के लिये बाध्य हो जाता है। इसी तरह इसी के विपरीत यदि निवेशक की परिसम्पत्तियों की परिपक्वता अवधि, देयताओं की परिवक्वता अवधि से कम है तो उसे आय–हानि (Income Loss) का जोखिम होता है। इन दोनों ही प्रकार के जोखिमों से बचाव के लिये विनिवेशक अपनी परिसम्पत्तियों एवं देयताओं की परिपक्वताओं की तुलना करते हैं एवं विनियोजन से सम्बन्धित जोखिमों को कम से कम करके अपने प्राप्ति/प्रतिफल को अधिकाधिक करने का प्रयास करते हैं।

1. विभक्त बाजार सिद्धान्त की विशेषतायें (Features of the Segmented Market Theory)

इस सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषतायें हैं:

1. अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ब्याज दरों का संव्यवहार मुद्रा बाजार एवं बाण्ड बाजार के मध्य सम्बन्ध पर निर्भर करता है। इन बाजारों में ब्याज दरें; मांग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। यह सिद्धान्त अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ब्याज दरों के बीच अप्रतिम सम्बन्ध पर विचार नहीं करता है। इस तरह से विभक्त बाजार सिद्धान्त में विभिन्न परिपक्वताओं वाली प्रतिभूतियों पर ब्याज दरें प्रत्येक परिपक्वता में मांग एवं पूर्ति की भिन्न–भिन्न दशाओं द्वारा निर्धारित होती हैं।
2. इस सिद्धान्त की दूसरी विशेषता है कि यह सिद्धान्त अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन दोनों ब्याज दरों को एक विशेष प्रतिभूति की मांग एवं पूर्ति के रूप में निर्धारित करता है परन्तु यह सिद्धान्त प्रत्याशित अल्पकालीन ब्याज दरों की औसत के आधार पर ब्याज दरों के ढांचे की व्याख्या नहीं करता।
3. इस सिद्धान्त की तीसरी विशेषता यह है कि अल्पकालीन प्रतिभूतियों में पाये जाने वाले जोखिम दीर्घकालीन प्रतिभूतियों में पाये जाने वाले जोखिम से कम होते हैं। यदि कोई निवेशक परिपक्वता से पहले अपनी प्रतिभूतियों को बेच देता है एवं ब्याज दर प्रत्याशा से अधिक होती है तो दीर्घकालीन प्रतिभूति की कीमत अल्पकालीन प्रतिभूति की अपेक्षा कम होगी। इस तरह कहा जा सकता है कि अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रतिभूतियां एक–दूसरे की पूर्णस्थानापन्न नहीं होती हैं।

   विखण्डित या विभक्त बाजार सिद्धान्त इस अवधारणा पर आधारित है कि अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ब्याज दरें अनेक पृथक एवं विभक्त बाजारों में निर्धारित की जाती हैं। कुछ निवेशकर्ता ऐसे होते हैं जो अल्पकालीन प्रतिभूतियों मे निवेश करना पसन्द करते हैं जबकि कुछ निवेशक ऐसे होते हैं जो दीर्घकालीन प्रतिभूतियों में निवेश करना पसन्द करते हैं। इस तरह से बाजार में प्रतिभूतियों के क्रेताओं एवं विक्रताओं के लिये विभिन्न

परिपक्वताओं वाली प्रतिभूतियां अपूर्ण स्थानापन्न होती हैं न कि पूर्णस्थानापन्न। अतः प्राप्ति वक्र विभिन्न परिपक्वताओं की प्रतिभूतियों के लिये अनेक मांग एवं पूर्ति वक्रों का परिणाम होता है। प्रतिभूतियों की मांग दी होने पर, यदि अल्पकालीन प्रतिभूतियों की पूर्ति दीर्घकालीन प्रतिभूतियों से कम होती है तो अल्पकालीन ब्याज पर दीर्घकालीन ब्याज दर से अधिक होगी। ऐसी स्थिति में प्राप्ति या प्रतिफल वक्र नीचे की ओर दायें ढालू होगा। इसे निम्नांकित रेखाचित्र श्ब्श में दर्शित किया गया है।

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण

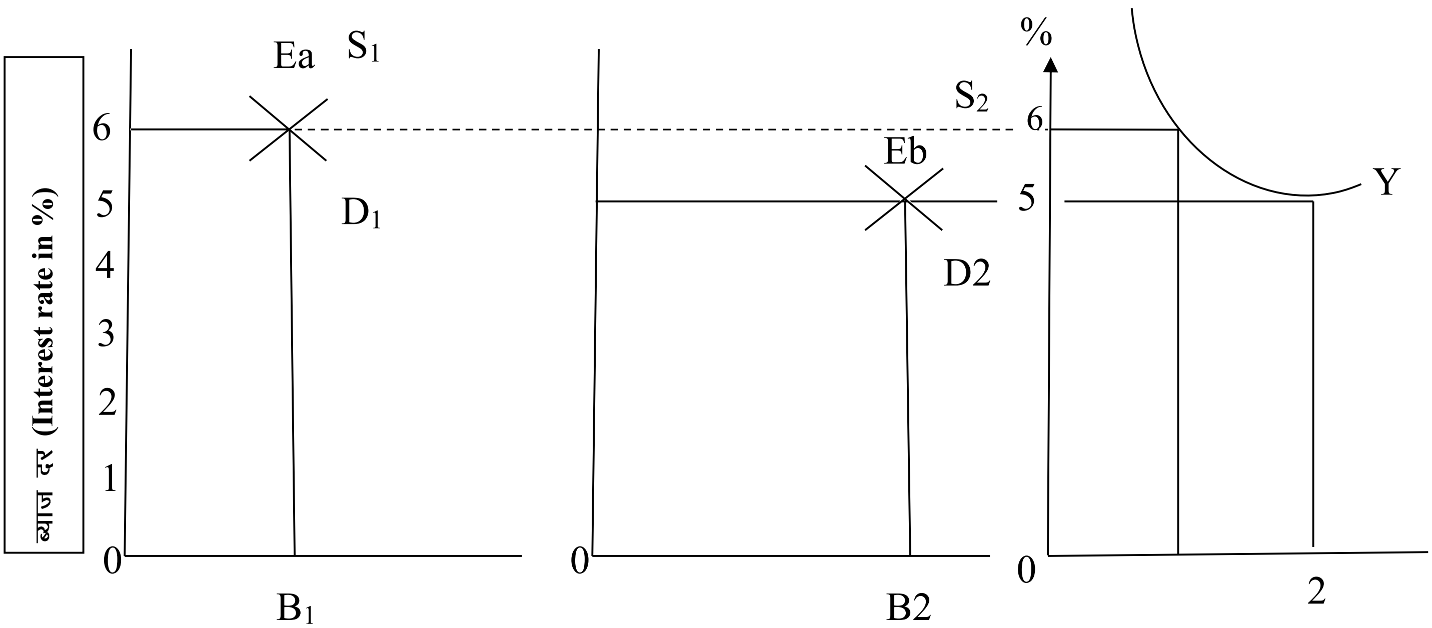

(A) अल्पावधि ऋण (Short term debt.) (B) दीर्घावधि ऋण (Long term debt.) (C) परिपक्वता अवधि (वर्षों में (Term to maturity (in years)

उपरोक्त रेखाचित्र ‘A’ में D_1 में S_1 क्रमशः अल्पकालीन ऋणों की मांग एवं पूर्ति वक्र है जो कि E_1 बिन्दु पर साम्य में हैं इस प्रकार के अल्पकालीन प्रतिभूतियों पर 6 प्रतिशत साम्य ब्याज उपरोक्त रेखाचित्र (A) में D_1 Ok S_1 कमशः अल्पकालीन ऋणों के मांग एवं पूर्ति वक है जोकि E_a बिन्दु पर साम्य में है। इस प्रकार वे अल्पकालीन प्रतिभूतियों पर 6ः साम्य ब्याज दर निर्धारित करते हैं। रेखचित्र (B) में D2 एवं S2 वक कमशः दीर्घकालीन ऋणों की मांग एवं पूर्ति वक हैं जो दीर्घकालीन प्रतिभूतियों पर 5 प्रतिशत साम्य ब्याज दर E_b बिन्दु पर निर्धारित करते हैं ये ब्याज दरें चित्र ‘C’ में नीचे दाई तरफ ढालू प्राप्ति वक ’Y’ बनाते हैं। इसके प्रतिकूल प्रतिभूतियों की मांग दी होने पर अल्पकालीन प्रतिभूतियों की पूर्ति दीर्घकालीन प्रतिभूतियों की तुलना में अधिक होती है

तो दीर्घकालीन ब्याज दरों से अल्पकालीन ब्याज दरें कम होगी। इस दशा में प्राप्ति वक्र दाये ऊपर की ओर ढालू होगा जैसा कि निम्न चित्र में दर्शित किया गया है–

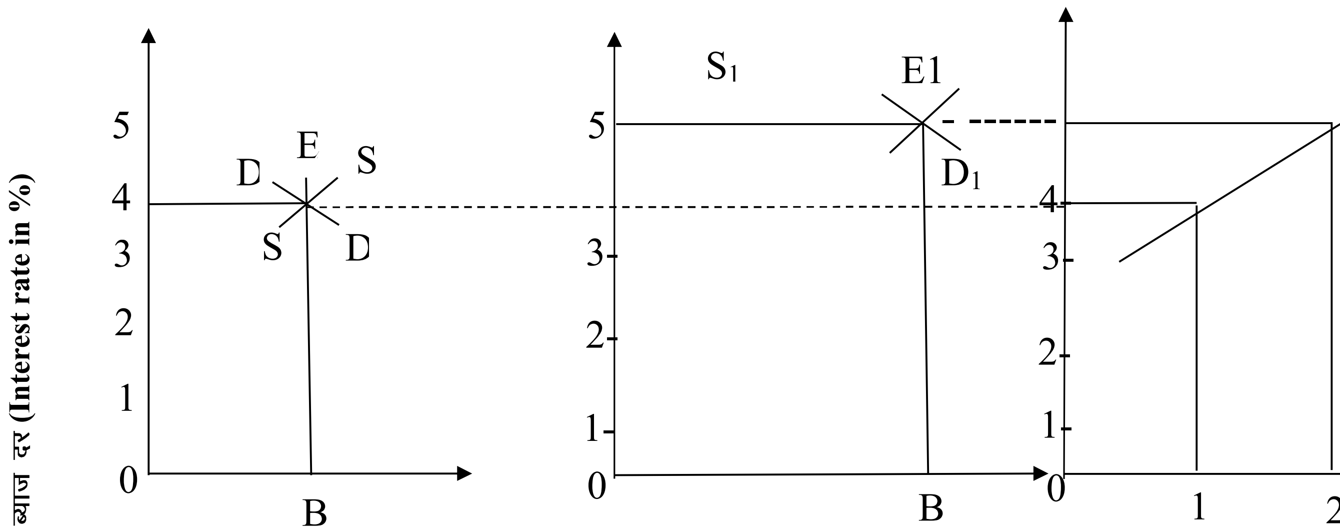

अल्पकालीन ऋण (Short term debt) (A)

दीर्घकालीन ऋण (Long term debt) (B)

परिपक्वता अवधि वर्षों में (Term of maturity in years) (C)

उपरोक्त रेखाचित्र (A) में D एवं S वक्र अल्पकालीन प्रतिभूतियों पर 4 प्रतिशत साम्य ब्याज दर E निर्धारित करते हैं एवं चित्र (B) में D_1 S_1 वक्र दीर्घकालीन प्रतिभूतियों पर 5 प्रतिशत साम्य ब्याज दर E_1 निर्धारित करते हैं। ये ब्याज दरें चित्र (C) में ऊपर दाईं ओर ढालू प्राप्ति वक्र Y प्रदान करती है।

इस प्रकार विभक्त बाजार सिद्धान्त के अनुसार भिन्न–भिन्न परिपक्वताओं वाली प्रतिभूतियों पर ब्याज दरें प्रत्येक परिपक्वता में मांग एवं पूर्ति की अलग–अलग दशाओं द्वारा निर्धारित होती है।

विभक्त बाजार सिद्धान्त की मान्यतायें (Assumptions of the segmented Market Theory)

यह सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

1. अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रतिभूतियां एक–दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न होती हौ।
2. निवेशक जोखिम से बचाव करते हैं।
3. भावी ब्याज दरों के व्यवहार में निश्चितता नहीं होती है।
4. परिसम्पत्ति बाजार विभिन्न परिपक्वताओं वाली परिसम्पत्तियों के लिये पृथक–पृथक बाजारों में बंटी हुई होती है।
5. प्रत्येक बाजार में एक प्रकार की परिसम्पत्ति के लिये ब्याज दरें उसकी मांग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित होती हैं।

2. विभक्त बाजार सिद्धान्त के निहितार्थ या नीति निर्देशक तत्व
Implications of the Segmented Market Theory or Directive principles of Segmented Market Theory

यह सिद्धान्त नीति से सम्बन्धित दो मुख्य बातों पर प्रकाश डालता है–

- यदि सरकार दीर्घकालीन ऋण की दी हुई धनराशि को अल्पकालिक ऋण से प्रतिस्थापित करना चाहती है तो यह ब्याज दर के ढांचे को घुमाने मे सफल होगी।
- देश का केन्द्रीय बैंक प्रतिभूतियों की परिपक्वता पर प्राप्तियों अथवा ब्याज दरों के ढांचे को दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन प्रतिभूतियों के सापेक्ष पूर्तियों की आज्ञा प्रदान कर प्रभावित कर सकता है लेकिन केन्द्रीय बैंक केवल अल्पकालीन प्रतिभूतियों की पूर्ति को बदल करके दीर्घकालीन ब्याज दर को प्रभावित नहीं कर सकता है।

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण

जैसा कि निम्न चित्र (A) एवं (B) में दर्शित किया गया है इस चित्र में D_1 भाग वक्र अल्पकालीन ऋणों एवं D_2 मांग वक्र दीर्घकालीन ऋणों को दर्शित करते हैं जोकि प्राप्ति दरों से सम्बन्धित है कम लोचदार होते हैं

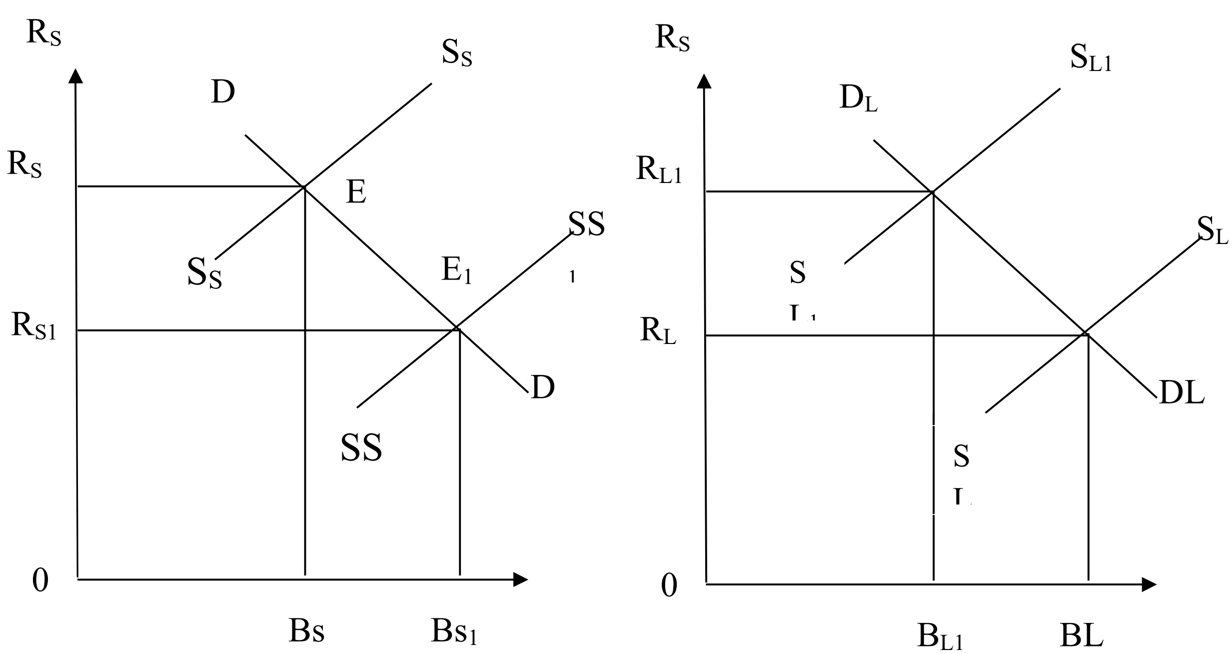

(A) अल्पावधि ऋण Short term debt

(B) दीर्घावधि ऋण Long term debt

इसका कारण यह है कि दोनों तरह के ऋण पूर्ण स्थानापन्न नहीं हैं यदि यह मान लिया जाय कि सरकार दीर्घकालीन ऋण $B_L - BL_1$भाग को समाप्त करना चाहती है तथा इसे अल्पकालीन ऋण $BS_1 - BS$ से स्थानापन्न करती है तो इससे दरों के बीच अन्तर कम होगा। जब सरकार दीर्घकालीन ऋणों को अल्पकालीन ऋणों से स्थानापन्न करती है तो दीर्घकालीन ऋण की पूर्ति S_L से S_{L1} कम होने से दीर्घकालीन ब्याज दर बढ़ जाती है RL से R_{L1} हो जाती है। दूसरी तरफ अल्पकालीन ऋण की पूर्ति बढ कर ये Ssसे SS_1हो जाती है जिससे अल्पकालीन ब्याज दर RSसे RS_1हो जाती है। दीर्घकालीन ब्याज दर में वृद्धि से अल्पकालीन ब्याज दर में कमी अधिक होती है जैसा कि स्पष्ट है कि $R_S\text{-}Rs_1 < R_L - RL_1$

3. विभक्त बाजार सिद्धान्त की आलोचनायें (Criticism of the Market Segmented Theory)

यह सिद्धान्त यद्यपि कि 'बाजार दर संरचना' की व्याख्या में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है फिर भी निम्नलिखित आधारों पर इस सिद्धान्त की आलोचना की जाती है–

1. यह सिद्धान्त बताता है कि विनियोजक हमेशा ही 'जोखिम बचाव' से प्रभावित होते हैं जबकि विनियोजक अधिक प्रतिफल के कारण जोखिमों पर कम ध्यान देते हैं या ऐसा कहें कि विनियोजक जोखिम के साथ ही साथ प्रतिफल पर भी ध्यान देते हैं।
2. इस सिद्धान्त की एक मान्यता यह है कि अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ब्याज दरें एक दूसरे के साथ सम्बन्धित नहीं है परन्तु अनुभव की कसौटी पर देखा जाय तो ऐसा नहीं होता है। अनुभव के द्वारा यह देखा गया है कि अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ब्याज दरें एक दूसरे के साथ गत्यात्मक होती है अर्थात गति करती हैं। जब अल्पकालीन ब्याज दरें बढती या गिरती है तो दीर्घकालीन ब्याज दरें उसी दिशा में गति करती हैं।
3. यह सिद्धान्त केवल इस तथ्य की व्याख्या करता है कि भिन्न परिपक्वताओं वाली प्रतिभूतियों के लिये अधिमानों में परिवर्तन प्राप्ति/प्रतिफल वक्र के रूप को परिवर्तित करेंगे। परन्तु यह सिद्धान्त प्राप्तियों के ढांचे में परिवर्तनों की व्याख्या नहीं करता है।

18.7.3 तरलता प्रब्याजि सिद्धान्त/जोखिम प्रब्याजि सिद्धान्त (The Liquidity Premium Theory/Risk Premium Theory)

इस सिद्धान्त के मुख्य प्रवर्तक जे0आर0 हिक्स हैं। यह सिद्धान्त 'प्रत्याशा सिद्धान्त' पर श्रेष्ठता प्रदर्शित करता है। यह सिद्धान्त बताता है कि ऋणदाता एवं ऋणी अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रतिभूतियों के प्रति अपनी प्रवृत्तियों में भिन्नता रखते हैं। ऋण देने वाले अल्पावधि ऋण प्रदान करना पसन्द करते हैं एवं ऋण लेने वाले दीर्घावधि ऋणा लेना चाहते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि अल्पावधि प्रतिभूतियों पर

प्रतिफल निश्चित है परन्तु दीर्घावधि प्रतिभूतियों पर भविष्य के ब्याज दर की अनिश्चितताओं के कारण प्रतिफल अनिश्चित है। प्रतिभूतियों की परिपक्वता अवधि जितनी अधिक या लम्बी होगी अनिश्चितता एवं जोखिम उतने ही अधिक होंगे। इस तरह दीर्घावधि प्रतिभूतियों पर जोखिम की मात्रा अधिक होती है। इसी कारण ऋण देने वाले अल्पकालीन प्रतिभूतियों को अधिमान देते हैं। दीर्घकालीन ऋणदाताओं द्वारा आपूर्तित दीर्घकालीन प्रतिभूतियां बाजार द्वारा धारण करने की प्रेरणा देने के लिये उन पर प्रतिफल प्रीमियम; अल्पकालीन प्रतिभूतियों से निश्चत रूप से अधिक होना चाहिये जिसे प्रत्याशित प्रतिफल या तरलता प्रीमियम के नाम से जाना जाता है। परिणामस्वरूप दीर्घकालीन प्रतिभूतियों में अधिक जोखिम समाहित होने के कारण वे अधिक तरलता प्रीमियम की मांग करेंगी। चूंकि दीर्घावधि प्रतिभूतियों में जोखिम की प्रत्याशा अधिक होती है इससे यह बात स्पष्ट है कि जब कोई अल्पावधि से दीर्घावधि प्रतिभूतियों की तरफ उन्मुख होता है तो ब्याज दरें बढ़ती हैं। अत्यधिक दीर्घावधि प्रतिभूतियों पर उच्च ब्याज दरें दो महत्वपूर्ण तत्वों द्वारा निर्धारित होती है पहला है प्रत्याशा तत्व एवं दूसरा है तरलता प्रब्याजि या प्रीमियम तत्व। तरलता प्रब्याजि तत्व अल्पकालीन प्रतिभूतियों की अपेक्षा दीर्घकालीन प्रतिभूतियों पर उच्च ब्याज दर की तरफ हमेशा उन्मुख होगा। हिक्स ने इस प्रवृत्ति को 'संवैधानिक कमजोरी' (Constitutional Market Weakness) कहा है। उच्च ब्याज दरों की यह प्रवृत्ति प्रत्याशा घटक द्वारा आंशिक या पूर्णरूपेण प्रभावहीन की जा सकती है जिसे दिया हुआ माना गया है।

प्रो0 न्यूलिन ने अपनी पुस्तक 'Theory of Money' में आवश्यकता अवधियों एवं नकदीकरण की धारण को प्रस्तुत कर इस सिद्धान्त को संशोधित किया। नकदीकरण (Encashment) की अवधि का प्रत्याय कर्ज देने वाले से सम्बन्धित है। कर्ज दने वाला उस अवधि की गणना करता है जिसके लिये वह अपने नकद कोषों को उधार पर देने के लिये तैयार है तथा जिसके अन्त में वह उसे भुनायेगा अर्थात नकदीकरण करेगा। इसे भुनाने की अवधि या नकदीकरण की अवधि कहा जाता है यदि वह नकदीकरण की अवधि से कम अवधि के लिये अपने कोषों को कर्ज पर प्रदान करता है। तो वह अपनी ब्याज आय के बारे में निश्चित नही है जो वह शेष अवधि के लिये प्राप्त कर सकता है ब्याज आय का एक भाग ब्याज दरों के भविष्य के व्यवहार पर निर्भर करेगा। इस प्रकार कर्जदाता एक 'आय जोखिम' का वहन करता है जिसे ऋण देने वाला टाल सकता है यदि ऋण की अवधि भुनाने की अवधि के बराबर हो।

दूसरी तरफ यदि ऋण की अवधि भुनाने या नकदीकरण की अवधि से लम्बी हो तो वह पूंजी जोखिम (Capital Risk) उठाता है। यह ऋण के अंकित मूल्य से इसके बाजार मूल्य में अन्तर के कारण हो सकता है। इस स्थिति में ऋण देने वाला दोनों जोखिमें टाल सकता है यदि वह बिल्कुल नकदीकरण या भुनाने की अवधि के लिये अपने कोषों को कर्ज पर देता है। जब तक ऋण की अवधि भुनाने की अवधि से अधिक नहीं होती है

तब तक कर्जदाता को उसके कोषों के परित्याग के लिये प्रेरित करने हेतु कोई तरलता प्रब्याजि नहीं दिया जाता है।

आवश्यकता अवधि की अवधारणा कर्जदार से सम्बन्धित है जो उस अवधि की गणना करता है जिसके लिये वह ऋण की मांग करता है तथा जिसके समाप्त होने पर वह इसे वापस करेगा यदि कर्जदार या ऋण लेने वाला आवश्यकता अवधि के लिये ऋण लेता है तो वह आय जोखिम टालता है जो कि ब्याज जोखिम लागत है। यदि वह आवश्यकता अवधि के लिये ऋण लेने की मंशा रखता है तो वह एक अलग ब्याज लागत वहन करने के जोखिम पर चलता है एवं इस तरह से एक आय जोखिम उठाता है। यदि वह आवश्यकता अवधि से अधिक लम्बी अवधि के लिये ऋण लेता है तो वह उस अधिक अवधि के लिये ऋण के अंकित मूल्य से अलग मूल्य दे सकता है इसमें वह पूंजी जोखिम का वहन करता है। कर्जदार दोनों जोखिमों को टाल सकता है यदि वह आवश्यकता अवधि के बिल्कुल बराबर ऋण लेता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ऋणदाता एवं उधार लेने वाला दोनों आय एवं पूंजी जोखिमों को स्थगित कर सकते है यदि ऋण की परिपक्वता कमशः नकदीकरण/भुनाने एवं आवश्यकता अवधि के समतुल्य होती है।

1. न्यूलिन के सिद्धान्त की मान्यता– **(Assumptions of Neulins Theory)**

न्यूलिन का विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि–

1. कर्ज लेने वालों की औसत आवश्यकता अवधि ऋणदाताओं की औसत नकदीकरण/भुनाने की अवधि से अधिक होती है।
2. यह कर्जदाताओं को भुनाने की अवधि से अधिक लम्बी अवधि के लिये कर्ज देने का प्रलोभन देती है एवं इस तरह से पूंजी जोखिम होता है।
3. लम्बी अवधि की परिपक्वता वाले ऋण पूंजी जोखिम के विरूद्ध प्रीमियम प्राप्त करेंगे
4. दीर्घकालीन ब्याज दरें; अल्पकालीन ब्याज दरों से अधिक होती है तथ बाजार दीर्घकालीन प्रतिभूतियां रखने के लिये एक प्रीमियम/प्रब्याजि की मांग करता है जिसे तरलता प्रीमियम कहते है।

निष्कर्ष–

यह सिद्धान्त अधिक वास्तविक है क्योंकि यह विभिन्न परिपक्वताओं की प्रतिभूतियों का निवेशकों द्वारा उठाये जाने जोखिम पर विचार करता है। स्पष्ट है कि यह अवधि ढांचा सिद्धान्तों में एक सुधार (Improvement) है एवं यह सिद्धांन्त अधिकांश अर्थशास्त्रियों द्वारा स्वीकृत है कुछ विद्वान इस सिद्धान्त को शुद्ध प्रत्याशा सिद्धान्त का संशोधन मानते है इसी कारण इसे अभिनत प्रत्याशा सिद्धान्त (Biased Expectation Theory) भी कहते हैं।

2. तरलता प्रब्याजि सिद्धान्त की आलोचनायें या कमियाँ (Criticism or drawbacks of the Liquidity Premium Theory)

1. यह सिद्धान्त एकतरफा है क्योंकि यह मांग पक्ष पर अधिक बल देता है एवं पूर्ति पक्ष की अवहेलना करता है।
2. इस सिद्धान्त में यह बताया गया है कि ब्याज का भुगतान तब किया जाता है जब ऋण देने वाला तथा ऋण लेने वाला व्यक्ति अलग–अलग हो परन्तु यदि कोई व्यक्ति अपनी पूंजी स्वयं के ही उद्योग में लगाता है तब भी उसको ब्याज मिलना चाहिए ।
3. ब्याज की दर केवल तरलता से ही प्रभावित नहीं होती अपितु उस पर पूंजी की उत्पादकता का भी प्रभाव पड़ता है।
4. यह सिद्धान्त इस बात को स्पष्ट करने में असमर्थ है कि कभी–कभी अल्पकालीन ब्याज दरें दीर्घकालीन ब्याज दरों से अधिक क्यों होती हैं।

18.8 सारांश

ब्याज उस कीमत को कहते हैं जो उधार देने योग्य कोषों के प्रयोग के बदले दिया जाता है ब्याज दरों की श्रृंखला को ब्याज दरों की संरचना कहते हैं। ब्याज दरों की संरचना अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रतिभूतियों पर ब्याज की बाजार दरों के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। इसी कारण से इसे 'ब्याज दर के समय ढांचे' एवं परिपक्वता ढांचे' के रूप में भी जाना जाता है। ब्याज दर संरचना के निर्धारक तत्व है–जोखिम, अधिमान, प्रत्याशायें एवं अनिश्चिततायें, मांग पूर्ति की दशायें एवं विपणन तरलता या साध्यता। ब्याज दर अवधि संरचना के विभिन्न सिद्धान्त हैं। उनमें से प्रमुख है–प्रत्याशा सिद्धान्त, विभक्त बाजार सिद्धान्त तथा तरलता प्रब्याजि सिद्धान्त। प्रत्येक सिद्धान्त की अपनी कुछ कमियां तथा विशेषतायें हैं।

प्रत्याशा सिद्धान्त भविष्य की अल्पकालीन ब्याज दरों की प्रत्याशाओं को वर्तमान ब्याज दरों की संरचना का मूल एवं एकमात्र निर्धारक मानता है।

विभक्त बाजार सिद्धान्त; विभिन्न परिपक्वता वाली प्रतिभूतियों के भिन्न–भिन्न बाजार होते हैं और विभिन्न परिपक्वताओं वाली प्रतिभूतियों पर ब्याज दरें प्रत्येक परिपक्वता में मांग एवं पूर्ति की अलग–अलग दशाओं द्वारा निर्धारित होती है।

तरलता प्रव्याजी सिद्धान्त के अनुसार निवेशक जोखिम एवं प्रतिफल दोनों के मध्य सन्तुलन बनाने का प्रयास करता है।

18.9 शब्दावली

ब्याज दर – (Interest Rate) मुद्रा के लेन–देन की कीमत।

ब्याज संरचना – (Interest Structure) ब्याज दरों की श्रृंखला।

ब्याज प्रत्याशा– (Expectation) ब्याज दर की दिशा की प्रत्याशा में ब्याज दर का मुख्य निर्धारक।

मान्यता (Assumptions) किसी सिद्धान्त में जो पूर्व में ही मान लिया जाता है।

18.10 बोध प्रश्न

1. ब्याज दर अवधि संरचना से आप क्या समझते हैं? ब्याज दर अवधि संरचना के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए ।
2. तरलता प्रब्याजि सिद्धान्त का वर्णन कीजिए ।
3. ब्याज दर एवं ब्याज संरचना दर में अन्तर बताइये।
4. ब्याज दर अवधि संरचना के सिद्धान्तों का मूल्यांकन कीजिए।

18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. प्रथम प्रश्न के उत्तर के प्रथम भाग में 'ब्याज दर अवधि संरचना की परिभाषा दीजिये तथा प्रश्न के दूसरे भाग में महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. द्वितीय प्रश्न के उत्तर में तरलता प्रब्याजि सिद्धान्त के बारे में बताते हुये सिद्धान्त की विषय सामग्री मान्यता तथा आलोचना कीजिए ।
3. तृतीय प्रश्न के उत्तर के प्रथम भाग में ब्याज दर एवं ब्याज दर संरचना को परिभाषित कीजिये तथा दूसरे भाग में अन्तर स्थापित कीजिये।
4. चौथे प्रश्न के उत्तर हेतु तीनों महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का वर्णन कीजिये तथा एक–दूसरे पर श्रेष्ठता को बताते हुये अपने उत्तर को सारांश रूप में लिखें।

18.12 स्वपरख प्रश्न

1. ब्याज दरों के अवधि ढांचा से आप क्या समझते हैं? उन घटकों की व्याख्या कीजिये जो अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ब्याज दरों को निर्धारित करते हैं?
2. ब्याज दरों के ढांचे से क्या अभिप्राय है? अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ब्याज दरों के बीच सम्बन्ध की विवेचना कीजिए।
3. अवधि ढांचा के प्रत्याशा सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये। इसकी क्या कमियां हैं?
4. अवधि ढांचा के 'विभक्त बाजार सिद्धान्त' की व्याख्या कीजिये; यह प्रत्याशा सिद्धान्त से किस प्रकार श्रेष्ठ है? बताइये।

18.13 सन्दर्भ पुस्तकें

❖ एम एल झिंगन – मौद्रिक अर्थशास्त्र
❖ डा0 एम0एल0सेठ – मुद्रा एवं बैंकिंग
❖ 3– डा0 सतीश कुमार साहा – मुद्रा एवं बैंकिग
❖ डा0 वी0सी0 सिन्हा एवं पुष्पा सिन्हा – मुद्रा एवं वित्तीय प्रणालियां